UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182379

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—43—30-1-71—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 T83K Accession No. P.G. H1782

Author त्रिपाठी, रामनरेश

Title कविता कौमुदी · 1955

This book should be returned on or before the date last marked below.

कविता-कौमुदी

[चौथा भाग]

उर्दू

सम्पादक

रामनरेश त्रिपाठी

प्रस्तावनालेखक

डा० अमरनाथ झा

(भू० पू० वाइस चांसलर, इलाहाबाद युनिवर्सिटी)

प्रकाशक

नवनीत प्रकाशन लिमिटेड

बम्बई

प्रकाशक
नवनीत प्रकाशन लिमिटेड
तारदेव, बंबई

पहला संस्करण	१९२५	२०००
दूसरा संस्करण	१९३२	१०००
तीसरा संस्करण	१९४१	१०००
चौथा संस्करण	१९५५	२०००

मूल्य : आठ रुपये

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
इलाहाबाद

प्रस्तावना

हिन्दी-साहित्य का जब इतिहास लिखा जायगा तो उसमें पंडित रामनरेशजी त्रिपाठी की विविध सेवाओं का बड़े मान के साथ उल्लेख होगा। न केवल उनकी कृतियों का उसमें वर्णन होगा, परन्तु उनके सम्पादित और प्रकाशित 'कविता-कौमुदी' को एक विशेष स्थान दिया जायगा। इन पुस्तकों के द्वारा त्रिपाठीजी ने हिन्दी पढ़नेवालों को परिचय कराया है न केवल हिन्दी के काव्य से, परन्तु बँगला, उर्दू और संस्कृत के उत्कृष्ट काव्य के उदाहरणों से भी।

प्रस्तुत ग्रन्थ में उर्दू-भाषा और उसके काव्य का दिग्दर्शन कराया गया है। मैं आपके विचारों से बहुधा सहमत नहीं हूँ; फिर भी हिन्दी में उर्दू के विषय पर ऐसी सुन्दर पुस्तक मैंने नहीं देखी है। इसके पढ़ने से न केवल उर्दू-कविता का यथेष्ट ज्ञान हो जाता है, उसमें रुचि भी उत्पन्न हो जाती है। हमारे देश में साहित्य और ललित-कला में तो कभी संकीर्णता थी ही नहीं। हम और भाषाओं से अभिज्ञ होने को उत्सुक रहते हैं, और भाषाओं पर आधिपत्य प्राप्त करने में अपना गौरव समझते हैं।

ऐतिहासिक और शब्द-वैज्ञानिक दृष्टि से तथ्य चाहे कुछ भी हो, आज तो हिन्दी और उर्दू दो भिन्न भाषायें हैं। उर्दू के कवि इस देश के छन्दों में नहीं लिखते हैं। उर्दू-काव्य का समस्त वातावरण विदेशीय है —यहाँ तक कि हिन्दू जब उर्दू में कविता लिखता है तो अपने मज़ार और क़ब्र का ज़िक्र करता है, धोखे से भी ईश्वर का नाम नहीं लेता, हमेशा ख़ुदा ही उसका ईश्वर है। सावित्री और सत्यवान, नल और दमयन्ती को भूलकर उनकी कविता में केवल शीरीं और फ़रहाद, यूसुफ़

और ज़ुलेख़ा ही के नाम आया करते हैं। हिन्दू अपने को काफ़िर कहता है, बुत-परस्त कहता है, और अपने देवताओं को बुत। उसका अरमान रहता है कि वह मुसलमान हो जाय। भारतवर्ष का, यहाँ की वस्तुओं का, यहाँ के इतिहास का, यहाँ की कथाओं का, यहाँ के प्राकृतिक दृश्यों का, वह कहीं नाम नहीं लेता है।

शहर के रहनेवाले, मुग़ल-साम्राज्य के कार्य-कर्त्ता, और अदालतों से सम्पर्क रखनेवाले भले ही फ़ारसी और उर्दू का प्रयोग करते रहे हों; परन्तु किसी भी हिन्दू को यह अधिकार नहीं प्राप्त हुआ कि वह उर्दू-साहित्य का महारथी समझा जाय अथवा उसकी गणना उस्तादों में हो। ऐसी स्थिति में हम यह कैसे मान लें कि हिन्दी और उर्दू एक ही हैं ?

त्रिपाठीजी ने जो स्वयं इस पुस्तक मे अनेक उदाहरण दिये हैं, उनमें हिन्दू-कवियों के कहे हुए कौन हैं? मीर, सौदा, ग़ालिब, इन्शा, यही तो हैं? जिन पाँच युगों के विधाताओं के नाम इस पुस्तक में हैं—वली, आबरू, यकरंग, आरज़ू, फ़ुग़ाँ, सौदा, सोज़, दर्द, मीर, जुरअत, हसन, इन्शा, मसहफ़ी, नासिख़, आतिश, मोमिन, ज़ौक़, ग़ालिब, अमीर, अनीस, दबीर, दाग़, आसी, हाली, अकबर, इक़बाल, चकबस्त—इनमें अन्तिम नाम चकबस्त एक हिन्दू का है। तीन सौ वर्षों के साहित्य के इतिहास में एक हिन्दू कवि! सत्ताईस महाकवियों मे एक!—यही है 'मुश्तर्का ज़बान' की यथार्थता!

सच तो यह है कि उर्दू हिन्दुस्तान की भाषा होने ही नहीं पाई—न भाव में, न विषय में, न शब्द में। यह ईरान और अरब के साहित्य की एक शाखा-मात्र है। हम इसे पढ़ते हैं, हम इसका रसास्वादन करते हैं; अँग्रेज़ी को भी हम रुचि से पढ़ते हैं, हम में से कुछ फ़्रेंच और जर्मन भी पढ़ा करते हैं; परन्तु ये हमारी भाषायें तो नहीं हैं?

अस्तु; हमें उर्दू से विरोध नहीं है—वह फूले, फले उन्नति करे। परन्तु वह हिन्दी का केवल रूपान्तर है, यह मैं नहीं मानता।

१८–१२–४०

अमरनाथ झा

चौथे संस्करण की भूमिका

इस पुस्तक का पहला संस्करण १९२५ ई० में, दूसरा संस्करण १९-३२ ई० मे और तीसरा संस्करण १९४१ ई० में हुआ था। उसी वर्ष मैं अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिये साहित्य-क्षेत्र से अलग हो गया था। इस बीच में उर्दू-कविता-कौमुदी की लोक-प्रियता बहुत बढ़ गई और इसके नये संस्करण के लिये मित्रों और उर्दू-साहित्य के जिज्ञासुओं के तक़ाज़े पर तक़ाजे आने लगे। मुख्यतः श्री श्रीगोपाल नेवटिया, संचालक नवनीत-प्रकाशन लि०, बंबई की प्रेरणा से मैं विशेष प्रभावित हुआ; क्योंकि उन्होंने प्रकाशन का सारा भार अपने ऊपर ले लिया, जिसकी शक्ति मुझमें नहीं थी। यह चौथा संस्करण उसी का परिणाम है।

मुझे यह स्मरण करते हर्ष होता है कि हिन्दी में उर्दू के शायरों और उनकी शायरी का परिचय देने का सबसे पहला प्रयास मेरा था। और जब भारत के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० अमरनाथ झा जी ने यह लिखा कि हिन्दी में उर्दू के विषय पर ऐसी सुन्दर पुस्तक मैंने नहीं देखी है', तब मेरे हर्ष की सीमा नहीं थी। यह मेरे परिश्रम का एक प्रमाण-पत्र था, जो झा साहब से किसी को सहज में नहीं प्राप्त हो सकता था।

१९२५ ई० के बाद असहयोग-आन्दोलन के कारण सारे देश में ऐसी उत्तेजना फैल गई थी कि उसमें शृंगार-रस या इश्किया शायरी के लिये जगह ही नहीं थी। स्वराज्य मिला, तो हिन्दू और मुसलमानों में विद्रोह फूट निकला और पाकिस्तान बना। इससे उर्दू-साहित्य की ओर भी भारतीय जनता में उदासीनता आ गई। यही कारण है कि यद्यपि १९४१ तक उर्दू-कविता-कौमुदी के तीन संस्करण हो चुके थे; पर उर्दू-शायरी में

जो खूबियाँ हैं, उनकी तरफ़ हिन्दीवालों का यथेष्ट ध्यान नहीं जा सका। नहीं तो गत तीस वर्षों में पूरा उर्दू-साहित्य हिन्दी में आ जाना चाहिये था।

गत दस बारह वर्षों में प्रकाशित उर्दू-शायरों और शायरी के संबंध की थोड़ी ही हिन्दी-पुस्तकें मेरे देखने में आई हैं। उनमें मुख्य ये हैं :—

१—उर्दू-साहित्य का इतिहास, दो भाग; लेखक—डा० रामबाबू सक्सेना; प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।

२—शेर-ओ-शायरी; शेर-ओ-सुखन आदि; लेखक—श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय; प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

३—उर्दू-शायरी; लेखक—श्री नारायणप्रसाद जैन; प्रकाशक—हिन्दी ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय, बंबई।

४—उर्दू के कवि और उनका काव्य; लेखक—पंडित गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'—प्रकाशक—काशी-पुस्तक-भंडार, बनारस।

५—उर्दू काव्य की एक नई धारा; लेखक—श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'; प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।

संभव है, और पुस्तकें भी निकली हों, जो मेरे देखने में नहीं आई।

पहली पुस्तक 'उर्दू-साहित्य का इतिहास' (दोनों भाग) वास्तव में एक संक्षिप्त और प्रामाणिक इतिहास है। विद्वान् लेखक ने क्रम-बद्ध इतिहास लिखा है। और उर्दू के शायरों और उनकी शायरी के गुण-दोषों पर निष्पक्ष होकर निर्भयता से अपने विचार प्रकट किये हैं। लेखक का अध्ययन बहुत उच्च कोटि का है। उनकी लेखन-शैली भी नमूने की है। मैंने उर्दू-साहित्य के इतिहास संबंधी जितनी पुस्तकें उर्दू में पढ़ी हैं, आबेहयात को छोड़कर वे ज़्यादातर शब्दाडंबर से पूर्ण हैं और उनमें से तथ्य की बात निकालना बहुत कठिन है। हर्ष की बात है कि डा० रामबाबू ने यह उलझन स्वयं ओढ़ ली और हिन्दीवालों के लिये इतिहास का मार्ग प्रशस्त कर दिया। मुझे स्मरण है कि लखनऊ के किसी अस्पताल से, जहाँ वे शायद बीमार हो कर रहे होंगे, उर्दू-कविता-कौमुदी के लिये उनका पत्र आया था; पर मेरे पास कोई प्रति न होने के कारण मैं नहीं भेज सका था। इससे यह तो स्पष्ट

ही है कि उर्दू के संबंध में प्रकाशित पुस्तकों की वे अधिक से अधिक जानकारी कर लेना चाहते थे; और यह किसी भी इतिहास-लेखक का एक प्रशंसनीय गुण है।

गोयलीयजी ने तो, ऐसा जान पड़ता है, उर्दू के समुद्र को मथ ही डाला है। इसमें संदेह नहीं, उन्होंने बहुत परिश्रम किया है, और शायरों के जीवन पर प्रकाश डालते हुये उनकी शायरी के चुने हुये नमूने भी देकर उन्होंने अपनी पुस्तकों की उपयोगिता बहुत बढ़ा दी है। हिन्दी-वालों की ओर से वे धन्यवाद के पात्र हैं।

किन्तु उनकी एक बात मुझे खटक रही है। वह यह है कि जहाँ उन्होंने उर्दू की सैकड़ो पुस्तकें पढ़ीं, वहाँ उर्दू-कविता-कौमुदी की उपेक्षा उन्होंने क्यों की? क्या इसलिये की कि हिन्दी में उर्दू-शायरी पर सबसे पहले पुस्तकें उपस्थित करने का श्रेय उन्हीं को मिले? मुझे इस पर विश्वास नहीं होता। गोयलीयजी से मेरा व्यक्तिगत परिचय बिलकुल नहीं है; पर शेर-ओ-शायरी आदि पुस्तकों में उनकी लिखी आलोचनायें पढ़कर मेरी यह धारणा हुई है कि वे सच्चे और अध्ययनशील व्यक्ति हैं; किसी लेखक के साथ उसका यश छीनने की प्रवंचना वे नहीं करेंगे। अतः मूल कारण कोई और ही होगा।

मुझे इसमें तो संदेह नहीं है कि उर्दू-कविता-कौमुदी उन्होंने ज़रूर देखी है। वे हिन्दी भी अच्छी लिखते हैं: उर्दू का ज्ञान उनका हिन्दी से अधिक ही प्रमाणित हो रहा है। अपनी पुस्तकें लिखने से पहले उन्होंने ज़रूर ही यह जानने का प्रयत्न किया होगा कि हिन्दी में उर्दू-साहित्य पर और कोई पुस्तक है या नहीं? और जब १९४१ ई० तक उर्दू-कविता-कौमुदी के तीन संस्करण निकल गये थे, तब १९४६ ई० में बैठकर अपनी पुस्तकें लिखते समय उनको उर्दू-कविता-कौमुदी का ज्ञान न रहा हो, इस पर सहसा विश्वास नहीं होता। एक प्रमाण तो उनकी पुस्तक ही में मिल गया है, उसे मैं यहाँ उद्धृत करता हूँ :—

शेर-ओ-सखुन के पृष्ठ २८ पर श्री गोयलीयजी लिखते हैं:—

'एक डाक्टर, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, कुछ इस तरह ज़बान बोलेगा—मैं कैलकटा से थर्सडे को स्टार्ट होकर फ्राइडे को मार्निंग ट्रेन से इलाहाबाद पहुँचा; वहाँ पेशंट को देखा, वह होपलेस कंडीशन में था, फिर भी प्रिसक्रिप्शन लिख दिया।'

उर्दू-कविता-कौमुदी (१९४१ के संस्करण) में पृष्ठ ९ पर क़रीब-क़रीब ऐसा ही यह छपा है :—

'और इसी को एक ग्रेजुएट, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, इस तरह बोलता है :—मैं कैलकटा से चला। फ्राइडे को मार्निंग ट्रेन से इलाहाबाद पहुँचा। पेशंट को देखा; वह होपलेस कंडीशन में है।'

अब दोनों को मिलाकर देखिये। दो-चार शब्दों का हेरफेर है; पर परदा बहुत झिल्ली कपड़े का है; सचाई बाहर झलक रही है।

इस विश्वास के साथ मुझे इस बात का खेद है कि गोयलीयजी जैसे विवेकशील लेखक ने जहाँ दुर्योधन, नानक, नादिरशाह, पद्माकर, बाबूराम सक्सेना, बिहारी, मतिराम, महात्मा गाँधी, मोरध्वज, राणा प्रताप, बाण, लक्ष्मण, वाल्मीकि, विद्यापति, शिवाजी, सुदामा, सेनापति, हरिश्चन्द्र, अर्जुन, लार्ड कर्ज़न, कृष्ण, चन्द्रशेखर आज़ाद, नरसी भगत, नल-दमयंती, पद्मिनी, पृथ्वीराज, भगतसिंह, भीम, महादेव, यतीन्द्रनाथ, संयोगिता, हिटलर, वेद, रामायण, महाभारत, पुराण, दधीचि, अंजना, अनुसूया, अश्वघोष, कीचक, कुंभकर्ण, कौरव-पाण्डव, कालिदास, जयद्रथ, दुष्यंत, बर्नार्ड शा, माघ, मीरा आदि महान् पुरुषों, कवियों और संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों के नाम, जिनका उर्दू-शायरी से जरा भर भी ताल्लुक नहीं, मौक़े-बे मौक़े प्रसंग निकाल-निकालकर दिये हैं, वहाँ अपने एक समानधर्मा ग़रीब लेखक का, जो अभी जीवित भी है, नाम भी कहीं एक कोने में छपवा दिये होते, तो वह भी तो समझता कि :—

ज़िक्र मेरा मुझसे बेहतर है कि उस महफ़िल में है।

श्री गोयलीयजी लिखते हैं कि 'मैंने एक पंक्ति भी किसी की उद्धृत की है, तो उसका नाम दे दिया है,' इससे तो और भी आश्चर्य होता है।

और यदि उर्दू-कविता कौमुदी किसी काम की न थी, तो वे यही लिख देते कि वह तुच्छ थी और उर्दू-साहित्य के एक विस्तृत विवेचनात्मक इतिहास की ज़रूरत थी, जो उससे पूरी नहीं हो सकती थी, इसलिये मैंने ये पुस्तकें प्रस्तुत कीं; तो मेरा ख़याल है, उनकी पुस्तकों की उपादेयता और बढ़ जाती और मुझे भी कोई मलाल न होता। अपने पर विश्वास रखने वाला कोई लेखक किसीकी राह रोककर खड़ा नहीं होता। अच्छी चीज़ें हमेशा आगे आती रहनी ही चाहिये।

मैंने इस विषय को ज़रा तूल देकर लिखा है। इसका कारण है— आजकल प्रायः देखने में आता है कि हिन्दी के उत्साही लेखक झपटकर आगे आना चाहते हैं और अपने विषय के सर्व-प्रथम लेखक होने का यश लेना चाहते है; तब वे इस खतरे पर ध्यान नहीं देते कि अपने से पूर्ववर्त्ती लेखकों के यश की रक्षा भी तो उनके सुपुर्द है। उसकी उपेक्षा करके वे विद्वन्मंडल में अपने वर्तमान स्तर से भी नीचे उतार दिये जा सकते है।

हिन्दी के सामान्य लेखकों में अभी कृतज्ञता-ज्ञापन की आदत नहीं पड़ी है। उनमें जोश अधिक है, होश कम। वे परस्पर एक दूसरे लेखक का सम्मान करते हुये न चलेंगे तो आपसी धक्कमधक्के से कुड़बुड़ाते हुये मुश्किल से गन्तव्य स्थान तक पहुँच पायेंगे। और वे अपने पीछे आनेवाले लेखकों के सामने अपना ग़लत उदाहरण उपस्थित करेंगे।

तीसरी पुस्तक 'उर्दू-शायरी' शेरों का संग्रह है। लेखक ने अच्छे शेर चुन-चुनकर संग्रह कर दिये हैं, जिससे उसकी अध्ययनशीलता और रुचि की सरसता प्रकट होती है।

चौथी पुस्तक 'उर्दू के कवि और उनका काव्य' में गिरीशजी ने उर्दू-कविता पर जो अपने विचार प्रकट किये हैं, वे पठनीय और मननीय हैं।

पाँचवीं पुस्तक में ज्यादातर फिल्मी गाने संग्रहीत हैं। मेरी राय में अभी तक वे इतने महत्वपूर्ण नहीं हैं कि उन्हें साहित्य में स्थान दिया जा सके। उनका महत्व इतना ही है कि उन्हें उर्दू के शायरों ने बोलचाल की सरल भाषा में कृष्ण, राधा, जसोदा, पुजारिन आदि नाम जड़कर सामने रक्खा है।

पर वे फिल्मी गाने हैं, उनमें पैसे की बू आती है; कविता का सहज स्वरूप उनमें दिखाई नहीं पड़ता। उनसे अच्छे गाने तो देहात के राह-चलते गाते चलते हैं। और उर्दू के उन्हीं कवियों की अन्य रचनाओं के सामने तो वे लड़कों की तुकबन्दी जैसे जँचते हैं। तो भी उर्दू के शायर हिन्दी की तरफ़ आ रहे हैं; हमें प्रेम-पूर्वक उनका स्वागत करना ही चाहिये।

इस चौथे संकरण में मैंने बहुत-कुछ परिवर्द्धन किया है। उर्दू-साहित्य का संक्षिप्त परिचय भी नये सिरे से लिख दिया है; और शायरों की संख्या भी वर्तमान काल तक बढ़ा दी है। साथ ही कौमुदी-कुंज में बहुत-से नये शेर संग्रह कर दिये हैं, जो पिछले संस्करणों में नहीं थे। मैं समझता हूँ, प्रत्येक रुचि के व्यक्ति के लिये यह पुस्तक उपयोगी होगी।

इस संस्करण में डा० रामबाबू सक्सेना की पुस्तक से शायरों के जीवन-चरितों के संशोधन में मैंने सहायता ली है। गोयलीय जी, श्री नारायण प्रसाद जैन जी, गिरीश जी और अश्क जी की पुस्तकों से भी मैंने कुछ शेर और गीत चुने हैं, जिनके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

वसंत-निवास
सुलतानपुर
१ जून, १९५५

रामनरेश त्रिपाठी

पहले संस्करण की भूमिका

कविता-कौमुदी के पहले और दूसरे भाग में जिस समय मैंने हिन्दी के पुराने और नये कवियों का परिचय प्रकाशित किया था; उसी समय उर्दू-कवियों के विषय में भी एक पुस्तक लिखने का विचार मेरे मन में उठा था।

अतएव अन्य कामों से समय निकालकर उर्दू-कविता का मैंने अध्ययन प्रारंभ किया। एक वर्ष के अन्दर कितनी ही बाधायें उपस्थित

हुई; मेरे बड़े भाई का देहान्त हो गया, घर-गृहस्थी का भार सिर पर आ पड़ा, और कई नई चिन्ताओं ने मन में घर कर लिया; पर सब विघ्न-बाधाओं के होते हुये भी यह कार्य ईश्वर की कृपा से समाप्त हो गया। अतएव अपने पाठकों के सामने इसे उपस्थित करने में मुझे बहुत हर्ष हो रहा है।

कविता-कौमुदी के पिछले भागों को हिन्दी-संसार ने बड़ी रुचि से अपनाया। कलकत्ता, पटना, नागपुर और लाहौर की युनिवर्सिटियों ने पहले भाग को अपने यहाँ उच्च कक्षा के कोर्स में रक्खा। इससे मैंने समझा कि मेरी साहित्यिक सेवाएँ स्वीकार की जा रही हैं, और मैं उत्साहित हुआ। कविता-कौमुदी का यह चौथा भाग उसी उत्साह का फल है। मैं आशा करता हूँ कि हिन्दी-संसार इसे भी स्वीकार करके आगे अधिक सेवा करने का मुझे अवसर देगा।

हिन्दी-वालों के लिये उर्दू-कविता की जानकारी बहुत आवश्यक जानकर यह पुस्तक तैयार की गई है। उर्दू में महावरों का बहुत अच्छा प्रयोग होता है। उर्दू-कविता में भाव चाहे कैसे ही हों, पर भाषा का सुथरापन और महावरों का लालित्य तो अनोखा ही है। हिन्दी-वालों को भी उर्दू का यह गुण ग्रहण करना चाहिये।

उर्दू-कविता में वर्णित विषय हिन्दी-वालों के लिये बिल्कुल नए हैं। भाषा और मुख्यकर लिपि का पर्दा पड़ा रहने के कारण केवल हिन्दी-जाननेवाले साहित्य-रसिक अबतक अरब और फारस की इस अद्भुत छटा को देख ही नहीं पाये थे। इस पुस्तक ने वह पर्दा उठा दिया है। अब अच्छी तरह से वे देख सकेंगे कि कैसा नया और विचित्र संसार उनके पड़ोस ही में है।

इसमें जिन उर्दू-कवियों का वर्णन आया है, वे उर्दू-जगत् में प्रमुख माने गये हैं। उनके सिवा उन्हीं की श्रेणी के और भी कई कवि इस समय वर्तमान हैं; पर अभी उनके जीवन में उनकी प्रतिभा के और भी अनोखे चमत्कार प्रकट होंगे, तभी उनका जीवन-चरित उचित रीति से

लिखा जायगा। फिर भी कौमुदी-कुंज में उनकी कविता के कुछ नमूने दे दिये गये हैं।

कविता के चुनाव के सम्बंध में हमें विशेष रूप से कुछ निवेदन करना है। हमने कविता-कौमुदी के दो भागों में हिन्दी-कविताओं का जो चुनाव किया है, उसके संबंध में हिन्दी के मासिक-पत्रों में बहुत-सी टीका-टिप्पणियाँ निकलीं। किसी ने चुनाव को अच्छा बताया, किसी ने साधारण। हम जानते हैं कि उर्दू-कविता का जो चुनाव हमने किया है, उसके सम्बंध में भी ऐसा ही होगा, और यह अनिवार्य है। सब की रुचि और सब की योग्यता एक-सी नहीं हो सकती। किसी को शृंगार प्रिय है, किसी को वीर-रस। कोई करुण-रस का प्रेमी है, कोई प्रेम और भक्ति का। कोई नीति की कविता पंसद करता है, तो कोई वैराग्य की। ऐसी दशा में किसी एक व्यक्ति का चुनाव सर्वप्रिय कैसे हो सकता है?

चुनाव में योग्यता का भी अन्तर पड़ता है। कितने ही छंद ऐसे हैं, जिन पर साधारण जनता ध्यान भी नहीं देती। उन पर बड़े-बड़े विद्वान् मुग्ध देखे जाते हैं, और अपने भाषणों में वे उनका उत्तमता से उपयोग भी करते हैं। न हमें अपनी योग्यता ही का दावा है, और न समालोचकों की रुचि की जानकारी ही का। हमें दावा है तो केवल इस बात का कि हमने जो कुछ चुना है, अपनी समझ से अच्छा समझकर चुना है।

हाँ, इतना हम अवश्य स्वीकार करते हैं कि संभव है, कवियों के बहुत से ऐसे शेर छूट गये होंगे, जिनमें उनकी प्रतिभा के अद्भुत चमत्कार होंगे। पर यह बात भी विचारणीय है कि कवियों के लम्बे-लम्बे जीवन भर की कविताओं में से चुनी हुई कविताओं के लिये भी कविता-कौमुदी के पृष्ठ अपर्याप्त हैं। एक-एक कवि के लिये कविता-कौमुदी ऐसी एक-एक पुस्तक अलग चाहिये।

कविताओं के चुनाव के सम्बन्ध में कुछ मित्रों की यह शिकायत भी हमने सुनी है कि हम चुनाव किसी ख़ास लक्ष्य को ध्यान में रखकर नहीं

करते। अर्थात् न हम साहित्यिक दृष्टि से चुनाव करते हैं; और न किसी खास विषय को लक्ष्य में रखकर। ऐसे मित्रों की सेवा में हमारा सविनय निवेदन है कि वास्तव में हम किसी खास विषय को लक्ष्य में रखकर चुनाव नहीं करते। बल्कि जिस कवि का जो रूप है, हम उसे उसी रूप में अपने पाठकों के सामने लाने का प्रयत्न करते हैं। हम अपनी रुचि, विचार या लक्ष्य को कभी किसी कवि के लिये बाधक नहीं होने देते।

हमें करुण और वीर-रस तथा भक्ति, प्रेम और वैराग्य की कविताएँ स्वभाव ही से प्रिय हैं। शृंगार-रस की ओर हमारी रुचि कम है। पर कविता-कौमुदी के पहले भाग में हमने हिन्दी के शृंगारी कवियों की ऐसी कविताएँ भी आने दी हैं, जिनमें कुछ लोगों को अश्लीलता दिखाई पड़ सकती है। ऐसी स्वतन्त्रता का उपयोग हमने उर्दू-कवियों के साथ भी किया है। हमने जो उचित समझा, उसे हिन्दी-पाठकों के सामने रख दिया। अब हम स्वयं यह जानने के इच्छुक हैं कि हमने कैसा किया।

हमें इस बात का खेद है कि केवल हिन्दी जाननेवाले पाठक उर्दू-कविता को ठीक-ठीक पढ़ नहीं सकेंगे। कारण यह है कि उर्दू-कविता में प्रायः प्रत्येक चरण में ऐसे अक्षर आते हैं जिन्हें दीर्घ होते हुये भी कविता की गति के अनुसार ह्रस्व पढ़ना पड़ता है। 'और', 'यह' 'वह' को तो हमने उनके उच्चारण के अनुसार 'औ', 'य', 'व' या 'वो' कर दिया है; पर अ, इ, उ, से प्रारम्भ होने वाले कितने ही ऐसे शब्द हैं जिनके अ, इ, उ को उनके पहले के शब्द के अन्तिम अक्षर में मिलाकर पढ़ने पड़ते हैं। हिन्दी-लिपि में कोई ऐसे चिह्न नहीं, जिनके द्वारा हम ये कठिनाइयाँ दूर कर सकते। फिर भी हमने उर्दू के इतिहास में उर्दू-छन्दों के हिन्दी नाम बताकर यह सुगमता लाने का प्रयत्न किया है कि उनकी गति जानकर हिन्दी-जाननेवाले पाठक उर्दू-छन्दों का पाठ आसानी से कर सकें।

इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने की प्रार्थना मैंने अपने साहित्यिक मित्र तथा अपने देश के एक सुप्रसिद्ध विद्वान् और कविता के प्रख्यात मर्मज्ञ पंडित अमरनाथ झा (वाइस चांसलर, इलाहाबाद युनिवर्सिटी)

से की थी। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि उन्होंने अपने बहुमूल्य समय का एक अंश देकर प्रस्तावना लिख दी। हिन्दी-उर्दू के सम्बन्ध में यद्यपि उनके विचार मुझसे नहीं मिलते; पर वे एक पक्ष का जोरदार समर्थन करते हैं जो मननीय है। इस पुस्तक में माननीय झा जी के विचारों का समावेश हो जाने से हमारे पाठकों को अपने विचारों की यथार्थता जाँचने में बड़ी सहायता मिलेगी।

हमें इस पुस्तक के लिखने में आबेहयात, खुम-खानए जावेद, गुलशने हिन्द, तजकिराः शुअराय उर्दू और सुखनुश्शुअरा आदि संग्रह-ग्रंथों से सहायता लेनी पड़ी है। हम हृदय से इन सब ग्रंथों के रचयिताओं के कृतज्ञ हैं।

रामनरेश त्रिपाठी

सूची

उर्दू-भाषा और साहित्य का संक्षिप्त परिचय

हिन्दी और उर्दू	१
हिन्दी और उसकी व्यापकता	३
उर्दू मुसलमानी हिन्दी है	१०
विदेशी शब्दों का समावेश	१३
हिन्दी-व्याकरण की मान्यता	१५
रेखता	१७
रेखती	१९
हिन्दुस्तानी	२०
राष्ट्रभाषा	२२
उर्दू-शायरी का जन्म और जन्म-स्थान	२४
उर्दू के युग	२९
पहला युग	२९
दूसरा युग	३०
तीसरा युग	३१
चौथा युग	३२
पाँचवाँ युग	३२
उर्दू का छंद-शास्त्र	३३
गजल	३७
कसीदा	३९
मसनवी	३९

मरसिया ३९
सवाई ३९
मुसल्लस ४०
मुखम्मस ४०
मुसद्दस ४०
तारीख ४१
शेर ४२
मिसरा ४२
बैत ४२
मतला ४२
मकता ४२
काफ़िया ४२
रदीफ़ ४३
उर्दू-शायरी में वर्णित मुख्य विषय ४३
आशिक के विशेषण ४३
माशूक के विशेषण ४४
आशिक के काम ४४
माशूक के काम ४४
माशूक का नखशिख ४४
बाग ४५
सहरा ४५
दरिया ४५
महफ़िल ४५
गम ४५
आसमान ४६
खिज्र ४६
शैतान ४६

बिरहमन	४६
शेख	४७
फ़रहाद और शीरीं	४७
मन्सूर	४८
कैस या मजनूं और लैला	४८
यूसुफ और जुलेखा	४९
ज़ाहिद	४९
वाइज़ या नासेह	४९
बुत	५०
शराब	५०
हर या परी	५०
क़ातिल	५१
क़यामत	५१
काफ़िर	५१
तखल्लुस	५२
मुशायरा	५२
अप्राकृतिक प्रेम	५६
बुत या माशूक़ की असली सूरत	५७
उर्दू-शायरी और सूफी मत	५९
उर्दू-शायरी में रस	६०
उर्दू-शायरी फारसी की नक़ल है	६१
उर्दू-शायरी पर एक व्यापक दृष्टि	६४
इश्क	६४
उर्दू—शायरी और शराब	७२
उर्दू-शायरी ला-मज़हब है	७६
बादशाह, बेगमें, राजा और महाराजा शायर	७८
शाहआलम	७८

बादशाह ज़फर ७८
नवाब आसफ़ुद्दौला 'आसफ' ८०
नवाब वज़ीर अली खाँ 'वज़ीर' ८१
नवाब सआदत अली खाँ आदि ८१
नवाब वाजिद अली शाह ८२
बेगमें शायरा ८३
हैदराबाद दरबार ८४
रामपुर दरबार ८४
अन्य दरबार ८४
मियाँ चिरकी ८५
जाफर जटल ८६
अतिशयोक्तियाँ ८६
उर्दू-शायरी का समाज पर प्रभाव ९१
उर्दू-शायरी का शायरों के जीवन पर प्रभाव ९४
उर्दू-शायरी का हिन्दुओं पर प्रभाव ९५
आज़ाद और हाली पर प्रभाव ९६
उर्दू-शायरों की बयान करने की खूबियाँ ९८
नजीर, अनीस और दबीर १०२
हाली और अकबर १०२
एक आह ! १०२
उर्दू-शायरी कोरी वाग्मिता रह गई १०५
युग-परिवर्तन १०६
उर्दू से क्या लेना चाहिये ? ११३
उर्दू-गद्य का विकास ११८

कविता-कौमुदी

१—अमीर खुसरो	१२३
२—वली	१२७
३—आबरू	१३४
४—आरज़ू	१३६
५—हातिम	१४२
६—मज़मून	१४७
७—जानजानाँ	१५०
८—नाजी	१५५
९—ताबाँ	१५८
१०—यकरंग	१६३
११—फ़ुगाँ	१६६
१२—मीर	१७३
१३—सौदा	२०२
१४—दर्द	२२३
१५—सोज़	२३२
१६—मीर हसन	२३६
१७—इन्शा	२४७
१८—जुरअत	२६६
१९—मसहफी	२७८
२०—नज़ीर	२८४
२१—नासिख	३०६
२२—आतिश	३२४
२३—जौक	३३६
२४—गालिब	३७२
२५—मोमिन	३९९
२६—अनीस	४०८

२७—दबीर ४१६
२८—नसीम ४३०
२९—अमीर मीनाई ४३४
३०—दाग ४४९
३१—आसी ४६८
३२—शेफ्ता ४८१

उर्दू-शायरी में नई कलम

३३—आज़ाद ४८३
३४—हाली ४८७
३५—इस्माइल मेरठी ५१०
३६—अकबर ५१३
३७—साकिब ५६५
३८—इकबाल ५६८
३९—हसरत मोहानी ५८०
४०—फ़ानी ५८३
४१—सीमाब अकबराबादी ५८६
४२—चकबस्त ५८९
४३—असगर ६११
४४—बर्क ६१८
४५—जिगर मुरादाबादी ६२१
४६—जोश मलीहावादी ६२६
४७—हफीज़ जालंधरी ६३१
४८—फ़िराक़ ६३५

कौमुदी-कुञ्ज

६४३ से ७११

उर्दू-भाषा और साहित्य का संक्षिप्त परिचय

हिन्दी और उर्दू

हिन्दी, जिसे आजकल हम लोग बोलते और लिखते हैं, और जिसे कुछ लोग खड़ीबोली और कुछ लोग उर्दू कहते हैं, उतनी ही प्राचीन है, जितनी अवधी और ब्रजभाषा। अवधी ने अवध में और ब्रजभाषा ने ब्रज में विकास पाया और हिन्दी पहले-पहल दिल्ली और उसके आसपास तक ही फैलकर रह गई थी।

हिन्दुओं का एक समय वह भी था, जब उनका राज्य पश्चिम और उत्तर में ईरान, अरब, रूम, तुर्किस्तान और मंगोलिया तक फैला हुआ था। पश्चिमोत्तर देशवालों के साथ भारतवासियों का सम्बन्ध बहुत प्राचीन काल से है। ईरान वालों के साथ तो आर्यों का विवाह सम्बन्ध तक पाया जाता है। ऐसी दशा में प्रत्येक देश का निवासी दूसरे की भाषायें भी सीखता होगा; या दोनों देशों की भाषा एक ही रही होगी; इसमें सन्देह की गुंजाइश ही नहीं है।

महाभारत में जहाँ युधिष्ठिर के लाक्षा-गृह जाने का वर्णन है, वहाँ यह भी लिखा है कि विदुर ने उनको लाक्षा-गृह की बनावट के विषय में म्लेच्छ-भाषा में कुछ सूचनायें दी थी। उस कथा से म्लेच्छ-भाषा का अस्तित्व ही नहीं, बल्कि यह भी प्रमाणित होता है कि विदुर और युधिष्ठिर दोनों म्लेच्छ-भाषा जानते थे।

महाभारत के बाद विदेशियों के, खासकर पश्चिमवालों के, कई आक्रमण भारत पर हुये, और कई जातियों ने यहाँ आ-आकर राज किया। उनके साथ उनकी भाषा के शब्द भी आये होंगे, जो इस समय की प्रचलित भाषा में मिल गये होंगे। हूणों का 'हुन्न' शब्द देहात तक में प्रचलित है—'क्या हुन्न बरस रहा है?' 'भूषण' भी इस शब्द का प्रयोग करते हैं :—

'पीरी पीरी हुन्नैं तुम देत हौ मँगाय हमैं'

कालिदास के नाटकों में यवनी स्त्रियाँ अन्तःपुर में पहरा दिया करती थीं। यह इस बात का बड़ा प्रमाण है कि विदेशियों पर हिन्दू-लोग स्वदेश-वासियों के समान ही विश्वास करते थे। जब इतना घनिष्ट संबंध था, तो क्या उन विदेशियों की मातृ-भाषा के शब्द यहाँ नहीं फैले होंगे? क्या यहाँ मुसलमानी हुकूमत होने के पहले ही यहाँ की प्रचलित भाषा में अरबी, फ़ारसी और तुर्की के हज़ारो शब्द न आ घुसे होंगे?

चन्द बरदाई की कविता में अरबी, फ़ारसी और तुर्की के सैकड़ों शब्द मौजूद हैं। अतएव यह कहना कि लश्कर के बाज़ार में उर्दू-भाषा बनी, एक ग़लत अनुमान है। भाषा पहले ही से थी। लोग उसे बोलते और लिखते थे। बाद में उस भाषा का नाम उर्दू रख लिया गया है।

मुसलमान आक्रमणकारियों के लश्कर में उर्दू बाज़ार लगता था। वहाँ जो बाज़ारू हिन्दी बोली जाती थी, उसीका नाम उर्दू बोली पड़ गया बताते हैं। पर उर्दू-बाज़ार तो मुहम्मद ग़ोरी के ग़ुलाम कुतुबुद्दीन के समय ही से लगता रहा होगा। उस समय भी तो उर्दू-बाज़ार की कोई बोली रही होगी। वह लश्करी बोली थी, जिसका संक्षिप्त नाम उर्दू चल पड़ा।

तुलसीदास ने शाहजहाँ की दो पीढ़ी पहले उर्दू के एक महावरे का प्रयोग इस प्रकार किया है :—

बालिस बासी अवध को बूझिये न खाको।

अर्थात् अयोध्या का मूर्ख निवासी खाक भी नहीं समझता। 'खाक भी नहीं समझता' पर ध्यान दीजिये, यह संस्कृत से नहीं आया। और बोलचाल में यह इतना प्रचलित हो गया था कि तुलसीदास जैसे हिन्दू-संस्कृति के पक्षपाती संत ने भी इसका प्रयोग कर लिया। अतएव यह मानना पड़ेगा कि तुलसीदास के समय में उर्दू का रूप स्थिर हो चुका था, और वह सर्वसाधारण में बोली जाने लगी थी, तभी तो उन्होंने उसके महावरे का इस्तेमाल बिना किसी हिचक के कर लिया।

हिन्दी और उसकी व्यापकता

हिन्द की भाषा के लिये हिन्दी नाम मुसलमान इतिहासकारों के ग्रन्थों में भी मिलता है।

बुजुर्गबिन शहरयार (अरब) की लिखी किताब 'अजायबुल हिन्द' के सफ़ा २ और ३ पर लिखा कि 'अब्दुल्ला एराकी ने हिन्द के राजा अलूरा के लिये सन् २७० हिजरी (ई० सन् ८७० के लगभग) में कुरान का हिन्दी ज़बान में तर्जुमा किया।'

कालिंजर के राजा नंदा ने सन् ४१३ हिजरी (ई० सन् १०१३ के लगभग) में सुलतान महमूद की शान में हिन्दी में शेर लिखकर भेजा :—

"नन्दा बज़बान हिन्दी दर मदः सुलतान शअरी गुफ्तः निज्दा व फरिस्ताद सुलतान आँरा बफजलाय हिन्द व अरब व अजम कि दर मुलाज़िमत अवबूदंद नमूदः हमगी तहसीन व आफ़रीं करदंद।"[1]

इससे साफ़ जाहिर है कि सुलतान महमूद के दरबार में हिन्दी अच्छी तरह समझी जाती थी और उसका रस लिया जाता था। और यहाँ वह हिन्दी ज़बान के नाम ही से मशहूर थी।

मुसलमान आक्रमणकारी अक्सर हिन्दुस्तान से गुलाम पकड़कर ले

---

१ तवारीख फिरिश्ता, सफ़ा ३१, जिल्द अव्वल, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ में मुद्रित।

जाते थे और उन्हें अपने मुल्क में बसा लेते थे। उनके साथ हिन्दी-भाषा भी जाती थी और सौदा-सुल्फ़ के ज़रिये मुसलमानी घरों में पहुँच जाती थी।

इसके सिवा मुसलमान बादशाहों को विद्वानों की सुहबत का भी बड़ा शौक था। वे हिन्दुस्तान के विद्वानों को अपने दरबार में बुलाकर उन्हें इज्ज़त के साथ रखते थे और उनकी भाषा में, जो हिन्दी होती थी, उनके विचारों को सुनते और समझते थे।

सुलतान महमूद के दरबार में तिलक नाम का एक हिन्दू, जो शीराज़ में रहकर फारसी भी जान गया था, हिन्दुओं के साथ खत-किताबत और आये-गये के स्वागत-सत्कार के लिये नौकर था।[१]

हिन्दी का प्रचार हिन्दुस्तानी मल्लाहों के ज़रिये, जो हिन्दुस्तानी जहाज़ों पर काम करते थे और अब भी करते हैं, अफरीका, ईराक, मिश्र, अदन, जिद्दा, पोर्ट सईद और पोर्ट सूडान तक पहुँच गया। बाहरी मुल्कों की सैर करनेवालों से मालूम होता है कि उनको हरएक बन्दरगाह पर, जहाँ हिन्दुस्तानी जहाज़ों की आमद-रफ्त होती है, हिन्दी बोलनेवाले मल्लाह और दूकानदार मिल जाते हैं।

मुसलमानों के पुराने इतिहास से लेकर आजकल के अपढ़ हिन्दुस्तानी की ज़बान तक हमारी भाषा का नाम हिन्दी ही मिलता है, और यह नाम मुसलमानों ही का रक्खा हुआ है। हिन्दू लोग तो इसे 'भाषा' कहते थे और संस्कृत के पंडित अब भी कहते हैं।

साधारण मुसलमानों की तो बात ही क्या, मुग़ल बादशाह तक संस्कृत और हिन्दी से अनुराग रखते थे। अकबर के रचे हुये हिन्दी में कई छंद मिलते हैं।

औरंगजेब, जो मज़हबी कट्टरता के लिये प्रसिद्ध है, संस्कृत और हिन्दी से परिचय रखता था। भूषण की हिन्दी कविताएँ उसने सुनीं और

---

१ तारीख़ बैंकही, सफ़ा ५०३।

समझी थीं, यह तो प्रसद्ध हीं है। आश्चर्य तो इस बात का है कि वह संस्कृत में भी दख़ल रखता था।

उसके पत्रों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है, उसमें नं० ८ का रुक्का उसने अपने बेटे मुहम्मद आज़मशाह के नाम लिखा था। मुहम्मद आज़मशाह ने कुछ नये क़िस्म के आमों की डाली बादशाह की ख़िदमत में भेजी थीं, और उन आमों के नाम रख देने की प्रार्थना की थी। बादशाह ने लिखा—

'फ़र्ज़न्द आलीजाह, डाली अम्बा मुर्सले आँ बज़ायके पिदर पीर खुशगवार आमद—बराय नाम अम्बए गुमनाम इस्तदुआ नमूदा अन्द-चूँ आँ फ़र्ज़न्द जूदते तबा दारन्द—रवादार तकलीफे पिदरपीर चरा मी शवन्द—बहरहाल सुधारस वो रसना विलास नामीदा शुद'।

अर्थात् बेटा! आमों की डाली जो तुमने भेजी, वह तुम्हारे बुड्ढे बाप को बहुत पसंद आई; तुमने इन गुमनाम आमों के नाम रखने के लिये लिखा; तुम तो बेटा! खुद प्रतिभावान हो; बुड्ढे बाप को क्यों तकलीफ़ देते हो? खैर; सुधारस और रसना-विलास नाम रख दिया जाता है।

आमों के लिये सुधारस और रसना-विलास नाम बादशाह औरंग-ज़ेब की सरस हृदयता के परिचायक हैं।

हिन्दी में सबसे पहली कविता अमीर खुसरो की मिलती है। यहाँ उसके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

१

तरवर से यक तिरिया उतरी उसने बहुत रिझाया।
बाप का उसके नाम जो पूछा आधा नाम बताया॥

२

बीसों का सिर काट लिया। ना मारा ना खून किया॥

३

बात की बात ठठोली की ठठोली।
मरद की गाँठ औरत ने खोली॥

'उसने बहुत रिझाया' 'आधा नाम बताया' बीसों का सिर काट लिया' 'औरत ने खोली' आदि आजकल की हिन्दी के शुद्ध वाक्य हैं। 'ने' का प्रयोग भी ध्यान देने योग्य है।

अमीर ख़ुसरो का जन्म १२५५ ई० में और मरण १३२४ ई० में हुआ। उसने जो छन्द लिखे हैं, उनकी भाषा अवश्य ही उस समय की बोलचाल की होगी। क्योंकि उसके विषय ही ऐसे हैं, जो रोज़मर्रा की बोलचाल ही में लिखे जाने चाहियें।

ख़ुसरो ही ने पहले-पहल इस भाषा का नाम हिन्दी कहा है। जैसे—

शर्मों हया दर हिन्दी लाज।
हासिल कहिये बाज़ ख़िराज।

ख़ुसरो ने कहीं-कहीं भाषा का नाम 'हिन्दवी' भी लिखा है। जैसे—

बिश्नो तो नाम चरख़ा बेचारा पीरज़न।
गोयन्द नाम रहटा दर हिन्दवी बचन॥

मुश्क काफ़ूरस्त कस्तूरी कपूर।
हिन्दवी आनन्द शादी ओ सरूर॥

ख़ुसरो के बाद कबीर हुये। कबीर ने भी ख़ुसरो की हिन्दी में कुछ रेखते कहे हैं। कबीर सं० १४५५ में हुये। उस समय की हिन्दी का उनका एक पद्य सुनिये—

हमन हैं इश्क़ मस्ताना हमन को होशियारी क्या?
रहें आज़ाद या जग में हमन दुनिया से यारी क्या?
जो बिछुड़े हैं पियारे से भटकते दर बदर फिरते।
हमारा यार है हम में हमन को इन्तज़ारी क्या?
न पल बिछुड़े पिया हम से न हम बिछुड़ें पियारे से।
उन्हीं से नेह लागी है हमन को बेकरारी क्या?

कबीरा इश्क़ का माता दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाज़ुक है हमन सिर बोझ भारी क्या?

अमीर ख़ुसरो की तरह मलिक मुहम्मद जायसी भी (लगभग १५४० ई०) इस भाषा का नाम हिन्दी और हिन्दुई ही कहते थे। एक उदाहरण लीजिये :—

तुरकी अरबी हिन्दुई, भाषा जेती आहि।
जेहि महँ मारग प्रेम कर, सबै सराहैं ताहि॥

पद्मावत

अभी सौ वर्ष भी नहीं हुये, उर्दू के मशहूर शायर आतिश ने भी इसे हिन्दी ज़बान ही कहा है :—

मतलब की मेरे यार न समझे तो क्या अजब।
सब जानते हैं तुर्क की हिन्दी ज़बाँ नहीं।

इन अवतरणों से यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि जिस भाषा को आजकल खड़ीबोली या हिन्दी कहा जाता है, यह ख़ुसरो, कबीर और जायसी के समय में भी लगभग इसी रूप में वर्तमान थी। अंतर पड़ा है तो केवल कुछ महावरों और कुछ विदेशी शब्दों के मिश्रण का।

मुसलमानी राजत्व-काल में यद्यपि फ़ारसी का चलन था, पर वह राजभाषा थी; राष्ट्रभाषा का काम उस समय भी हिन्दी ही से लिया जाता रहा है। शिवाजी और भूषण का संबंध हमको विदित है। शिवाजी दक्षिणी होने पर भी इतनी हिन्दी जानते थे कि भूषण की कविता समझ लेते थे।

उत्तर भारत से जितने मुसलमान दक्षिण गये, वे सब अपनी ज़बान भी गोलकुंडा और बीजापुर तक साथ ले गये, जो हिन्दी थी; जैसा कि उस समय के मुसलमान कवियों ने कहा है। आज भी मद्रास में जितने मुसलमान हैं, उनमें अधिकांश दिल्ली की पुरानी ज़बान से वाक़िफ़ हैं, जिसे उनके पुरखे दक्षिण ले गये थे। मैं दो-तीन बार दक्षिण भारत का

भ्रमण कर आया हूँ, मेरा निजी अनुभव है कि जहाँ-जहाँ भाषा की कठिनाई मेरे सामने आई, रास्ते में मिलनेवाले मुसलमानों ने उसे हल किया। हम देखते हैं कि इस प्रकार हिन्दी के प्रचार में मुसलमानों ने बड़ी सहायता पहुँचाई है।

चारों धामों की यात्रा को हिन्दुओं के लिये जिसने अनिवार्य धार्मिक रूप दिया, उसने भी चारो धामों के अन्दर के देश को एक राष्ट्र बनाने में चुपचाप मदद की है। इससे परस्पर परिचय ही नहीं बढ़ता था, भाषा का प्रवेश भी भिन्न प्रांतवालों में होता रहता था। राम और कृष्ण का प्रांत होने के कारण अन्य प्रांतों से युक्तप्रांत (अब उत्तर प्रदेश) में आनेवाले तीर्थ-यात्रियों की संख्या अधिक रहती है; इससे वे यहाँ की बोलचाल से भी जानकार होते रहते हैं। इसी प्रकार उत्तर भारत के यात्रियों ने दक्षिण भारत के तीर्थ-स्थानों में घूमकर हिन्दी-भाषा फैला दी है, जिसका प्रमाण दक्षिण भारत के प्रत्येक तीर्थ-स्थान में मिलता है।

इस प्रकार हिन्दी लगभग छः सौ वर्षों से मुसलमानों-द्वारा और एक अनिश्चित काल से हिन्दू तीर्थ-यात्रियों-द्वारा भारत के कोने-कोने में अपना घर बनाती रही और अपने लिये राष्ट्रभाषा होने का रास्ता साफ़ करती रही।

पुराने मुसलमान कवियों और गायकों में हिन्दी-उर्दू का झगड़ा नहीं था; और गायकों में तो अब भी नहीं है।

पहले के मुसलमान कवि हिन्दी-भाषा और हिन्दी-छन्दों ही में कविता करते थे। उन्होंने फुटकर पद्य ही नहीं लिखे, प्रेम-कथायें, रस, अलंकार छंद और रागों पर पुस्तकें लिखीं; जिनमें उनके उच्चकोटि के कवि होने के दर्शन मिलते हैं।[१]

---

१ विशेष देखना हो तो कविता-कौमुदी के पहले और दूसरे भाग में देखिये।

नमूने के तौर पर यहाँ कुछ मुसलमान कवियो के हिन्दी छंद दिये जाते हैं :—

जमाल (१५७१ ई०)—

मनसा तो गाहक भये, नैना भये दलाल।
धनी बसन बेचै नहीं, किस बिध बने जमाल।।

कादिर (१५७६ ई०)—

गुन को न पूछै कोऊ औगुन की बात करै,,
कहा भयो दई कलिकाल यों खरानो है।
पोथी औ पुरान ज्ञान ठहन में डारि देत,
चुगुल चबाइन को मान ठहरानो है।
कादिर कहत यामों कछु कहिबे की नाहीं,
जगत की रीति देखि चुप मनमानो है।
खोलि देखो हियों सब औरन सों भाँति भाँति,
गुन न हिरानो गुन गाहक हिरानो है"

महबूब (१७०५ ई०)—

मृगमद गंध मिलि चन्दन सुगंध बहैं,
केसर कपूर धूरि पूरत अनंत है।
मौर मद गलित गुलाबन बलित भौंर,
भनै महबूब तौर और दरसंत है।
रच्यो परपंच सरपंच पंच सरजू ने
कर लै कमान तानि बिरही हनन्त है।
छीनि छिति लई ऋतु राजत समाज नई,
उनई फिरत भई सिसिर बसंत की।

दीन-दरवेश (१८२८ ई०)—

बन्दा बहुत न फूलिये, खुदा खिवेगा नाहिं।
जोर जुलुम कीजै नही, मिरत लोक के मांहि।।

मिरत लोक के माँहि तजुरबा तुरत दिखावै ।
जेहि नर करे गुमान सोइ नर खतरा खावै ।।
कहे दीन दरवेश भूल मत गाफ़िल गंदा ।
मिरत लोक के माँहि फूलिये बहुत न बंदा ।।

अहमद (१६०३ ई०)—

कहा करौं बैकुंठ लै, कलप बृच्छ की छाँह ।
'अहमद' ढाक सुहावने, जहँ पीतम गलबाँह ।।

रज्जब—

'रज्जब' जाकी चाल सों, दिल न दुखाया जाय ।
यहाँ खलक खिजमति करै, उत है खुसी खुदाय ।।

सम्मन—

'सम्मन' या संसार में, प्रीति करो जिन कोय ।
निकट रहे आदर घटै, दूरि रहे दुख होय ।।

अनीस—

सुनो हो विटप हम पुहुप तिहारे अहैं,
राखिहौ हमै तो सोभा रावरी बढ़ावेंगे ।
तजिहौ हरषि के तो बिलग न मानैं कछू,
जहाँ जहाँ जैहों तहा दूनों जस गावेंगे ।
सुरन चढ़ेंगे नर सिरनि चढेंगे नित,
सुकवि अनीस हाथ हाथनि बिकावेंगे ।
देस में रहेंगे, परदेस में रहेंगे, काहू
भेस में रहेंगे तऊ रावरे कहावेंगे ।।

उर्दू मुसलमानी हिन्दी है

खुसरो और कबीर की कविता के उदाहरणों के रहते हुये 'आबेहयात' के विद्वान् लेखक स्व० प्रो० आज़ाद का यह लिखना कि हमारी उर्दू जबान

ब्रजभाषा से निकली है, सही नहीं है। उर्दू कभी किसी भाषा से निकली ही नहीं। हिन्दी ही का नाम उर्दू रख लिया गया है। उसका नाम उर्दू न रखकर 'मुसलमानी हिन्दी' रक्खा जाता तो अधिक सार्थक होता।

हिन्दुस्तान में मुसलमानों का शासन बारहवीं सदी से प्रारंभ हुआ। यद्यपि उनकी भाषा के बहुत से शब्द उनके कई शताब्दी पहले यहाँ आ चुके थे; पर पहले वे नौकर-चाकरों और बाज़ार तक ही सीमित रहे होंगे, सर्व-साधारण के साथ व्यवहार में आने के लिये उनको एक प्रशस्त रास्ता मिलने की ज़रूरत थी। वे शब्द गुप्तचर की तरह हिन्दुस्तान की भाषाओं में घुसकर घर-घर में जा पहुंचे थे और किसी संगठन की राह देख रहे थे। यह संयोग की बात है कि उन्होंने दक्खिनी हिन्दी ही में घुसकर एक रूप धारण कर लिया और फिर वे राजधानी दिल्ली में आ पहुँचे। जहाँ वे बड़ी आवभगत से लिये गये; क्योंकि दिल्ली की भाषा भी हिन्दी थी। दिल्ली की भाषा गुजराती या मराठी रही होती तो गुजराती या मराठी ही के फारसी शब्द संगठित होकर उसी साँचे में एक नया रूप धारण करते; और संभव है, तब उसी का नाम उर्दू हुआ होता।

हरएक ज़बान तीन तरह के लफ्जों से बनती है—संज्ञा (इस्म), क्रिया (फेल) और अव्यय (हर्फ)। उर्दू में क्रियायें सब हिन्दी की हैं। हर्फ एक-दो को छोड़कर सब हिन्दी ही हैं। हाँ, संज्ञा में हिन्दी, अरबी, फ़ारसी, तुरकी और यहाँ तक कि अंग्रेजी, पुर्तगाली और फ्रांसीसी शब्द भी मिले हुये हैं। अतएव केवल संज्ञा शब्दों के आधार पर कोई एक भाषा नई नहीं कही जा सकती।

और उर्दू शब्द का अर्थ भी लश्कर का बाज़ार है। केवल उर्दू लफ्ज़ से किसी भाषा-विशेष का बोध नहीं होता। उर्दू के मशहूर शायर मीर तक इसको ज़बाने-उर्दू यानी लश्कर के बाज़ार की बोली कहते थे। देखिये :—

रेख्ता कि शेरेस्त बतौर शेरे फ़ारसी बज़बाने उर्दू-ए-मुअल्ला बादशाहे हिन्दोस्तान। (ज़िक्रे मीर, सफ़ा ६३)

ऐसे तो आजकल कालेज और युनिवर्सिटियों में जो हिन्दी बोली जाती है, उसमें आधे के करीब अंग्रेजी के संज्ञा शब्द होते हैं। क्या उसका एक नया नाम रखना मुनासिब होगा ?

जरा ग़ौर कीजिये, उर्दू-फ़ारसी पढ़ा हुआ एक मुसलमान अगर बोलता है—

'मैं कलकत्ते से रवाना हुआ और जुमा को सबेरे की गाड़ी से इलाहाबाद पहुँच गया। मरीज़ को देखा, उसके जीने की उम्मीद नहीं।'

और इसी को युनिवर्सिटी का एक छात्र, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, इस तरह बोलता है—

'मैं कॅलकटा से चला। फ्राइडे को मार्निग ट्रेन से इलाहाबाड पहुँचा। पेशंट को देखा, वह होपलेस कंडीशन में है।'

इस तरह युनिवर्सिटी के छात्रों ने तो अपनी एक नयी जबान बना ली; हिन्दू छात्र न शुक्रवार बोलता है, न मुसलिम छात्र जुमा, दोनों फ्राइडे बोलते हैं। हिन्दी-उर्दू का झगड़ा तो युनिवर्सिटी के बाहर है, और छात्रों के बाप उसे जगाये हुये हैं।

यदि उक्त मुसलमान की भाषा का एक अलग नाम उर्दू रक्खा जायगा तो उस छात्र की भाषा का क्या नाम होगा ? हम तो दोनों को हिन्दी कहेंगे। कोई अधिक बाल की खाल खींचने को कहेगा तो हम पहली को मुसलमानी हिन्दी और दूसरी को अँग्रेजों की हिन्दी कहेंगे। पर हिन्दी से अलग हम उसे तबतक न मानेंगे, जबतक उसकी क्रिया, कारक, लिंग और वचन भिन्न न होंगे।

जब हिन्दी और उर्दू का व्याकरण एक है, दोनों का साँचा एक है, तब उर्दू अलग स्वतंत्र भाषा कैसे कहला सकती है ?

हिन्दी और उर्दू में सिर्फ़ इतना ही अन्तर है कि हिन्दी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और उसमें संस्कृत के शब्द अधिक रहते हैं, और उर्दू फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है और उसमें अरबी-फ़ारसी के शब्दों की अधिकता रहती है।

गुजराती भाषा के भी दो रूप हैं—एक पारसियों की गुजराती और दूसरा नागर ब्राह्मणों की गुजराती। पारसियों की गुजराती में अरबी, फ़ारसी के शब्द अधिक रहते हैं और नागर ब्राह्मणों की गुजराती में संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द। पर दोनों रूपों का नाम एक है।

यही हिन्दी में भी होना चाहिये। पर दुर्भाग्य से उर्दू एक अलग ज़बान क़रार दी गई है। हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े का वह भी एक कारण बना दी गई है। हिन्दी तो सर्वांग-पूर्ण उस दिन होगी, जिस दिन ग़ालिब, ज़ौक़, हाली, दाग़, अकबर और इक़बाल को भी वह अपना कवि कहने लगेगी।

विदेशी शब्दों का समावेश

मुसलमानों का शासन होने से उनकी बोलचाल के कुछ अधिक शब्द हिन्दी में मिल गये, और वे धीरे-धीरे शहर से लेकर गाँव तक फैल गये और सर्व-साधारण के घरों में पहुँच गये। जो-जो चीज़ें मुसलमानी मुल्कों से यहाँ आईं, उनके नाम तो ज्यों के त्यों रह गये। जैसे—

पायजामा, इज़ारबन्द, रूमाल, शाल, दुशाला, बुर्क़ा, चोग़ा, कुर्त्ता, क़बा, आस्तीन, गरेबाँ, चपाती, पुलाव, ज़र्दा, कबाब, कुर्मा, अचार, गुलाब, मुश्कबेद, रकाबी, तश्तरी, चमचा, हम्माम, साबुन, शीशा, शमा, शमादान, फ़ानूस, तनूर, मशक, नमाज़, रोज़ा, ईद, शब्बेरात, क़ाज़ी, साक़ी, हुक्का, नैचा, चिलम, बन्दूक, गंजीफ़ा इत्यादि।

यहाँ की बहुत-सी चीज़ों के अरबी-फ़ारसी भाषा के ऐसे नाम पड़ गये कि यदि अब उनके स्थान पर संस्कृत या प्राकृत के पर्यायवाची शब्द ढूँढ़कर रक्खे जायँ तो कुछ अर्थ ही न निकलेगा; या भाषा इतनी कठिन हो जायगी कि सर्व-साधारण तो क्या, शिक्षित हिन्दू भी उसे कठिनता से समझ सकेंगे। जैसे—

पिस्ता, बादाम, मुनक्का, शहतूत, बेदाना, खूबानी, अंजीर, सेव, फालसा, बिही, नासपाती, अनार, मज़दूर, वकील, जल्लाद, सर्राफ, मसख़रा, लिहाफ़, तोशक, चादर, शक्ल, चेहरा, तबीअत, मिज़ाज, बरफ़, कबूतर

कुमरी, बुलबुल, तोता, पर, दवात, कलम, स्याही, गुलाब, हुक्का, ऐनक, सन्दूक़, कुर्सी, तख्त, लगाम, रिकाब, जीन, तंग, नाल, कोतल, जहाज़, मस्तूल, बादबान, तुहमत, पर्दा, दालान, तहख़ाना, बरामदा, तनख्वाह, मल्लाह, ताज़ा, ग़लत, सही, रसीद, रसद, कारीगर, तराज़ू इत्यादि।

शतरंज ख़ास हिन्दुस्तान की चीज़ है। पर अब इसके असली नाम 'चतुरंग" से शायद ही कुछ लोग परिचित हों। इसी तरह अब 'पाटल' के स्थान पर 'गुलाब' ने कब्जा कर लिया है।

यहाँ विदेशी भाषा के कुछ ऐसे शब्द दिये जाते हैं जो यहाँ की बोल-चाल में आकर मिल गये हैं, और अब यही की सम्पत्ति हो गये हैं। जैसे—

अरबी—अक्ल, इख्तियार, इम्तिहान, एतराज़, औरत, हाल, सिफ़ारिश, अदालत, मुक़दमा, तारीख़, तनख्वाह, हूबहू, इन्साफ़, इन्सान, ऐब, उम्दा, ख़बर, ख़र्च, तकरार, दलील, दुनिया, मज़कूर, मशगूल, शरबत, सलाह, हुक्म आदि।

फ़ारसी—आज़मायश, आदमी, उम्मीदवार, आबादी, ख़रीद, गुमाश्ता, बाग़, चश्मा, दूकान, चाक़ू, ताज़गी, गुज़रान, तन्दुरुस्ती, दस्तावेज़, दरिया, प्याला, कमर, दाग़, मोज़ा, गुलाब, साबुन, होशियार, हवा, हज़ार, आदि।

तुर्की—तोप, लाश, कोतल, कुरता, आदि।

पोर्चुगीज़—अङ्गरेज़, पिस्तोल, पलटन, कप्तान, कमरा, नीलाम, इञ्जीनियर, गोदाम, चाबी, अचार, अनन्नास, पपैया, तंबाकू, बिसकुट, काजू, चाय, काफ़ी, सागू, गोभी, आलपीन, परेग, आलमारी, कोच, कारतूस, मेज़, तौलिया, गारद, बजरा (नाव), पादरी, साया, पागर (पगार = वेतन), पावरोटी आदि।

अङ्गरेज़ी—कोर्ट, अपील, टिकट, कलक्टर, डाक्टर, टेबिल, पेंसल, पेंशन, बूट, फ़ार्म, बोर्डिंग, डिग्री, ग्लास, फंड, रेल, वारंट, रसीद, रबर, लालटेन, पतलून, मील, इंच, फुट, वास्कट, म्युनिसिपैलटी, सेविंग्स बैंक,

सोडावाटर, होटल, हास्पिटल, बोतल, पास, रजिस्ट्री, नोटिस, समन, स्कूल, कमेटी, फ़ीस, स्लेट, टिन, प्रेस, इन्स्पेक्टर, बैरिस्टर, मास्टर, काँस्टेबुल, वोटर, कौंसिल, एसेम्बली, मीटिंग, मेम्बर, फ़ैमिली, स्प्रिट, बाइसिकिल, ट्रेन, लाइन, बटन, कोट, हैट, निब इत्यादि।

हिन्दी-व्याकरण की मान्यता

एक बड़ी दिलचस्प बात यह है कि विदेशी शब्दों को विवश होकर हिन्दी-व्याकरण के साँचें में ढल जाना पड़ा है। हिन्दी-व्याकरण ने उनके तन पर अपना जामा पहना दिया है और वे अरब, ईरानी और तुर्क बेधड़क हिन्दू हो गये हैं। कुछ उदाहरण लीजिये—

प्रायः सभी शब्दों का बहुवचन हिन्दी-व्याकरण के नियमानुसार है। जैसे—

मेवा	का	मेवों	न	कि	मेवाजात।
निशान	का	निशानों	न	कि	निशानात।
मुश्किल	का	मुश्किलों	न	कि	मुश्किलात।
दफ़ा	का	दफ़ाओं	न	कि	दफ़ात।
औरत	का	औरतों	न	कि	मस्तूरात।
मज़दूर	का	मज़दूरों	न	कि	मज़दूरान।
ख़बर	का	ख़बरें, ख़बरों	न	कि	अख़बार।
डाक्टर	का	डाक्टरो	न	कि	डाक्टर्स।
होटल	का	होटलों	न	कि	होटल्स। इत्यादि

अब कुछ लोग उर्दू में अरबी-फ़ारसी के शब्दों के असली बहुवचन लिखने का प्रयत्न करने लगे हैं। जैसे, क़िस्म का बहुवचन अक़साम; तरफ़ का बहुवचन अतराफ़ इत्यादि। ऐसा करके वे भाषा को और भी जटिल बना रहे हैं, और उसकी सीमा संकुचित कर रहे हैं। मामूली बोलचाल में उन शब्दों का हिन्दी-रूप ही प्रचलित है और रहेगा।

फ़ारसी शब्दों से बहुत-सी क्रियायें भी हिन्दी के ढङ्ग पर बन गई हैं।

जैसे—

शरम	से	शरमाना
गुज़र	से	गुज़रना
फ़रमान	से	फ़रमाना
क़बूल	से	क़बूलना
बदल	से	बदलना
बख्श	से	बख्शना
वरम	से	ओरमाना (देहाती प्रयोग)
शुक्रिया	से	शुकराना
जल्दी	से	जल्दियाना
काहिली	से	कहलाना
मुनकिर	से	मुकरना
खर्च	से	खर्चना
दफ़न	से	दफ़नाना इत्यादि

कुछ क्रियायें करना, होना आदि शब्दों के योग से बन गई हैं। जैसे—

खुश होना, ज़िक्र करना, रवाना होना, दिल लगाना; इत्यादि।

कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनका धड़ तो हिन्दुस्तानी है, और सिर फ़ारसी। जैसे—

समझदार, गाड़ीखाना, पीकदान, पानदान, हाथीवान, मोदीखाना।

कुछ ऐसे पर्यायवाची शब्द हैं जो साथ-साथ बोले जाते हैं। जैसे—क़ागज़-पत्र, शादी-ब्याह, धन-दौलत, जमा-पूंजी, राह-बाट, चिराग़-बत्ती, किस्सा-कहानी, लाज-शरम, ईमान-धरम, बाग-बाड़ी, आदि।

कुछ शब्द अपने असली रूप को छोड़कर बिलकुल नये साँचे में ढल गये हैं। जैसे, जमघट। यह 'जमा' (फ़ारसी) और घाट (संस्कृत) का सम्मेलन है। नदी के घाट पर उतारे के समय जब बड़ी भीड़ हो जाती है, तब यह शब्द बना होगा।

क्रिया, कारक, लिंग, वचन, सर्वनाम और अव्यय के एक रहते हुए कोई भाषा थोड़े से विदेशी शब्दों के मेल से दो नामों से नहीं पुकारी जा सकती। एक पुस्तक (संस्कृत) लाओ, एक किताब (फ़ारसी) लाओ, एक चोपड़ी (गुजराती) लाओ, एक बुक (अङ्गरेज़ी) लाओ, एक पोथी (अपभ्रंश) लाओ, एक ही अर्थ देनेवाले ये पाँच वाक्य पाँच रूपों में हैं, पर क्रिया सब की एक है। अतएव केवल संज्ञा के बदलते रहने से ये वाक्य पाँच भाषाओं के नहीं कहे जा सकते। इसी तरह हिन्दी में केवल अरबी-फ़ारसी के कुछ संज्ञा शब्दों के आ जाने से उर्दू एक नई भाषा नहीं मानी जा सकती।

रेख़ता

उर्दू नाम पड़ने से पहले फ़ारसी छन्दों में कविता उस समय की बोलचाल में लिखी जाती थी, उस बोलचाल का नाम रेख़ता था। रेख़ता शब्द का अर्थ है—गिरा-पड़ा या परेशान। उस समय अरबी-फ़ारसी के बहुत से शब्द यहाँ की बोलचाल में लावारिस की तरह परेशान घूम रहे थे। उन्हींको बोलचाल की भाषा में जगह दे दी गई। इसीसे उस बोल-चाल का नाम रेख़ता हो गया।

यह नाम कब और कहाँ पड़ा? इसका पता नहीं। जब मुसलमानी हुकूमत दक्खिन में फैल गई, उस समय मुसलमानों का जो दल दक्खिन गया, उसी के साथ हिन्दी भी वहाँ गई। उस हिन्दी में अरबी-फ़ारसी के शब्द तो भरे थे ही, कुछ दक्खिनी शब्दों को भी उसमें मिलाकर कुछ शायरों ने दिमाग़ लड़ाया।

१३३६ ई० में मुहम्मद तुग़लक ने दिल्ली को उजाड़कर दक्खिन में दौलताबाद बसाया। पर वह बस न सका और दिल्ली से गये हुये लोग फिर वापस आये। उन्हीं के साथ बहुत से दक्खिनी शब्द भी दिल्ली की बोलचाल में आ गये। वली के बाद के उर्दू-कवियों की कविताओं में दक्खिनी शब्दों की ख़ासी बहार देखने को मिलती है।

१७२२ ई० में वली का दीवान दक्खिन से दिल्ली आया। उस समय मुहम्मदशाह का ज़माना था। वली की शायरी से उत्साहित होकर दिल्ली-वालों ने शायरी शुरू की; पर उनकी भाषा का नाम बहुत दिनों तक रेख़ता ही रहा। मीर साहब कहते हैं—

ख़ूगर नहीं हम यों हीं कुछ रेख़ता-गोई के।
माशूक़ था जो अपना बाशिन्दः दकन का था॥

सौदा कहते हैं—

शेर बेमानी से तो बेहतर है कहना रेख़ता :

ग़ालिब का एक शेर है—

रेख़ते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो ग़ालिब।
कहते हैं अगले ज़माने में कोई मीर भी था॥

रेख़ता शब्द पर हमें इस बात का बड़ा आश्चर्य है कि कबीर को यह शब्द कहाँ से मिल गया। कबीर ने रेख़ता नाम का एक छंद लिखा है, जिसकी भाषा भी रेख़ता से मिलती-जुलती है। एक छन्द नमूने के लिये यहाँ दिया जाता है—

फ़हम कर फ़हम कर फ़हम कर मान यह, फ़हम बिन फिकिर नहिं मिटै तेरी।
सकल उँजियार दीदार दिल बीच है, जौक औ शौक़ सब मौज तेरी।
बोलता मस्त मस्ताने महबूब है, इनों सा अदल कहु कौर के री।
एक ही नूर दरियाव वह देखिये, फैल वह रहा सब सृष्टि में री॥

अतएव कबीर ही को रेख़ता का आदि कवि क्यों न माना जाय?

मेरा अनुमान है कि रेख़ता शब्द कबीर से भी पहले का है, और यह नाम अरबी-फ़ारसी-मिश्रित हिन्दी के लिये उत्तर भारत ही में पड़ा होगा और उत्तर ही से यह दक्खिन को गया होगा।

७

जायँ वहशत में सूए सहरा क्यों ।
कम नहीं अपने घर की वीरानी ।।
मैं वह सरमायए-बलाग़त हूँ ।
जिसके दर का गदा है ख़ाक़ानी ।।

८

उलझा है पाँव यार का जुल्फ़े दराज़ में ।
लो आप अपने दाम में सैयाद आ गया ।।

९

देखो मत देखियो कि आईना ।
ग़श तुम्हें देखकर न हो जाये ।।

१०

है अहदे शबाब ज़िन्दगानी का मज़ा ।
पीरी में कहाँ वो नौजवानी का मज़ा ।।
अब यह भी कोई दिन में फ़िसाना होगा ।
बातों में जो बाक़ी है कहानी का मजा ।।

११

'मोमिन' य' असर सियाह मस्ती का न हो ।
अंदेशा कभी बलन्द व पस्ती का न हो ।।
तौहीदे वजूदी में जो है कैफ़ीयत ।
डरता हूँ कि हीला खुद परस्ती का न हो ।।

१२

तू किसी का भी खरीदार नहीं, पर ज़ालिम !
सरफरोशों का तेरे कूचे में बाज़ार लगा ।।

१३

ज़िक्रे शराबो-हूर क़लामे-खुदा में देख ।
मोमिन मैं क्या कहूँ, मुझे क्या याद आ गया ।।

रेख़्ती

रेख़ती सआदतयार ख़ाँ 'रंगीं' की ईज़ाद है। यह ज़नानी बोली है। 'रंगीं' के बाद इंशा ने इसमें कुछ कलम चलाई और जान साहब ने तो दीवान बना डाला।

'रंगीं' की रेख़्ती का नमूना यह है :—

१

मैं वह भी ओढ़ने की नहीं कल की ओढ़नी।
बाजी मुझे मँगा दो झलाझल की ओढ़नी॥

२

ज़रा घर को 'रंगीं' के तहक़ीक़ कर लो।
यहाँ से है कै पैसे डोली कहारो॥

३

तू आज न आवे तो लहू पीवे हमारा।
तुझ बिन नहीं कुछ सैर शबे माह की गुइयाँ॥

इन्शा की ज़नानी बोली सुनिये :—

१

मरदुआ मुझसे कहे है चलो आराम करें।
जिसको आराम वो समझे है वो आराम हो नौज॥

२

नहीं सनकार लिया तू ने तो फिर इन्शा ने।
मेरे दरवाज़े की क्यों चूल उखेड़ी अन्ना॥

जान साहब फरमाते हैं :—

नमाज़ पढ़ पढ़ के तो गुनाहों से अपने तोबा बुआ किया कर।
न जान हिन्दू प दे दोगान : ख़ुदा ख़ुदा कर ख़ुदा ख़ुदा कर॥
निकाही ब्याही को छोड़ बैठे मताई रंडी को घर में डाला।
बनाया साहब इमामबाड़ा ख़ुदा की मसजिद को तुमने ढाकर॥

हिन्दुस्तानी

हिन्दी का एक नाम हिन्दुस्तानी भी है। यह अंग्रेज़ी हुकूमत की उपज है। सन् १८०० ई० में कलकत्ते के फोर्ट विलियम में एक महकमा क़ायम हुआ था जो ईस्ट-इंडिया-कम्पनी के कर्मचारियों को देशी भाषा सिखाने की व्यवस्था करता था। डाक्टर जान गिलक्रिस्ट (१७५९–१८४७) उसकी देखरेख के लिये तैनात हुए थे।

उस महकमे के द्वारा हिन्दी-उर्दू में हिंदू-मुसलमान विद्वानों से पुस्तकें लिखवाई गईं। उसी समय से सरकारी मुहर इस पर लगी।

गिलक्रिस्ट साहब ने स्वयं सोलह पुस्तकें लिखीं; जिनकी भाषा 'हिन्दुस्तानी' करार दी गई है। इस साहबी हिन्दी पर राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द ने अपनी क़लई चढ़ाई और उसमें उन्होंने कुछ पुस्तकें और लेख लिखे।

फ़ेडरिक पिंकाट साहब ने १ जनवरी, १८८४ को भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाम हिन्दी में एक पत्र लिखा था, उससे राजा शिवप्रसाद और तत्कालीन अंग्रेज़ों की मनोवृत्ति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। पत्र का कुछ अंश यहाँ दिया जाता है :—

१ जनवरी, १८८४

प्रिय बंधो,

आप से एक पत्र मिलना मुझे परम सुख है। राजा शिवप्रसाद बड़ा चतुर है। बीस बरस हुये उसने सोचा कि अंग्रेज़ी साहबों को कैसी-कैसी बातें अच्छा लगती हैं।.....इसलिये उसने बड़े चाव से अपनी हिन्दी भाषा को बिना लाज छोड़कर उर्दू के प्रचलित करने में बहुत उद्योग किया। उसके उपरांत उसने देखा कि हिन्दी-भाषा साल पर साल पूज्यतर होती जाती थी। तब उसने उर्दू और हिन्दी के परस्पर मिलाने का उद्योग किया। अंग्रेज़ लोग जानते हैं कि उन दो भाषाओं का मिश्रित होना सबसे श्रेष्ठ बात होगी; क्योंकि वैसी संयुक्ता से सारे हिन्दुस्तान के लिये एक ही भाषा निकलेगी।

अंग्रेज़ लोग करने पर हृदय लगाते हैं। इससे यदि आप काव्य को छोड़-कर किसी क्रिया सम्बन्धी प्रसंग लगें सरल हिन्दी गद्य रचना पर अपना मन लगावें तो शिवप्रसाद के पद से आप आगे बढ़ेंगे।

आपका परम मित्र
फ़्रेंडरिक पिंकाट

इस पत्र से इस बात का भी पता चलता है कि सन् १८८४ तक अंग्रेज़ों की नीयत या नीति यही थी कि हिन्दी को सार्वदेशिक भाषा बनाकर अपना राजकाज चलावें। इसीसे हिन्दी-उर्दू को एक करने की धुन उनमें थी। पर बाद को दृष्टि-कोण बदल गया और अंग्रेज़ी सरकार हिन्दू-मुसलमानों में फूट डालने की नीयत से हिन्दी-उर्दू की अलग-अलग उन्नति करने के लिये काफ़ी रुपये खर्च करने लगी। मानो उसने हिन्दी और उर्दूवालों की गरदनें घुमा दीं; एक का मुँह पूरब को कर दिया, दूसरे का पश्चिम को। दोनों चल तो रहे थे; पर हरएक क़दम पर वे एक दूसरे से दूर चले जा रहे थे। यह भगवान् की कृपा ही है कि महात्मा गाँधी के दृढ़ प्रयत्न से भारत को स्वराज्य मिला और हिन्दी को राष्ट्रभाषा का न्यायोचित पद प्राप्त हुआ।

हिन्दुस्तानी का मुख्य लक्ष्य यह है कि इसमें संस्कृत और अरबी फ़ारसी के वे ही शब्द आने पायें जो आमफ़हम हों। अप्रचलित या कम प्रचलित शब्दों को इसमें स्थान न दिया जाय। हमें इसमें आपत्ति क्यों होनी चाहिये? भाषा जितनी ही सरल होगी, मनुष्य उतना ही मनुष्य के निकट आ जायगा, विचारों के आदान-प्रदान में आसानी होगी और हमारी एकता की परिधि बढ़ेगी।

हम तो हिन्दुस्तानी को भी हिन्दी ही का एक रूप मानते हैं। हमारे कुछ शिक्षित और हिन्दी की रक्षा के लिये चिन्तित मित्रों की यह आशंका है कि इसके प्रचार से हिन्दी को हानि होगी। मेरे ख़याल में उनकी यह धारणा ग़लत है; क्योंकि भाषा का शब्द-भांडार जितना ही बड़ा होगा, उतनी ही भाव-वहन की उसकी शक्ति भी बढ़ जायगी।

हिन्दी में सैकड़ों शब्द डच, पोर्चुगीज़, फ्रेंच और अँग्रेज़ी भाषा के भरे हुये हैं, फिर अरबी, फ़ारसी ही के शब्दों से हमें घृणा क्यों होनी चाहिये ?

लेकिन हिन्दी की प्रकृति और संस्कृति के अनुसार ही उसमें विदेशी भाषा के शब्दों को लिया जाना चाहिये। प्रत्येक शब्द को हिन्दी के व्याकरण के अधीन होकर रहना होगा। जैसे, वक्त का बहुवचन अवक़ात न लेकर हम वक्तों लेंगे। इसी तरह पार्टी का बहुवचन पार्टियाँ या पार्टियों लेंगे, पार्टीज़ नहीं। यह इस कारण से नहीं कि हमें दूसरी भाषाओं के रूपों से घृणा है, बल्कि इसलिये कि अधिकांश हिन्दू, मुसलमान, पारसी और सिख आदि हिन्दी ही के रूप को समझते हैं और राष्ट्र-भाषा का लक्ष्य यही है कि वह अधिकांश लोगों की समझ में आसानी से आये।

राष्ट्र-भाषा

सन् १९४७ से स्वराज्य मिलने के बाद भारत के संविधान के अनुसार राष्ट्रभाषा अब अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व रखती है। उसका साँचा हिन्दी का है जरूर; पर उसमें और साहित्यिक हिन्दी में अंतर है। दोनों एक नहीं हैं। हिन्दी एक प्रांत की भाषा और राष्ट्रभाषा एक राष्ट्रकी भाषा है। उसमें केवल संस्कृत ही के नहीं, राष्ट्र में प्रचलित सभी मुख्य भाषाओं के संज्ञा शब्द स्थान पायेंगे। जैसे अंग्रेजी और अरबी-फारसी के शब्द आये हुये हैं; पर सब शब्दों को हिन्दी-व्याकरण के साँचे में ढलकर बैठना पड़ेगा।

राष्ट्रभाषा की परिभाषा क्या है ? इस प्रश्न को लेकर हिन्दी के हितेच्छुकों में बड़ा विवाद चल रहा है। मेरी राय में राष्ट्रभाषा को स्वतंत्र कर देने से हिन्दी की कोई हानि नहीं है। जैसे, भारत की अन्य भाषायें स्वतंत्रतापूर्वक अपने साहित्य का विकास कर रही हैं और करती रहेंगी, उसी तरह हिन्दी का विकास भी निर्विरोध होता रहे, इसमें किसी को विरोध न होगा; पर राष्ट्रभाषा सम्पूर्ण रूप से साहित्यिक हिन्दी की होकर रहे, यह अभी तो असंभव है। प्रयत्न जारी रखना चाहिये कि कभी हो जाय।

इसकी सबसे सुन्दर मिसाल शकुंतला की है। शकुंतला कण्व मुनि के

आश्रम में पैदा हुई, वहीं पली-पुसी, युवती हुई और वहीं उसका भारत के सम्राट् दुष्यन्त से विवाह हुआ। फिर वह भारत की राजधानी में पहुँचती है; महारानी बनती है, बल्कल वस्त्र उतारकर रेशमी वस्त्र पहनती है; शरीर को रत्न-जड़ित आभूषणों से सजाती है; राज-परिवार में प्रचलित रीति-रस्मों को पालन करती है; और सारे भारत से आये हुए उपहार, भेंट और नजरों को सम्मान-पूर्वक ग्रहण और उपभोग करती है। आश्रमवासी यदि आग्रह करें कि वह बल्कल वस्त्र ही पहना करे, शरीर के अंगों को लता-पत्तों ही से ढका करे, और राजमहल में भी आश्रमवासिनी की तरह रहे तो यह एक दुराग्रह ही कहा जायगा और बुद्धिमानों से इसका समर्थन नहीं मिलेगा।

ठीक यही दशा हिन्दी की हुई। वह भी ग़रीब किसानों के घर में पैदा हुई, संतों के घरों में पली-पुसी और आज भारत की उसी राजधानी में राष्ट्र की महारानी हो गई। अब भारत की सारी भाषायें उसकी सहेलियाँ हैं। उनके बीच में वह सजधजकर बैठे और राष्ट्रभर से उपहार लेकर अपने अंगों को सजाये तो हिन्दीवालों को तो हर्षित ही होना चाहिये। वह हमारे घर से गई है; इससे अब भी हमारी ही है; पर जहाँ गई है, वहाँ की रहन-सहन के अनुसार उसे अपना सिंगार करने देना चाहिए।

मेरा अभिप्राय यह है कि हिन्दी के उस साँचे में किसी भी भाषा के लोकप्रचलित संज्ञा शब्द भरे जा सकते हैं, तभी राष्ट्रभाषा-द्वारा हम राष्ट्रीय एकता क़ायम कर सकेंगे।

जैसे, मद्रास में 'माँगो' आम को कहते हैं। अंग्रेजी में यह 'मैंगो' के रूप में ग्रहण कर लिया गया है। हमारी राष्ट्र-भाषा में भी यह ले लिया जायगा तो हमारा कोषही बढेगा और मद्रास में जाने पर हम 'आम लाओ' की जगह 'माँगो लाओ' बोलेंगे तो हमको आम मिलने में सुविधा होगी। अतएव 'माँगो' या अन्य संज्ञा-शब्द कोई हों, लाओ या तत्सम्बन्धी क्रिया हिन्दी ही की होगी। राष्ट्रभाषा का सहज स्वरूप यही है।

राष्ट्रभाषा की पाठ्य पुस्तकें साहित्यक हिन्दी से अलग बननी चाहियें; जिनमें हिन्दी प्रान्तों में हिन्दी के और अन्य भाषावाले प्रान्तों में उनकी बोल-चाल के आमफहम शब्द लिये जायेंगे।

उर्दू-शायरी का जन्म और जन्म-स्थान

उर्दू-शायरी का जन्म पहले पहल दक्खिन में हुआ। हिन्दी भाषा तो वहाँ अपने तत्कालीन रूप में विद्यमान थी ही; उसमें मुसलमानी शासन के कारण अरबी-फारसी के शब्द भी मामूली बोलचाल में प्रवेश पाये हुये थे। हिन्दी में कविता भी होती थी; और मुसलमान कवि भी हिन्दी ही में अपनी प्रतिभा की चमक दिखाते थे, जिसके उदाहरण पहले दिये जा चुके हैं। कुछ मुसलमान कवियों ने, जो फारसी के अच्छे विद्वान् थे, फारसी छंदों में भी अपनी रचनायें समाज के सामने रक्खीं। उन्होंने छंद ही बदले; भाषा हिन्दी ही थी। पहले-पहल तो वह कौतूहल की बात रही होगी; मुसलमानों को फ़ारसी छंदों में कविता की भूख भी रही होगी; उन्होंने उसे जल्दी ही अपना लिया। और जब उसे दक्खिन के बादशाहों से प्रश्रय और मान मिल गया; तब तो वह दरबारी कविता हो गई और उसकी उन्नति के रास्ते खुल गये।

उस समय के मुसलमान शायर किस तरह हिन्दी के साँचे में फारसी के शब्द भरने लगे थे, यह दिखलाने के लिये कुछ शायरों के शेर यहाँ दिये जाते हैं :—

गोलकुंडा के सुलतान मुहम्मद कुली कुतुबशाह का एक हस्तलिखित दीवान, जो अठारह सौ पृष्ठों में लिखा हुआ है, और उस समय की बोलचाल की भाषा में है, निज़ाम हैदराबाद के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है। कुतुबशाह १५८० ई० में गद्दी पर बैठा और १६१२ में मरा। स्पष्ट है कि यह दीवान वली से पहले का है, और रेख़ता का सबसे पहला दीवान है।

कुतुबशाह का उपनाम 'ज़िल्ले अल्लाह' था। 'ज़िल्ले अल्लाह' के कुछ शेर यहाँ दिये जाते हैं—

१

कुफ़र रीत क्या हौर इसलाम रीत ।
हर एक रीत में इश्क का राज़ है ।।

२

तुम बिन रहा न जावे अन नीर कुछ न भावे ।
बिरहा किता सतावे मन सेति मन मिला दो ।।

३

मुँज इश्क के गदा को औरंगशाही देता ।
सब अशिक़ाँ मुँज आगे है तिफ्ल जों दबिस्ताँ ।।

४

चर्ख के खुमख़ाने में सूर पिया मानो मद ।
मस्त हो जाकर पड़ता गर्व के चश्मे मँझार ।।

गोलकुंडा के इसी वंश में सुलतान मुहम्मद कुतुबशाह सुलतान अब्दुल्ला, कुतुबशाह और अब्दुल हसन तानाशाह तीन सुलतान और हुये, जो सभी शायर थे ।

दक्खिन के थोड़े-से शायर और हैं, जिनकी रचना के नमूने उर्दू के संग्रह-ग्रंथों में मिलते हैं। उनके नाम और उनकी कविता के कुछ नमूने आगे दिये जाते हैं :—

अहसन—

जब ते सफ़र पी ने किया तब ते ग़रीब आवारः हूँ ।
या बेग पी आया करें या मुजको लें बुलवाय कर ।।

अहमद—

भरें दो नैन के छगलाँ सबूरी साथ ले तोशा ।
कमर हिम्मत की बाँधी औ बिपत की बाट पर निकले ।।

अशरफ़—

पिया बिन मेरे तइँ बैराग भाया है जो होनी हो सो हो जावे ।
भबूत अब जोगियों का अंग लाया है जो होनी हो सो हो जावे ।।

जाफ़र—

ग़म्ज़ाँ से देखो शोख़ मुझे मारकर चले।
मजरूह तिस प राह मनी ढार कर चले ।।

ख़ुशनूद—

सब रैन जागे सेज पर तो भी सजन आया नहीं ।
चुप-चुप के देखी बाट मैं दरसन को दिखलाया नहीं ।।

सादी—

हमना तुमन को दिल दिया तुम दिल लिया औ दुख दिया ।
तुम यह किया हम वह किया यह भी जगत की रीत है ।।
सादी ग़ज़ल अंगेख़्तः शीरो-शकर आमेख़्तः ।
दर रेख़्तः दुर रेख़्तः हम शेर है हम गीत है।।

फ़ज़ली—

रखूं हूं नीमज जानाँ तसद्दुक़ तुझ प' करने को।
किया सब तन को मैं दरपन अभूँ दरसन न पाये हूँ।।

हाशम—

दखिन औ हिन्द के दिलबर हमन से बेहिजाब अच्छे।
कि मुखड़े चाँद से पर जिनके खत के पेच-ताब अच्छे।।

अज़ीज़ुल्ला—

मुझ नीमजाँ की क्या सकत बोलूँ जो बलियाँ की सिफ़त ।
आज़िज़ अज़ीज़ुल्ला उपर दक्खिन के सब पीराँ मदद ।।

लुत्फ़ी—

मैं इश्क़ की गली में घायल पड़ा था तिस पर।
जोबन का माता आकर मुजको खँदल गया है।।
तुझ इश्क़ की अगिन से शोला हो जल उठा जिउ।
दिल मोम के नमूनः गलगल पिघल गया है।।

हातिफ़ी—

आँखों औ जुल्फ़ से तेरी काफ़िर हुआ सारा जहाँ।
इसलाम औ तकवे कहाँ जुहद औ मुसलमानी किधर।।

महमूद—

महमूद मुझ में दिसता पूरा हुनर वफ़ा का।
है क्या हुनर जो भावे तू पी को इस हुनर से।।

इनके बाद दक्खिन के शायरों में वली का नाम आता है, जिसका वर्णन कविता-कौमुदी के प्रारम्भ में दिया गया है।

एक और पुराने शायर हामिद का नाम भी सुना जाता है। उनका एक शेर यह है।—

अज़म सफ़र चूं कर दी साजन नैनों नींद न आये जी।
क़द्रे विसालत ना दानिश्तम तुम बिन बिरह सताये जी।।

"बहरुल्फ़साहत" के लेखक ने अपनी पुस्तक में मुंशी प्यारेलाल "शौक़ी" की एक ग़ज़ल दी है। और यह भी लिखा है कि वह जहाँगीर के समय में थे और फ़ारसी के शायर थे। उर्दू में भी कुछ कह लेते थे। ग़ज़ल यह है—

जिन प्रेम रस चाखा नहीं अमृत पिया तो क्या हुआ।
जिन इश्क में मर ना दिया जो जग जिया तो क्या हुआ।।
ताबीज़ औ तूमार में सारी उमर ज़ाया किती।
सीखे मगर हीले धने मुल्ला हुआ तो क्या हुआ।।
जोगी वो जंगम सेवड़ा रँग लाल कपड़े पहिर के।
वाक़िफ़ नहीं इस हाल से कपड़ा रँगा तो क्या हुआ।।
जिउ में नहीं पी का दरद बैठा मशायख़ होय कर।।
मन का रहट फिरता नहीं सुमिरन किया तो क्या हुआ।।
जब इश्क़ के दरियाव में होता नहीं ग़रक़ाब तें।
गंगा बनारस द्वारका पनघट फिरा तो क्या हुआ।।
मारग बसी सब छोड़कर दिल तनसे तें ख़िलवत पकड़।
"शौकी" पियारे लाल बिन सबसे मिला तो क्या हुआ।।

उर्दू शायरों ने दक्खिनी हिन्दी में फारसी के शब्द ही नही, रोचक-रोचक विषय भी लिये, जिनसे उस नकली भाषा की ओर लोग अधिक आकर्षित हुये। वे विषय हिन्दी को लिये बिल्कुल नये थे।

मर्सिया जिसमें करबला की दुःखजनक रोमांचकारी घटना हसन-हुसेन के अनुपम शौर्य और करुणोत्पादक मृत्युका वर्णन होता है, पहले-पहल दक्षिणी ही हिन्दी के लिखित रूप में जनता के सामने आया। मसनवियों (प्रेम कथाओं) और सवाइयों (उपदेशप्रद चौपदों) भी शुरुआत भी उसी समय से पाई जाती है। गोलकुंडा के सुलतान मुहम्मद कुली कुतुबशाह (१५८०ई०–१६११ई०) के कुल्लियात (संग्रह) में ये सब मौजूद हैं।

कुली कुतुबशाह, वली के समकालीन थोडा ही कुछ आगे-पीछे गोलकुंडा के मुहम्मद कुतुबशाह (१६२५—१६७२ई०) अब्दुलहसन कुतुबशाह (१६७२—१६८२ई०), मुहम्मद कुतुबशाह, अब्दुल्ला कुतुबशाह, अबुल-हसन, बीजापुर के इब्राहीम आदिलशाह, (१५८०—१६२६ई०), अली-आदिलशाह (१५८०ई०) तथा इन बादशाहों के दरबारी और स्वतंत्र शायर दाऊद, सिराज, नुसरती, हाशमी, दौलत, शाह मलिक, शाह अमीन, बहरी, आजिज और वजदी आदि कितने ही शायर दक्खिनी हिन्दी में शेर कहते थे और मसनवियाँ लिखते थे। उनमें ज्यादातर शब्द हिन्दी के होते थे, पर इश्क की पहुँच हो गई थी। नमूने के तौर पर सिराज की एक ग़ज़ल यहाँ दी जाती है :—

खबरे तहैयुरे इश्क सुन न जुनूँ रहा न परी रही।
न तो तू रहा न तो मैं रहा जो रही सो बेखबरी रही॥
शहे बेखुदी ने अता किया मुझे अब लिबासे बरहनगी।
न खिरद की बखियागरी रही न जुनूँ की परदादरी रही॥
वह अजब घड़ी थी कि जिस घड़ी लिया दर्से नुस्खए इश्क का।
कि किताबे अक्ल की ताक पर ज्यों धरी थी यों ही धरी रही॥

किया खाक आतिशे इश्क ने दिले बेनवाए सिराज कूँ ।
न खतर रहा न हज़र रहा मगर एक बेखतरी रही ।।[1]

वली की शायरी से इसमें भाषा ज्यादा साफ़-सुथरी दिखाई पड़ रहीं रहै। पर मौर तो वली के भाग्य में था, जो दक्खिनी भाषा में फारसी के छन्दों में कविता लेकर दिल्ली आये। दिल्ली में वली की बड़ी क़दर हुई और आबरू, हातिम, नाजी, मज़हर जानजानाँ आदि समकालीन कवियों ने वली का दिखाया हुआ रास्ता अपना लिया और वे उसे साफ़ सुथरा और चौड़ा करने में लग गये। वे सब फ़ारसी के शायर थे।

उर्दू के युग

पहला युग

भाषा की दृष्टि से उर्दू-पद्य के इतिहास को हम कई युगों में बाँट सकते हैं। पहले युग के मुख्य शायर वली, आरजू, नाजी, एकरंग, हातिम, आबरू, और फुगाँ है। इस युग में आगे लिखे हिन्दी शब्दों को उर्दू के शायर प्रयोग में लाते रहे है :--

से	के स्थान मे	सूं, सेती	बेगाना	के स्थान में	बगाना
को	,, ,,	कों, कू	अन्दर	,, ,,	भीतर
हमको	,, ,,	हमनकू	माशूक	,,	मोहन सरीजन, पी, पीतम
दुनियामें	,, ,,	जगमने	आँसू	,, ,,	अँम्भू
तेरे	,, ,,	तुझ	भवें	,, ,,	भवाँ
तरह	,, ,,	नमन	पलकें	,, ,,	पलकाँ
जग	,, ,,	जहान, दुनिया	आँखें	,, ,,	नैन, अँखड़ियाँ
कलाम	,, ,,	वचन	यह	,, ,,	यो
हमेशा	,, ,,	नित	हैरान	,, ,,	भेचक

---

१ डा० राम बाबू सक्सेना के 'उर्दू साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ९ से।

मुँह	के	स्थान	में	मुख	को	के स्थान में	अपने तईंको, कों
तस्वीह	,,	,,		तस्वी			
जानेवाला	,,	,,		जानेहारा	दिल	,, ,,	मन
बजाने को	,,	,,		बजावने को	से	,, ,,	सेती
फ़रमाया है	,,	,,		फ़रमायता है	जलगया	,, ,,	बलगया
जाता हैं	,,	,,		जावता है	सिदके	,, ,,	बलि
मुझे	,,	,,		मुझ	पराठा	,, ,,	परोठा
को	,,	,,		के तई	आहिस्ता	,, ,,	धीरा
में	,,	,,		मों	में	,, ,,	बीच, भीतर
ख़ाक पा	,,	,,		ख़ाके चरन	तरफ़	,, ,,	ओर
दिखाई देता	,,	,,		दिसता	प्यारा	,, ,,	पियारा
आईना	,,	,,		आरसी	जिधर	,, ,,	जीधर
तर्क करके	,,	,,		तज, तजकर	उधर	,, ,,	ऊधर
ज़ुल्म	,,	,,		ज़ालनी	उन्हीं	,, ,,	उन
दीदार	,,	,,		दरस,दरसन,	यहाँ	,, ,,	याँ
वीरान	,,	,,		सुजाँ	वहाँ	,, ,,	वाँ
भाव	,,	,,		भा			इत्यादि
प्रीति	,,	,,		पिरित			

इस युग में कुछ फ़ारसी के महावरे लाकर मिलाये गये; कुछ फारसी के नये शब्द भी आये; पर वर्णन-शैली एक ही-सी रही। घोड़ा का तुक गोरा मिला दिया जाता था।

दूसरा युग

दूसरे युग के मुख्य शायर जानजानाँ, सौदा, सोज़, दर्द और मीर हैं। उर्दू के विद्वानों का कथन है कि जानजानाँ, सौदा, मीर और दर्द ने उर्दू के पौधे को जंगल में से लाकर उपवन में लगा दिया और उसे सींचकर उसमें मनोहर फूल खिलाये।

दूसरे युग में यद्यपि बहुत से पुराने शब्द निकाल दिये गये, और बहुत से नये भरती कर लिये गये, पर फिर भी नीचे लिखे शब्द रह ही गये :—

तूने	के	स्थान	में	तैं	हिलना	के स्थान में	हलना
हमेशा	,,	,,		नित	घिसना	,, ,,	घसना
मिट्टी	,,	,,		माटी	रूह, जीव	,, ,,	जीउड़ा
मिल	,,	,,		रल	पत्थर	,, ,,	पथर
लगा	,,	,,		लागा	बजता	,, ,,	बाजता
हमारे पास	,,	,,		हम पास	ढाकर	,, ,,	ढाय कर
एक	,,	,,		एकों	देखना	,, ,,	दीद करना
कहता है	,,	,,		कहे है	नाम	,, ,,	नाओं
उधर	,,	,,		ऊधर, तिधर	कबतक	,, ,,	कबलग
उनसे	,,	,,		उन कने	उसने	,, ,,	उने
आती थी	,,	,,		आतियाँ थीं	टटोलता है	,, ,,	टटोलै है
मेरी जान	,,	,,		मेरा जान	बात	,, ,,	बचन
ज़रा	,,	,,		टुक	न	,, ,,	नै
कहते हो	,,	,,		कहो हो	नाम	,, ,,	नाँव
आई	,,	,,		आइयाँ			इत्यादि;

निदान, विस्तार, तनक, नगर, वास आदि शब्द भी प्रयोग में आते थे। एक विशेषता यह थी कि स्त्रीलिंग बहुवचन की क्रिया का रूप भी भिन्न था। जैसे, 'औरतें आती थीं या जाती थीं' के बदले 'औरतें आतियाँ थीं', 'जातियाँ थी' लिखते थे। जान, बुलबुल और सैर को पुल्लिग लिखते थे।

तीसरा युग

तीसरे युग के मुख्य शायर जुरअत, हसन, इन्शा और मसहफ़ी हैं। इस युग में उर्दू-भाषा पहले से बहुत परिमार्जित हुई। हिन्दी के बहुत से शब्द हटाकर उनके स्थान में अरबी-फ़ारसी के शब्द रक्खे गये। फिर भी जो बच रहे, उनकी सूची यह है—

नित, टुक, अँखड़ियाँ, ज़ोर (बहुत), भल्लारे, झमकड़ा, अजी, जिन्हों के, उन्हों को, पौन, इंधर, पूछो हो, शर्मालियाँ, कीधर, ऊधर इत्यादि।

चौथा युग

चौथे युग के प्रसिद्ध शायर नासिख़, आतिश, मोमिन, ज़ौक, ग़ालिब, अमीर, अनीस, दबीर, दाग़ और आसी हैं। इस युग में उर्दू भाषा पहले की अपेक्षा बहुत परिमार्जित हो गई। फिर भी कुछ पुराने शब्द रह ही गये। जैसे पः (पर), तलक (तक), बीहड़, बलबे, अज़ीजाँ, भारियाँ, अँधियारियाँ इत्यादि।

पाँचवाँ युग

पाँचवें युग के प्रसिद्ध शायर हाली, अकबर, इक़बाल और चकबस्त आदि हैं। भाषा पहले की अपेक्षा बहुत परिमार्जित और महावरेदार हो गई है; पर पद्य की भाषा में एक दोष, जो पहले से चला आता है, अबतक ज्यों का त्यों है। वह यह है कि शब्द स्वाधीन नहीं है, बल्कि छंद की गति के अधीन हैं। जैसे—

यह न थी हमारी क़िस्मत कि विसाले-यार होता।
अगर और जीते रहते यही इन्तज़ार होता॥

यह लिखा तो ऐसा गया है, पर पढ़ा जाता है इस तरह—

य न थी हमारि क़िस्मत कि विसाल यार होता।
अगरौर जीत रहते यहि इन्तज़ार होता॥

विसाल और जीत को ज़रा विसाले और जीते की ओर ज़ोर देकर पढ़ना चाहिए। हिन्दी में इस ध्वनि के लिये कोई चिन्ह नहीं।

शब्दों का मनमानी प्रयोग करने में ऐसी ही स्वतन्त्रता ब्रजभाषा के कवियों ने ली है। परिणाम यह हुआ है कि जो लोग ब्रजभाषा या उर्दू नहीं जानते, वे इनके पद्य ठीक-ठीक पढ़ नहीं सकते।

आजकल के हिन्दी-कवि अब शब्दों का शुद्ध प्रयोग करने लगे हैं।

इससे हिन्दी-कविता पढ़नेवालों को छन्द की गति अलग सीखनी नहीं पड़ती, शब्द आप से आप छन्द की गति बता देते हैं। हिन्दी में तो यह त्रुटि अब नाममात्र की रह गई है; पर उर्दू के शायर अभी इधर ध्यान देते हुये नहीं दिखाई पड़ते।

उर्दू का छन्द-शास्त्र

फ़ारसी और अरबी ही का छन्द-शास्त्र उर्दू में भी काम देता है। प्रायः सब छन्द भी वही हैं, जो फ़ारसी और अरबी में व्यवहृत होते हैं। हिन्दी की अपेक्षा उर्दू का पिंगल बहुत आसान है। हिन्दी में तो सैकड़ों हज़ारों प्रकार के छन्द हैं; पर उर्दू में छन्दों की संख्या अधिक से अधिक ५० होगी। हिन्दी की तरह इसम अक्षरों और मात्राओं की गिनती नहीं करनी पड़ती। चार-पाँच शब्द हैं, जिनको हेर-फेरकर रखने से नये छंद बन जाते हैं।

उर्दू में छंद को बहर कहते हैं। मशहूर बहरें कुल उन्नीस हैं। उनमें पाँच बहरें ख़ास अरबी के लिये हैं। बाक़ी अरबी और फ़ारसी दोनों में काम देती हैं। उर्दू के पुराने शायर मुश्किल बहरों में भी कुछ कह लेने का प्रयत्न कर लेते थे; पर अब मुश्किल बहरों का प्रचार उठता जाता है, और शायर लोग सरल भाषा के साथ आसान बहरों का भी प्रयोग करने लगे हैं। यहाँ मुख्य-मुख्य बहरें दी जाती हैं—

१—मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन फ़ऊलुन।

उदाहरण—

कहाँ हो ऐ हमारे राम प्यारे।
मुझे तुम छोड़कर बन को सिधारे॥

हिन्दी में इस बहर का नाम सुमेरु है।

२—फ़ायलातुन फ़ायलातुन फ़ायलुन।

उदाहरण—

दिल इबादत से चुराना और जन्नत की तलब।
कामचोर इस काम पर किस मुँह से उजरत की तलब॥

हिन्दी में इसे गीतिका कहते हैं।

३—मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन।

उदाहरण—

ख़मोशी इसलिये दीवानगी में हमने हासिल की।
ख़ुदा जाने वो क्या पूछे हमारे मुँह से क्या निकले।।

हिन्दी में इसे विधाता छंद कहते हैं।

४—फ़ायलुन मफ़ाईलुन फ़ायलुन मफ़ाईलुन।

उदाहरण—

इश्क़ से तबीअत ने ज़ीस्त का मज़ा पाया।
दर्द की दवा पाई दर्द बे-दवा पाया।।

५—मफ़ऊल मफ़ाईलुन मफ़ऊल मफ़ाईलुन।

उदाहरण—

ख़ुरशेद जो निकला है इस वक़्त य' लरज़ाँ है।
कोठे प खड़ा शायद वह माहेलक़ा होगा।।

हिन्दी में इसे 'दिग्पाल' कहते हैं।

६—मफ़ऊल मफ़ाईल मफ़ाईल मफ़ाईल।

उदाहरण—

जिसको तेरी आँखों से सरोकार रहेगा।
बिल्फ़र्ज़ जिया भी तो वो बीमार रहेगा।।

हिन्दी में इसे 'बिहारी' छन्द कहते हैं।

७—मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन मफ़ाईल।

उदाहरण—

मुहब्बत कोड़ियो के हो अगर मोल।
बनी आदम न ले यह दर्द-सर मोल।।

हिन्दी में इसे 'शास्त्र' छन्द कहते हैं।

८—फ़ायलातुन मुफ़ाइलुन फ़ेलुन।

उदाहरण—

शाम से कुछ बुझा सा रहता है।
दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिस का।।

९—मफ़ऊल फ़ायलात मफ़ाईल फ़ायलुन।

उदाहरण—

हाजत नहीं है शाम की मेरे मज़ार पर।
हर शब है सोज़े आह से रोशन चिराग़े-दिल।।

१०—फ़ायलातुन फ़ायलातुन फ़ायलुन।

उदाहरण—

सुबह गुज़री शाम होने आई मीर।
तू ने चेता औ बहुत दिन कम रहा।।

हिन्दी में यह 'पीयूषवर्ष' छंद कहलाता है।

११—फ़ऊलुन फ़ऊलुन फ़ऊलुन फ़ऊलुन।

उदाहरण—

समाया है जब से तू आँखों में मेरी।
जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है।।

हिन्दी में इसे 'भुजंगप्रयात' कहते हैं।

१२—फ़ऊल फ़ेलुन, फ़ऊल फ़ेलुन, फ़ऊल, फेलुन, फ़ऊल फ़ेलुन।

उदाहरण—

कहाँ हैं हम में अब ऐसे सालिक कि राह ढूँढ़ी क़दम उठाया।
जो हैं तो ऐसे ही रह गये हैं किताब देखी क़लम उठाया।।

हिंदी में इसे 'यशोदा' छंद कहते हैं।

१३—मफ़ऊल मफ़ाईलुन मफ़ऊल फ़ऊलुन, मफ़ऊल फ़ऊलुन।

उदाहरण—

सौदाए मुहब्बत जो नहीं है तुझे ऐ दिल, तो फिर मुझे बतला।
क्यों चाक किये अपने गरेबाँ को है फिरता, आँखों प है वहशत।।

हिन्दी में इसे 'खरारी' छंद कहते हैं।

१४—मुतफ़ायलुन मुतफ़ायलुन मुतफ़ायलुन मुतफ़ायलुन।

उदाहरण—

पसे मर्ग मेरी मज़ार पर जो दिया किसी ने जला दिया।
उसे आह दामने बाद ने सरे शाम ही से बुझा दिया।।

हिन्दी में यह 'हरिगीतिका' छंद कहलाता है।

१५—फ़ायलातुन फ़ायलातुन फ़ायलात।

उदाहरण—

पूछते हैं वह कि ग़ालिब कौन है।
कोई बतलाओ कि हम बतलायँ क्या?

हिन्दी में इसे 'आनन्द-वर्धक' कहते हैं।

१६—मफ़ऊल फ़ायलातुन मफ़ऊल फ़ायलातुन।

उदाहरण—

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोसताँ हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलसिताँ हमारा।।

हिन्दी में यह 'दिग्पाल' छन्द कहलाता है।

१७—फ़ऊलन फ़ऊलन फ़ऊलन फ़अल।

उदाहरण—

कहे एक जब सुन ले इन्सान दो।
कि हक़ ने जुबाँ एक दी कान दो।।

हिन्दी में यह 'भुजंगी' छंद कहलाता है।

१८—मफ़ऊल मफ़ायलुन फ़ऊलन; या मफ़ाईल।

उदाहरण—

हर शाख़ में है शिगूफ़ाकारी।
समरा है क़लम का हम्देबारी।।

१९—मफ़ायलुन मफ़ायलुन मफ़ायलुन मफ़ायलुन।

उदाहरण—

य' थोड़ी थोड़ी मै न दे कलाई मोड़ मोड़ कर।
भला हो तेरा साक़िया पिला दे खुम निचोड़ कर।।

नियमों को स्वर से पढ़ने पर उसी में उसकी गति भी निकल आती है। जो लोग उर्दू नहीं जानते, वे उर्दू के शेरों को शुद्ध-शुद्ध पढ़ नहीं सकते। क्योंकि उर्दू के शायर आवश्यकता पडनें पर दीर्घ अक्षरों को ह्रस्व कहकर पढ़ा करत हैं; पर लिखने में उन्हें शुद्ध लिखते हैं। केवल हिन्दी जानने वाला उन्हें शुद्ध-शुद्ध पढ़ तो लेगा, संभव है, अर्थ भी समझ ले; पर वह उसे शुद्ध बहर में नहीं पढ़ सकेगा। जैसे—

गुलिस्ताँ में जाकर हरक गुल को देखा।
न तेरी सी रंगत न तेरी सी बू है।।

बहर के अनुसार पढ़ने के लिये यह इस तरह लिखा जाना चाहिये—

गुलिस्ताँ मँ जाकर हर्‌क् गुल क्‌ो देखा।
न तेरी सि रंगत न तेरी सि बू है।।

हिन्दी में यह 'भुजंगप्रयात' छंद है। भुजंगप्रयात की गति जानकर जब यह पढ़ा जायगा तो जीभ आप से आप इसे ठीक कर लेगी। ऊपर जो बहरों के लक्षण दिये गये हं, उनके पढ़ने का अभ्यास कर लेने पर उर्दू की कविता पढ़ने में गति की गड़बड़ कम हो जायगी।

आगे उर्दू-पद्य के ख़ास-ख़ास विषयों का वर्णन किया जाता है—

ग़ज़ल

ग़ज़ल का अर्थ है जवानी का हाल बयान करना अथवा माशूक़ की संगति और इश्क का जिक्र करना। इसलिये एक ग़ज़ल में प्रेम के भिन्न-भिन्न भावों के शेर लाने का नियम रक्खा गया है। किसी शेर में आशिक़ अपनी मनोवेदना प्रकट करता है, जिससे माशूक पर उसका कुछ प्रभाव पड़े। किसी शेर में वह माशूक की प्रशंसा करता है, जिससे वह प्रसन्न हो। किसी शेर में वह माशूक़ की वफ़ा और जफ़ा का जिक्र करता है, और किसी में

रक़ीब की शिकायत करता है। मतलब यह कि जिस बात के कहने से माशूक़ के प्रसन्न होने या और कोई ख़ास नतीजा निकलने की आशा होती है, वही बातें ग़ज़ल में आती हैं। कभी-कभी सौंदर्य, प्राकृतिक छटा और वैराग्य की बातें भी ग़ज़ल में कही जाती हैं। अब तो देशभक्ति की बातें भी ग़ज़लो में कही जाने लगी हैं; क्योंकि ग़ज़लों का स्वर बहुत लोकप्रिय हो चला है। इसलिये उर्दू के शायर ग़ज़लों से देश-सेवा का काम भी लेने लगे हैं।

पर ग़ज़लों का जन्म केवल प्रेम-चर्चा के लिये ही हुआ था। अरब में ग़ज़ल नाम का एक आदमी था। उसने अपनी सारी उम्र इश्क़बाज़ी में बिता दी। वह सदा इश्क़ और हुस्न ही की बातें किया करता था और उन्हीं विषयों के शेर पढ़ा करता था। उसी समय से, जिस कविता में इश्क़ और हुस्न का ज़िक्र हो, लोग उसे ग़ज़ल की याद में ग़ज़ल कहने लगे।

आजकल ग़ज़लों का बहुत प्रचार है। मुशायरों में तो ख़ासकर ग़ज़लें ही पढ़ी जाती हैं। थियेटरों में ग़ज़लों का बोल बाला है। रंडियाँ प्रायः ग़ज़ल ही गाती हैं। आजकल के सभा-समाजों में भी स्वदेशी ग़ज़लों का अधिकार होता जाता है। और अब तो हिन्दी के कवि भी हिन्दी-भाषा में ग़ज़लें लिखने लगे हैं। कहने का तात्पर्य यह कि धीरे-धीरे ग़ज़लों की सर्व-प्रियता बढ़ती जा रही है।

ग़ज़ल में शेरों की संख्या ताक़ होती है। साधारण नियम यह है कि एक ग़ज़ल में पाँच से कम और ग्यारह से ज्यादे शेर न होने चाहियें। पर कुछ पुराने शायरों ने कम से कम तीन शेर और अधिक से अधिक पच्चीस शेर तक की ग़ज़लें मानी हैं। आजकल सत्रह, उन्नीस और इक्कीस शेर तक की ग़ज़लें लिखी जाती हैं। यदि कोई कवि गज़ल के नियमों की पाबन्दी और महावरों का उचित प्रयोग करता हुआ पचास शेर की ग़ज़ल लिखे, तो यह उसके लिये गौरव की बात है, नियम की अवहेलना नहीं।

क़सीदा

क़सीदा उन शेरों को कहते हैं, जिनमें किसी व्यक्ति, वस्तु या विषय की प्रशंसा या निंदा हो। जैसे, ग़ज़ल के लिये प्रेम की रीति-भाँति से जानकार होना आवश्यक है; वैसे ही क़सीदे के लिये दरबारी क़ायदे-क़ानून, और लोक-व्यवहार से अभिज्ञ होना बहुत ज़रूरी है, जिससे शायर प्रत्येक विषय का ठीक-ठीक वर्णन कर सके और कोई बात मर्यादा के बाहर न जा सके। ग़ालिब कहते हैं कि जो शायर क़सीदा नहीं लिख सकता, उसकी गिनती शायरों में करनी ही न चाहिये। बात बिल्कुल सच है। क़सीदे ही से शायर की बहुज्ञता का पता चलता है। उर्दू में सौदा, इन्शा और ज़ौक़ का क़सीदा लिखने में बड़ा नाम है।

मसनवी

मसनवी किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के पद्य-बद्ध जीवन-वृत्तान्त या कल्पित कथा को कहते हैं। मसनवियाँ उर्दू में बहुत हैं। सबसे अधिक प्रसिद्ध "गुलज़ार नसीम" है, जो पंडित दयाशंकर 'नसीम' की लिखी हुई है। फ़ारसी में शाहनामा, सिकन्दरनामा और युसुफ़-जुलेखा नाम की मसनवियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

मरसिया

मरसिया शोक-गीत को कहते हैं। प्रायः सब मरसियो में हसन-हुसेन का शोक-प्रद वृत्तान्त कहा गया है। लखनऊ में अनीस और दबीर के मरसिये बहुत प्रसिद्ध हैं। मरसिये की बुनियाद पहले-पहल दक्खिनी हिन्दी में पड़ी; पर लखनऊ आकर वह सर्वांगपूर्ण हुआ।

रुबाई

रुबाई चार मिसरों का छन्द है। इसमें नीति या उपदेश की बड़ी-बड़ी बातें थोड़े शब्दों में, सुन्दर, महावरेदार भाषा में कही जाती हैं। अरबी और फ़ारसी में रुबाइयों का बड़ा प्रचार है। फ़ारसी में उमर

ख़ैयाम की रुबाइयाँ इतनी प्रसिद्ध हैं कि संसार की प्रायः सब प्रसिद्ध भाषाओं में उनके अनुवाद हो चुके हैं।

मुसल्लस

मुसल्लस को हिन्दी में तिपदा या तिकड़ी कहना चाहिये। इसमें तीन मिसरे समान वज़न के होते हैं। जैसे—

या तो अफ़सर मेरा शाहाना बनाया होता।
या मेरा ताज गदायाना बनाया होता।
वर्ना ऐसा जो बनाया न बनाया होता॥

मुखम्मस

मुख़म्मस को पँचकड़ी समझिये। इसमें पाँच-पाँच कड़ियो का एक-एक बन्द होता है। पाँचवीं कड़ी का तुक मिलता हुआ रहता है। जैसे—

१

मुझे तो कहते हो रंग तेरा घड़ी में कुछ है घड़ी में कुछ है।
ज़माने की तरह ढंग किसका घड़ी में कुछ है घड़ी में कुछ है।
न आज मानूंगा कल का वादा घड़ी में कुछ है घड़ी में कुछ है।
किसे भरोसा कि दम का नक़शा घड़ी में कुछ है घड़ी में कुछ है।
घड़ी की सूरत लगा है खटका घड़ी में कुछ है घड़ी में कुछ है॥

२

मैं हूँ मरीज़े तपे मुहब्बत अयाँ है बेताबियों की सूरत।
मैं दिलजला हूँ दमे अयादत न जी के बचने की आई नौबत।
जो कोई दम पाये गर्म सोहबत तो फूँके जा सूरे सहरे उल्फ़त।
न कीजो हमदम ज़रा भी ग़फ़लत कि मिस्ले अख़गर है दम की हालत।
जो दम में ज़िन्दा तो पल में मुर्दा, घड़ो में कुछ है घड़ी में कुछ है॥

मुसद्दस

मुसद्दस छः मिसरों या तीन शेरों का होता है। पहले के चार मिसरों के तुक एक होने चाहिये। शेष दो के तुक अलग होते हैं। उर्दू में "हाली"

का मुसद्दस बहुत प्रसिद्ध है। अनीस और दबीर के मरसिये भी मुसद्दस ही में हैं।

तारीख़

किसी घटना या किसी के जन्म-मरण का जब सन् कहना होता है, तब उर्दू में उस ढंग से नहीं कहा जाता है, जैसे हिन्दी में है। हिन्दी-कविता में अंक के स्थान पर उसी संख्या वाले पदार्थ का नाम लिखा जाता है। जैसे, सं० १९९७ कहना होगा तो ऋषि, ग्रह, अंक, मयंक से मतलब निकल आयेगा। पर उर्दू में एक-एक अक्षर के लिये अलग संख्या की कल्पना कर ली गई है। कोई सन् कहना होता है तो कुछ ऐसे अक्षरों के शब्द बनाकर लिखते हैं, जिनसे घटना का अर्थ भी निकल आता है और अक्षरों की संख्यायें जोड़ने से सन् भी। प्रत्येक अक्षर के लिये जो अंक नियत है, उनकी सूची यहाँ दी जाती है—

अलिफ़	=	१	ई (बड़ी)	=	१०	क़ाफ़	=	१००
बे	=	२	काफ़	=	२०	रे	=	२००
जीम	=	३	लाम	=	३०	शीन	=	३००
दाल	=	४	मीम	=	४०	ते	=	४००
हे (छोटा)	=	५	नूं	=	५०	से	=	५००
वाव	=	६	सीन	=	६०	खे	=	६००
ज़े	=	७	ऐन	=	७०	ज़ाल	=	७००
हे बड़ी	=	८	फ़े	=	८०	ज़ाद	=	८००
तोए	=	९	साद	=	९०	ज़ोए	=	९००
						ग़ैन	=	१०००

जैसे, 'कुनम शुक्रे खुद', यह तारीख एक बार नासिख़ ने क़त्ल होते-होते बच जाने पर कही थी। इसमें इतने अक्षर हैं—काफ़,नूं,मीम,शीन, काफ़,रे,खे,दाल,अलिफ़। सब के अंक जोड़ने पर हिजरी सन् १२३५ आयेगा।

यहाँ तक तो उर्दू के पिंगल का बाहरी परिचय दिया गया, अब उसकी भीतरी बातें सुनिये।—

शेर

शेर अरबी भाषा का शब्द है, और इसका अर्थ है बाल। सौन्दर्य के लिये बाल आवश्यक पदार्थ है। सुन्दर चेहरे पर ज़ुल्फ या अलक या लट का लहराना कितना मनोहर होता है, यह मनुष्य-जाति से छिपा नहीं है। बालों से सुन्दरता खिल उठती है। प्रेमिका कितनी ही सुन्दरी हो, पर सिर मुँडाये हो, तो वह प्रेमी को पसंद नही आ सकती। शेर का भी यही हाल है। कविता एक सुन्दरी है, शेर उसके केश है। या साहित्य (अदब) माशूक़ है और शेर उसके गेसू हैं।

साहित्यिक परिभाषा में शेर एक ऐसा साँचा हैं, जिसमें विचार ढाले जाते हैं। ढालनेवाला शायर कहलाता है।

शेर की मिसाल भौं से दी जाती है। क्योंकि माशूक़ के चेहरे पर दो भवें एक शेर के मिसरों की तरह होती हैं। 'लुग़त' में शेर का अर्थ 'जानना' भी लिखा है।

मिसरा

मिसरा एक चरण या एक पंक्ति को कहते हैं।

बैत

पूरे छंद को बैत कहते हैं।

मतला

किसी ग़ज़ल में जो सबसे पहला शेर होता है, उसे मतला कहते हैं।

मक़ता

ग़ज़ल में सबसे अंतिम शेर को मक़ता कहते हैं।

क़ाफ़िया

क़ाफ़िया को हिन्दी में तुक कहते हैं। हिन्दी की तरह उर्दू में तुक मिलाने की कड़ाइयाँ नहीं हैं। उर्दू में लगा, सदा, दुआ, बजा का भी तुक मिला हुआ समझा जाता है; क्योंकि इन शब्दों में सबके अंत में 'आ' है।

रदीफ़

रदीफ़ क़ाफ़िये के बाद आती है और वह सब शेरों में अपनी जगह पर क़ायम रहती है, कभी बदलती नहीं। जैसे—

इशरते क़तरा है दरिया में फ़ना हो जाना।
दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना॥

इसमें फ़ना और दवा क़ाफ़िया और 'हो जाना' रदीफ़ है। यह 'हो जाना' सारी ग़ज़ल के प्रत्येक शेर के दूसरे मिसरे में आयेगा। कभी-कभी एक ही अक्षर की रदीफ़ होती है। और कभी-कभी आधे से अधिक मिसरा तक रदीफ़ हो जाता है। जैसे—

मुझे तो प्यार ऐसा है कि मैं कुछ कह नहीं सकता।
वो बुत बेज़ार ऐसा है कि मैं कुछ कह नहीं सकता॥

इसमें 'प्यार' और 'बेज़ार' काफ़िये और 'ऐसा है कि मैं कुछ कह नहीं सकता' कुल का कुल रदीफ़ है।

कभी-कभी रदीफ़ रहती ही नहीं। जैसे—

हर शाख़ में है शिगूफ़ाकारी।
समरा है क़लम का हम्दे बारी॥

इसमें कारी और बारी का क़ाफ़िया तो है, पर रदीफ़ नहीं।

उर्दू-शायरी में वर्णित मुख्य विषय

आशिक़, माशूक़, बाग़, सहरा, दरिया, महफिल, ग़म, आसमान, ख़िज्र, शैतान, विरहमन, शेख़, फ़रहाद और शीरी, मन्सूर, क़ैस या मजनूँ और लैला, यूसुफ़ और जुलेख़ा, जाहिद, वाइज़ या नासेह, बुत, शराब, हूर या परी, क़ातिल, क़यामत, काफ़िर इत्यादि।

सब के अलग-अलग विवरण इस प्रकार हैं—

आशिक़ के विशेषण

बीमार, बेख़बर, आवारा, इश्क का पुतला, दीवाना, बेक़रार, रोने-

वाला, बदनाम, वफ़ादार, जफ़ाकश, ग़मज़दः, ज़माने का, सताया हुआ, बदबख़्त, रंजीदा, शराबी, मदहोश, ज़ईफ़, रक़ीबों का दुश्मन इत्यादि।

माशूक़ के विशेषण

बेवफ़ा, बेरहम, ज़ालिम, क़ातिल, सय्याद, जल्लाद, हरजाई, बदख़ू, बदज़बान, बदचलन, बदगुमान, बेमुरव्वत, काफ़िर, बुत इत्यादि।

आशिक़ के काम

आसमान, ज़माना, भाग्य और सितारों की शिकायत; भक्त, उपदेशक और सूफ़ी को खोटी-खरी सुनाना; शराबी, शराब बेचनेवालों, शराब पिलानेवालों और नशे की तारीफ़ करना; ईमान, इसलाम और भक्ति और धार्मिकता से घृणा प्रकट करना; कुफ़्र और लामज़हब होने से प्रेम प्रकट करना; इश्क और आवारगी को विद्या, बुद्धि और राज्य से बढ़कर बताना; माशूक़ की गली में पागल की तरह घूमना; उसके मकान की दीवार के साये में बैठ रहना; ख्वाब देखना; मर जाने पर क़ब्र में से माशूक़ को झाँकना; बुतपरस्ती को मुसल्मानियत से बढ़कर बताना; बोसा लेना आदि।

माशूक़ के काम

आशिक़ को कत्ल करना; एक आशिक़ को घायल छोड़कर उसके रक़ीब से मिलना; आशिक़ की क़ब्र पर जाना; मुँह बिचका देना; ठोकर लगा देना; रूठ जाना; मन जाना; गालियाँ देना; गुस्ताख़ी और शरारत करना; बेवफ़ा होना; आशिक़ की शिकायत करना इत्यादि।

माशूक़ का नखशिख

सूरत—हूर, परी, चाँद, सूरज, गुल, बाग़, जन्नत आदि।
आँख— नरगिस, आहू (मृग), बादाम, जादूगर, मस्त आदि।
जुल्फ़, पलक, अदा—साँप, तीर, तलवार आदि।
भौं—कमान।

चिबुक— कुँआँ।

दाँत—मोती।

ओंठ—लाल, याकूत, पंखड़ी, अमृत आदि।

मुँह— गुंचा।

कमर— बाल।

क़द—सरो, सनोवर, शमशाद, क़यामत आदि।

गति— बला, आफ़त, क़यामत आदि।

शृंगार की चीजें—दर्पण, हिना, सुर्मा, काजल, मिस्सी, पान, क़बा, चीरा, पगड़ी, बुर्का, नक़ाब, चादर, चोटी आदि।

बाग़

बहार, खिज़ाँ, सरो, क़ुमरी, गुल, बुलबुल, सय्याद, गुलची, बाग़बान, घोंसला, जाल, पिंजड़ा, ख़ार इत्यादि।

सहरा

वादी, चश्मा, बहता पानी, सब्ज़ा, प्यास, धूल, सरसर, काँटे, डाकू, राह दिखानेवाला, क़ाफ़िला, लैला-मजनूँ, वहशपत, जुनूँ इत्यादि।

दरिया

किस्ती, मल्लाह, मौज, किनारा, हुबाब, बूँद, मछली, डुबकी इत्यादि।

महफ़िल

शमा, परवाना, शराब, कबाब, प्याला, मीना, सुराही, शराब के मटके, नशा, ख़ुमार, साक़ी, दौर, गाना, चंग, मिज़राब इत्यादि।

ग़म

रोना, आह, बेचैनी, दर्द, ईर्ष्या, शौक़, जुदाई, याद करना, धीरज धरना, हसरत, रंज, ग़म, अलम, दाग़, जख़्म, ख़लिश, तपिश, क़ब्र, क़फ़न, जनाज़ा, इत्यादि।

आसमान

उर्दू के शायरों का यह ख़याल है कि आसमान चक्र की तरह घूमा करता है, और वही आशिकों पर आफ़तें लाता है। इससे वे अक्सर उसे जली-कटी सुनाया करते हैं।

कह रहा है आसमाँ यह सब समाँ कुछ भी नहीं।
पीस दूँगा एक गर्दिश में जहाँ कुछ भी नहीं।

ज़ौक़

ख़िज्र

हज़रत ख़िज्र एक पैग़म्बर हैं, जो भूले-भटकों को राह बताया करते हैं।

ख़िज्रो मसीह काटते हैं रश्क से गला
तू भी तो कर शहीदों की अपनी ज़ियारतें।।

आतिश

शैतान

शैतान एक फ़रिश्ता था, जिसने खुदा के कहने पर भी आदम को सिजदा नहीं किया।

खुदा ने उसे बहिस्त से निकाल दिया; तब से वह संसार के मनुष्यों को खुदा के विरुद्ध बहकाया करता है। सच्चे मुसलमान शैतान के बहकावे में नहीं आते।

गया शैतान मारा एक सिजदा के न करने में।
अगर लाखों बरस सिजदा में सर मारा तो क्या मारा?

ज़ौक़

बिरहमन

उर्दू के शायर को मूर्तिपूजक हिन्दुओं के लिए जब कुछ कहना होता है, तब वह बिरहमन (ब्राह्मण) को संबोधन करके कहता है।

ऐ बिरहमन हमारा तेरा है एक आलम।
हम ख़्वाब देखते हैं तू देखता है सपना।।

अकबर

शेख़

जैसे हिन्दुओं के लिए उर्दू के शायरों ने बिरहमन को पकड़ रखा है, वैसे ही मुसलमानों के लिए 'शेख' को। मुसलमानी मज़हब का जहाँ मज़ाक उड़ाना होता है, वहाँ शेखजी को संबोधन किया जाता है।

वे कहते हैं मै पीने को तू पी नहीं सकता।
ऐ शेख़ यह अल्लाह का डर है कि नहीं है।

अकबर

शेख़जी के दोनों बेटे बा-हुनर पैदा हुये।
एक है खुफ़िया पुलिस में एक फाँसी पागये।

अकबर

पधारें शेख़ काबे को हम इंगलिस्तान देखेंगे।
वो देखें घर खुदा का हम खुदा की शान देखेंगे।

अकबर

फ़रहाद और शीरीं

इश्क की चर्चा मे उर्दू के शायर फरहाद और शीरीं का नाम भी लिया करते हैं। शीरीं ईरान की एक सुन्दरी थी, जिसपर वहाँ का बादशाह खुसरो आसक्त था। पर शीरीं एक चीनी शिल्पकार फ़रहाद को चाहती थी। और फ़रहाद भी उसपर जी-जान से फ़िदा था। लेकिन शीरीं की शादी खुसरो ही से हुई। शीरीं फ़रहाद के लिए व्याकुल रहती और रोया करती थी। बादशाह को जब यह मालूम हुआ, तब उसने शीरीं से कहा कि अगर फ़रहाद का प्रेम सच्चा है तो वह पहाड़ काटकर महल तक नहर या रास्ता बना दे, तब मैं तुमको उसे सौंप दूँगा। शीरीं ने फ़रहाद को सूचना दी। फ़रहाद ने रात-दिन कड़ी मेहनत करके पहाड़ को काटकर रास्ता बना दिया।

बादशाह को ऐसी आशा नहीं थी। फ़रहाद की कामयाबी देखकर उसने उसके पास यह संदेशा भेज दिया कि शीरीं मर गई। यह सुनकर फ़रहाद ने आत्म-हत्या कर ली।

फ़रहादो-क़ैस गुज़रे अब शोर है हमारा।
हर कोई अपनी नौबत दो दिन बजा गया है।।

ज़ौक़

मन्सूर

मन्सूर ईरान का एक सूफ़ी था। वह 'अनलहक़' अर्थात् 'मैं खुदा हूँ' कहा करता था। इस पर उसे नास्तिक कहकर सूली दे दी गई। पर वह अन्त समय तक अपनी बात पर डटा रहा। उर्दू के शायर उसकी दृढ़ता की अक्सर तारीफ़ किया करते हैं।

कहा मन्सूर ने खुदा हूँ मैं।
डारविन बोले बूज़ना हूँ मैं।।

अकबर

कैस या मजनूँ और लैला

लैला और मजनूँ का किस्सा बहुत मशहूर है। मजनूँ का असली नाम क़ैस था; लेकिन वह एक अरब रमणी लैला के पीछे दीवाना हो गया था, इससे उसका नाम मजनूँ पड़ गया। उर्दू के शायर जहाँ इश्क की चरचा करते हैं, वहाँ लैला और मजनूँ की मिसाल देते हैं।

य' मजनूँ है, नहीं आहू है लैला!
पहनकर पोसतीं निकला है घर से।
जिसे तू सींग समझे है, ये हैं खार।
लगे हैं पाँव में निकले हैं सर से।।

नसीर

यूसुफ़ और ज़ुलेखा

यूसुफ़ मुसलमानों के एक पैग़म्बर का नाम है, जो बड़े ही सुन्दर थे। एक बार उनके भाइयों ने उनको मिश्र के एक सौदागर के हाथ बेंच डाला। सौदागर ने उन्हें लेजाकर मिश्र के राजा के हाथ बेंचा। राजा की स्त्री ज़ुलेखा यूसुफ़ को देखते ही उन पर आसक्त हो गई। पर यूसुफ़ उसकी प्रार्थना पर राज़ी न हुए। इससे चिढ़कर उसने उन्हें क़ैदखाने में डलवा दिया। अन्त में राजा को सब भेद मालूम हुआ, तब उसने उन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाकर मिश्र की राजगद्दी ही दे दी।

उर्दू के शायर सुन्दरता और भाग्य की खूबी के लिए यूसुफ़ का नाम अक्सर लिया करते हैं।

खरीदारों में आशिक़ अपने नामों को हैं लिखवाते।
तमाशा है, वो यूसुफ़ बन के हैं बाज़ार में आये।।

नासिख़

ज़ाहिद

ज़ाहिद कहते हैं परहेज़गार को। उर्दू के शायर ज़ाहिद को ढोंगी समझकर उसकी खिल्ली उड़ाया करते हैं; क्योंकि वह कल्पित स्वर्गकी लालसा में पड़कर दुनियाबी लुत्फ़ से बञ्चित रहता है।

गर हो शराब खिलवतो माशूक रूबरू।
ज़ाहिद तुझे क़सम है जो तू हो तो क्या करे।।

दाग़

वाइज़ या नासेह

वाइज़ या नासेह का अर्थ धर्मोपदेशक है। उर्दू के शायर धर्मोपदेशक से इसलिए चिढ़ते हैं कि वह उन्हें आशिकों को माशूक के प्रेम से अलग रखने और ख़ुदा के न्याय से उनको भयभीत करने का उपदेश देता है।

रंगे शराब से मेरी नीयत बदल गई।
वाइज़ की बात रह गई साक़ी की चल गई।।

अकबर

बुत

बुत का अर्थ है, मूर्ति। माशूक़ भी पत्थर की मूर्ति की तरह कठोर हृदय का होता है; इससे उर्दू के शायर उसे भी 'बुत' कहा करते हैं।

इलाही एक दिल किस-किस को दूँ मैं।
हज़ारों बुत हैं याँ, हिन्दोसताँ है।।

आतिश

शराब

मुसलमानी धर्म में शराब हराम होने पर भी उर्दू के शायर उसकी प्रशंसा करते हैं। माशूक़ के नख़रों से आजिज़ आकर ग़म-ग़लत करने के लिए आशिक़ शराब पीने लगता है। इश्क़ और शराब के नशे में इतनी समानता है कि एक दूसरे की मिसाल बन गया है। इसी से शराब पिलाने वाले 'साक़ी' को माशूक़ भी कहा जाता है।

लुत्फ़े-मैं तुझसे क्या कहूँ ज़ाहिद!
हाय! कम्बख़्त तूने पी ही नहीं।।

दाग़

हूर या परी

मुसलमानों का विश्वास है कि ख़ुदापरस्त मुसलमान को विहिश्त मे हूर(परी) और गिलमाँ (ख़ूबसूरत लौंडे) मिलते हैं। उर्दू के शायरों ने इस ख़याल का भी मज़ाक़ उड़ाया है।

ऐसी जन्नत को क्या करे कोई।
जिसमें लाखों बरस की हूरें हों।।

दाग़

परियों का इश्क़ छोड़ा सौदा किया मिसों का।
तब फाड़ते थे जामे अब कोट सी रहे हैं।।

अकबर

कातिल

उर्दू के शायर माशूक़ की मिशाल क़ातिल से भी देते हैं; क्योंकि वह आशिक़ को अपने हाव-भावों से क़त्ल करता रहता है।

हज़रते दाग़ य' है कूच-ए-क़ातिल उठिये।
जिस जगह बैठते हैं आप तो जम जाते हैं।।

दाग़

कयामत

उर्दू के शायर क़यामत, हश्र या महशर का ज़िक्र अपनी शायरी में अक्सर किया करते हैं। मुसलमानों का विश्वास है कि एक दिन ऐसा आयेगा, जब सारी सृष्टि का नाश हो जायेगा, तब खुदा मृतात्माओं का विचार करने बैठेंगे। मुन्किर और नकीर नाम के दो फरिश्ते आत्माओं को उनके आमालनामों के साथ खुदा के सामने पेश करेंगे। पुण्यात्माओं का खुदा बिहिश्त भेजेंगे और पापियों को दोज़ख में डाल देंगे। और जो न पापी होंगे न पुण्यात्मा, वे 'एराफ़' नाम के स्थान में जगह पायेंगे। चूँकि माशूक़ भी आशिक़ को बहुत तंग करता है, इससे उसे भी क़यामत के दिन का भय दिखाया जाता है।

जीने ने यहाँ के मार डाला 'आसी'।
सुनते हैं फिर हश्र में जीना होगा।।

आसी

काफ़िर

उर्दू के शायर माशूक़ के लिए काफ़िर शब्द का भी प्रयोग किया करते हैं। क्योंकि वह खुदा को नहीं डरता और अपने आशिक़ के साथ निर्दयता का व्यवहार करता है। उर्दू का शायर कभी-कभी अपने को भी काफ़िर कह लेता है, क्योंकि वह खुदा को छोड़कर बुत (माशूक़) की उपासना करता है।

मुसलमानी विश्वास के अनुसार एक ईश्वर को छोड़कर अन्य देवी-देवताओं की उपासना करनेवाला काफ़िर कहा जाता है।

मसजिद में उसने हमको आँखें दिखा के मारा।
काफ़िर की देखो शोख़ी घर में ख़ुदा के मारा॥

ज़ौक़

तख़ल्लुस

तख़ल्लुस को हिन्दी में उपनाम कहते हैं। यह एक छोटा-सा नाम होता है, जिससे कवि और उसकी कविता पहचानी जाती है। इस तरह उपनाम रखने की प्रथा पहले-पहल फ़ारसी कवियों ने चलाई। अरबी में उपनाम रखने का चलन नहीं था। संस्कृत कवियों ने भी उपनाम नहीं रखे। फ़ारसी के कवियों से उर्दू और हिन्दी दोनों ने उपनाम की प्रथा ग्रहण की।

उपनाम कभी-कभी तो असली नाम ही का एक भाग होता है। जैसे, इंशाअल्ला खाँ ने अपना उपनाम 'इंशा' रखा। मोमिन खाँ ने 'मोमिन' और मुंशी अमीर अहमद मीनाई ने 'अमीर'। और कभी-कभी अपनी पसन्द के अनुसार नाम से बिल्कुल भिन्न उपनाम रखा जाता है। जैसे, मुहम्मद तक़ी का 'मीर', मिर्ज़ा रफ़ी का 'सौदा', मिर्ज़ा असदुल्ला खाँ का 'ग़ालिब', शेख़ इब्राहीम का 'ज़ौक़' और नवाब मिर्ज़ाखाँ का 'दाग़' इत्यादि।

कोई-कोई शायर, जो फ़ारसी और उर्दू दोनों में कविता करते हैं अपने दो उपनाम रखते हैं। जैसे अम्बरशाहखाँ का फ़ारसी में 'अम्बर' और उर्दू में 'आशुफ्ता', नवाब मुस्तफाखाँ का फ़ारसी में 'हसरती' और उर्दू में 'शेफ्ता' इत्यादि।

कुछ लोगों का ख़याल है कि उपनाम स्त्रीवाची शब्द न होने चाहिये। जैसे 'नसीम'। पर यह उनकी भूल है। जुरअत, इशरत, हसरत, वहशत, हशमत आदि बहुत से स्त्री-वाची उपनाम हैं। उपनाम अच्छा होना चाहिये, चाहे वह स्त्रीलिंग हो या पुल्लिग।

कोई-कोई शायर मतला और मक़ता दोनों में अपना उपनाम लाते हैं। सौदा, मीर और नासिख़ ने प्रायः ऐसा ही किया है। पर ख़ास रिवाज मक़ते ही में उपनाम लाने का है।

चूँकि उर्दू शायरी के विषय ज्यादातर इश्क, रंज, परेशानी, हसरत, और जख्मी होने के हैं, इससे तखल्लुस भी इन्हीं भावों के द्योतक रक्खे जाते हैं; जैसे :—

आतिश, आरज़ू, आराम, आज़ाद, आश्ना, आफ़त, आह, आही, अटल, अरमान, असीर, अश्क, अफ़सोस, इन्तजार, बेताब, बेदम, बेरंग, बेकल, बीमार, बेहोश, बेदिल, बेदार, बेख़ुद, बेख़बर, बेजान, पाबन्द, परवाना, परेशान, तपिश, तिश्ना, तनहा, जङ्ग, हसरत, हैरान, हैरत, ख़ाक, ख़ाकसार, ख़मोश, ख़ता, ख़लिश, ख़ुमार, खंजर, दाग, दबंग, दर्दमंद, दर्दी, दिलेसोज़, दीवाना, ज़र्रा, रुसवा, रश्क, रक़ीब, रंज, रिन्द, ज़ार, ज़ख्म, ज़ख्मी, सौदा, शैदा, ज़ब्त, फ़क़ीर, मरीज़, नाक़िस, हसरत इत्यादि।

मुशायरा

उर्दू का मुशायरा (कवि-सम्मेलन) देखने लायक होता है। तरह-तरह के बाँके-तिर्छे शायर जमा होते हैं। सब जुदा-जुदा पिनक में मस्त होते हैं। सब के पढ़ने के ढंग, नाज़ो-अदा, कटछँट, ख़ास-ख़ास तरीक़े के होते हैं। आजकल कहीं-कहीं दिन में भी मुशायरे होते हैं; पर रिवाज है रात ही में होने का। जब सब शायर जमा हो जाते हैं और दर्शक काफ़ी तादाद में आ जाते हैं, तब मुशायरा शुरू होता है। एक मीर मजलिस चुन लिया जाता है। मुशायरे में जो-जो शायर अपनी ग़ज़लें पढ़ना चाहते हैं, उनके नामो की सूची मीर मजलिस के सामने रख दी जाती है। आजकल तो बिजली की रोशनी या झाड़ फ़ानूस या लालटेनों का ज़माना है, पर पहले मोमबत्तियाँ ही मजलिस की आँखें थीं। अब

मुशायरे में कुछ अंग्रेज़ी ढंग आ गया है। अर्थात्, शायर लोग मीर मजलिस के पास ऊँचे तख्त पर खड़े होकर अपनी ग़ज़लें पढ़ते हैं। पर पहले शायरों को अपनी जगह से उठना नहीं पड़ता था। एक व्यक्ति शमा लेकर शायर के सामने जा पहुँचता था। उसी के उजाले में शायर चहकने लगते थे। लुत्फ़ उस समय आता है, जब शायर अपनी ग़ज़ल शुरू करते हैं। पहले वे उठ खड़े होते हैं। बायें हाथ में कागज का टुकड़ा होता है, जिसमें वह ग़ज़ल लिखकर लाते हैं। शुरू करने के पहले कहते हैं—मतला अर्ज़ है। मजलिस में से आवाज़ आती है—इरशाद। यदि शायर का कोई ख़ास प्रेमी या मान्य व्यक्ति वहाँ हुआ तो वह उसका नाम लेकर कहता है—साहब मुलाहज़ा फ़रमाइये। वे आकर्षित होते हैं। प्रायः वे भी 'इरशाद हो' कहते हैं। इतनी पेशबन्दी के बाद शायर ने एक शेर पढ़ा। अगर वह अच्छा शेर हुआ, और उसने श्रोताओं के कलेजे कतर दिये तो लोग यकायक चीख़ उठते हैं—वाह वा, वाह वा, क्या खूब कहा है; ला जवाब शेर है, कलेजा निकालकर रख दिया है; मुकर्रर इरशाद; मुकर्रर इरशाद; सुबहान अल्ला; क्या अच्छी तबीअत पाई है; ज़रा फिर कहिये; आदि प्रशंसा-सूचक वाक्यों की झड़ी लग जाती है। उधर तो श्रोता प्रशंसा करते हैं, इधर शायर का यह हाल कि वह ज़रा झुककर जिधर-जिधर से तारीफ़ की आवाज़ें आती हैं, उधल-उधर घूम-घूमकर दाहिने हाथ की हथेली को बार-बार माथे तक ले जाकर सलाम करता रहता है। जब इस कसरत से छुट्टी मिलती है, तब शायर दूसरा शेर पढ़ता है। फिर वही तारीफ़ के वाक्य उड़ने लगते हैं। तालियाँ भी पीटी जाती हैं। क़हक़हे और चहचहे से घर गूँज उठता है। जोश में आकर लोग खड़े भी हो जाते हैं और शायर की ओर हाथ उठाकर कहते हैं—आपने तो ग़ज़ब कर दिया; आपका यह शेर लाख रुपये का है; क़लम चूम लेने को जी चाहता है। और खूब खूब की आवाज़ तो खूब ही आती है। उधर शायर को बार-बार सिर झुका-झुकाकर हथेली को मुँह के सामने लेजा-लेजाकर अपनी नम्रता दिखानी पड़ती है। शायर

हाथ ही से सलाम नहीं करता, बल्कि मुंह से 'अदाबर्ज़ है' भी कहता जाता है। जिसके शेर को लोग दो बार, तीन बार सुनते हैं, वह अपना अहो-भाग्य मानता है। बड़े शायर अपने शागिर्दों को भी साथ ले जाते हैं। वे शागिर्द तो अपने उस्ताद के शेरों पर और भी आसमान सिर पर उठा लेते हैं। कभी-कभी दो प्रतिद्वंदी शायर जब मशायरे में आ जाते हैं, तब तो और भी मज़ा आता है। तरफ़दार लोग वह नारे लगाते हैं कि मजलिस के बाहर के लोगों को एक हंगामा-सा मालूम होता है। पहले के शायर तलवार और छुरी-कटार भी बाँधकर मुशायरें में जाया करते थे। कोई-कोई तो तमंचे भर के बैठा करते थे। कभी-कभी तलवारें म्यान से निकल भी पड़ती थीं। पर अब पुलिस के भय से वह मजा ही जाता रहा। ग़ज़ल के आख़ीर मे शायर को फिर कहना पड़ता है—मक़ता अर्ज़ है। श्रोताओं में से कोई कहता है—इरशाद। ऐसा ही तमाशा प्रत्येक शायर के उठने पर होता है। मुशायरे मे सचमुच बड़ी चहल-पहल रहती है। थोड़ी देर के लिये आदमी अपने सांसारिक कष्टों को भूल जाता है। कभी-कभी तो ऐसा भी देखा गया है कि शेर सुनकर करुणा या हर्ष के मारे लोग मूर्च्छित हो गये हैं। मैंने एक मुशायरे में एक शेर से प्रभावित होकर एक मौलाना को घंटों मूर्च्छित पड़े देखा था। पता नहीं, पाखंड था या सच।

कभी-कभी जब कोई शायर बहुत अच्छी, दिल को फड़कानेवाली तबीअत को हुलासनेवाली, कलेजे में तीर की तरह चुभनेवाली कोई ग़ज़ल पढ़ते हैं, तो बाकी शायर अपनी-अपनी ग़ज़लें फाड़कर फेंक देते हैं और कहते हैं कि अब इसके आगे कुछ पढ़ना फ़ुजूल है। यह कहकर कुछ हँस भी देते हैं। पढ़नेवाला शायर इसे अपना बहुत सम्मान समझता है वह जीवन भर इस घटना को याद रखता है, और अपने मित्रों और शागिर्दों के सामने इसकी चर्चा भी करता है।

मुशायरे में किसी-किसी उर्दू शायर का ग़ज़ल पढ़ने का ढंग बहुत ही आकर्षक और दर्द से भरा होता है। श्रोताओं पर उसका भी असर पड़ता है।

अप्राकृतिक प्रेम

भारत में मुसलमानी बादशाहत के दिनों में ऐशो-इशरत का बाजार खूब गर्म था। अतएव उसी के मेल का समाज भी तैयार हो गया था। समाज के अनुकूल ही शायर भी पैदा हो गये थे। समाज में तीतर-बाजी, बटेर-बाज़ी, पतंग-बाज़ी, रंडीबाज़ी आदि कई बाजियां पहले ही से घर किये हुये थीं; उनमें एक शेर-बाजी अपने हमराह बुत-बाजी लेकर और आगई। बादशाहों से कद्रदानी का चारा मिलते ही उर्दू शायरी में बुत ही बुत भर गये और हरएक शायर, चाहे वह कितना ही बुड्ढा और मरियल क्यों न हो गया हो, बुतों पर जान देता हुआ नज़र आता है। यह मर्ज़ फारसी से आया है।

संस्कृत और हिन्दी के कवियों में यह प्रथा चली आती है कि वे जहाँ स्त्री-पुरुष का प्रेम प्रकट करते हैं, वहाँ स्त्री को पुरुष पर पहले आसक्त बताते हैं। घटना चाहे इसके विपरीत ही हो, पर नियम प्रायः यही है। रामायण में पहले-पहल सीता के हृदय में राम के लिये प्रेम अंकुरित हुआ दिखाया गया है। भागवत में रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण के पास अपना प्रणय-संदेश पहले भेजा। इसी तरह दमयंती नल पर और संयोगिता पृथ्वीराज पर आसक्त दिखाई गयी। अंग्रेज़ी कवियों का मार्ग इसके ठीक विपरीत है। वे पहले पुरुष को स्त्री पर आसक्त दिखलाते हैं। उनके देश का सामाजिक नियम भी ऐसा ही है। वहाँ पहले पुरुष ही अपना प्रणय प्रकट करता है। पर उर्दू शायरों का मार्ग इन दोनों से जुदा है। वे पुरुष पर पुरुष को आसक्त बतलाते हैं। यह फ़ारसी की नक़ल है। यह खोज करने की बात है कि फ़ारसी ने इसे कहाँ से पाया।

एक विद्वान् का कथन है कि यह भाव फ़ारस वालों ने यूनान से लिया। वहाँ की कविता में भी नायिका नहीं है। पर वहाँ की कविता में माशूक के साथ आशिक की उस कुप्रवृत्ति का भाव भी नहीं है, जो फ़ारसी और उर्दू की शायरी में है। अनुमान किया जाता है कि फ़ारसी

के शायरों ने यूनानी कविता का भाव पहले-पहल सूफ़ियाने ढंग पर ग्रहण किया। पीछे वही बिगड़ते-बिगड़ते अश्लीलता की सीमा पर पहुँच गया, जिससे मुसलिम-संसार में एक अप्राकृतिक प्रेम की नींव पड़ी। उर्दू में प्रेम का यह रूप फ़ारसी से लाया गया।

बुत या माशूक की असली सूरत

कुछ लोग यह कहेंगे कि उर्दू-शायरी में माशूक़ पुरुष ही को नहीं, स्त्री को भी कहते हैं। हम थोड़ी देर के लिये इसे माने लेते हैं। इसके पक्ष में हम कुछ प्रमाण भी उपस्थित किये देते हैं—

उस नाक की लौंग सूँघता हूँ।
हाजत मुझे क्या इलायची की।।

अख़गर।

कील सोने की बने अक्से तिलाई रंग से।
हल्क़ए बीनी की जा रक्खो जो तिनका नाक में।।

नादिर

कान छिदवाये जो उसने तो ग़श आया मुझको।
बालेपन ही में किया बस तहो-बाला मुझको।।

सबा

बोझ इतनी चीज़ का क्या दस्ते नाज़ुक से उठे।
आरसी छल्ला कड़े पहुँची सितारे चूड़ियाँ।।

नादिर

आ रही ज़ुल्फ़ हवा से जो तेरी पिस्ताँ पर।
अब्र ने ले लिया आग़ोश में कुहसारों को।।

जलाल

तुम्हारी माँग ने लूटा है होशो सब्रो क़रार।
लुटा है शाम के रस्ते में क़ाफ़िला दिल का।।

जोश

इन शेरों में ऐसी चीज़ों का वर्णन है जो केवल स्त्रियों ही से सम्बन्ध रखती हैं। पर ऐसे शेर इने-गिने हैं। उर्दू के प्रायः सब शायरों ने ऐसे शेर लिखे हैं, जिनमें माशूक को स्पष्टतः पुरुष माना है। उदाहरण के लिये कुछ शेर यहाँ पेश किये जाते हैं—

ख़त नमूदार हुआ वस्ल की रातें आईं।
जिनका अंदेशा था मुँह पर वही बातें आईं॥

असीर

सब्ज़ए ख़त है तिलिस्मे हुस्न से मुँह पर अयाँ।
वर्ना कब मुमकिन है शोले पर ठहरना काफ़ का॥

आबाद

साफ़ था जब तक कि ख़त तब तक जवाबे साफ़ था।
अब तो ख़त आने लगा शायद कि ख़त आने लगा॥

एक उस्ताद

सेज ऊपर ग़ैर की रहता है अब लोटा हुआ।
ज़र के लालच इस क़दर वह सीमनत खोटा हुआ॥

आबरू

रखे इस लालची लड़के को कोई कबतलक बहला।
चली जाती है फरमाइश कभी यह ला कभी वह ला॥

नाजी

मीर जैसे उच्चकोटि के शायर भी लड़कों से परेशान थे। आप फरमाते हैं :—

१

मीर क्या सादा हैं, बीमार हैं जिसके सबब।
उसी अत्तार के लौंडे से दवा लेते हैं॥

२

जब कुछ अपने कने रखते थे, तब भी खर्च था लड़कों का।
अब जो फकीर हुये फिरते हैं, 'मीर' उन्हीं की बदौलत है॥

प्रो० आजाद आबेहयात के पृष्ठ ५४ पर लिखते हैं :—

'रात को अहले मुहब्बत के जलसे में अव्वल तो साकी का आना वाजिब है; फिर माशूक़ बजाय एक नाज़नीन औरत के परीजाद लड़का हो'। इत्यादि

इस अवतरण से भी प्रमाणित होता है कि प्रो० आज़ाद की राय में भी माशूक औरत नहीं, कोई परीज़ाद लड़का है।

उर्दू-शायरी और सूफीमत

उर्दू के प्रायः सभी पुराने शायर सूफ़ी थे। उनमें से कुछ तो मुसलमान संतों के वंशज थे, जो मुसलमान विजेताओं के साथ आये थे; और कुछ जीविका की खोज में पीछे स्वयं आकर बस गये थे। फारसी उनकी मातृभाषा थी। फ़ारसी कविता की सूफ़ियाना बातों से वे परिचित थे। सूफी-धर्म के सिद्धान्त भारतीय धर्मों के सिद्धान्तों से मिलते-जुलते हैं। सूफ़ी-सिद्धान्तों के समर्थक हिन्दू भी थे। इससे यह तो स्वाभाविक ही था कि हिन्दुओं में भी लोकप्रियता प्राप्त करने के लिये उर्दू-शायर सूफ़ियाना बातों के साथ समाज के सामने आते। उन्होंने ऐसा ही किया और फ़ारसी की सूफ़ियाना उक्तियाँ उर्दू में लाकर रख दीं।

उर्दू शायरी में सूफ़ीमत की झलक लाने का आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपने 'हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास (विद्यार्थी संस्करण, पृष्ठ २१७) में एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही है, वह मननीय है। शास्त्रीजी लिखते हैं :—

'यह सच है कि मलिक मुहम्मद जायसी और उनके पूर्ववर्त्ती सूफ़ी कवि हिन्दी भाषा में हिन्दू-चरित्रों को लेकर रचना करते आये थे, परंतु यह भी सच है कि उस कविता में हिन्दू-धर्म-तत्व नहीं था, न उस कविता की काव्य-परिपाटी ही हिन्दू-भावना से संश्लिष्ट थी। यदि खूब गहराई से विचार किया जाय तो यह एक प्रयास था, जो ये सूफ़ी फ़कीर हिन्दू जनता के पूज्य, विश्वस्त और आध्यात्मिक गुरु बनने के लिये करते आये थे।

'वे अक्षुण्ण मुस्लिम संत रहते हुये भी हिन्दू-जनता के पीर बनना चाहते थे। एक हद तक मलिक मुहम्मद जायसी इस कार्य में सफल भी हो गये थे।× × वे पीर की भाँति पूजे जाने लगे थे और हिन्दू-मुस्लिम दोनों उन्हें पूज्य दृष्टि से देखने लगे थे।'

हिन्दूओं से प्रतिष्ठा पाने का प्रलोभन भी उर्दू शायरी में सूफीमत के समाविष्ट होने का एक कारण था, शास्त्रीजी की यह बात ध्यान देने की है। हातिम, मज़हर, दर्द, मीर, सौदा, ज़ौक, ग़ालिब, दाग़ आदि प्रायः सभी प्रसिद्ध शायर इश्क के साथ सूफीमत का भी पुट रखते थे। बाद के शायर भी उनकी नक़ल करते आ रहे हैं।

ऊर्दू शायरी में रस

हिन्दी की कविता संस्कृत के आधार पर नौ रसों में है; पर उर्दू की शायरी में शृंगार, करुण, शान्त, भय और वीभत्स ये पांच ही रस मुख्य हैं। पुराने शायरों में हास्यरस का तो नज़ीर का शायद यह एक ही शेर है :—

सुबह जब बोल उठा मुर्गे सहर कुकडूकूँ।
उठ गये पास से वो रह गया मैं टुटरूँटूँ।।

नये शायरों में अकबर इलाहाबादी ने पुरानी कमी को पूरा ही नहीं कर दिया, बल्कि वह उमड़ चला है। और उनका हास्यरस भी कैसा ? जो हँसते-हँसते घायल भी कर देता है और फिर भी आदमी हँसता रहता है। अकबर के मुकाबिले का हास्यरस का शायर या कवि न कभी पहले हुआ और न अभीतक हुआ। कुछ बानगी लीजिये :—

१

जो कहा मैंने कि प्यार आता है मुझको तुम पर।
हँसके कहने लगे, 'और आपको आता क्या है ?'

२

मालगाड़ी प भरोसा है जिन्हें ऐ अकबर।
उनको क्या ग़म है गुनाहों की गिराँबारी का।

३

खुदा की राह में बेशर्त करते थे सफ़र पहले।
मगर अब पूछते हैं रेलवे इसमें कहाँ तक है?

४

तुम बीबियों को मेम बनाते हो आजकल।
क्या ग़म जो हमने मेम को बीबी बना लिया।।

५

उसकी बेटी ने उठा रक्खी है दुनिया सरपर।
खैरियत गुज़री कि अंगूर के बेटा न हुआ।।

अंगूर की बेटी = शराब।

६

बाहम शबे-विसाल ग़लत फहमियाँ हुईं।
मुझको परी का शुबह हुआ, उसको भूत का।।

७

हमें क्या काम दुनिया से कि कालिज है वतन अपना।
मरेंगे हम किताबों पर वरक़ होंगे कफन अपना।।

८

कमरे में जो हँसती हुई आई मिसे राना।
टीचर ने कहा, इल्म की आफर है तो यह है।।

अधिक देखना हो तो इस पुस्तक में अकबर के बयान में देखिये।

उर्दू-शायरी फारसी की नकल है

उर्दू-शायरी का जन्म दक्षिण में हुआ, यह हम पहले कह आये हैं। वली से भी पहले वहाँ शायरी होने लगी थी, इसका जिक्र भी पीछे किया जा चुका

है। पर उसमें अधिकतर हिंदी के प्रचलित शब्द ही प्रयोग में लाये गये हैं और विषय भी हिन्दू और मुसलमानों में प्रचलित रीति-रवाजों, जन्म और शादी-ब्याह के उत्सवों, धार्मिक त्योहारों, जैसे होली, दिवाली, ईद, बकरीद आदि, हिन्दुस्तान की ऋतुओं, मेलों-ठेलों, खुदा, रसूल और उनके साथियों के कारनामों के मनोहर वर्णन ही ज्यादातर होते थे। रूपक और उपमायें भी हिन्दी की ली जाती थीं। केवल नये छंद पाकर पहले-पहल तो उन्होंने मनोविनोद के लिये उनमें फारसी शब्दों को भरना शुरू किया। इश्क का विषय तो मीठा था ही; फारसी शब्दों और महावरों में भी मिठास थी और मुसलमान बादशाहों और अमीर-उमरावों को वह पसंद भी आगई, इससे दक्खिन से आया हुआ वह बच्चा दिल्ली में बड़े प्यार से पाला-पोसा और सजाया-सँवारा जाने लगा। हिन्दी-शब्द खोज-खोजकर कम किये जाने लगे। उर्दू के शायर न हिंदी जानते थे, न संस्कृत। फ़ारसी के अच्छे ज्ञाता होने के कारण उनके दिमाग़ों में ख़यालात की उड़ान बहुत बढ़ी-चढ़ी थी, इससे उन्हें छंदों में बांधने की उन्हें जब जरूरत पड़ती, वे फारसी के शब्द और महावरे आसानी से पा जाते थे। मोमिन और गालिब, जो फारसी के शायर थे, फारसी के इतने अधिक शब्द और महावरे उर्दू-ग़ज़लों में भरे हैं कि सिवा हिन्दी के साँचे के और कोई भारतीयता उनमें नहीं रह गई है। इस तरह होते-होते हिन्दी के साँचे में एक भाषा का एक नया शरीर आप से आप ढल उठा और उसीका नाम उर्दू आप से आप पड़ गया। और उर्दू फारसी की एक नकल-मात्र हो गई।

विषय जो उर्दू-शायरी में भरे गये, वे भी भारतीय नहीं थे। बुलबुल फारसी शायरी का मुख्य पक्षी है। फारसी का बुलबुल फारसी ही में रोता-गाता है। भारत के बुलबुल से उसका नाम के सिवा और कोई संबंध नहीं। उसका रंग-रूप, क़द-वक़ायत, रहन-सहन, बोली-बानी सब यहाँ से जुदा है। पर उर्दू-शायरी में वह अकेला ही चहकता है। भारत में हंस, कोयल, पपीहा, मोर आदि कई सुंदर-सुंदर रूप-रंग और मधुर स्वर के पक्षी हैं; पर उर्दू के गुलशन में इनको जगह नहीं मिली।

पंजाब की पाँच बड़ी नदियों के सिवा गंगा, यमुना, सिंध, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि कितनी ही बड़ी-बड़ी नदियाँ इस देश में हैं, और उर्दू के शायर उनसे अच्छी तरफ वाकिफ़ थे और हैं। उनमें वे नहाते-धोते और सैर करते रहे हैं, पर उर्दू के शायर दजला या फुरात या सैहूँ-जैहूँ ही में हाथ धोते और गोते लगाते रहे।

पृथ्वी का सिरताज हिमालय पहाड़ उन्हीं के देश में है, जिस पर कितने ही ऋषि मुनि, योगी और महात्मा तप करके अमर हुये थे, पर उर्दू के शायर तूर ही के गीत गाने में मग्न रहे।

खूबसूरती के लिये वे यूसुफ की मिसाल देते रहे, पर इस देश के कामदेव, राम, कृष्ण और प्रद्युम्न का नाम भी उन्होंने नहीं लिये।

लैला-मजनूं, शीरीं-फरहाद और युसुफ़-जुलेखा की प्रेम-कथायें वे बड़े उल्लास से कहते रहे; पर अपने देश की उदयन और वासवदत्ता, दुष्यंत और शकुंतला, नल और दमयंती, अनिरुद्ध और उषा और पुरुरवा और उर्वशी की प्रेम-कथाओं को उन्होंने नगण्य समझा।

हनुमान, भीम, जरासंध आदि कितने ही मल्ल-विद्या विशारद इस देश में हुये और प्रसिद्ध हैं; पर उर्दू शायरों को जब किसी ताक़तवर की बड़ाई करनी पड़ी तो उन्होंने रुस्तम और असकंदयार की मिसाल दी।

उपमायें भी फ़ारसी ही की ली गईं। आँख की उपमा नरगिस से, कमल से नहीं; क़द की उपमा सर्व व शमशाद से, प्रेमी की उपमा फ़ाख्ते से और बालों की उपमा संबुल से दी जाती रही।

न्याय के लिये विक्रमादित्य, सत्य-पालन के लिये हरिश्चन्द्र, दान वीरता के लिये बलि, कर्ण, विक्रम और भोज के नाम यहाँ का बच्चा-बच्चा जानता है; राणा प्रताप और शिवाजी, जो मुग़ल-काल ही में हुये थे, कम प्रतापी नहीं थे, उर्दू के प्रायः सभी बड़े शायर उनकी प्रशंसाओं से परिचित थे, पर जहाँ इनके गुणों के लिये उदाहरण की जरूरत हुई, शायरों ने नौशेरवाँ और रुस्तम ही के नाम लिये।

भारतवर्ष की वर्षा ऋतु कितनी सुहावनी होती है ! चारों ओर हरियाली छा जाती है; झील, तालाब, गड्ढे, चुहले पानी से भर जाते हैं, और दर्पण-जैसे चमकने लगते हैं; पेड़ धुल जाते हैं और उनमें नये-नये कल्ले निकल आते हैं; पर उर्दू-शायरों ने उधर आँख ही नहीं फेरी। वे बयाबान और सहरा ही की सैर करते रहते थे।

भारत में कमल, गुलाब, गेंदा, जुही, चमेली, बेला, रजनीगंधा, मालती. चम्पा, सेवती आदि सैकड़ों तरह के रंग-बिरंगे और खुशबूदार फूल हैं, पर शायरों ने केवल गुलाब को पसंद किया; क्योंकि फारसी शायरी में भी वह आया है।

फानी साहब ने क्या सच्ची बात मुँह से बाहर निकाली है !

'फ़ानी' दकन में आके ये उक़दा खुला कि हम।
हिन्दोस्ताँ में रहते हैं हिन्दोस्ताँ से दूर ।।

उर्दू शायरी पर एक व्यापक दृष्टि

यहाँ तक तो हमने उर्दू-शायरी की बुनियादी बातों की चर्चा संक्षेप में की। किस तरह उर्दू-शायरी दक्खिन में पैदा हुई; कुछ होश में आते ही वह दिल्ली लाई गई; वहाँ वह नौजवान हुई; उसे ईरान की शोखी, नज़ाकत और चुलबुलापन सिखाया गया; दो माँओं की इस एक बेटी पर फारसी के शायर फिदा हुये। उन्होंने उसे महावरों के चमकीले भड़कीले ईरानी गहने पहनाये; उसे गुदगुदाया, हँसाया, खेलाया और उसे शाही महल में पहुँचाया। उस पर शाह और शायर दोनों फिदा हुये। फिर तो फारसी की जगह उसी का बोलबाला रहा।

उर्दू-शायरी को सजाने-सँवारने में फारस से क्या-क्या चीजें लाई गईं। आगे हम उनमें से कुछ का ज़िक्र अलग-अलग करेंगे।

इश्क

फारसी में इश्क की दो सूरतें हैं—इश्क हकीकी और इश्क मजाज़ी।

इश्क हक़ीक़ी में भगवान् की भक्ति और संसार की नश्वरता की बातें होती हैं और इश्क मजाज़ी में आशिक माशूक के चोचले होते हैं।

हिन्दी में भी दोनों सूरतें मौजूद हैं, पर उनका विभाग नहीं खोला गया है। वह रसों में बँटी हुई है और प्रत्येक कवि की लालसा होती है कि वह प्रत्येक रस में कुछ कहे। वह अपनी ही कविता का शिकार नहीं हो जाता, जैसा उर्दू के शायर हुए हैं।

उर्दू शायरों ने इश्क हक़ीक़ी को नापसंद करके इश्क मजाज़ी ही का दामन पकड़ा; क्योंकि वही उस समय के मुसलिम-समाज को पसंद था। यद्यपि गहराई में पहुँचकर कामिल शायरों ने पुकारा कि इसका परिणाम अच्छा नहीं है, पर पतन की ओर तेजी से उतरता हुआ समाज उतरता ही गया और नये-नये शायर पैदा होकर उसे ढकेलते ही चले।

इश्क के नतीजे पर बड़े-छोटे सभी शायरों ने काफी इशारा किया है; पर सैकड़ों वर्ष बाद सिर्फ आज़ाद और हाली ने उसे सुना। ऐसी बेहोशी शायद ही किसी दूसरी क़ौम को आई हो।

अब ज़रा शायरों के कलाम सुनिये :—

१

इश्क ने 'गालिब' निकम्मा कर दिया।
वर्ना हम भी आदमी थे काम के॥

गालिब

२

इश्क का मनसब लिखा जिस दिन मेरी तकदीर में।
आह की नक़दी मिली सहरा मिला जागीर में॥

अज्ञात

३

इब्तदा ही में मर गये सब यार।
इश्क की कौन इन्तहा लाया॥

अज्ञात

४

मीर साहब फर्माते हैं :—

आग थे इब्तदाये इश्क में हम।
अब जो हैं खाक इन्तहा है यह।।

मीर

५

एक दूसरे शायर अपनी परेशानी बताते हैं :—

इश्क की जिस पर इनायत हो गई।
होश जायल अक्ल रुखसत हो गई।।

अज्ञात

६

इस इश्कों आशिकी के मजे हमसे पूछिये।

अज्ञात

७

दर्द से वाक़िफ न थे, ग़म से शनासाई न थी।
हाय! क्या दिन थे, तबीयत जब कहीं आई न थी।।

जलील

८

साकिब साहब इन्सान की गिरावट महसूस करते हैं :—

ज़रा सी इक निगाहे इश्क में आँखों से गिरता है।
बहुत आसान है इन्सान का बेकार हो जाना।।

साकिब लखनवी

९

बुड्ढा आकाश चाँद को छाती से अभी तक छपटाये रहता है। इसी मिसाल पर बुड्ढा आदमी भी आशिक़ बना रह सकता है:—

सीने से चर्खे पीर लगाये है चाँद को।
कुछ इश्क मुनहसिर नहीं बूढ़े जवान पर।।

जलील

१०

इश्क से मीर साहब को सख्त नफ़रत थी :—

सख्त काफिर था जिसने पहले मीर।
मज़हबे इश्क अख्तियार किया।।

मीर

११

जिगर साहब ने जमाने की तरफ मुँह कर के कहा —

हम इश्क के मारों का इतना ही फ़साना है।
रोने को नहीं कोई, हँसने को ज़माना है।।

जिगर

१२

आशिक की जवानी कब आई ?, कब गई?, इस पर दाग़ साहब ने क्या फ़बती कसी है :—

यहाँ सुबहे पीरी से पहले ही 'दाग'।
जवानी चिराग़े सहर हो गई।।

दाग़

१३

मीर साहब फिर कहते हैं :—

मिला देती है खाक में आदमी को।
मुहब्बत है कोई बला आसमानी।।

मीर

१४

आशिक का लक्षण सुनिये :—

रंग चेहरे का ज़ाफरानी है।
आशिकी की यही निशानी है।।

अमीन

१५

इलाही राहे मुहब्बत को तै करें क्योंकर ?
य' रास्ता तो मुसाफिर के साथ चलता है ।।

अज्ञात

१६

लाखों जफायें, सैकड़ों सदमे, हज़ार ग़म ।
इक आसमान टूट पड़ा जिन्दगी के साथ ।।

रसा

१७

इश्क में बहुत कुछ खो चुकने के बाद फिराक साहब किस नतीजे पर पहुँचे ? :—

हाल अंजामे इश्क क्या कहिये ।
अब तो हम भी लगे हैं पछताने ।।

फिराक

१८

इकबाल साहब भी तब चेते, जब सीधे हो गये :—

'इकबाल' इश्क ने मेरे सब बल दिये निकाल ।
मुद्दत से आरज़ू थी कि सीधा करे कोई ।।

इक़बाल

१९

'आतिश' साहब पछताकर कहते हैं :—

अखीर हो गये, ग़फ़लत में दिन जवानी के ।
बहारे उम्र हुई कब खिज़ाँ, नहीं मालूम ।।

आतिश

२०

अनीस की जवानी बिजली की चमक या आग की चिनगारी की तरह आँख झपकी और निकल गई।

न जाने बर्क़ की चश्मक थी या शरर की लपक।
ज़रा जो आँख झपककर खुली, शबाब न था॥

अनीस

२१

'हिना' साहब ने भी पुकारकर कहा :—

पहले तो कहा मुझसे कह इश्क का अफ़साना।
खोली जो ज़बाँ बोले—दीवाना है दीवाना॥

हिना

२२

एक शायर साहब की परेशानी सुनिये :—

रग-रग में शोज़े ग़म है आँसू निकल रहे हैं।
बारिश भी हो रही है, औ' घर भी जल रहे हैं॥

अज्ञात

२३

मीर साहब तो बहुत ही निराश हुए :—

हमने अपनी-सी की बहुत, लेकिन।
मरज़े इश्क का इलाज नहीं॥

मीर

२४

एक शायर साहब मुसकराने के लिए तरस गये :—

कहीं से ढूंढ़कर ला दे हमें भी ऐ गुलेतर।
वह ज़िंदगी जो गुज़र जाय मुसकुराने में॥

अज्ञात

२५

मीर ने लोगों को ताकीद की है :—

लगा न दिल को कही, क्या सुना नहीं तू ने।
जो कुछ कि मीर का इस आशिक़ी में हाल हुआ ।।

मीर

२६

मीर का क्या हाल हुआ ?

फिरते हैं मीर ख्वार कोई पूछता नहीं।
इस आशिकी में इज्ज़ते सादात भी गई ।।

मीर

२७

किसी आशिक के एक दोस्त ने कहा था :—

रात शैताँ को ख्वाब में देखा।
सारी सूरत जनाब की सी थी ।।

अज्ञात

२८

शायर पर शायर एक ही नतीजे पर पहुँचते जा रहे हैं; पर इश्क की लत नहीं छूटती। जिगर साहब फरमाते हैं :—

यह इश्क नहीं आसाँ, इतना ही समझ लीजै।
इक आग का दरिया है, औ' डूब के जाना है ।।

जिगर

२९

जिगर साहब का हौसला खत्म नही हुआ और वे आग के दरिया में डूबकर जाने के लिए गीत गाते हुये निकल ही पड़े :—

मुहब्बत मुहब्बत मुहब्बत मुहब्बत,
कोई धुन से यह गीत गाता चला जा ।।

जिगर

३०

कायम साहब भी इसी की ताईद करते हैं, पर कोई सुने तब न ?

खुश्को तर फूंकती फिरती है सदा आतिशे इश्क।
बचियो इस रंज से ऐ पीरो-जवाँ, सुनते हो ?

३१

इश्क से आसी-जैसे खुदापरस्त शायर भी घबरा उठे थे। आप इस जीवन से तंग आ गये थे :—

जीने ने यहाँ के मार डाला 'आसी'
सुनते हैं फिर हश्र में जीना होगा।।

आसी

३२

दर्द साहब अपना अनुभव बताते हैं :—

कभू रोना कभू हँसना कभू हैरान हो रहना।
मुहब्बत क्या भले-चंगे को दीवाना बनाती है।।

दर्द

३३

साकिब साहब को जिन्दगी भर की मुहब्बत का क्या फल मिला ?

मुट्ठी में खाक लेके दोस्त आये वक्ते दफ़न।
जिन्दगी भर की मुहब्बत का सिला देने लगे।।

साकिब

३४

'मीर' ने भी पर्दा खोल दिया था :—

कुछ ज़र्द ज़र्द चेहरा कुछ लाग़िरी बदन में।
क्या इश्क में हुआ है, ऐ मीर! हाल तेरा।।

३५

अज़ीज़ का भी ऐसा ही तजरबा है :—

ज़िन्दों में अब शुमार नहीं हज़रते 'अज़ीज़'।
कहते थे आप से कि मुहब्बत न कीजिये ।।

अज़ीज़

३६

जीवित शायर फ़िराक़ साहब फ़रमाते हैं :—

जिनकी तामीर इश्क करता है;
कौन रहता है उन मकानों में?

यहाँ 'कौन' के जवाब में कोई 'भूत', 'प्रेत' 'रोग' या 'मर्ज़' शब्द रख दे तो क्या हो?

मौलाना हाली ने इश्क की असली सूरत और उसके नतीजे को पहचान लिया था। उन्होंने कहा है :—

ऐ इश्क़! तूने अक्सर कौमों को खा के छोड़ा।
जिस घर से सर उठाया उसको बिठा के छोड़ा ।।
अबरार तुझसे तरसाँ अहरार तुझसे लरज़ाँ।
जो ज़द पै तेरी आया उसको गिरा के छोड़ा ।।
दावों के राज़ छीने शाहों के ताज छीने।
गर्दनकशों को अक्सर नीचा दिखा के छोड़ा ।।
क्या मुग़नियों की दौलत क्या ज़ाहिदों का तकवा।
जो गंज तूने ताका उसको लुटा के छोड़ा ।।

× × ×

जितने रस्ते थे तेरे हो गये वीराँ ऐ इश्क!
आके वीरानों में अब घर न बसाना हरगिज़ ।।

उर्दू-शायरी और शराब

मुसलमानी मज़हब में शराब पीना वर्जित है; पर उर्दू शायरों ने उसकी कुछ परवा न की, उल्टे बर्जनेवाले ही की खिल्ली उड़ाई; और दो-चार को

छोड़कर बाकी सबने खूब पी भी; चौराहेपर खड़े होकर ललकार कर पी। कुछ उदाहरण लीजिये :—

१

शाम को जाम पिया सुबह को तोबा कर ली।
रिन्द के रिन्द रहे हाथ से जन्नत न गई॥

अज्ञात

२

तर दामिनी प शेख हमारी न जाइयो।
दामन निचोड़ दें तो फरिस्ते वज़ू करें॥

दर्द

३

रखते हैं कहीं पाँव तो पड़ता है कहीं और।
साक़ी तू ज़रा हाथ तो ले थाम हमारा॥

इंशा

४

बदन शराब-कशी से ख़ुमे-शराब बना।
है अपनी रूह बदन में बरंग बूये-शराब॥

नासिख

५

ज़ाहिद शराब पीने से काफिर बना मैं क्यों।
क्या एक चुल्लू पानी में ईमान बह गया?

जौक़

६

क़र्ज़ की पीते थे मय औ' यह समझते थे कि हाँ।
रंग लायेगी हमारी फ़ाक़ा-मस्ती एक दिन॥

ग़ालिब

७

लुत्फ़े-मै तुझसे क्या कहूँ ज़ाहिद।
हाय! कम्बख़्त तूने पी ही नहीं।।

दाग़

८

ऐ शेख़! जो बतायें मए-इश्क को हराम।
ऐसे के दो लगाये भिगोकर शराब में।।

दाग़

९

पीता नहीं शराब कभी बे वज़ू किये।
कालिब में मेरे रूह किसी पारसा की है।।

अज्ञात

१०

हंगामा क्या बरपा है, थोड़ी सी जो पी ली है।
डाका तो नहीं मारा, चोरी तो नहीं की है।।

अकबर इलाहाबादी

११

पीना हराम है न पिलाना हराम है।
पीने के बाद होश में आना हराम है।।

अज्ञात

१२

अंगूर में धरी थी पानी की चार बूंदें।
जबसे वो खिंच गई हैं, तलवार हो गई हैं।।

अज्ञात

१३

साकिया अक्स पड़ा है जो तेरी आँखों का।
और दो जाम नज़र आते हैं पैमाने में।।

अज्ञात

१४

सच कहा ज़ाहिद य' तूने ज़हर क़ातिल है शराब।
मैं भी कहता था यही जब तक बहार आई न थी।।

अज्ञात

१५

यूँ तो बरसों न पिलाऊँ पिऊँ ऐ ज़ाहिद!
तौबा करते ही बदल जाती है नीयत मेरी।।

दाग़

१६

मुझे उठाने को आया है वाइज़े नादाँ।
जो उठ सके तो? मेरा साग़रे शराब उठा।।

जिगर

१७

'जिगर' यह मएअर्ग़वानी नहीं है।
अरे आग है आग, पानी नहीं है।।

जिगर

१८

साक़ी तू मेरी जाम पर कुछ पढ़ के फूँक दे।
पीता भी जाऊँ और भरी की भरी रहे।।

अज्ञात

१९

जहाँ हम खिश्ते खुम रख दें बिनाए-काबा पड़ती है।
जहाँ साग़र पटक दें चश्म-ए-ज़मज़म निकलता है।।

अज्ञात

२०

मसजिद में बुलाता है हमें नासहे नाफ़हम।
होता अगर कुछ होश तो मैखाने न जाते।।

दाग़

उर्दू-शायरी ला-मज़हब है

उर्दू के शायर मुसलमान होते हुए भी अपने को मजहब की पाबंदी से बरी समझते हैं। उन्होंने मुसलमानी मज़हब का खुले आम मजाक़ उड़ाया है। कुछ मिसालें लीजिये :—

१

हर सुबह उठ बुतों से मुझे राम राम है।
ज़ाहिद तेरी नमाज को मेरा सलाम है।।

हातिम

२

इन बुतों को तो मेरे साथ मुहब्बत होती।
काश बनता में बरहमन ही मुसलमाँ के यवज।।

ताबाँ

३

बुतपरस्ती को तो इसलाम ीं कहते हैं।
मातक़िद कौन है 'मीर' ऐसी मुसलमानी का।।

मीर

४

मेरी मिल्लत है मुहब्बत मेरा मज़हब इश्क है।
ख्वाह हूँ में काफ़िरों में ख्वाह दीदारों में हूँ।।

ज़फ़र

५

कब हक़ परस्त ज़ाहिदे जन्नत परस्त है।
हूरों प' मर रहा है यह शहवत परस्त है।।

जौक़

६

उम्र सारी तो कटी इश्के-बुताँ में मोमिन।
आख़िरी वक्त में क्या खाक मुसलमाँ होंगे।।

मोमिन

७

हमको मालूम है जिन्नत की हक़ीक़त लेकिन।
दिल के खुश रखने को ग़ालिब य' खयाल अच्छा है।।

ग़ालिब

८

जिसमें लाखों बरस की हूरे हैं।
ऐसी जन्नत को क्या करे कोई।।

दाग़

९

मुझमें ऐ ग़ब्रो-मुसलमाँ किसलिए इतना तपाक़।
क़ाबिले मसजिद न हरगिज लायक़े बुतखाना हूँ।।

दाग़

१०

दाग़ को वस्ल की पिछली रात में मसजिद में से अज़ान की अवाज़ आई। वस्ल में व्याघात पहुँचने से, कुढ़कर आपने क्या फरमाया? सुनिये :—

दी मुअज्ज़न ने शबे वस्ल अजाँ पिछली रात।
हाय, कम्बख्त को किस वक्त खुदा याद आया।।

दाग़

११

अज़ाँ हो रही है पिला जल्द साक़ी।
इबादत करूँ आज मख़मूर होकर।।

अज्ञात

१२

है नमाज़ उन ज़ाहिदों की जौफ़े ईमाँ की दलील।
सामने अल्लाह के जाते हैं उठते-बैठते।।

अमीर मीनाई

१३

हिन्दू-कवि भी उर्दू शायरों की नक़ल पर अपने धर्म का उपहास करने लगे थे। चकबस्त कहते हैं :—

मेरे मज़हब में है वायज़ ! तर्के मै-नोशी हराम।
छोड़कर पीता हूँ फिर तोबा इसी का नाम है।।

बादशाह, बेगमें, राजा और महाराजा शायर

शायरों ने उर्दू-शायरी को इतना ऊँचा उठाया कि बादशाहों, नवाबों और उनकी बेग़मों तक की नज़रें उस पर पड़ीं और वह उनके गले का हार बन गई। वे भी शायर बन गये और रात-दिन उसी के साथ रँगरेलियाँ करने लगे।

मिसाल के लिए यहाँ कुछ बादशाहों, नवाबों, बेगमों और राजा-महाराजों के शेर दिये जाते हैं :—

शाह आलम

शाह आलम दिल्ली के बादशाह थे। रातदिन आपस के लड़ाई-झगड़े और सल्तनत छिन जाने के भय से परेशान रहते थे। सन् १७३२ में एक रुहेले ने दीवाने खास में छाती पर चढ़कर आपकी आँखें निकाल ली थीं। आपने सारा जीवन तकलीफ़ ही में काटा। शायरी का शौक आपको भी था। 'आफताब' तख़ल्लुस था। आप फ़रमाते हैं :—

सुबह तो जाम से गुजरती है।
शब दिलाराम से गुजरती है।
आक़बत की खबर खुदा जाने।
अब तो आराम से गुजरती है।

बादशाह ज़फ़र

बहादुरशाह ज़फ़र मुगल-खान्दान के अंतिम बादशाह थे। ६२ वर्ष की उम्र में १८३७ ई० मे गद्दी पर बैठे। इस उम्रतक जवानी के सब हौसले खतम हो चुके थे। शायरी शेष थी। ये भी शायर हुये। 'ज़फ़र' तख़ल्लुस रखते थे। ज़ौक़ के शागिर्द थे। बादशाह होने के पहले ज़ौक़ को चार रुपया

ाहवार तनख्वाह देते थे। बादशाह होने पर पच्चीस देने लगे। आखिरी दनों में सौ कर दिया था।

ज़फ़र के कई दीवान छपे मिलते हैं। कहा जाता है कि इनकी अच्छे ाजलें ज़ौक़ की कही हुई हैं। ज़ौक़ से कहकर ये उनपर अपना नाम चढ़वा ेते थे।

तलवार छोड़कर कलम पर हाथ रक्खा ही था कि तबाही आई। १८५७ ई० में पकड़कर कैद कर लिये गये और रंगून भेज दिये गये। वहीं १८६२ में क़ब्र-वासी हुये। इनके कुछ शेर सुनिये :—

१

न लेता कोई सौदा मोल बाजारे मुहब्बत का ।
मगर कुछ जान अपनी बेंचकर लेते तो हम लेते ।।
लगाया जाम ओंठों से जो उसने मुझको रश्क आया ।
कि बोसा इन लबों का ऐ ज़फ़र ! लेते तो हम लेते ।।

२

मर गया हूँ मैं किसी की हसरते दीदार में ।
क़ब्र तक लाशा हमारा राह तकता जायगा ।।

३

दिलो जाँ दीनो ईमाँ है जो लेना है सनम ले लो ।
करूँगा उज्र देने में न मैं मुझसे कसम लेलो ।।

४

गले में तौक़ बेड़ी पाँव में लड़के लिये पत्थर ।
अजब इक शान से ऐ बुत ! तेरा दीवाना आता है ।।

यह है हिन्दुस्तान के अंतिम बादशाह का कलाम !

५

एक दो साग़र से क्या होता है ? हम तो खुम के खुम ।
उठकर साक़ी के सब ज़ानू-ब-ज़ानू पी गये ।।

६

यूँ है तबीयत अपनी हविस पर लगी हुई।
मकड़ी की जैसे ताक मगस पर लगी हुई।।

७

न दरवेशों का खिरका चाहिये ना ताजे सुलताना।
मुझे तो होश दे इतना रहूँ मैं तुझ पे दीवाना।।

नवाब आसफुद्दौला 'आसफ' (१७७२—१७९६)

नवाब आसफुद्दौला नवाब शुजाउद्दौला के पुत्र थे, जो फैजाबाद में रहते थे। उनके वक्त में फैजाबाद ही अवध की राजधानी था। उनकी मृत्यु के बाद नवाब आसफुद्दौला २७ वर्ष की उम्र में गद्दी पर बैठे, और उन्होंने लखनऊ को राजधानी बनाया।

नवाब आसफुद्दौला गुण-ग्राही, कला-प्रेमी और बड़े दानी प्रसिद्ध थे। कहावत मशहूर है कि :—

जिसे न दे मौला, उसे दे आसफुद्दौला।

नवाब आसफुद्दौला शायर भी थे और 'आसफ' उपनाम रखते थे। शायरों का सत्कार भी बहुत करते थे। संगीत का बेहद शौक था। उन के वक्त में लखनऊ संगीत का एक केन्द्र बन गया था।

'आसफ' की शायरी के कुछ नमूने लीजिये :—

१

जहाँ तेग उसकी अलम देखते हैं।
वहाँ अपना सर हम कलम देखते हैं।।
जो जलवा सनम तुझ में हम देखते हैं।
खुदा की खुदाई में कम देखते हैं।।
गुजरते हैं सौ-सौ खयाल अपने दिल में।
किसी का जो नक्शे क़दम देखते हैं।।

बुतों की गली में शबो रोज़ 'आसफ'।
तमाशा ख़ुदाई का हम देखते हैं।।

२

किस्सये फरहादो मजनूँ रातदिन पढ़ते थे हम।
सो तो वह माज़ी पड़ा, अब अपना अफसाना हुआ।।

३

फरहाद था या मजनूँ फिर अच्छा जमाना था।
अब लुत्फ़ नहीं 'आसफ' कुछ उल्फ़ते खूबाँ में।।

नवाब वज़ीर अली खाँ 'वजीर'

नवाब वज़ीरअली खाँ नवाब आसफुद्दौला के पुत्र थे। १७९७ में पिता के बाद गद्दी पर बैठे। स्वभाव बहुत क्रोधी था। अँग्रेज़ों के विरोधी थे। उन्होने बनारस में रेजीडेंट को मार डाला, और बग़ावत खड़ी कर दी थी; इससे पकड़कर कलकत्ते के फोर्ट विलियम में कैद कर दिये गये थे। वे भी शायरी का शौक रखते थे और 'वजीर' तखल्लुस रखते थे। उनके कुछ शेर ये हैं :—

ज्यूँ सब्जा रुँदे उगते ही पैरों के तले हम।
इस गर्दिशे अफ़लाक से फूले न फले हम।।
हम वह न क़लम थे किसी माली के लगाये।
नरगिस के निहालों में थे आसफ के पले हम।

नवाब सआदत अली खाँ आदि

नवाब सआदत अली खाँ नवाब आसफुद्दौला के सौतेले भाई थे। ये भी नवाब आसफुद्दौला की तरह गुणियों का बड़ा आदर-सत्कार करते थे। नवाब वज़ीर अली के कैद किये जाने पर ये १७९७ ई० में गद्दी पर बैठे थे। इनके दरबार में शायरों का जमघट लगा रहता था। मसहफी और इंशा के झगड़े इन्हीं के वक्त में हुए थे।

नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर भी शायर थे । ये नवाब सआदत अली खाँ के बाद १८१४ ई० में गद्दी पर बैठे थे। इनकी शायरी निहायत नीचे दर्जे की थी।

नवाब नसीरउद्दीन हैदर नवाब ग़ाज़ीउद्दीन के पुत्र थे। १८२७ ई० में गद्दी पर बैठे। ये भी शायर थे। इनके शायरी के नमूने लीजिये:—

'य' किस मस्त के आने की आरज़ू है।
कि साक़ी लिये साग़रे मुश्कबू है।
समाया है जब से तू आँखों में मेरी।
जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।।
गुलिस्ताँ में जाके हरेक गुल को देखा।
न तेरी सी रंगत न तेरी सी बू है।।

नवाब वाजिद अली शाह

नवाब वाजिद अली शाह लखनऊ के आखिरी नवाब थे। १८४७ ई० में बीस वर्ष की उम्र में गद्दी पर बैठे। इनका दरबार रंडियों,भाँडों, भँडुओं मसखरों, गवैयों और शायरों से भरा रहता था। अँग्रेजों नें इन्हें ३१ जनवरी १८५६ को कैद करके कलकत्ते भेज दिया। ये शायरी भी करते थे। अख्तर तखल्लुस था। ४० के करीब इनके दीवान हैं। इनकी शायरी के नमूने देखिये:—

१

कमर धोका,दहन उक़दा,गज़ा आँखें,परी चेहरा।
शिकम हीरा,बदन खुशबू,जबीं दरिया,ज़बाँ ईसा।।
बराये सैर मुझ-सा रिन्द मयख़ाने में गर आये।
गिरे साग़र, लुढे शीशा, हँसे साक़ी, बहे दरिया।।

२

फाख्ता हूँ गुल-सी सूरत का।
सर्वे आजाद हूँ मुहब्बत का।।

३

लखनऊ से जाते-जाते यह आह निकली थी :——

दरो दीवार पै हसरत से नज़र करते हैं।
खुश रहो अहले वतन हम तो सफ़र करते हैं।।

४

नहीं चाहिये कस्र फिरदौस ज़ाहिद।
मुझे है फक़त कूये जाना से मतलब ।।

बेगमें शायरा

शायरी का मर्ज़ बाहर ही तक नहीं रहा, हरम में भी दाखिल हो गया लखनऊ की बेगमें भी शायरी का लुत्फ़ लेने लगी थीं और कुछ ो भी थीं। निश्चय ही जब बादशाह के पास बैठती होंगी तो शेरों का भी लिया जाता होगा।

दो चार के कलाम सुनिये :–

बदरेआलम बेगम

बलाये हिज्र में जब से फँसी हूँ।
मैं अंगारे के ऊपर लोटती हूँ।।

शैदा बेगम——

क्यों हमसे छिपाते हो तुम राज़ की बातें।
हम तुमसे किसी बात का पर्दा नहीं करते।।

हैदरी बेगम——

न पूछ ऐ हमनशीं हमसे शबे फ़ुरकत की बेताबी।
अलम है, दर्दे हसरत है, फ़ना है, आहोज़ारी है।।

दीहम बेगम——

क्या कहूँ कुछ कहा नहीं जाता।
हाय चुप भी रहा नहीं जाता।।

हिजाब बेगम——

महीनों हो गये साहब! कहाँ तक आजमाओगे।
गले लग जाओ, क्या हर रोज़ के झगड़े निकाले हैं।।

हैदराबाद दरबार

हैदराबाद (दक्षिण) के पहले शासक नवाब मीर कमरुद्दीन खाँ बहादुर भी फारसी में शायरी करते थे और 'शाकिर' उपनाम रखते थे।

सर उस्मान अली खाँ, वर्तमान निजाम भी शायर हैं और 'उसमान' तखल्लुस से शायरी करते हैं।

महाराजा चंदूलाल (१७६६–१८४५) हैदराबाद के प्रधान मंत्री थे; वे भी 'शादाँ' उपनाम से शायरी करते थे। इनके जमाने में तीन सौ से अधिक शायर हैदराबाद में टिके हुए थे।

राजा गिरधारी प्रसाद भी हैदराबाद के एक मंत्री थे। शायर थे; 'बाक़ी' उपनाम रखते थे। संस्कृत और फ़ारसी के भी अच्छे विद्वान् थे।

महाराजा सर किशनप्रसाद भी हैदराबाद के प्रधान मंत्री हुए थे। ये 'शाद' उपनाम से शायरी करते थे। ये कई भाषायें जानते थे।

रामपुर दरबार

रामपुर के नवाब यूसुफ अली खाँ को शायरी का शौक था। 'नाजिम' उपनाम था। उर्दू-फारसी दोनों में काफ़ी महारत थी। मोमिन, गालिब, और असीर से इसलाह लेते थे। गुणियों, कलावंतों और दिल्ली और लखनऊ से भागकर आये हुये शायरों के बड़े आश्रयदाता थे।

उनके पुत्र नवाब क़ल्बेअली खाँ १८६५ ई० में गद्दी पर बैठे। वे पिता से भी अधिक शायरी के शौकीन थे। 'नवाब' उपनाम रखते थे। उनके वक्त में उर्दू के बड़े-बड़े शायर, संगीतज्ञ, हकीम, ज्योतिषी और चित्रकार रामपुर की शोभा बढ़ाने लगे थे। 'नवाब' की शायरी चार दीवानों की रौनक़ बढ़ा रही है। वे गद्य के भी अच्छे लेखक थे। गद्य मे उनकी कई पुस्तकें हैं।

हिज हाइनेस नवाब सैयद हामिद अली खाँ भी शायर थे।

अन्य दरबार

टोंक के नवाब इब्राहीम अली खाँ (१८४८-१९०४ ई०) भी शायर थे, और 'खलील' नाम से शायरी करते थे। भूपाल के नवाब सुलतानजहाँ

बेगम की माता नवाब शाहजहाँ बेगम बहुत अच्छी शायरा थीं; और 'शीरीं' उपनाम से कविता करती थीं।

मियाँ चिरकीं

उर्दू के चमन बेनज़ीर में खाद डालने वाले मियाँ चिरकीं का नाम उर्दू के इतिहास में भुलाया नहीं जा सकता। क्योंकि चिरकीं का दीवान भी उर्दू-शायरी का एक अद्भुत परिणाम है। 'अदबी दुनिया में ज़िन्दादिली पैदा करने के लिये' एक साहब ने 'दीवान चिरकीं' छपवाया है। मियाँ चिरकीं ने अपने विषय के अनुकूल ही अपना तख़ल्लुस भी रक्खा था। शायद दुनिया की किसी भाषा में चिरकीं के विषय पर कविता न हुई होगी। लीजिये, मियाँ चिरकीं के दो-चार शेर तो सुन लीजिये। जहाँ आप उर्दू के गुलशन में भीनी-भीनी सुगन्ध की मस्ती का आनन्द उठाते रहे हैं, वहाँ इस खाद का भी तो कुछ मज़ा ले लीजिये—

क़ब्ज की हालत में मियाँ चिरकी ने यह फरमाया था—

१

क्यों अकड़ता है निकलता क्यों नहीं।
क्या मैं हौवा हूँ तुझे खा जाऊँगा॥

२

हमेशा रहते हो बैतुलख़ला में तुम चिरकी।
जहाँ में किसको तुम्हारा मकाँ नहीं मालूम॥

३

शबे फ़ुरकत जो गू उछलेगा चिरकी के तड़पने से।
सितारे फिटकियाँ, मह छोत, घूरा आसमाँ होगा॥

४

उस बुत के आबदस्त का पानी जो हाथ आये।
चिरकीं सिड़ी हों, शेखजी उससे वज़ू करें॥

५

पड़ा होगा किसी घूरे पर चिरकीं।
पता क्या पूछते हो उसके घर का॥

६

किसी ने मियाँ चिरकी से कहा कि—आप वीर रस—की कविता नहीं करते ? इस पर मियाँ चिरकीं ने यह शेर सुनाया .—

सिरोही खींचकर क़ातिल जिधर को जा निकला ।
हगा हगा दिया सबको पदा पदा निकला ।।

जाफ़र जटल

वली के समकालीन जाफ़र जटल नाम के एक शायर और हो गये हैं। उन्होंने ऐसी गंदी शायरी की है कि उसे मुँह से पढ़ना और कान से सुनना तो दूर रहा, क़लम से लिखने में भी शर्म मालूम होती है। अश्लीलता के कारण ही, सुना है, अंग्रेज़ी सरकार ने उसे ज़ब्त करा रक्खा था; फिर भी उर्दू किताबों की दूकानों पर मिल जाता था।

उर्दू शायरी का जितना ताल्लुक लौंडों के साथ इश्क का है, उससे चिरकीं और जटल जैसे शायर पैदा हों तो स्वाभाविक ही है, आश्चर्य की क्या बात है ?

अतिशयोक्तियाँ

उर्दू के शायरों की-सी अतिशयोक्तियाँ हिन्दी के किसी कवि ने नहीं कही हैं। बिहारी ने कुछ मोर्चा लिया है ज़रूर, पर वह अकेले हैं, और यहाँ तो झुंड के झुंड कहनेवाले हैं। उर्दू के शायर उड़ते-उड़ते इतना ऊँचे उड़े हैं कि उन्हें अपने उड़ने की जगह भी दिखाई नहीं पड़ती।

एक शायर फरमाते हैं—

अर्ज़ कीजै जौहरे अन्देशा की गर्मी कहाँ।
कुछ ख़याल आया था वहशत का कि सहरा जल गया ।।

हज़रत इतने जल रहे थे कि ख़याल भी आग हो रहा था। उसमें जंगल की याद आई तो जंगल ही जल गया। मगर ख़ुद जीते-जागते रहे।

इसी तरह का एक शेर नासिख ने भी कहा है—

है वो परकालए आफ़त क़दे मौज़ूँ तेरा।
दीजिये उससे जो तशबीह सनोबर जल जाय ।।

नासिख के माशूक़ का क़द ऐसा आफ़त का परकाला है कि उससे यदि सनोबर की उपमा दी जाय तो उपमा देनेमात्र से वह जल जायगा। पता नहीं, नासिख ने कभी माशूक़ का बोसा लिया था या नहीं।

एक जगह आप और फ़रमाते हैं—

आफ़ताब उसमें अगर आवे तवा बन जावे।
नूर का दख्ल नहीं मेरे सियहख़ाने में ।।

आपके दिल में इतना घना अंधकार रहता था कि यदि वहाँ सूर्य आवे, तो वह तवे की तरह मालूम हो !

विरहावस्था में नासिख दुबले होते-होते अदृश्य हो गये। माशूक़ उन्हें देखने आया। उस समय का ज़िक्र है—

इन्तहाये लाग़री से जब नज़र आया न मैं।
हँस के वो कहने लगे बिस्तर को झाड़ा चाहिये ।।

खटमल और जूं से भी बहुत छोटे हो गये थे।

नासिख ने और भी कहा है—

बंद हो जाती हैं सैयारों की आँखें ख़ौफ़ से।
फेंकता हूँ जब मैं दिल से आहे आतिशबार को।।

आपकी आह के डर से नक्षत्र आँखें मूंद लेते हैं।

मीर कहते हैं—

तारे तो ये नहीं मेरी आहों से रातकी।
सूराख़ पड़ गये हैं तमाम आसमान में ।।

आहें क्या थीं, बन्दूक की गोलियाँ थीं। आसमान रूपी छत में लगीं, तो पार हो गईं।

जुरअत की भी जुरअत देखने योग्य है—

सनम सुनते हैं तेरे भी कमर है।
कहाँ है? किस तरह की है? किधर है?

सनम के कमर थी ही नहीं। जुरअत से किसी ने कह दिया होगा कि है। इसी संदेह की निवृत्ति के लिये जुरअत ने यह प्रश्न किया है।

उस्ताद नसीर की उस्तादी देखिये—

य' मजनूँ है, नहीं आहू है लैला!
पहनकर पोसतीं निकला है घर से॥
जिसे तू सींग समझे है, य' हैं ख़ार।
लगे हैं पाँव में, निकले हैं सर से।

अर्थात् ऐ लेला, यह हिरन नहीं, मजनूँ है। इसके सिर पर जो तुझे सींगें दिखाई पड़ती हैं, वह सींगें नहीं हैं; बल्कि काँटे हैं, जो पैर में चुभे और सिर से निकल आये।

सौदा ने तो और भी ग़ज़ब ढाया है —

समुन्दर कर दिया नाम उसका नाहक़ सबने कह-कहकर।
हुये थे जमा कुछ आँसू मेरी आँखों से बह-बहकर॥

अंदाज़ा लगाइये, कितने आँसू रहे होंगे, जिनका समुन्दर बन गया; फिर भी सौदा कहते हैं कि 'कुछ' आँसू थे। कैसे अच्छे रोनेवाले थे, निर्दयी काल ने सब को खा डाला।

ज़ौक का एक शेर है—

न करता ज़ब्त मैं नाला तो फिर ऐसा धुवाँ होता।
कि नीचे आसमाँ के यक नया और आसमाँ होता॥

हमारी राय में इसका दूसरा चरण ऐसा होता तो ठीक था—

'कि ख़ाली मच्छरो पिस्सू से यह हिन्दोस्ताँ होता॥'

अकबर ने तो कह ही डाला—

रक़ीबे शिफला-ख़ू ठहरे न मेरी आह के आगे ।
उड़ाया मच्छरों को उनके कमरे से धुवाँ होकर ।।

अमीर मीनाई के दिल का हाल सुनिये—

यही सोज़े दिल है तो महशर में जलकर ।
जहन्नुम उगल देगा तुझको निगलकर ।।

लाहौलविलाक़ूवत; ऐसा जलता हुआ दिल है कि जहन्नुम में भी न पच सकेगा । अच्छा हुआ, हज़रत मीनाई पहले ही दुनियाँ से चले गये । कहीं अँग्रेज़ों के हाथ पड़ते तो अबतक उनके दिल की आग से कितनी ही मशीनें और इंजन चलते होते और होटलों में खाना पकता होता ।

ज़रा अकबर की भी अकबरी देख लीजिये—

दिला ! क्योंकर मै उस रुख़सारे रोशन के मुकाबिल हूँ ।
जिसे ख़ुरशीदे महशर देखकर कहता है मैं तिल हूँ ।।

माशूक के गाल इतने चमकदार हैं कि उन्हें देखकर प्रलयकाल का सूर्य कहता है कि मैं तो इस गाल का एक तिल हूँ ।

अब मियाँ नज़ीर अकबराबादी की सूझ देखिए—

मुझ ज़ुल्फ के मारे को न ज़ंजीर पिन्हाओ ।
काफ़ी है मेरी क़ैद को यक मकड़ी का जाला ।।

वाह वा, ज़ुल्फ़ की मार से ऐसे भुरकुस हो गये हैं कि मकड़ी के जाले से भी बाँधे जा सकते हैं ।

बादशाह ज़फ़र ख़ूब बचे—

नातवानी ने बचाई जान मेरी हिज्र में ।
कोने कोने ढूंढ़ती फिरती क़ज़ा थी, मैं न था ।।

हिन्दी के बिहारीलाल ने इसी बात को एक कदम और आगे बढ़कर ऐसा कहा है :—

करी बिरह ऐसी तऊ, गैल न छाँड़ति नीच ।
दीन्हेहू चसमा चखनि, चाहै लखै न मीच ।।

जफर की मौत खुली आँखों आई थी; बिहारीलाल की मौत चश्मा लगाकर आई, फिर भी वे नहीं मिले।

अब ज़रा ग़ालिब की मौज देखिये—

क्या नज़ाकत है कि आरिज़ उनके नीले पड़ गये।
हमने तो बोसा लिया था ख़्वाब में तसवीर का॥

माशूक़ के गाल ऐसे कोमल हैं कि ग़ालिब ने स्वप्न में माशूक के चित्र के गाल को चूमा तो वह नीले पड़ गये। गाल इतने कोमल है कि चुम्बन के आघात ही से नीले पड़ गये और वह चुम्बन भी तसवीर के गाल का। और तसवीर भी स्वप्न में दिखाई पड़ी थी। एक ही शेर में कितना बड़ा इतिहास भर दिया गया है।

गालिब का एक दूसरा शेर—

शब को किसी के ख़्वाब में आया न हो कहीं।
दुखते हैं आज उस बुते नाज़ुक बदन के पाँव॥

नाजुक बदन माशूक के पाँव आज दुख रहे हैं। कहीं वह रात में किसी के स्वप्न में तो नहीं गया था? कैसी कोमलता है, कुछ कहा नहीं जाता।

नासिख कहते हैं कि वे ऐसे दुर्बल हो गये थे कि चींटी के भी मुँह में समा सकते थे।—

लाग़र हैं हम ऐसे कि निगल जाय ज्यूँ चिउँटी।
अटके न हमारा य' तनेज़ार गले में॥

मोमिन कहते हैं कि उन्होंने कहीं पहाड़ों से आँसू पोंछे होंगे, जिससे जा-ब-जा नहरें जारी हो गई थीं :—

जाबजा नहरें हैं जारी, मैंने अश्क,
पोंछे होंगे दामने कुहसार से॥

उर्दू के शायरों ने इस तरह की उड़ानें बहुत उड़ी हैं। पर ऐसे वर्णनों में स्वाभाविकता नहीं रह गई। विरहियों की करुणाजनक स्थिति के वर्णन

से करुणा उत्पन्न होनी चाहिये, न कि हास्य, जैसा उपर्युक्त शेरों के पढ़ने से होता है।

उर्दू शायरी का समाज पर प्रभाव

उर्दू-शायरी का समाज पर प्रभाव कैसा पड़ा? इस पर भी विचार करना आवश्यक है। कविता एक कला है, और कला में मनोरंजन का ही अंश अधिक रहता है; पर कविता एक ऐसी कला है, जिससे केवल मनोरंजन ही नहीं होता, बल्कि चरित्र पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। तुलसीदास की कविता का प्रभाव हिन्दुओं के जीवन पर स्पष्ट लक्षित होता है। इसी प्रकार हिन्दी के शृङ्गारी कवियों के प्रभाव भी कुछ कम नहीं हैं। कविता को लोग मनोरंजन के लिये याद रखते हैं। आवश्यकता पड़ने पर गाते और सुनते-सुनाते भी हैं, और उससे मनोरंजन होता भी है। पर कहने और सुनने वाले के मन पर उसका कुछ न कुछ स्थायी प्रभाव भी पड़ता है।

उर्दू-कविता का भी यही हाल है। उर्दू-कविता के जानने-सुननेवालों के जीवन का अध्ययन कीजिये, तो मालूम होगा कि उनमें अधिकांश ऐसे हैं, जो मद्य-मांस का सेवन करते हैं, इश्क़ का भी नशा रखते हैं; और रात-दिन खून-खच्चर की चर्चा करते रहने से उनका स्वभाव भी क्रोधी और रक्तप्रिय हो जाता है। यदि यह सब कुछ न हुआ तो मनुष्य बेकार, काहिल, अव्यवस्थित और मरीज़े-इश्क़ तो हो ही जाता है। नवयुवकों के लिये यह बहुत ही हानिकारक है। उर्दू-शायरी मनुष्य को मृत्यु की ओर ढकेलती है। वह जीवन में निराशा को जन्म देती है।

ज़रा अब उर्दू-शायरी को मुसलमानी बादशाहत के साथ मिलाकर उसका स्वप्न देखिये। जब भारत में मुगलों का शासन ज़ोरों पर था, तब कविता और गान-विद्या का उद्देश्य केवल मनोरंजन था। बादशाह स्वयं उसमें लिप्त न होते थे। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरङ्गजेब इन चारों में से एक भी ऐसा नहीं था, जिसने कविता को अपनी प्रसिद्धि

का साधन बनाया हो। औरङ्गजेब तो कविता और गाने का शत्रु ही था। पर जब बादशाही का पतन शुरू हुआ, झट शायरी ने दरबार पर कब्जा कर लिया। शाहआलम से लेकर बहादुरशाह ज़फर, वाजिदअली शाह तक के दरबार में हा-हा, हू-हू के सिवा और क्या था?

अकबर इलाहाबादी ने क्या खूब कहा था :—

कसीदे से न चलता है, न यह दोहे से चलता है।
समझ लो खूब कारे सल्तनत लोहे से चलता है॥

इश्क़ की दीमक ने देखते-देखते दिल्ली और लखनऊ के दो शाही खान्दानों की हुकूमतें चाट लीं। देश तबाह हो रहा था; मराठों या अंग्रेजों का शासन चल रहा था, लूट-मार, ठगी और डकैती से प्रजा में कुहराम मचा हुआ था, पर बादशाह और नवाब महल में गुमसुम बैठे तुक भिड़ाया करते थे। जब दरबार के बाहर लूट मची थी, तब बादशाह लुटेरों को बाँधने के बदले काफिया बाँधा करते थे। जब उन्हें यह सोचना चाहिये था कि सल्तनत की क्या हालत है? कौन दुश्मन किधर से आ रहा है? कौन मित्र है? कौन शत्रु है? तब वे दिमागी माशूक या बुत के इश्की खंजर या छूरी की चोट से तड़प रहे थे, या घिघियाकर बोसा माँग रहे थे, या जीते-जी कल्पित कब्र में से पुकार लगा रहे थे।

ज़माने की परेशानी पा शायर खूब रोता है।
ज़माना देखकर हँसता है शायर की परेशानी॥

परेशानी का तो कहना ही क्या है? किसी उर्दू-शायर के दीवान को खोल लीजिये तो मालूम होता है मानो किसी क़साईख़ाने में पहुँच गये हैं। कहीं कटार चल रही है, कहीं तलवार बरस रही है, कहीं भाले और बरछियों ने कुहराम मचा रक्खा है, कहीं बिजली गिर रही है, कहीं माशूक क़साई की तरह आशिकों को ज़बह कर रहा है, आशिक़ तड़प रहे हैं, गला दबा है, ग़ों-ग़ों कर रहे हैं, चिल्ला रहे हैं, गालियाँ दे रहे हैं, क़यामत के दिन का भय दिखा रहे हैं, कोई-कोई माशूक़ की

तलवार के नीचे गर्दन झुकाये क़त्ल होने को खड़े हैं, कोई ख़ून के आँसू रो रहे हैं, चारों ओर मृत्यु का बाज़ार गर्म है। दीवान में शुरू से लेकर आखीर तक इसी प्रकार का वीभत्स दृश्य दिखाई पड़ता है। इस प्रकार के वर्णन से पढ़ने या सुनने वालों के दिल के शान्तिदायी विचारों की जागृति कैसे हो सकती है ?

उर्दू-शायरी निराशावादी है, उसमें सर्वत्र मृत्यु का वर्णन मिलता है। प्रत्येक शायर प्रत्येक आशिक़ मरने के लिये मर रहा है, उसे और अभिलाषा ही नहीं है। उसमें उत्साह नहीं होता और न मरने के सिवा कोई हौसला ही बाकी रहता है।

अश्लीलता की तो हद हो गई है। खुले आम गन्दी बातें कहना, शर्मवाली मिसालें देना यह साधारण-सी बातें हैं।

हिन्दी में भक्त या प्रेमी अपने उपास्य या प्रियतम को बहुत प्रिय और अच्छे शब्दों में याद करता है। विरह में वह भी झुँझलाता है, पर प्रियतम को गालियाँ नहीं देता। कभी-कभी यह ज़रूर कह देता है कि प्रियतम, तुम बड़े निर्मोही हो, कभी सुध भी नहीं लेते। पर उसे हत्यारा, बेईमान, क्रूर, गुस्ताख़, निर्दयी, जल्लाद, काफ़िर वह कभी नहीं कहता। उर्दू में माशूक के लिये यह साधारण-सी बात है। किसी शायर का माशूक क़ातिल, काफ़िर, ज़ालिम, बेवफ़ा, सय्याद और हरजाई होने से नहीं बचा है।

यह ध्यान देने की बात है कि मुसलमानों ने हिन्दुस्तान में पत्थर के बुतों को तोड़कर अपनी हुकूमत कायम की; मगर उन्हीं के घर के चमड़े के बुतों ने उनसे ऐसा बदला लिया कि सदा के लिये उनकी कमर ही तोड़ दी।

अपनी शायरी का ऐसा कुपरिणाम, जैसा मुसलमानों ने भोगा, शायद ही किसी जाति को मिला हो। लेकिन हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि अभी तक उससे पीछा नहीं छूटा है। अब भी सफ़ी, साकिब, रियाज़, जलील, अजीज़, जिगर, फानी, हसरत, सायल, बेखुद, सीमाब, यास, साहिर, शाद, नानक और नूर आदि उर्दू के नामी शायर उसी रंग में रंगे हैं, और मुशायरों में उनकी इश्किया शायरी की अच्छी धाक रहती

है। दो-तीन सौ वर्षों से एक ही प्रकार के भावों को दुहराने-तिहराने में कोई मज़ा तो रहा नहीं : लेकिन यह राज़ न खुला कि इन पिछले शायरों का क्या इरादा है ? क्या यह बेकारी का धंधा तो नहीं है ?

उर्दू शायरी का शायरों के जीवन पर प्रभाव

उर्दू-शायरों का व्यक्तिगत चरित्र बहुत ऊँचे दरजे का था, मध्यमकोटि का भी नहीं था। कुछ के पास तो जागीरें थीं; वे ऐशो-आराम की ज़िन्दगी बिताते थे; शायरी सिर्फ मन-बहलाव के लिये करते थे। बहुतों के पास कुछ नहीं था। वे जीविका के लिये नौकरियाँ करते थे और समाज में प्यार की निगाह से देखे जाने के लिये शायरी करते थे। और कुछ का तो शायरी एक पेशा ही था। वे बादशाहों, नवाबों और राजा-रईसों की दरबारदारी करते फिरते थे और बातें बनाने का धंधा करके किसी तरह जीते रहकर चहकते रहते थे।

वे शराब भी पीते थे और उनमें से अधिकांश एक-न-एक बुत (लौंडा) पर आशिक भी होते थे। जिनके पास बुत नहीं होते थे, वे दिमागी बुतों से काम लेते थे और मजे में रहते थे; क्योंकि हड्डी-चमड़े वाले बुत बड़े खर्चीले होते थे। शायर उनका फर्माइशों से रो-रो देते थे।

उर्दू-शायरी को कोई सिर्फ बुतों के कारनामों का दफ्तर कहे तो कह सकता है। इश्क़ तो बुतों ही के लिये था; इससे हरएक शायर ने बुतों पर शेर कहे और शायर होने का गौरव प्राप्त किया।

उस समय के शायर झूठमूठ के ख़याली माशूक़ या बुत की कल्पना करके उसके चारों ओर भाँवरें घूमते थे। उसी के ख़याल मे मस्त, उसी में ग़र्क रहते थे। न कहीं कोई माशूक़ था, न उसकी आँखों से बिजली गिरती थी, न तीर चलते थे, न सैकड़ों क़त्ल होते थे, न जनाज़े और क़ब्र ही का कहीं ठिकाना था। अलग एकान्त कमरे में बैठकर शायर महाशय एक ख़याली तूफान पैदा करते थे और इश्क़ नाम का एक रोग शेर रूपी नश्तरों से जीते-जागते सुन्दर तन्दुरुस्त आदमी के शरीर में प्रविष्ट कर देते थे। जो कल हट्टा-कट्टा, मुस्तैद, जवाँमर्द, धर्म और जाति का

सेवक और देश में स्वराज्य-स्थापन की कल्पना करने वाला था, वह आज शायरों की बदौलत इश्क़ के रोग में फँसता है। उसकी हिम्मत, उसका कर्तव्य-ज्ञान, उसकी उद्योग-शीलता सब हवा हो जाती है, और वह भी आह-ऊह करके दिन काटने वालों के दल में जा मिलता है, बुत-परस्ती अर्थात् लौंडों के साथ इश्क़ को मुसलमानी धर्म और ईमान से बढ़कर बतलाता है, शराब पीता है, न रोज़े रखता है, और न नमाज़ पढ़ता है।

१८५७ का गदर उर्दू-शायरी पर तूफ़ान की तरह आया। घोंसले उजड़ गये, बुलबुले जान लेकर भाग निकलीं।

दिल्ली को तबाह हालत में छोड़कर शायर लोग लखनऊ पहुँचे। वहाँ भी बुत-परस्ती ने रंग पकड़ा। कितने ही मर्दे-मैदाँ थे, नीमजान हो गये; कितने ही भले-चंगे थे, बिसमिल बनकर तड़पने लगे; कितने ही सुशील और विनयी थे, शब्दों के पीछे मरने-मारने को तैयार हो गये। नवाब के दरबार में दिनरात आशिक-माशूक़ों के मामले फ़ैसल होने लगे। नवाब लोग राज्य-प्रबंध छोड़कर काफ़िया और रदीफ़ सोचने लगे। परिणाम यह हुआ कि लखनऊ की नवाबी भी जाती रही।

लखनऊ के उजड़ जाने पर शायर-गण रामपुर पहुँचे। वहाँ भी कुछ ऐसी ही वैसी हालत रही। कुछ बुलबुलों ने उड़ने की हिम्मत बाँधी तो दूर दराज़ हैदराबाद जा पहुँचे। वहाँ इन की कद्र तो हुई, पर दिल्ली और लखनऊ से दूर होने के कारण वह तबाही से बच गया।

उर्दू शायरी का हिन्दुओं पर प्रभाव

उर्दू-शायरी का हिन्दुओं पर भी ऐसा प्रभाव पड़ा कि शायरों में सम्मान पाने के लिये वे भी चिता को छोड़कर कब्र में जाने लगे और अपने चारों धाम छोड़ कर काबा को सिजदा करने लगे।

नसीम हिन्दू शायर थे। वे कहते हैं :—

बुतों की गली छोड़कर कौन जाये?
यहीं से है काबे को सिजदा हमारा॥

चकबस्त कश्मीरी ब्राह्मण थे। वे भी चिता को भूलकर कब्र को याद करते थे :—

जिसपर अहबाब बहुत रोये, फ़कत इतना था।
घर को वीरान किया, कब्र को आबाद किया॥

हिन्दू शायर तो अपने ईश्वर तक को भूल गये और खुदा और अल्लाह को रटने लगे थे :—

चकबस्त कहते हैं :—

मुझसे रौशन इन दिनों दैरो हरम का नाम है।
पाए बुत पर है जबीं, लबपर खुदा का नाम है॥

इन्हीं का एक शेर और—

पढ़ी नमाज़ तो उजड़े घरों के सहरा में।
अगर नहाये तो अपनें लहू की गंगा में॥

बिस्मिल इलाहाबादी भी हिन्दू शायर हैं, वे फर्माते हैं :—

दैर में पढ़ते हैं पाँचों वक्त की बिस्मिल नमाज़।
ऐसा हिन्दू देखिये, ऐसा मुसलमाँ देखिये॥

मगर कोई मुसलमान शायर मन्दिर में पूजा करने नहीं आया।

आजाद और हाली पर प्रभाव

जिस तरह महात्मा गांधी ने अँग्रेज़ो के चंगुल से हिन्दुस्तानियों को छुटकारा दिलाया, उसी तरह आजाद और हाली ने इश्किया शायरी के जाल से अपने हमराहियों को बाहर निकाला।

इसमें दिलचस्प बात यह है कि यह जाल तोड़ने का सुझाव उनको एक अँग्रेज ने दिया था, जो सरकारी अफसर था।

देखिये, प्रो० आज़ाद उर्दू-शायरी के बारे में क्या कहते हैं :—

"यह इज़हार काबिल अफसोस है कि हमारी शायरी चंद मामूली मतालिब के फंदों में फँस गई है; यानी, मजामीन आशिकाना, मैख्वारिये मस्ताना, गुलो गुलजार, बहारी रंगों-बू का पैदा करना, हिज्र की मुसीबत

का रोना, वस्ले मौहूम पर खुश होना, दुनिया से बेज़ारी, इसी में फ़लक की जफ़ाकारी, और ग़ज़ब यह है कि अगर कोई असली माजरा बयान करना चाहते हैं तो भी ख़याल इस्तआरों में अदा करते हैं। नतीजा इसका यह है कि कुछ नहीं कर सकते।

"उर्दू में जो सरमाया इंशा-परदाजी का है, फ़ारसी की बदौलत है। उर्दूवालों ने भी आसान काम समझकर और अवाम पसन्दी को ग़रज़ ठहराकर हुस्न वो इश्क़ वग़ैरह के मज़ामीन को लिया। और इसमें कुछ शक नहीं कि जो कुछ किया, बहुत खूब किया। लेकिन मज़मून इस क़दर मुस्तेमल हो गये कि सुनते-सुनते कान थक गये हैं। वही मुकर्ररी बातें हैं। कहीं हम लफ़्ज़ों को पशोपेश करते हैं, कहीं अदल बदल करते हैं, और कहे जाते हैं। गोया खाये हुये, बल्कि औरों के चबाये हुये नेवाले हैं, उन्हीं को चबाते हैं और खुश होते हैं। ख़याल करो, इसमें क्या मज़ा रहा ? हुस्न व इश्क़, सुबहान अल्ला, बहुत खूब। लेकिन हूर या परी गले का हार हो जाय, तो अजीरन हो जाती है। हुस्न वो इश्क़ से कहाँ तक जी न घबराये। और अब तो वह भी सौ बरस की बुढ़िया हो गई।"

अब मौलाना हाली की राय सुनिये :—

बुरा शेर कहने की गर कुछ सज़ा है।
अबस झूठ बकना अगर नारवा है॥
तो वह महकमा जिसका काज़ी खुदा है।
मुक़र्रिर जहाँ नेकी बद की जज़ा है॥
गुनहगार वाँ छूट जायेंगे सारे।
जहन्नुम को भर देंगे शायर हमारे॥
ज़माने में जितने क़ुली औ नफ़र हैं।
कमाई से अपनी वो सब बहरेबर हैं॥
गवैये अमीरों के नूरे नज़र हैं।
डफ़ाली भी ले आते कुछ माँगकर हैं॥

मगर इस तपेदिक में जो मुब्तला हैं।
खुदा जाने वो किस मरज़ की दवा है।
जो सक्के न हों जी से जायें गुज़र सब।
हो मैला जहाँ गु हों धोबी अगर सब।।
बने दम प गर शहर छोड़ें नफ़र सब।
जो ठ्र जायँ मेहतर तो गन्दे हों घर सब।।
पै कर जायँ हिजरत जो शायर हमारे।
कहें मिल के "खसकम जहाँ पाक"सारे।।

× × ×

सुखन पर हमें अपने रोना पड़ेगा।
ये दफ्तर किसी दिन डुबोना पड़ेगा।।
हुये तुम न सीधे जवानी में 'हाली'।
मगर अब मेरी जान होना पड़ेगा।।

उर्दू-शायरों की बयान करने की खूबियाँ

उर्दू के शायरों का कहने का ढंग अनोखा होता है। बारीक भावनायें सरल, सरस और थोड़े शब्दों में कह दी जाती हैं, जो सुनते ही अपना प्रभाव पैदा कर देती है। नमूने के तौर पर यहाँ कुछ शेर दिये जाते हैं:—
ग़ालिब कहते हैं —

उनके देखे से जो आ जाती है मुँह पर रौनक़।
वे समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।।

पहले यह ध्यान दीजिये कि भाषा ने भाव के पास पहुँचने में कोई बाधा नहीं डाली; बल्कि पूरी सहायता दी। सब शब्द अपने-अपने स्थान पर बैठे हुये अपनी-अपनी डयूटी बजा रहे हैं।

अब भाव की बहार देखिये। आशिक़ विरह-वेदना से मर रहा है। माशूक़ को देखते ही आशिक़ के चेहरे पर रौनक़ आगई। जिसे देखकर माशूक़ को इस बात का धोखा हुआ कि बीमार की हालत अच्छी है। देखिये, इसमें कवि की कितनी सूक्ष्म-दर्शिता है!

जिगर की ज़िन्दादिली देखिये :—

दरिया की जिंदगी पर सदक़े हज़ार जानें।
मुझको नहीं गवारा साहिल की मौत मरना ।।

साहिल अर्थात् किनारा चुपचाप अपनी जगह पड़ा रहता है; किन्तु दरिया हमेशा बहता रहता है। काहिल आदमी के लिये साहिल की मिसाल कैसी मौज़ूं है। और जिगर की पैनी दृष्टि भी कैसी ग़ज़ब की है।

एक अज्ञात शायर ने क्या खूब रास्ता देखा है :—

रास्ता मुल्के अदम का है बनाया क्या साफ़।
मूँदकर आँख चले जाते हैं जानेवाले ।।

शेर का मज़ा 'मूंदकर आँख' में है।

अकबर कहते हैं :—

इश्क नाज़ुक मिजाज़ है बेहद।
अक्ल का बोझ उठा नहीं सकता ।।

वाह वा! इश्क़ की सुकुमारता का इससे अच्छा वर्णन और क्या होगा? और किसी आशिक़ की बेअक्ल होने की बदनामी से बचाने की दलील भी इससे बेहतर क्या होगी?

आतिश कहते हैं :—

किस्मत में जो लिखा है वो आयेगा आपसे।
फैलाइये न हाथ न दामन पसारिये ।।

हाथ फैलाना और दामन पसारना गुहावरों की छटा देखिये। तुलसी-दास के 'विधि का लिखा को मेटनिहारा' से मिलान कीजिये।

फिराक का एक सुनहला शेर है, जो शेरो में सचमुच चंद्रकिरन है :—

दिल के आइने में इस तरह उतरती है निगाह
जैसे पानी में लचक जाये किरन, क्या कहना!

आहा ! कैसी मुश्किल से उठे और कैसे सहज में गिर पड़े ! बयान की खूबी तो देखिये ।

ग़ालिब का एक शेर और सुनिये :—

देखना तक़रीर की लज़्ज़त कि जो उसने कहा—
मैंने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिल में है ।

यह मुहावरेदार भाषा की एक सुन्दर-सी व्याख्या है ।

आरज़ू का एक शेर है :—

पाई है बाग़े जहाँ में हमने गुल की ज़िन्दगी ।
रंग बनकर आये हैं, बू बनके उड़ जायेंगे हम ।।

मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन की यह कैसी लुभावनी मिसाल है ।

जौक़ फरमाते हैं :—

आदमीयत और शै है, इल्म है कुछ और चीज़ ।
कितना तोते को पढ़ाया पर व' हैवाँ ही रहा ।।

आदमीयत और इल्म का अंतर कितनी बारीकी से और मिसाल के साथ कहा है ।

मीर का कलाम है :—

काबे जाने से नहीं कुछ शेख मुझको इतना शौक़ ।
राह वह बतला कि मैं दिल में किसी के घर करूँ ।।

दिल में घर करना मुहावरे का प्रयोग देखिये ।

अकबर या किसी अज्ञात शायर का कहना है :—

रक़ीकों से रक़ीब अच्छे जो जलकर नाम लेते हैं ।
गुलों से खार बेहतर है जो दामन थाम लेते हैं ।।

जलकर नाम लेना और दामन थाम लेना महावरे पर गौर कीजिये ।

मीर साहब का दूसरा कलाम है :—

बन जो कुछ बन सके जवानी में ।
रात तो थोड़ी है बहुत है स्वाँग ।।

जिगर की ज़िन्दादिली देखिये :—

दरिया की जिंदगी पर सदक़े हज़ार जानें।
मुझको नहीं गवारा साहिल की मौत मरना ।।

साहिल अर्थात् किनारा चुपचाप अपनी जगह पड़ा रहता है; किन्तु दरिया हमेशा बहता रहता है। काहिल आदमी के लिये साहिल की मिसाल कैसी मौज़ूँ है। और जिगर की पैनी दृष्टि भी कैसी ग़ज़ब की है।

एक अज्ञात शायर ने क्या खूब रास्ता देखा है :—

रास्ता मुल्के अदम का है बनाया क्या साफ़।
मूँदकर आँख चले जाते हैं जानेवाले ।।

शेर का मज़ा 'मूंदकर आँख' में है।

अकबर कहते हैं :—

इश्क नाज़ुक मिजाज़ है बेहद।
अक्ल का बोझ उठा नहीं सकता ।।

वाह वा ! इश्क़ की सुकुमारता का इससे अच्छा वर्णन और क्या होगा ? और किसी आशिक़ की बेअक्ल होने की बदनामी से बचाने की दलील भी इससे बेहतर क्या होगी ?

आतिश कहते हैं :—

किस्मत में जो लिखा है वो आयेगा आपसे।
फैलाइये न हाथ न दामन पसारिये ।।

हाथ फैलाना और दामन पसारना गुहावरों की छटा देखिये। तुलसी-दास के 'विधि का लिखा को मेटनिहारा' से मिलान कीजिये।

फिराक का एक सुनहला शेर है, जो शेरो में सचमुच चंद्रकिरन है :—

दिल के आइने में इस तरह उतरती है निगाह
जैसे पानी में लचक जाये किरन, क्या कहना !

पानी में किरन का लचकना एक वैज्ञानिक तथ्य है। अभी तक किसी कवि या शायर की दृष्टि यहाँ तक नहीं पहुँची थी। फिराक साहब का गुलशन के बाहर यह पहला कदम है और स्वागत के योग्य है।

भाषा के सुथरेपन और बयान की खूबियों की मिसालें अधिक देखना हो तो इसी पुस्तक में अन्य शायरों के, मुख्यतः अकबर इलाहाबादी के शेरों का मुलाहज़ा कीजिये।

नज़ीर, अनीस और दबीर

हाली से पहले उर्दू-साहित्य के लगभग तीन सौ वर्षों के लम्बे समय में जहाँ करीब-करीब कुल शायर इश्क़ के नशे में सिर झुकाये हुये बैठे दिखाई पड़ते हैं, वहाँ नज़ीर, अनीस और दबीर ही ऐसे शायर हैं, जो चेतन अवस्था में सिर ऊँचा किये खड़े दिखाई पड़ रहे हैं।

उर्दू में नज़ीर ही एकमात्र भारतीय कवि हैं। अरबी-फ़ारसी के अच्छे विद्वान् होते हुये भी उन्होंने जवानी में फ़ारसी से कुछ लिया था जरूर; पर उम्र ढलते ही वे विशुद्ध भारतीय बन गये थे। उन्होंने कविता के छन्द ही नहीं, विषय भी वही चुने, जो उनके चारोंओर विद्यमान थे। भाषा भी उनकी साफ-सुथरी और वही थी, जिसे साधारण हिन्दी जाननेवाला भी समझकर उसका आनन्द ले सकता था। वे जनता के कवि थे और मुसलमान होते हुये भी हिन्दू-देवताओं और त्योहारों पर कविता करते थे। कहीं तो वे संसार की क्षणभंगुरता की याद दिलाकर घमंडियों को विनयी और धर्मशील बनने का उपदेश देते हुये मिलते हैं; कहीं गरीबों को ईश्वर की दयालुता की याद दिलाकर सांत्वना देते हुये। भारतीय ऋतुएँ., पशु-पक्षियों, खेल-खिलौनों सभी जाने-पहचाने विषयों पर तो उनकी ललित रचनायें मिलती हैं। नज़ीर सूफ़ी धर्म के थे और हिन्दुओं में घुल-मिल गये थे।

अनीस और दबीर ने तो उर्दू-साहित्य में एक नई ही रोशनी भर दी। उन्होंने मरसिये लिखे और ऐसी भाषा में लिखे जिसे सर्वसाधारण

आसानी से समझ सकते थे। करुण और वीररस के वर्णनों से उन्होंने उर्दू शायरी की शिथिलता और निराशावादिता को निकाल दिया। उनकी रचना में अतिशयोक्तियों का भी अभाव है। वे दोनों बहुत अनूठे और ऊँचे दरजे के शायर थे।

हाली और अकबर

नजीर, अनीस और दबीर के बाद हाली और अकबर ही दो शायर ऐसे हुये जिन्होंने शायरी में नई मोड़ ली। हाली ने तो आशिकाना शायरी के विरुद्ध जोरदार आवाज़ उठाई और स्वयं भी नमूना बनकर दिखा दिया।

अकबर तो एक निराले ही शायर थे। उन्होंने व्यंग्यात्मक शायरी का एक नया ही रास्ता निकाला और उसकी मंज़िल भी वे ही खत्म कर गये।

हाली और अकबर ने इश्किया शायरों को झकझोर कर जगा दिया।

एक आह!

उर्दू-शायरी और उसके नतीजे पर गौर करने से कलेजे में से एक आह-सी निकल जाती है। नासिख, आतिश, मोमिन, ज़ौक, ग़ालिब आदि साहित्य के अच्छे-अच्छे विद्वान्, शिष्टता के आदर्श, मधुरभाषी और अच्छी रहन-सहन के लोग थे। वे अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे अंतरिक्ष से भी ऊपर जाकर मानस-जगत के रहस्य का पता लेते थे और पाताल में प्रवेश करके मनुष्य के हृदय की गहराई नापते थे; जिनके पीछे सैकड़ों शागिर्द चलते थे; जो बड़े व्यवहार-कुशल थे; घोड़े की सवारी के शौकीन थे; शिकार खेलने का फ़न भी जानते थे; दिल-बहलाव के अच्छे-बुरे सभी तरीकों से वाक़िफ थे; उनका कैसा अयाचित अंत हुआ! ऐसा जान पड़ता है कि एक गुलशन की चहार दीवारी के अंदर वे कैद कर दिये गये थे; या शाहों, बादशाहों, राजा-रईसों, अमीर-उमरावों से सम्मान पाने की लालसा से वे खुद कैद हो गये थे। गुलशन के बाहर वे निकलना चाहते थे; पर छट-

पटाकर रह जाते थे; मान और प्रतिष्ठा उन्हें फिर उसीमें ढकेल देती थी। गुलशन में बुलबुल ही उनका एक साथी था, जिसके मुँह से वे अपना हाहाकार निकालते थे। अपना घर उजाड़कर ही वे गुलशन में फँसे थे, इससे बुलबुल का घोंसला भी उजड़ जाय तो उनको आत्म-संतोष-सा होता था। गुलशन में एक अथाह कुंड था, जिसमें इश्क़ का मीठा, किन्तु ज़हरीला शरबत लबालब भरा हुआ था। उसमें वे कोमल-हृदय और विकसित मस्तिष्कवाले पुरुष, जो बाहर रहते तो मनुष्य समाज के भूषण कहलाते, कूद पड़ते थे। वे उसी में डुबकियाँ लेते, डूबते-उतराते, उसीमें कुल्लियाँ करते; इश्क़ की मिठास और उसके जहरीलेपन से जो निस्तेज होते रहते, उसे पुकार-पुकार कर कहते भी; पर उसके जहरीलेपन के असर से वे निस्तेज हो चुके थे; कुंड में तैरना और डुबकियां लेना एक नशा हो गया था; वे उसकी हानियों से परिचित होने पर भी उसे छोड़ नहीं सकते थे।

वे स्वयं भी अपनी बेबसी कहकर सुनाते, और रोकते भी कि इसमें मत पड़ो, लेकिन सैकड़ों-हज़ारों अच्छे दिमाग़वाले नौजवानों को उसी में आ कूदने के तरीक़े भी बताते, उन्हें उत्साहित करते और उन्हें साथ लेकर डूबते-उतराते। उस कुंड से कभी बाहर निकलते, तो अपने भाग्य को कोसते, हाय-हाय करते; प्रत्येक क्षण जीवन के दिये का तेल कम होने की याद करते, पछताते; पर अमल लगते ही फिर उसी कुंड में जा कूदते।

उनकी न कोई क़ौमियत थी, न उनका कोई मज़हब था। किसी ख़याली बुत की तसवीर सामने रखकर उसीसे लड़ते-झगड़ते, उसीको भला-बुरा कहते और उसीको ख़याली प्यार भी करते। कुछ तो इश्क़ के नशे के साथ शराब का नशा भी लेते; और कुछ तो शराब छूते भी न थे; जैसे दाग़; किन्तु शराब की बड़ी तारीफ़ करते। कुछ ईश्वर के बड़े उपासक थे; पर बुतों के पीछे वे भी पड़े रहते थे।

वे बड़े ही कला-कुशल थे। अपनी जबान को माँज-माँजकर उन्होंने चमका दिया था। वे बोलते थे, तो मानों मुँह से मोती झड़ते थे। पर वे अपनी चमकीली जबान से बुतों ही के सँवारने-सजाने का काम लेते

रहते। गुलशन की चहारदीवारी के अंदर रहते-रहते वे भूल गये थे कि इसके बाहर भी कोई दुनिया है और उसमें बहुत-सी चमत्कार की बातें मौजूद हैं।

यह सिलसिला वली (१६६८–ई०—१७४४ई०) से लेकर दाग़ (१८३१ई०–१९०५ई०) तक लगातार लगभग दो सौ वर्षों तक उत्तरोत्तर तेज़ी से कायम रहा। यह याद करके दिल मे दर्द होता है कि हमारे देश के कितने ही सूक्ष्मदर्शी दिमाग़वाले महान् व्यक्ति, जो बुद्धि के दीप-स्तंभ-जैसे थे, इश्क के जहरीले शरबत के असर से उसी में ग़र्क़ हो गये और अपनी योग्यता की शोकपूर्ण यादगार हमें सौंप गये। वे सीधे-सादे लोग जो न दूसरों को दुःख पहुचाते थे, न किसी का धंधा छीनते थे; पैसा पास होने पर वे राजा-महाराजा, नवाब और उमराव से भी ज्यादा ठाट-बाट से रहना जानते थे, और रहते भी थे। गरीबी में पड़ने पर वे फक़ीरों से अधिक मस्त हो जाते थे। वे आनबान के आदमी थे। कमर चाहे झुक जाये, पर सिर उनका नहीं झुका। वे उर्दू के शायर थे। हमने खुद वाहवाह करके उन्हें भाँग पर मिठाई खिलाई और जीवनभर उन्हे जागने न दिया। वे गुलशन ही में पड़े रहे, और वहीं से चले गये। अपराधी कौन है?

उर्दू-शायरी कोरी वाग्मिता रह गई

पिछले प्रकरणों को पढ़ने के बाद अब तो यह संदेह रह ही नहीं जाता कि उर्दू-शायरी पूरी-की पूरी फ़ारसी की नक़ल है और निराशावादी है। अब विचारणीय विषय यह है कि शुरू से लेकर अबतक की उर्दू की आशिकाना शायरी में विषय, शब्द और मुहावरे वही चले आ रहे है। हरएक शायर वही बातें महावरे बदलकर, थोड़े-से हेरफेर के साथ कह रहा है। कोई नया विषय नहीं लेता, कोई नयापन नहीं दिखलाता, कोई नया रूपक नहीं बाँधता, कोई नई उपमा नहीं देता और न शैली बदलता है। हरएक विषय में चाहे वह बिलकुल नया हो, वह पुराने शायरों का मुहताज बना रहता है। दूसरे शायर की बातें लेकर काँट-छाँटकर वह एक नई बात बनाकर कह

देता है। जो बातें बनाना अच्छा जानता है, वह बड़ा शायर माना जाता है। मतलब यह कि उर्दू शायरी अब केवल वाग्मिता (लफ्फाज़ी) मात्र रह गई है। जीवन के लिये कुछ सन्देश उसमें नहीं हैं।

प्रोफेसर आज़ाद ने ऐसे शायरों की खूब चुटकी ली है। वे कहते हैं :—

इस तरह शब में शायरे रोशन दिमाग़ है।
बैठा अँधेरे घर में जलाये चिराग़ है॥
डूबा है अपने सर को गरेबाँ में डालके।
उड़ता है मगर खोले हुये पर ख़याल के॥
लाता फ़लक से है कभी तारे उतार कर।
जाता ज़मी के तह में है फिर ग़ोता मारकर॥
पढ़ता है ज़र्रा ज़र्रा पै अफ़सूँ नये नये।
हो जाते हैं वही दुरे मजमूँ नये नये॥
मजमून ताज़ा गर कोई इस आन मिल गया।
यों खुश है जैसे नक़्शे सुलेमान मिल गया।
इस तरह शब के परदे में शायर जो चोर है।
फिरता टटोलता हुआ मानिंद कोर है॥
मतलब उड़ाता शेर से मजमूँ गज़ल के हैं।
लाता फिर ऐसे ढब से लिफ़ाफ़ा बदल के है॥
तारीफ़ें उसकी करते हैं जो शेर सुनते हैं।
मजमूँ लिया है जिनका वह सिर बैठे धुनते हैं॥

युग-परिवर्त्तन

आजाद और हाली को विदेशीपन खटका और उन्होंने उर्दू शायरी म युग-परिवर्तन कर दिया है। उसकी धारा ही पलट दी। उन्होंने शायरी का वह नमूना हमारे सामने रक्खा, जिसमें न गुलशन के तमाशे हैं, न बुलबुल की फरियाद, न बुतों की शरारतें, न कत्लेआम, और न क़ब्र और कफन के अन्दर से शायरों की पुकार और ललकार। उन्होंने वही कहा, जो अधिक

स्वाभाविक और सत्य है। और जिसमे हमारे वास्तविक जीवन की झलक है। कहने का उनका तर्ज भी शायराना था। उसकी वृद्धि में कोई बाधा न पड़ी।

पहले तो लोगों ने उसे कम पसंद किया; क्योंकि लोगों में वायज़, जाहिद, नासेह, शेख और बरहमन की खिल्लियाँ सुनने की आदत पड़ चुकी थी; और आज़ाद और हाली उन्हीं की सूरत में आ खड़े हुये थे; पर सत्य का सूरज तो उगही आया। पुराने शायरों को अपनी गलतियाँ तो सूझ ही गई थीं; पर वे अपनी आदतों से मजबूर थे। जानते हुये भी दलदल से निकल नहीं सके। कुछ आशिक मिज़ाज शायर झुँझला भी उठे। वे हाली का मज़ाक उड़ाने लगे :—

सैयद की सरगुज़िश्त को हाली से पूछिये।
गाजी मियाँ का हाल डफाली से पूछिये।।

डफाली ही ज़ोरदार रहा; शहनाई वाले खिसक गये।

युग-परिवर्तन में अकबर इलाहबादी का निराला हाथ था। चुटकियाँ ले-लेकर और मज़ाक उड़ा-उड़ाकर उन्होंने शायरों को पुराना चोग़ा उतार देने के लिये मजबूर-सा कर दिया।

अकबर ने नये भाव ही नहीं निकाले, भाषा भी उन्होंने ऐसी महावरेदार लिखी और उसमें प्रचलित अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत शब्दों को भी जगह दी, जिससे उसका दायरा बहुत बड़ा हो गया; और अरबी फारसी के मुश्किल शब्दों से सिकुड़ी हुई उर्दू फैलकर चलने लगी। अब इश्क की कैद से भाग निकलने की उत्सुकता कैसे बढ़ गई है इसका दृश्य उर्दू के मशहूर शायर अख्तर शेरानी की एक नज्म 'ऐ इश्क कहीं ले चल' में देखिये :—

ऐ इश्क! कहीं ले चल इस पाप की बस्ती से।
नफ़रतगहे आलम से, लानतगहे हस्ती से"
इन नफ्स परस्तों से, इस नफ्स-परस्ती से,
दूर और कहीं ले चल, ऐ इश्क! कहीं ले चल।

हम प्रेम पुजारी हैं, तू प्रेम-कन्हैया है।
तू प्रेम-कन्हैया है, यह प्रेम की नैया है।
यह प्रेम की नेया है, तू इसका खेवैया है,
कुछ फ़िक्र नही ले चल, ऐ इश्क ! कहीं ले चल।

संसार के उस पार इक इस तरह की बस्ती हो।
जो सदियों से इंसाँ की सूरत को तरसती हो।
औ जिसके मनाज़र पर तनहाई बरसती हो,
यूँ हो तो वहाँ ले चल, ऐ इश्क ! कहीं ले चल।

इसमें हिन्दी के शब्द ही नहीं, हिन्दी के भाव भी झलक रहें हैं।

आज़ाद और हाली के आन्दोलन का यह असर हुआ कि शायरों का झुकाव हिन्दी-शब्दों को अपनी रचनाओं में लेकर भाषा को अधिक सरल करके और भारतीय विषयों को उसमें समाविष्ट करके उसे बहुजन-प्रिय बनाने की ओर हुआ।

हिन्दी-शब्दों को अंदर आने का रास्ता अकबर ने तो काफ़ी चौड़ा कर ही दिया था; उनके विषय भी प्रायः सब भारतीय ही और सम-सामयिक थे। इक़बाल ने भी थोड़ा बहुत स्थान दिया। जैसे :—

'इक़बाल' बड़ा उपदेशक है, मन बातों में मोह लेता है।
गुफ्तार का यह ग़ाज़ी तो बना, किरदार का ग़ाज़ी बन न सका।

पर उन्होंने इस पर ध्यान नहीं दिया कि उपदेशक और ग़ाज़ी की अन्तरात्मा एक नहीं है। इकबाल की भाषा तो उर्दू के पुराने मशहूर शायरों से भी दुरूह है और भाव ग़ालिब के समकक्ष है। उसमें हिन्दी के दो-चार शब्दों का आ जाना ही ग़नीमत है।

चकबस्त की भाषा भी पुराने उर्दू-शायरों ही की भाषा है; पर विषय भारतीय है। उन्होंने एक-एक विषय पर लंबी-लंबी रचनायें की हैं और प्रत्येक पंक्ति से उसी विषय का समर्थन किया है; ऐसा नहीं कि ग़ज़ल की तरह एक शेर में आसमान की शिकायत है तो दूसरे शेर में बुलबुल की

फरियाद। एक विषय को सर्वांगपूर्ण कर देना हिन्दी की पद्धति है, जिसका उर्दू शायरी में प्रायः अभाव था। केवल मसनवियों में विषय की सीमा निर्धारित होती है। चकबस्त ने नज्में लिखकर हाली के रास्ते को और प्रशस्त कर दिया।

चकबस्त के बाद जोश मलीहाबादी, हफ़ीज़ जालंधरी, सीमाब, सागर निज़ामी, साहिर, साकिब, अख्तर शीरानी, जज्बी, फानी आदि अच्छे-अच्छे नज्म-गो शायर पैदा हुये। जिन्होंने बहरें तो ज्यादातर फ़ारसी ही की रक्खीं; पर विषय भारतीय ही चुने। हिन्दी के शब्द भी कुछ खींच-खाँच कर वे ले रहे है। एक उदाहरण लीजिये :—

कीजै न 'जमील' उर्दू का सिंगार अब ईरानी तलमीहों से।
पहनेगी विदेशी गहने क्यों यह बेटी भारत-माता की ।।

पर हिन्दी के छंद यदि उन्हें जूठे लगे और न पसंद आये तो गाँवों में प्रचलित राग तो ले ही सकते थे। संभव है, गाँव के रागों में उन्हें भाव कुल अपने पास से भरने पड़ते और उर्दू का पचा-पचाया माल उनको मुफ्त न मिलता, इससे उनकी उपेक्षा की हो।

पहले नज्में उर्दू में कम लिखी गईं थीं, ग़ज़लों ही में शायर की परीक्षा होती थी; इससे उर्दू-साहित्य सूना-सूना-सा लगता था। नये शायर उस कमी को भी पूरा करने में जुट गये है।

एक बड़ी कमी इन शायरों में खटकनेवाली अभी यह है कि ये हिन्दी और संस्कृत नहीं जानते, जिससे शब्दों के प्रयोग में इन्हें धोखा हो जाता है। जैसे, इक़बाल की एक मशहूर ग़ज़ल लीजिये, जिसकी शुरुआत इस शेर से हुई है :—

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलसिताँ हमारा।।

पहली पंक्ति तो सिद्धान्त-वाक्य-सा लाजवाब ही है; दूसरी पंक्ति पर गौर कीजिये, उसमें हमको बुलबुल बनाया गया है। बुलबुल बनने में

हमारा क्या गौरव बढ़ता है? वह एक छोटा-सा पक्षी; न रोना जानता, है, न गाना; न उसकी आवाज़ ही प्यारी लगती है; और न उसकी सूरत-शक्ल ही लुभावनी या सुहावनी है; वह केवल फ़ारसी के शायरों का प्यारा है, यहाँ के कवियों का नहीं; अतएव बुलबुल कहलाने में हमें एक छोटापन-सा अनुभव होने लगता है। हिन्दी और संस्कृत कवियों के प्यारे पक्षी कोयल, हंस, पपीहा, तोता, मैना और मोर है। इन्हीं में से किसी को चुन लेना चाहिये था।

इक़बाल की यह ग़ज़ल बड़ी ही ज़ोरदार है, उसके भाव बड़े ऊँचे और भारतीयों में उत्साह और ऐक्य भाव उत्पन्न करने वाले है; पर उसके दरवाजे ही पर खड़ी हुई बुलबुल उसके अन्दर जाने वालों में पस्त हिम्मती या जिसे अंग्रेज़ी में 'इन्फीरियारिटी कम्प्लेक्स' कहते हैं, पैदा कर देती है।

इक़बाल के बाद के नये शायरों ने जो नज़्में लिखी है, उनमें वे ज्यादा खुलकर खेले है। उन्होंने भारतीय विषय भी लिये और उनको सरल भाषा में व्यक्त करने का प्रयत्न भी किया है। उनके इस प्रयत्न का हम स्वागत करते हैं। यद्यपि अभीतक वे प्राचीन और नवीन के संधि स्थान पर खड़े हैं, पर झुकाव उनका नवीन ही की तरफ़ अधिक है; और यह समय का प्रभाव है। उन्होंने समय को पहचान लिया, यह उनकी बड़ी विशेषता है।

अभी भाषा में एक कमी और है। उर्दू में जैसे दीर्घ वर्ण को ह्रस्व करके और ह्रस्व वर्ण को आगे के स्वर-वर्ण से मिलाकर पढ़ लेने की छूट है, वैसी छूट हिन्दी में नही है। हिन्दी में तो हर एक अक्षर जैसा लिखा जाता है, वैसा ही पढ़ा जाता है। जैसे——

पूरब से जागा है सबेरा। दूर हुआ दुनिया का अँधेरा।
लेकिन घर तारीक है मेरा। इत्यादि

इसमें 'है, 'का' और फिर 'है' लिखे गये तो है दीर्घ; पर पढ़े जायँगे ह्रस्व। हिन्दी में यह नहीं चल सकता।

और अभी तो उर्दू की नई कलम के शायर वास्तविक शायरी से बहुत दूर भी हैं। वे हिन्दी के सरल शब्दों में फिल्मी गाने लिख रहे हैं, जिन्ह कविता या शायरी नहीं कह सकते। थोड़े शब्दों में ज़्यादा भावों को बाँध देने की जो ख़ूबी उर्दू में ह, उसके बिना फिल्मी गाने कागज़ के फूल जैसे लगते हैं, जिनमें सुगन्ध नहीं। मुसलमान होकर शायर लोग हिन्दू-देवी-देवताओं, राधा-कृष्ण-यशोदा और सीता और राम का नाम कड़ियों में पिरोने लगे हैं, यह एक आकर्षण है ज़रूर, पर कविता में यह साधारण दर्जे का है।

दक्खिनी हिन्दी को दिल्ली और लखनऊ की चुस्त और दुरुस्त उर्दू बनाने में, उसे सजाने-सँवारने में, उसमें गहरे और ऊँचे भावों को उठाने में और मुशायरों-द्वारा उसे व्यापक बनाने में उर्दू-शायरों ने जो प्रवीणता दिखलाई है, उससे आशा होती है कि वे शीघ्र ही सारी कमियाँ दूर कर लेगें और हिन्दी में भी उर्दू की शोख़ी और चुलबुलापन भर के उसकी भी कमी दूर कर देगें। हम उनका स्वागत करते हैं।

उर्दू की नयी क़लम के शायरों की रचनाओं के उदाहरण 'उर्दू-शायरी में नई कलम' शीर्षक में देखिये।

उर्दू के नये शायर अब सरल से सरल बोलचाल की हिन्दी-भाषा में प्रशंसनीय शायरी करने लगे हैं। इसका एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है :—

१

कोई नहीं है ग़ैर
कोई नहीं है गैर। बाबा! कोई नहीं है ग़ैर।

हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, देख सभी हैं भाई-भाई,
भारत माता सब की माता गंगा देवी सब की माई।
मत रख मन में बैर। बाबा! कोई नहीं है गैर॥

भारत के सब रहनेवाले , कैसे गोरे, कैसे काले ,
छूत-अछूत के झगड़े पाले, पड़ गये जिससे जान के लाले ।
काहे का यह बैर ? बाबा ! कोई नहीं है ग़ैर ।।

राम समझ, रहमान समझ ले, धर्म समझ, ईमान समझ ले ।
मस्जिद कैसी, मंदिर कैसा ईश्वर का अस्थान समझ ले ।
कर दोनों की सैर । बाबा ! कोई नहीं है ग़ैर ।।

सोचेगा किस मन में बाबा ! क्यों बैठा है बन में बाबा ।
खाक मँजी क्यों तन में बाबा ! ढूँढ ले उसको मन में बाबा !
माँग सभी की खैर । बाबा ! कोई नहीं है ग़ैर ।।

धन-दौलत में मन अटकाया, काहे 'बासित' जी ललचाया
सबसे निराली तेरी माया, करता है क्यों अपना पराया !
नाहक का यह बैर । बाबा ! कोई नहीं है ग़ैर ।।

बासित बिस्वानी

२

कूक, पपीहे कूक
बादल गरजे रात अंधेरी,
सूनी-सूनी दुनिया मेरी,
जीना मेरा हो गया दूभर
आँख लगे ना मूक ।
पपीहे ! कूक,पपीहे कूक ।

तू बनवासी खूलकर रोये,
मेरा रोना मुझे डुबोये,
तेरी तरह से नेह लगाया,
चूक गई मैं चूक ।
पपीहे ! कुक, पपीहे कूक ।

मैं भी अकेली, तू भी अकेला,
मोह का सागर दुख का रेला
तेरे गले में 'पी' का फन्दा,
मेरे मन में हूक।
पपीहे ! कूक, पपीहे कूक।

वक़ार अम्बालवी

इस तरह यदि हिन्दी-वाले उर्दू के सब शब्दों को अपनाकर अपना भांडार भर लें, तो उर्दू अलग रह नहीं सकती। दोनों आप से आप एक हो जायँगी और हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य की एक बड़ी जड़ कट जायगी। ईश्वर करे, ऐसा ही हो।

उर्दू से क्या लेना चाहिये ?

उर्दू के शायरों और हिन्दी के कवियों की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उर्दू के शायरों ने अपनी भाषा के शुद्ध करने, खरादने, माँजने, चमकाने और हिन्दी से अलग कर लेने में जितना परिश्रम और जितनी लगन से काम किया है, उनके मुक़ाबले में उस तरह की प्रवृत्ति तत्कालीन हिन्दी-कवियों ने बिलकुल नहीं दिखलाई। और न अब दिखला रहे हैं। उनको अपनी हिन्दी के साँचे का गर्व होता तो वे उर्दू की शायरी को भी हिन्दी-कविता का एक अंग मानते और जौक़, ग़ालिब, नज़ीर, नसीम, असग़र, अकबर, चकबस्त आदि को अपना ही कवि समझते। ऐसा करके वे उर्दू के शायरों का रुख़ भी बदल सकते थे। ऐसा करने से हिन्दी की संपत्ति भी बढ़ती और हिन्दी के कवियों को उर्दू-शायरी से बहुत कुछ मिलता भी।

यहाँ हम कुछ विशेष विषयों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करेंगे:—

१—वली की दक्खिनी हिन्दी का संशोधन आबरू, हातिम, नाजी, मजमून और मज़हर जानजानाँ ने शुरू किया। इन्होंने बहुत से भद्दे और अनगढ़ दक्खिनी शब्दों को निकालकर उनकी जगह फारसी के मधुर और कोमल शब्द भरे। नासिख, मीर और सौदा ने भी भाषा के संशोधन में बड़ा काम

किया। मोमिन और ग़ालिब ने तो फारसी के शब्द और महावरे इतने भरे कि उनकी शायरी ही दुरूह हो गई।

अपनी भाषा के सुधार के लिए हिन्दी के किस कवि ने क्या प्रयत्न किया?

२—उर्दू के कवि महावरों ही में बातें कहते है। महावरों को लेकर उर्दू-शायरों में काफ़ी बहस पीढ़ियों तक चलती रही; झगड़े हुए, किताबें लिखीं गई; खोज-खोजकर महावरे जमा किये गये; वे प्रयोग में लाये गये; और उर्दू शायरी की भाषा महावरों से जगमगा उठी।

हिन्दी-कवियों ने महावरे छोड़ ही दिये। वे केवल बेमेल शब्दों को इकट्ठा करके गद्य को पद्य में कर देते है; जिसमे से रस नहीं चूता।

३—बीजापुर और गोलकुंडा के बादशाहों से लेकर इक़बाल तक, सोलहवीं सदी से लेकर बीसवीं सदी तक, जितने मशहूर शायर हुये, करीब-करीब सबने मसनवियाँ (प्रेम-कथायें) लिखीं, जिनकी संख्या सौ से अधिक है। वे ज्यादातर चाहे शृंगार रस ही की थीं; पर बिखरे हुए विचारों को एकत्र करके एक रोचक परिणाम दिखाने की कवि-प्रतिभा तो उनमें प्रकट ही होती है।

हिन्दी के किसी कवि ने प्रेम-कथा नही लिखी। पुरानी हिन्दी के मुसलमान कवियों ने अलबत्ता लिखीं; जैसे जायसी, उसमान, कुतुबन शेख़, इंशा, कासिमशाह, नूर मुहम्मद, फाजिलशाह और मंझन ने। हिन्दी के कवि उर्दू के शायरों की नक़ल न करते तो रवीन्द्रनाथ की तो कर ही सकते थे।

४—मरसिया या शोक-गीत भी फारसी से आया। इसमें करबला नामक स्थान में मुसलमानों के हज़रत इमाम हसन और हुसेन तथा उनके साथियों के धर्मार्थ बलिदान की गाथा है, जो मुहर्रम में ताजिये के साथ गाया जाता है। पहले इसमें १५-२० ही पद्य होते थे, और केवल शोक-संवेदना ही उसमें व्यक्त की जाती थी। उर्दू के शायरों ने इसको बड़ा विस्तार दे दिया। अनीस और दबीर ने युद्ध-क्षेत्र के वर्णन, रण-स्थल में उभय पक्षों की ललकार, प्राकृतिक दृश्य, घोड़ों और तलवार की लड़ाई के वर्णन बड़ी ही सरल और लोकभाषा में करके इसे ऐसा रस-पूर्ण बना दिया कि हिन्दू और

मुसलमान दोनों सुनकर लहालोट हो जाते हैं। यह शियों का शोक-गीत है। शृंगार, प्रेम और विरह की शायरी में लगातार अस्वाभाविक वर्णनों को सुनते-सुनते लोगों का जी ऊब गया था। अनीस और दबीर ने जो मरसिये कहे, वे स्वाभाविक वर्णनों से भरे हुए हैं और उनमें सच्ची भावुकता है। उनमें केवल करुणरस ही नहीं, वीररस भी है। महावरों का सबसे ज्यादा इस्तेमाल मरसियों ही में हुआ है। अन्य शायरों ने भी मरसिये लिखे और उनकी ख्याति हुई।

हिन्दी-कवियों ने मरसिये के ढंग की रचना की ही नहीं। राजस्थान तो मरसिये के उपयुक्त कथाओं से भरा हुआ है। वहाँ कई तो जौहर हुए, उन पर, खासकर महारानी पद्मिनी पर शोक-काव्य लिखे जा सकते थे। गुरू गोविन्दसिंह के नौजवान बेटे दीवार में चुने गये; खुदीराम बोस फांसी पर चढ़ गये; बा का देहान्त हुआ; बापू की हत्या हुई, इन पर शोक-काव्य लिखे जा सकते थे। पर किसी हिन्दी-कवि ने इन पर क़लम नहीं उठाई। जो गीत वे लिखते हैं, उनकी अपेक्षा इस प्रकार के शोक-गीतों को ज्यादा लोकप्रियता प्राप्त होती।

५—उर्दू-शायरों के व्यक्तिगत जीवन पर उर्दू में कई पुस्तकें हैं, जो विद्वान् लेखकों की लिखी हुई हैं और उनमें शायरों की व्यक्तिगत रहन-सहन, स्वभाव, विनोद-प्रियता, आत्माभिमान, साहित्यिक ज्ञान और उनकी अमीरी-गरीबी का रोचक वर्णन मिलता है। यह उर्दू की पुरानी परिपाटी है।

हिन्दी में किसी एक कवि का भी वर्णन उस किस्म का नहीं मिलता। हिन्दी-कवियों में दूसरे कवियों का सम्मान करने का भाव ही बहुत कम है; इसीसे वे अन्य कवि के जीवन को निकट से देखते ही नहीं। हिन्दी में हिन्दी-साहित्य के इतिहास संबंधी पुस्तकें कई हैं और विद्वान् लेखकों की लिखी हुई हैं; पर उनमें कवियों की केवल रचनाओं ही पर विचार किया गया है, कवियों पर बिलकुल नहीं; अतएव वे रचनाओं की सूची-मात्र हैं।

६—उर्दू के शायर हिन्दी के सरल और बहु-प्रचलित शब्दों को निकाल-निकालकर उनकी जगह फ़ारसी और अरबी के शब्द भरते रहे।

परिणाम यह हुआ कि वे सिकुड़ते चले गये। उन्होंने एक देहातिन को शहरातिन तो बना लिया; पर वह बाहर की खुली हवा से हटाकर एक कमरे में कैद हो गई।

हिन्दी के कवि भी यही कर रहे हैं। हिन्दी के सरल और अधिक लोकप्रिय शब्दों को न लेकर वे संस्कृत के शब्दों से अपनी कविता की भाषा की तोंद भर रहे हैं। परिणाम वही हो रहा है जो फ़ारसी शब्दों से लदी हुई उर्दू-शायरी का हुआ। क्या यह अच्छा न होता कि हिन्दी के विद्वान् कवि सरल और निश्चित अर्थ देनेवाले हिन्दी-शब्दों का एक कोष तैयार करते और महावरे भी गाँव की बोली ही से जमा करते और फिर अपने ऊँचे भावों से उन्हें अनुप्राणित करके समाज को लौटा देते ?

७—विषय भी उर्दू के शायरों ने इस देश का नहीं लिया। फ़ारसी के इश्क के शीरे में उन्होंने अन्य विषयों के मुरब्बे तैयार किये। वह इश्क एक संक्रामक रोग की तरह फैलकर स्थायी हो गया।

हिन्दी के कवि भी यही कर रहे हैं। उन्होंने अप्राकृतिक प्रेम को तो नहीं अपनाया; पर बुत के स्थान पर उन्होंने कल्पित प्रेयसियाँ, मधुबालायें और सजनियाँ सामने खड़ी कर लीं और उर्दू के शायरों-जैसी पीड़ा, कसक, सिहरन और बेचैनी को सुरीले स्वरों में भरकर समाज के सामने रख दिया है। उर्दू-शायरी में जहाँ शराबखाने थे, हिन्दी-कवियों ने वहीं मधुशालायें खोल दी हैं।

८—उर्दू के शायर समाज के अंदर ही रहे। उन्होने समाज को वही बातें दीं, जिनको उनके समय का समाज चाहता था।

हिन्दी-कवियों ने अंतरिक्ष को अपना अभिसार-स्थान बना लिया; जो किसी को दिखाई नहीं पड़ता, और न जहाँतक किसी श्रोता की पहुँच ही होती है। यही कारण है कि उर्दू-शायरों के जितने शेर लोगों की जबान पर हैं, उतने क्या, उनका शतांश भी, हिन्दी-कवियों की पंक्तियाँ किसी को याद नहीं।

९—उर्दू-शायरों का कहने का ढंग हिन्दी-वालों से अच्छा है। वे बड़ी बातों को महावरों की मदद से थोड़े शब्दों में कहना जानते हैं।

हिन्दी-कवि छोटी-सी बात को कई पंक्तियों में कह पाते हैं और महावरे न जानने से छंद को पूरा करने केलिये उन्हे भरती के शब्द भरने पड़ते है।

१०—रुबाइयाँ कहने की प्रथा भी फ़ारसी से आई। उसकी जगह हिन्दी में दोहे और सोरठे चलते रहे; पर अब उनका समय नही रह गया। रुबाइयों का ढंग आकर्षक है।

हिन्दी में बेढब, बेधड़क, रंग आदि कुछ कवियों ने अच्छी रुबाइयाँ कही हैं; पर बहुत कम। उर्दू की यह संपदा हिन्दी की हो जानी चाहिये।

११—ग़ज़ल की एक यह खास खूबी ध्यान देने योग्य है कि एक पूरी ग़ज़ल में बीसों बातें नये-नये विषयो की कह दी जाती है। सुननेवाले को ग़ज़ल का हरएक शेर एक नई दुनिया में पहुँचा देता है, जिससे उसका जी नहीं ऊबता। वह दिमाग का स्वाद बदलता हुआ थोड़े ही समय में दूर-दूर की सैर कर लेता है। इश्क, गुलशन, बुत, सहरा और आसमान की बातों के साथ नैतिकता के उपदेश भी आते रहते है।

हिन्दी में इस तरह के वर्णन की कमी है। हिन्दी में बेमेल बातें कहने का चलन ही नहीं है। एक पद्य में एक ही विषय की बातें कही जाती है। इससे सुननेवालों को स्वाद बदलने की इच्छा को दबाकर या भुलाकर रखना पड़ता है। हिन्दी-कवियों को इस कमी की पूर्ति किसी न किसी तरह से करनी चाहिये।

१२—उर्दू में उस्ताद करने की प्रथा शुरू ही से प्रचलित है।

उस्ताद करने की प्रथा से उर्दू-भाषा के परिमार्जन में बड़ी सहायता मिली है। सर्वसाधारण में उस्ताद ही प्रामाणिक माने जाते थे। उनको प्रतिदिन अपने शागिर्दों की कविता का संशोधन करना पड़ता था। इससे भाषा-सम्बन्धी काट-छाँट बराबर जारी रहती थी। परिणाम यह हुआ कि उस्तादों की ख़राद पर चढ़कर उर्दू-भाषा साफ, चिकनी और मज़ेदार हो गई। कोई शायर किसी मशहूर उस्ताद का शागिर्द कहलाये बिना मुशायरे में प्रतिष्ठा नहीं पा सकता।

हिन्दी में "गुरु बिन होय न ज्ञान" का उपदेश तो है, पर गुरु करने की प्रथा अब बिलकुल उठ गई है, और कवि लोग स्वतंत्र हो गये हैं। यही कारण है

कि संशोधन-द्वारा जो सफलता उर्दू-वालों ने पा ली है, वह हिन्दी-कवियों से अभी बहुत दूर है।

शायरों का झुकाव अब हिन्दी की ओर हो रहा है; हिन्दी-कवियों को भी आगे बढ़कर उन्हें गले लगा लेना चाहिये, ताकि दोनों एक दूसरे से लाभ उठा सकें।

हिन्दी से मेरा अभिप्राय पुरानी हिन्दी से नहीं है; बल्कि उस खड़ीबोली से है, जिसका साँचा वही है, जो उर्दू का है।

उर्दू-गद्य का विकास

शुरू-शुरू में मुसलमानों में उर्दू-पद्य की लोक-प्रियता बढ़ी, जिसका उद्गम-स्थान दक्खिन था। उसी तरह उर्दू-गद्य की शुरुआत भी पहले-पहल दक्खिनी हिन्दी ही से हुई। यद्यपि उन्हीं दिनों उत्तर भारत में भी उर्दू-गद्य का विकास होने लगा था।

उर्दू-गद्य को सबसे बड़ा सहारा फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता से मिला। ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों को शासन के काम में सुविधा लाने के लिये देशी भाषाओं का जानना बहुत जरूरी समझकर सन् १८०३ ई० में उक्त कालेज में इसका एक विभाग खोला गया था; जिसके संयोजक गिलक्राइस्ट साहब थे, जो स्वयं कई भाषाओं के अच्छे जानकार थे।

उस महकमे-द्वारा डा० गिलक्राइस्ट की देखरेख में जो प्रसिद्ध हिन्दुस्तानी लेखक वहाँ नियुक्त हो गये थे, उनमें से कुछ के नाम ये हैं :—

मीर अम्मन, अफसोस, हुसैनी, लुत्फ, हैदरी, जवान, लल्लूलालजी, निहालचंद, इकरामअली विला, सैयद मुहम्मद मुनीर, शेरअली अफ़सोस और मदारीलाल गुजराती, सदल मिश्र इत्यादि।

उक्त लेखकों की लिखी पुस्तकों में से कुछ का साधारण परिचय इस प्रकार है :—

मीर अम्मन—

चहार दरवेश

बाग़ो-बहार

शेर अली अफ़सोस (१७३५–१८०९)—
बाग़े उर्दू, गुलिस्ताँ का उर्दू अनुवाद (१८०२)
आराइशे महफिल (१८०४),

मीर बहादुर अली हुसैनी—
इखलाके-हिन्दी (१८०२),
नस्र बेनज़ीर (१८०३)—सहरुल्बयान का उर्दू-गद्य में अनुवाद
किस्सा लुकमान

सैयद हैदरबख्श हैदरी—(जन्म अज्ञात, मृत्यु १८२३)—
किस्सा लैला मजनूँ
तोता कहानी (१८०१)—संस्कृत के शुक सप्तति के फारसी अनुवाद का उर्दू-अनुवाद
आराइशे महफिल (दूसरी—१८०२),
दहे मजलिस (१८०५),
तारीख नादिरी—नादिरनामा का उर्दू-अनुवाद
गुलजारे दानिश—बहारे दानिश का अनुवाद
हफ्तपैकर—(१८०५)

मिर्ज़ा काजिम अली जवान (१८१५ में मौजूद)—
कुरान का उर्दू अनुवाद
सिंहासन बत्तीसी—लल्लूलालजी भी अनुवाद में सहायक थे।
तारीख़ फरिश्ता का अनुवाद
बारहमासा (१८१२)
कालिदास की शकुंतला का ब्रजभाषा से उर्दू-अनुवाद (१८०२)
दस्तूरे हिन्द—हिन्दू-मुसलमानों के त्योहारों का वर्णन (१८१२)

निहालचंद लाहौरी—
ताजुल्मलूक
बकावली की कहानी

मजहबे इश्क (१८१३)

मिर्ज़ा लुत्फ अली उर्फ़ मज़हर अली खाँ विला—

सादी के पंदनामा का उर्दू-अनुवाद

माधवानल कामकन्दला का उर्दू-अनुवाद

हफ़्त गुलशन का उर्दू-अनुवाद

बैताल पच्चीसी का उर्दू-अनुवाद

तारीख शेरशाही का उर्दू-अनुवाद

इकराम अली—

अखवानुल्सफा (अरबी) का उर्दू-अनुवाद (१८१०)

लल्लूलालजी गुजराती—

शकुंतला नाटक हिन्दी-अनुवाद (१८१०)

सिंहासन बत्तीसी हिन्दी-अनुवाद (१८१०)

बैताल पच्चीसी हिन्दी-अनुवाद (१८१०)

माधवानल हिन्दी-अनुवाद (१८१०)

लतायफ हिन्दी—हिन्दी-उर्दू में १०० कहानियाँ

सदल मिश्र—

नासिकेतोपाख्यान

मिर्ज़ा अली 'लुत्फ़'—

गुलशने हिन्द (१८०१)

उस जमाने के उर्द-गद्य का नमूना देखिये :—

हैदरी अपने 'दहे मजलिस' की भूमिका में लिखते हैं :—

'फिर दिल में गुजरा कि ऐसे काम को अक्ल चाहिये कामिल और मदद किसू तरफ़ की होय शामिल, क्योंकि बेताईदे समदी और बेमददे जनाबे अहमदी यह मुश्किल सूरत पज़ीर न होवे और गौहरे मुराद रिश्तये उमीद में न आवे, लिहाजा कोई इस सनअत का न हुआ और अबतक, तरजुमे फ़ारसी ब-इबारते हिन्दी नसर नहीं हुआ।'

इस उद्धरण में 'हिन्दी' शब्द ध्यान देने योग्य है। इससे मालूम होता

है, हैदरी साहब अपनी भाषा को, जिसमें उन्होंने किताब लिखी, हिन्दी ही जानते और मानते थे।

इस प्रकार डा० गिलक्राइस्ट ने बड़ी लगन से काम किया और चार ही पाँच वर्षों की मेहनत से उर्दू-गद्य के विकास की एक रूप-रेखा तैयार हो गई।

डा० गिलक्राइस्ट ने १७९८ ई० में अंग्रेजी-हिन्दुस्तानी का एक कोष तैयार करके छपवाया। कप्तान टेलर और डा० हंटर ने १८०८ में और जान शेक्सपियर ने १८१७ में हिन्दुस्तानी-अंग्रेजी कोष छपवाये।

हिन्दुस्तानी-भाषा का व्याकरण १७१५ में जान जोशुआ केटेलर (हालैंड वासी) ने लिखा था। १७४४ में एक जर्मन पादरी शुल्ज ने लेटिन भाषा में हिन्दुस्तानी का एक व्याकरण लिखा। १७७२ में हेडली की और १७७८ में पुर्तगाली भाषा में हिन्दुस्तानी व्याकरण की पुस्तक छपी। १८१३ में जान शेक्सपियर ने हिन्दुस्तानी व्याकरण प्रकाशित कराया। कप्तान प्राइस, यीट्स, डंकन फारबीट्स, सर विलियम मोनियर, डाक्टर फेलन, पादरी केविन आदि विदेशी विद्वानों ने अलग-अलग व्याकरण और कोष लिखकर हिन्दुस्तानी का ज्ञान अपने देशवासियों के लिये सुलभ कर दिया; साथ ही उर्दू-गद्य को समृद्ध भी बना दिया।

इसके बाद उर्दू की उन्नति दिन-दूनी रात चौगुनी हुई। हिन्दूओं ने भी उर्दू की उन्नति में काफी हाथ बटाया। कायस्थों की तो उर्दू मातृभाषा ही हो गई थी। कश्मीरी पंडित रतननाथ 'सरशार' ने उर्दू में 'फ़िसाने आज़ाद' नामकी एक ऐसी दिलचस्प किताब लिखी, जिसके जोड़ की न उर्दू में दूसरी पुस्तक है, न हिन्दी में। 'सरशार' की मँजी-मँजाई भाषा उर्दू का एक खास नमूना है।

ईसाई मिश्नरियों ने भी उर्दू के प्रचार में काफी ज़ोर लगाया था। बेंजमिन शुल्ज़ और कालिनबर्ग ने १७४८ से १८५० तक बाइबिल के कुछ हिस्सों का उर्दू में अनुवाद किया। सीरामपुर के पादरियों ने बाइबिल का

अनुवाद उर्दू-हिन्दी दोनों में निकाला। पादरी मार्टिन ने यूनानी भाषा से उर्दू में बाइबिल का अनुवाद १८१४ में निकाला। पादरियों ने अपने धर्म-प्रचार के लिये सरल से सरल भाषा में बाइबिल का अनुवाद करके मुफ्त या बहुत थोड़े मूल्य पर उसे वितरित किया।

कविता-कौमुदी

[उर्दू]

अमीर खुसरो

अबतक पाये गये प्रमाणों से अमीर खुसरों ही हिन्दी और उर्दू दोनों के आदिकवि कहे जायँगे। खुसरो की कविता में खड़ीबोली हिन्दी का रूप स्पष्ट हो गया है; और उसीमें अरबी-फ़ारसी के संज्ञा शब्द भरकर उर्दू वालों ने एक स्वतंत्र भाषा बना ली, जिसे मैं 'मुसलमानी हिन्दी' कहता हूँ। मुसलमान उत्तर से दक्खिन को गये थे; वे अपने साथ दिल्ली और उसके आसपास की बोलचाल की भाषा भी ले गये, जो खुसरो की भाषा थी। दक्खिन में उसमें कुछ स्थानीय शब्द और उनके प्रयोग मिल गये, वही वली की दक्खिनी हिन्दी थी।

खुसरो का जन्म १२५५ ई० में उत्तर-प्रदेश के एटा जिले में हुआ। इनका असली नाम अबुलहसन था। इनके पिता का नाम अमीर सैफुद्दीन था, जो बलख से भागकर आये थे और सुल्तान शम्सुद्दीन अल्तमश के दरबार में अपने गुणों से सरदार बन गये थे।

खुसरो की मृत्यु १३२४ ई० में हुई। इनके समय में दिल्ली के तख्त पर ग्यारह सुलतान बैठे, जिनमें सात के दरबार में ये रहे। ये दिल्ली में अपने गुरु निज़ामुद्दीन औलिया की कब्र के पास ही गाड़े गये। वहाँ इनका मक़बरा है और हरसाल मेला लगता है।

खुसरो फ़ारसी के प्रतिभाशाली कवि थे। अरबी, तुर्की और हिन्दी के भी विद्वान् थे और कुछ संस्कृत भी जानते थे। ये बड़े साहित्य-रसिक और काव्य-शास्त्र के मर्मज्ञ थे। इन्होंने ९९ पुस्तकों की रचना की थी।

खुसरो की रचना से जान पड़ता है कि ये बड़े हँसमुख, रसीले स्वभाव

के, मिलनसार और सच्चे अर्थों में कवि थे। संगीत में भी अच्छा दखल रखते थे।

इन्होंने 'खालिकबारी' नाम से पद्य में एक कोष भी बनाया था, जिसमें अरबी, फ़ारसी और तुर्की शब्दों के पर्यायवाची हिन्दी शब्द पद्य में दिये गये हैं। हिन्दी-उर्दू का यह पहला कोष था।

इन्होंने हिन्दी में बहुत-सी पहेलियाँ, ठुमरियाँ, मुकरियाँ, दो सखुने, और गाने बनाये थे। इनके बनाये हुये गीत दिल्ली के आसपास की स्त्रियाँ अबतक गाती हैं।

यद्यपि खुसरो ही ने पहले-पहल हिन्दी में फ़ारसी छंदों का प्रचार किया, और फ़ारसी शब्दों को भी अंदर-अंदर बैठाया; पर वे ऊँचे दरजे के आदमी थे, वली की तरह मुशायरों में पढ़ने नहीं जाते थे। इससे वली को उर्दू-शायरी का पहला शायर कहलाने का गौरव आप से आप मिल गया।

यहाँ खुसरो की कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं:—

गीत

अम्मा मेरे बाबा को भेजोजी, कि सावन आया।
बेटी! तेरा बाबा तो बुड्ढा री, कि सावन आया॥
अम्मा मेरे भाई को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरा भाई तो बाला री कि सावन आया॥
अम्मा मेरे मामूँ को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरा मामूँ तो बाँका री कि सावन आया॥

खालिकबारी

ख़ालक़ बारी सिरजनहार। वाहिद एक विदा करतार॥
रसूल पयगम्बर जान बसीठ। यार दोस्त बोली जा ईठ॥
बया बिरादर आव रे भाई। ब-नशीं मादर बैठ री मांई॥
मुश्क काफूरस्त कस्तूरी कपूर। हिन्दवीं आनंद शादी वो सुरूर॥
मूश चूहा गुरबा बिल्ली मोर नाग। सोज़नो रिश्ता बहिंदी सुई ताग॥

हिन्दी-फारसी का मिश्रण

ज़े हाले मिसकी मकुन तग़ाफ़ुल दुराय नैना बनाय बतियाँ।
कि ताबे हिजराँ न दारम ऐ जाँ न लेहु काहें लगाय छतियाँ।
शबाने हिजराँ दराज़ चूँ जुल्फो रोज़े वसलत चूँ उम्र कोतह।
सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।

पहेलियाँ

१

बीसों का सिर काट लिया।
ना मारा ना खून किया।।

नाखून

२

एक नार ने अचरज किया। साँप मार पिजँरे में दिया।
जों जों साँप ताल को खाय। सूखै ताल साँप मर जाय।।

दिये की बत्ती.

'ने' का प्रयोग हिन्दी में इससे पहले नहीं मिलता।

३

दानाई से दाँत उस पै लगाता नहीं कोई।
सब उसको भुनाते हैं पै खाता नहीं कोई।।

रुपया

४

बात की बात ठठोली की ठठोली।
मरद की गाँठ औरत ने खोली।।

ताला-चाबी

५

जलकर उपजे जल में रहै। आँखों देखा खुसरो कहै।।

काजल

दोहा

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरू घर आपने, रैन भई चहुँ देस॥

यद्यपि खुसरो ने फ़ारसी बहरों में भी कविता की है, पर उन्होंने भाषा का नाम रेख़ता या उर्दू कहीं नहीं लिखा। जहाँ कहीं भाषा का नाम उनकी कविता में आया है, वहाँ अरबी-फ़ारसी के साथ हिन्दी का नाम उन्होंने लिखा है। इससे भी प्रकट होता है कि उस समय की बोलचाल की भाषा का नाम हिन्दी था।*

---

* विशेष परिचय कविता-कौमुदी के पहले भाग में देखिये।

वली

वली का पूरा नाम शाह वलीउल्ला था। वली औरंगाबाद के रहने वाले थे। एक प्रसिद्ध फ़क़ीर के कुल में उन्होंने जन्म पाया था। उनका जीवन-काल लगभग १६६८ से १७४४ ई० तक है। वे औरंगाबाद (दक्षिण) में पैदा हुये और वहीं इनकी प्रारम्भिक शिक्षा हुई। बीस वर्ष की उम्र होने के बाद वे अहमदाबाद चले गये, जो उन दिनों विद्या और कला का केन्द्र था; और वहीं उस्ताद शाह वजीहुद्दीन अलवी के मदरसे में शिक्षा पाते रहे। वहाँ से वे फिर औरंगाबाद लौट गये, और कविता करनी शुरू की। वली मुहम्मदशाह के समय में दिल्ली आये। अनुमान है कि वली १७२२ ई० में दिल्ली पहुँचे होंगे। दिल्ली में वह फ़ारसी के एक प्रसिद्ध शायर मियाँ गुलशन के मुरीद हुये।

जब वली दिल्ली पहुँचे, शोर मच गया। कविता के प्रेमियों ने उन्हें हाथों-हाथ लिया। महफ़िलें सजने लगीं। कवि चहकने लगे। पर जो स्वर निकलता था, वली के स्वर से मिला हुआ; जो ग़ज़ल कहता था, वली के समर्थन में। दिल्ली में उनको इतना सम्मान मिला कि शाही दरबार में जो हिन्दी के पद गाये जाते थे, उनके स्थान पर उनकी ग़ज़लें गाई जाने लगीं।

उस समय सैकड़ों आदमियों को कविता का चसका लग गया होगा। पर काल ने सबके नाम मिटा दिये। अब केवल आबरू, नाज़ी और यकरंग ही के नाम शेष हैं।

वली कहाँ पैदा हुये, कहाँ पले, कहाँ पढ़े, कहाँ से कहाँ आये? इन सब बातों पर विचार करने से यही सच जान पड़ता है कि भाग्य उनके

अनुकूल था। उन्हीं के सिर पर उर्दू के आदि-कवि होने का मुकुट बँधना था, सो बँध गया। वह अमर हो गये। जो पद खुसरो को मिलता, वह वली को मिला। अँग्रेजी में जो स्थान चासर का, फ़ारसी में रोदकी का और हिन्दी में खुसरो का है, वही उर्दू में वली का है।

वली ने मानो उर्दू-कविता की पगडंडी तैयार की, जो बाद को सड़क हो गई और जिसके किनारे लालटेनों की एक लम्बी क़तार से जगमगा उठे।

वली के पहले हिन्दुस्तान के मुसलमान कवि या तो फ़ारसी में कविता करते थे या हिन्दी में; जैसे खुसरो, रहीम और रसखान आदि। वली ही ने एक दूसरा रास्ता चुना, जिसकी भाषा भी तत्कालीन कविता की भाषा से भिन्न थी, और भाव भी फ़ारसी कविता के थे। वली ने अपना एक दीवान बनाया। लोगों को अपनी गज़लें सुनाई। फ़ारसी के इश्क़ का मज़ा देशी बोलचाल में पाकर मुसलमान लहालोट हो गये। उन्होंने उसे अपनाया, सँवारा—सजाया, प्यार किया और उस पर एक-एक जन्म निसार किया। उमंग में आकर खुश-तबीअतवालों ने अपने अलग दीवान बनाये। अंकुर में पत्तियाँ फूटीं, टहनियाँ निकलीं, वह बड़ा पेड़ हुआ और फूला फला।

वली का दीवान अबतक मिलता है। वह गज़लों, रुबाइयों, क़तों, मुख़म्मसों, क़सीदों और मसनवी आदि तरह-तरह के रंग-बिरंगे फूलों से आरास्ता है। उसमें न किसी बादशाह की तारीफ़ है, न खुशामद।

वली की कविता से यह जान पड़ता है कि वह फ़ारसी अच्छी तरह जानते थे; पर अरबी में उनका दखल नहीं था। वली के एक शेर से मालूम होता है कि वह दिल्ली में बहुत दिनों तक रहे।

वह शेर यह है:—

दिल 'वली' का ले लिया दिल्ली ने छीन।
जा कहो कोई मुहम्मदशाह सूँ।।

दिल्ली से वली सन् ११४१ हि० (१७२९ ई०) के आसपास औरंगाबाद चले गये और वहीं उन्होंने 'दहे मजलिस' नाम से एक मसनवी की रचना की। उसके दो अंतिम शेर ये हैं :—

हुआ है खत्म जब यूँ दर्द का हाल।
था ग्यारह सौ में इकतीसवाँ साल॥
कहा हातिफ़ ने यूँ तारीख माकूल।
वली का है सखुन हक़ पास मकबूल॥

वली ने दूर-दूर की यात्रायें की थीं। वे हिन्दुस्तान के करीब-करीब हर हिस्से की सैर कर आये थे। वे सूफ़ी विचारों के फ़कीर आदमी थे; उनमें मज़हबी कट्टरपन नहीं था। गुजरात उनको ज़्यादा प्रिय था।

वली की मृत्यु सन् १७४४ ई० में अहमदाबाद में हुई। वहाँ उनकी कब्र बनी हुई है।

वली की भाषा में ब्रजभाषा की छाप है। उनकी भाषा खड़ीबोली और ब्रजभाषा की खिचड़ी है।

यहाँ वली के कुछ शेर दिये जाते है—

१

फिर मेरी खबर लेने को सैयाद न आया।
शायद कि उसे हाल मेरा याद न आया॥

२

गुज़र है तुझ तरफ़ हर बुलहवस का।
हुआ धावा मिठाई पर मगस का॥

३

शग़ल बेहतर है इश्क़बाजी का।
क्या हक़ीक़ी व क्या मजाज़ी का॥
हर ज़बाँ पर है मिस्ल शानः मुदाम।
ज़िक्र तुझ जुल्फ़ की दराज़ी का॥

४

निकला है बेहिजाब हो बाज़ार की तरफ़।
हर बुलहवस की गर्म हुई है दुकान आज।।

५

रहम बेजा सितम बराबर है।
तू रक़ीबाँ उपर करम मत कर।।

६

जो आया मस्त साक़ी जाम लेकर।
गया इकबारगी आराम लेकर।।

७

हूँ गरचे ख़ाकसार वले अज़ रहे-अदब।
दामन को तेरे हाथ लगाया नहीं हनोज।।

८

तुझ लब की सिफ़त लाल बदख़शाँ से कहूँगा।
जादू है तेरे नैन ग़ज़ाला से कहूँगा।।
दी हक़ ने तुझे बादशही हुस्न-नगर की।
यह किश्वरे ईराँ में सुलेमाँ से कहूँगा।।
ज़ख्मी किया है मुझ तेरी पलकों की अना ने।
यह ज़ख्म तेरा ख़ंजरे भालाँ से कहूँगा।।
बे सब्र न हो ऐ 'वली'! इस दर्द से हरगाह।
जल्दी से तेरे दर्द की दरमाँ से कहूँगा।।

९

टुक 'वली' को सनम गले से लगा।
तुझको है बन्दापरवरी की क़सम।।

१०

बेवफ़ाई न कर ख़ुदा सूँ डर।
जग हँसाई न कर ख़ुदा सूँ डर।।

है जुदाई में ज़िन्दगी मुश्किल।
आ जुदाई न कर खुदा सूँ डर।
आरसी देखकर न हो मग़रूर।
खुदनुमाई न कर खुदा सूँ डर।

११

ऐसे नसीब मेरे कहाँ हैं 'वली' कि आज।
उस गुलबदन को अपने गले हार कर रखूँ।।

१२

सुहबते-ग़ैर में जाया न करो।
दर्दमन्दों को कुढ़ाया न करो।।

१३

देखना हर सुबह तुझ रुख़सार का।
है मुताला मतलए अनवार का।।
याद करना हर घड़ी तुझ यार का।
है वज़ीफ़ा मुझ दिले बीमार का।।
आरज़ूए चश्माए कौसर नहीं।
तिश्नालब हूँ शरबते दीदार का।।
आक़बत होवेगा क्या मालुम नहीं।
दिल हुआ है मुब्तिला दीदार का।।
मसनदे गुल मंज़िले शबनम हुई।
देख रुतबा दीदए-बेदार का।।

१४

मत तसव्वुर करो मुझ दिल को कि हरजाई है।
चमन हुस्ने परीरू का तमाशाई है।।
ऐ 'वली'! रहने को दुनिया में मक़ामे आशिक़।
कूचए-यार है या गोशये-तनहाई है।।

१५

जब सनम को ख़याले बाग़ हुआ।
तालिबे नश्शये फ़राग़ हुआ॥
फ़ौज उश्शाक़ देख हर जानिब।
नाज़नीं साहबे दिमाग़ हुआ॥
दिले उश्शाक़ क्यों न हो रोशन।
जब ख़याले सनम चिराग़ हुआ॥
ऐ 'वली' गुलबदन को बाग़ में देख।
दिले सदबर्ग बाग़ बाग़ हुआ॥

१६

दिल छोड़कर के यार क्योंकि जावे?
ज़ख्मी हो शिकार क्योंकि जावे?
जबतक न मिले शराबे दीदार,
आँखों का ख़ुमार क्योंकि जावे?

१७

तुझ लबो-ज़ुल्फ़ के तमाशे को।
चल, कि आये हैं मिश्री वो शामी॥

१८

जिस वक्त ऐ सरीजन! तू बेहिजाब होगा।
हर ज़र्रा तुझ झलक सूँ जूँ आफ़ताब होगा॥
मत जा चमन मों लाला बुलबुल प मत सितम कर।
गरमी सूँ तुझ निगह का गल गल गुलाब होगा॥
मत आइना को दिखला अपना जमाल रोशन।
तुझ मुख की ताब देखे आईनः आब होगा॥
मुझको हुआ है मालुम ऐ मस्ते जामे खूनी।
तुझ अँखड़ियों के देखे आलम खराब होगा॥

१९

लिया है जब सूँ मोहन ने तरीक़ा ख़ुदनुमाई का।
चढ़ा है आरसी पर तब से रंग हैरत फ़ज़ाई का।।

२०

य' तिल तुझ मुख के काबा में मुझे असवद हज़र दिसता।
ज़नख़दाँ में तेरे मुझ चाहे-ज़मज़म का असर दिसता।।

२१

जिन्दगी जामे ऐश है, लेकिन।
फायदा का अगर मुदाम नहीं।।

२२

ख़ूबरू ख़ूब काम करते हैं।
इक निगह में गुलाम करते हैं।।

आबरू

आबरू उपनाम; प्रसिद्ध नाम शाह मुबारक; असली नाम नज़्मुद्दीन; शाह मुहम्मद ग़ौस ग्वालियरी के वंशज; जन्म-स्थान ग्वालियर। वचपन ही में दिल्ली आ गये थे। १७५० ई० में ५० वर्ष से अधिक अवस्था में इनका देहान्त हुआ।

यद्यपि आबरू बुड्ढे और खूब मँजे-मँजाये शायर थे, पर अभिमानी नहीं थे। ख़ाने आरजू को अपना कलाम दिखा लेते थे। इन्होंने 'आराइशे माशूक' नाम से एक मसनवी की रचना की थी। इनका दीवान भी था, पर सिपाही-विद्रोह में नष्ट हो गया।

शाह आबरू को शाह कमाल बुख़ारी नाम के एक बुड्ढे मियाँ के बेटे मीर मक्खन से बड़ी मुहब्बत थी। उनके बहुत से शेरों में मीर मक्खन का नाम आया है या उसकी ओर कुछ इशारा हुआ है।

ये तहज़ीब के बड़े पाबन्द और मिलनसार आदमी थे। इनकी एक आँख की ज्योति मन्द पड़ गई थी, जिसके कारण जानजानाँ मज़हर प्रायः छींटे कसा करते थे।

इनकी कविता के कुछ नमूने देखिये——

१

क्या सबब तेरे बदन के गर्म होने का सजन।
आशिक़ों में कौन जलता था ? गले किसके लगा ?

२

नैन से नैन जब मिलाय गया।
दिल के अन्दर मेरे समाय गया।

निगाहे गर्म सें मेरे दिल में।
खुश-नैन आग-सी लगाय गया।।
तेरे चलने की सुन ख़बर आशिक़।
यही कहता मुवा कि हाय ! गया।।
'आबरू' हिज्र बीच मरता था।
मुख दिखाकर उसे जिलाय गया।।

३

बोसा लबों का देने कहा कह के फिर गया।
प्याला भरा शराब का अफ़सोस गिर गया।।
क़ौल 'आबरू' का था कि न जाऊँगा उस गली।
हो करके बेक़रार देखो आज फिर गया।।

४

छोड़ मत दामे ज़ुल्फ़ से दिल को।
बाल बाँधा ग़ुलाम है तेरा।।

५

आया है सुबह नींद से उठ रसमसा हुआ।
जामा गले में रात का फूलों बसा हुआ।।
कम मत गिनो य'बरूत सियाहों का रंग ज़र्द।
सोना वो है कि होवे कसौटी कसा हुआ।।
अंदाज़ से ज़ियादा निपट नाज़ ख़ुश नहीं।
जो ख़ाल अपने हद से बढ़ा सो मसा हुआ।।
ऐ 'आबरू' अव्वल तुँ समझ पेंच इश्क़ का।
फिर ज़ुल्फ़ से निकल न सके दिल फँसा हुआ।।

६

सेज ऊपर ग़ैर की रहता है अब लोटा हुआ।
ज़र के लालच इस क़दर वह सीमतन खोटा हुआ।।

७

जुदाई के ज़माने की सजन क्या ज़्यादती कहिये।
कि इस ज़ालिम की जो हमपर घड़ी गुज़री सो जुग बीता।।
लगा दिल यार से तब उसको क्या काम 'आबरू' हमसे।
कि ज़ख़्मी इश्क़ का फिर माँगकर पानी नहीं पीता।।

८

यह रस्म ज़ालिमी की दस्तूर है कहाँ का।
दिल छीनकर हमारा दुश्मन हुआ है जाँ का।।
तुझ राह में हुआ है अब तो रक़ीब कुत्ता।
बू पायकर हमारी आ बाँधता है नाका।।
रुस्तम दहल के दिल में डाले अझूँ सों पानी।
देखे अगर भवाँ की तलवार का झमाका।।
आशिक़ के दिल में डाली जब नफ़्स्बद ने बुरकी।
रजवाड़े की गली का तब जा गुबार फाँका।।
सब आशिक़ों में हम कूँ मज़दा है 'आबरू' का।
है क़स्द गर तुम्हारे दिल बीच इम्तिहाँ का।।

९

जिस वक्त ज़ख़्म तेरा लगता है ग़ैर के तईं।
उस वक्त जान सेती जाते हैं जान! मर हम।।
धमकावते हैं हमको कमर बाँध बाँधकर।
खोलें कभी तो जाय मियाँ का निकल भरम।।

१०

किन ने आ बाग़ में हैरान किया नरगिस को।
नहीं मालूम कि यह देख रही है किस को।।

११

लटक चलना सजन का भूलता मुझकूँ नहीं अबतक।
तरह वह पाँव रखने की मेरी आँखों में फिरती है।।

१२

फिरते ही फिरते दश्त दिवाने किधर गये ?
वे आशिक़ी के हाय ज़माने किधर गये ?
मिज़गाँ तो तेज़तर है व लेकिन जिगर कहाँ।
तरकश तो हैं भरे प निशाने किधर गये ?

१३

रुस्तम उस मर्द की खाते हैं क़सम ज़ोरों की।
ताब लावे जो कोई इश्क़ के झकझोरों की ।।
क़द्रदाँ हुस्न के कहते हैं उसे दिल मुरदा।
साँवरे छोड़ के जो चारा करे गोरों की ।।
गाँठ काटी है मेरे दिल की तेरी आँखों ने।
दो पलक नहीं य' कतरनी है मगर चोरों की ।।
लबे शीरीं प सरीजन के नहीं ख़त्ते सियाह।
डार छूटी है मिठाई प शकरख़ोरों की ।।
चिलकें सूरज मनीं जूँ ख़त्ते शुआ के शोले।
देख अँखियों मनी यह लाल झमक डोरों की ।।
'आबरू' कूँ नहीं कम ज़र्फ़ की सुहबत का दिमाग़।
किसको बरदाश्त है हरवक्त के नकतोरों की ।।

१४

कुंजी उसकी ज़बान शीरीं है ।
दिल मेरा कुफ़्ल है बताशे का ।।

१५

तुमने बजावने को जब हाथ बीच नै ली।
मज़मून हो गये सब य' इस तरह की लै ली ।।

१६

सजा है नरगिसी बूटे का जामा।
करे क्योंकर न मुझसे चश्मपोशी ।।

१७

'आबरू' के क़त्ल को हाजिर हुये कसके कमर।
ख़ून करने को चले आशिक़ को तोहमत बाँधकर।।

१८

इज्ज़त है जौहरी की जो क़ीमती हो जौहर।
है 'आबरू' हमन को जग में सख़ुन हमारा।।

१९

तुम्हारे लोग कहते हैं कमर है।
कहाँ है ? किस तरह की है ? किधर है।।
तख़ल्लुस 'आबरू' बर जा है मेरा।
हमेशा अश्क ग़म से चश्म तर है।।

२०

निकले तुम आ सबा की तरह जब चमन में भूल।
गुलशन के देख तुझको गये हाथ-पाँव फूल।।

२१

सर से लगा के पाँव तलक दिल हुआ हूँ मैं।
याँ तक तो फ़ने इश्क़ में कामिल हुआ हूँ मैं।।

२२

आग़ोश में भवों की करती है क़त्ल अँखियाँ।
कोई पूछता नही है मसजिद में क़त्ल होय।।

२३

मिलो जा 'आबरू' से खुद बखुद तुम।
कि उसको तो पियारे बेख़ुदी है।।

आरज़ू

आरज़ू उपनाम ; सिराजुद्दीन अली ख़ां नाम ; पिता का नाम शेख़ हिसामुद्दीन 'हिसाम' ; जन्म स्थान आगरा ; जन्म-काल १६८६ ई० ; मृत्यु-काल १७५६ ई०।

ख़ान आरज़ू आगरे के रहनेवाले थे और शाह मुहम्मद ग़ौस गवालियरी के वंश में थे। वे फर्रुखसियर के राज्य-काल में दिल्ली आये। उस समय इनकी उम्र चौबीस वर्ष की थी, और ये अपनी शिक्षा समाप्त कर चुके थे। दिल्ली से इनको बड़ा प्रेम था। शाहआलम के समय में जब दिल्ली का पतन हुआ, ये नवाब सालारजंग के साथ लखनऊ चले गये। वहीं इनकी मृत्यु हुई। पर इनकी इच्छानुसार ये दिल्ली में दफनाये गये।

ख़ान आरज़ू फ़ारसी भाषा के उस्ताद और अपने समय के बड़े ही प्रसिद्ध शायर थे। १४ ही वर्ष की अवस्था से ये शायरी करने लगे थे। उर्दू के तो ये खुद नाममात्र के शायर थे ; फारसी के विद्वान् थे। पर इन्होंने उर्दू को ऐसे-ऐसे शागिर्द दिये, जिन्होंने उसे आसमान पर चढ़ा दिया। इनके शागिर्दों में मुख्य ये हैं—जानजानां मज़हर, सौदा, मीर तक़ी, मीर दर्द। मीर तक़ी ख़ान आरज़ू के भांजे थे।

ख़ान आरज़ू ने उर्दू के महावरे दुरुस्त किये; नये दाखिल किये और पुराने और अप्रचलित मुहावरों को काट-छाँटकर निकाला। इन्हीं के ज़माने से उर्दू-भाषा को साफ़-सुथरापन मिलना शुरू हुआ।

इनके शिष्यों में एक नौजवान बचपन ही से सेवा में उपस्थित रहा करता था। चेहरा उसका प्रोफ़ेसर आज़ाद के शब्दों में 'नमकीन' था। किसी कारण से वह कुछ दिनों तक नहीं आया। एक दिन ये राह में कहीं बैठे थे। वह भी उधर से निकला। चार आँखे हुईं। इन्होंने बुलाया, पर वह

किसी आवश्यक काम के कारण न रुक सका। तब इन्होंने उसे रोककर यह शेर पढ़ा—

यह नाज़ यह ग़ुरूर लड़कपन में तो न था।
क्या तुम जवान होके बड़े आदमी हुए?

फ़ारसी में इनके दो दीवान है। इन्होंने दीवानों के सिवा और भी कई बड़ी ही उपादेय पुस्तकों की रचना की है। उनमें से कुछ के नाम ये हैं—सिराजुल्लुग़ात, चिराग़े हिदायत, शरह गुलिस्ताने सादी, शरह सिकन्दर नामा, तंबीहुल्ग़ाफ़िलीन, तज़किरा शुअराय हिन्द इत्यादि।

वास्तव में ये उर्दू के कवि नहीं थे। उर्दू में कुछ लिखना भी ये अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते थे। जैसे हमारे संस्कृत के पण्डित हिन्दी लिखने में अपना असम्मान समझते हैं। फिर भी मौके-मौक़े पर ख़ान आरज़ू ने उर्दू में भी कुछ शेर कहें हैं। उनमें से कुछ यहाँ पाठकों को भेंट किये जाते हैं—

१

खोलकर बन्दे क़बा का मुल्के-दिल ग़ारत किया।
क्या हिसारे कल्ब दिलवर ने खुले बन्दों लिया॥

२

वादे थे सब ख़िलाफ़ जो तुझ लब से हम सुने।
क्या लाल क़ीमती देखो झूठा निकल गया॥

३

आता है हर सहर उठ तेरी बराबरी को।
क्या दिन लगे है देखो खुरशीदे ख़ावरी को॥
उस तुन्दख़ू सनम से जब से लगा हूँ मिलने।
हर कोई मानता है मेरी दिलावरी को॥

४

तुझ ज़ुल्फ़ में लटक न रहे दिल तो क्या करे।
बेकार है अटक न रहे दिल तो क्या करे॥

५

रखे सीपारये-दिल खोल आगे अन्दलीबों के।
चमन में आज गोया फूल है तेरे शहीदों के।।

६

उस ज़ुल्फ़ सियहफ़ाम की क्या धूम पड़ी है।
आईना के गुलशन में गताझूम पड़ी है।।

७

मेरे शोखे ख़राबाती की कैफ़ीयत न कुछ पूछो।
बहारे हुस्न को दी आब उसने जब चरस खींचा।।

८

जान तुझ प कुछ एतमाद नहीं।
ज़िन्दगानी का क्या भरोसा है।।

९

मैख़ाने बीच जाकर शीशे तमाम तोड़े।
जाहिद ने आज अपने दिल के फफोले फोड़े।।

१०

दिखाई चश्म मस्त अपनी जब उस रिन्दे शराबी ने।
न दम मारा कटोरे ने न हिचकी ली गुलाबी ने।।

हातिम

हातिम उपनाम ; शेख ज़हूरुद्दीन नाम ; पिता का नाम फ़तहुद्दीन ; निवास-स्थान दिल्ली ; पेशा सिपहगरी ; जन्म-काल १६९९ ई० ; मृत्यु-काल १७९१ ई०। दिल्ली दरवाज़े के बाहर दफ़न हुये।

हातिम पहले सिपाही-पेशा थे और नवाब अम्दुतुल्मुल्क अमीरख़ाँ सूबे इलाहाबाद की मुसाहबत में ख़ूब ऐश-इशरत से दिन काटते थे। मुहम्मद-शाह का ज़माना था ही। दिल्ली में बारहो मास बसंत रहता था। हातिम भी अपनी नौजवानी के अरमान पूरे करते थे। दिल्ली का राज्य कमज़ोर हो चला था। एक ओर सिख, दूसरी ओर मराठे ताक में थे। मुसलमानों में हुकूमत की रुचि ही जाती रही थी। लोग नौकरी छोड-छोड़कर अलग हो रहे थे। जो अपढ़ थे, वे कोई पेशा कर लेते थे। जो पढ़े-लिखे थे, उन्हें मज़मून बाँधने का काम सबसे आसान समझ पड़ता था।

आखिरी उम्र में हातिम ने भी सिपहगरी छोडकर शायरी पकड़ी। दिल्ली में कदम शरीफ़ के पास मीर बादलअली शाह का तकिया था ; जहाँ मस्त बेफ़िकरे निठल्ले जवान जमा हुआ करते थे। हातिम भी वहाँ की हवा खाया करते थे। जाते-जाते इनपर भी फ़क़ीरी का रंग चढ़ा और ये उन्ही के मुरीद हो गये। धीरे-धीरे सब बुराइयाँ भी छोड़ दीं। यहाँ तक कि घर-बार से भी छुट्टी कर ली। हिन्दुस्तान में निश्चिन्त फ़कारी के चिह्न-स्वरूप सिर्फ़ एक रूमाल और एक पतली छड़ी पास रख ली।

फ़क़ीरी बाना धारण तो किया, पर बाँकपन नही छोड़ा। सिर पर दुपट्टा टेढ़ा ही बाँधते रहे। किले के नीचे राजघाट के रास्ते पर कुछ छाया वाले वृक्षों के नीचे ये प्रायः प्रतिदिन बैठा करते थे और वहीं इनके संगी-साथी भी जमा होते थे। सब मिलकर वहाँ काव्य-चर्चा किया करते थे।

हातिम के ४५ शिष्य थे। उनमें सौदा बहुत प्रसिद्ध हैं। सौदा से इनका बहुत प्रेम भी था। कहा करते थे कि यह शागिर्द मेरे नाम को अमर कर देगा। हुआ भी ऐसा ही।

एक दिन हातिम अपने शिष्यों के साथ काव्य-चर्चा में मग्न थे। सआदत-यार खाँ 'रंगी', मियाँ मुहम्मद अमान 'निसार', लाला मुकुन्दराय 'फ़ारिग़' अकबर अली 'अकबर' और ताबाँ आदि शिष्य गुरु-सेवा में उपस्थित थे। शाह हातिम ने फ़रमाया कि आज रात को मैंने यह मतला कहा है—

सर को पटका है कभू सीना कभू कूटा है।
रात हम हिज्र की दालत से मज़ा लूटा है।।

इस पर 'रंगी' ने कहा—दूसरे मिसरे में यह परिवर्तन कर दिया जाय, तो अच्छा है—

सर को पटका है कभू सीना कभू कूटा है।
हमने शबे हिज्र की दालत से मज़ा लूटा है।।

शाह साहब बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने 'रंगी' का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा, और कहा—आफ़री! आफ़रीं! वल्लाह, मैं दीवान में इसी तरह लिखूँगा। इससे हातिम की बड़ी दरिया-दिली प्रकट होती है। कवियों में ऐसे लोग कम होते हैं, जो अपनी कविता में किसी और का किया हुआ संशोधन स्वीकार करें।

पहले इनका उपनाम रम्ज था, पीछे हातिम हुआ। शाह हातिम का दीवान बहुत बड़ा था। पहले-पहल जब उनका दीवान लोगों के सामने आया, तब किसी ने कहा—शाह साहब, आपका दीवान तो दीवानों का बाप मालूम होता है। शाह साहब उस समय तो चुप रहे। पर थोड़े दिनों बाद उन्होंने उसे काट-छाँटकर छोटा कर दिया और नाम रक्खा—दीवान-ज़ादा। पूछने पर बताया कि यह दीवान से पैदा हुआ है, इसलिये इसका नाम दीवान-ज़ादा रख दिया है। फिर भी पाँच हज़ार शेर उसमें रह ही गये। फ़ारसी में भी इनका एक छोटा-सा दीवान है।

भाषा के सुधार की तरफ, ऐसा कहा जाता है कि सबसे पहले हातिम ही ने ध्यान दिया था। शगिर्दों की गजलों में इसलाह देते वक्त ये भावों ही पर नहीं, भाषा पर भी ध्यान देते थे।

यहाँ शाह हातिम के कुछ शेर पाठकों की भेंट किये जाते हैं:—

१

फ़कीरों से सुना है हमने 'हातिम'।
मज़ा जीने का मर जाने में देखा।।

२

हिज्र की ज़िन्दगी से मौत भली।
कि जिसे सब कहें विसाल हुआ।।

३

यहाँ नालों से मिलता है पियारा।
अबस देखै है ज़ाहिद इस्तख़ारा।।
मैं पाया हूँ वले तुझ चश्म का भेद।
न माँगूँगा कभी इनका इशारा।।
निहाले दोस्ती को काट डाला।
दिखाकर शोख़ ने अबरू का आरा।।
लिया उस गुल-बदन का हमने बोसा।
तो क्या चूमा रक़ीबों ने हमारा।।
कई आलाम किये हैं क़त्ल उनने।
करे क्या एकला 'हातिम' बेचारा।।

४

जिसको देखा सो यहाँ दुश्मने-जाँ है अपना।
दिल को जाने थे हम अपना सो कहाँ है अपना।।

५

छुपा नहीं जा-बजा हाज़िर है प्यारा।
कहाँ वह चश्म जो मारे नज़ारा।।

जुदा नहिं सब सेती तहक़ीक़ कर देख।
मिला है सब से औ सब से है न्यारा ।।
मुसाफ़िर उठ तुझे चलना है मंज़िल।
बजै है कूच का हरदम नक़ारा ।।
मिसाले बहर मौजें मारता है।
किया है जिसने इस जग सों किनारा ।।
सयाने ख़ल्क से यूँ भागते हैं।
कि जूँ आतिश सेती भागै है पारा ।।
समझकर देख सब जग सीख माहीं।
कहाँ हैगा सिकन्दर कहाँ दारा ।।
कहै हैं अहले उर्फ़ां उसको जीता।
जो मरकर इश्क़ में दुनिया सूँ हारा ।।
सफ़ा कर दिल के आईने को 'हातिम'।
देखा चाहे सजन गर आशकारा ।।

६

हरयक सख़ुन हुआ है हमारा मिसाले क़ंद।
शीरीं लबाँ के जब सेती बोसे लिये हैं हम ।।

७

आबेहयात जाके किसू ने पिया तो क्या ?
मानिन्द ख़िज़र जग में अकेला जिया तो क्या ?
शीरीं लबाँ सूँ संग दिलों को असर नहीं।
फ़रहाद काम कोहकुनी का किया तो क्या ?
मुहताजगी सूँ मुझको नहीं एकदम फ़राग़।
हमने जहाँ में नाम को 'हातिम' किया तो क्या ?

८

उसके क़दमों से लगी रहती है दिन रात हिना।
ख़ूब दुनिया में बसर करती है औक़ात हिना ।।

९

तुम्हारे गुञ्चा लब के शौक़ में गुलशन की सब कलियाँ ।
चमन में सुन ख़बर आने की इस्तक़बाल को चलियाँ ।।
लगन में तुझ सितमगर के अजब मजलिस में ग़म गुज़रा ।
शमा रो रो के सारी रात सर-ता-पा खड़ी जलियाँ ।।

१०

तुम तो बैठे हुये ये आफ़त हो ।
उठ खड़े हो तो क्या क़यामत हो ।।
मुफ़लिसी और मिज़ाज ऐ 'हातिम' !
क्या क़यामत करे जो दौलत हो ।।

११

कामिलों का यह सख़ुन मुद्दत सूँ मुझको याद है ।
जग मों बे महबूब जीना ज़िन्दगी बरबाद है ।।

१२

हर सुबह उठ बुतों से मुझे राम राम है ।
ज़ाहिद तेरी नमाज़ को मेरा सलाम है ।।

१३

लाम नस्तालीक़ का है उस बुते काफ़िर की जुल्फ़ ।
हम तो काफ़िर हों अगर ताबा न हों इसलाम के ।।

१४

मैं नातवान हुआ इस क़दर कि मुद्दत से ।
न लब से नाला न सीने से आह निकले हैं ।।
ज़बाने ख़ल्क़ भी 'हातिम' अजब तमाशा है ।
जिधर वह निकले उधर वाह वाह निकले है ।।

मज़मून

मज़मून उपनाम; शेख़ शर्फ़ुद्दीन नाम; शेख फरीदुद्दीन शंकरगंज के वंशज; जाजमऊ इलाक़ा अकबरावाद के रहनेवाले; पेशा सिपहगरी; जन्म-काल अज्ञात; मृत्यु-काल १७४५ ई० ।

अवस्था में बड़े होने पर भी ये अपने से छोटे खान आरज़ू से अपनी कविता में इसलाह लेते थे । इनके दाँत नज़ले से टूट गये थे । इससे आरज़ू इन्हें 'शायर बेदाना' कहा करते थे ।

रोज़गार की तलाश में ये घर से दिल्ली आये थे और ज़ीनतुल्मसाजिद नामक मसजिद में उतरे थे । दिल्ली में ये सिपहगरी करते थे । जब दिल्ली पर तबाही आई, तब इन्होंने भी हथियार खोल दिये और मज़मून बाँधना शुरू किया । अपने समय के उस्तादों में इनकी गिनती थी । ये बड़े प्रसन्न-चित्त, अच्छी कट-छँट के और 'यारबाश' आदमी थे ।

इनके मरने पर इनके समकालीन मिरज़ा रफ़ी सौदा ने यह ग़ज़ल कही थी—

लिये मै उठ गया साक़ी मेरा भी पुर हो पैमाना ।
इलाही किस तरह देखूँ मैं इन आँखों से मैख़ाना ।।
बिनायें उठ गईं यारो ग़ज़ल के ख़ूब कहने की ।
गया मज़मून दुनिया से रहा सौदा सो मस्ताना ।।

इससे मज़मून की लोक-प्रियता का अनुमान किया जा सकता है ।

यहाँ मज़मून के कुछ शेर नमूने के लिये दिये जाते हैं—

१

अफ़सोस मार झटपट दिल को रखे हैं अटका ।
किस साहरों से सीखा ज़ुल्फ़ों ने तेरी लटका ।।

२

ख़ूबों को जानता था गरमी करेंगे मुझ से ।
दिल सर्द हो गया है जब से पड़ा है पाला ।।

३

नहीं है ज़ाहिदों को मै सेती काम ।
लिखा है उनकी पेशानी में सिरका ।।

४

हमने क्या-क्या न तेरे ग़म में ऐ महबूब ! किया ।
सब्रे अय्यूब किया गिरियए याक़ूब किया ।।

५

कूँचे में बेवफ़ा के मारे गये है आशिक़ ।
निकला है एक मज़मूँ भागों से अपने जीता ।।

६

हँसी तेरी पियारे फुलझड़ी है ।
यही गुंचे के दिल में गुल झड़ी है ।।

७

तीरे मिज़गाँ बरसते है मुझ पर ।
आबे पैकाँ का इस तरफ़ है ढाल ।।

८

तुझ बिन ज़बस कि पानी जारी किये है रोकर ।
चश्मों से मैं अब अपने बैठा हूँ हाथ धोकर ।।

९

अहवाल पेशे दिलवर कुछ मत कहो हमारा ।
आता है नाम मेरा सुनकर उसे पसीना ।।

१०

शर्म से पानी हो जावें सब रक़ीब ।
जो मेरा यूसुफ़ मिले आ चाह से ।।

११

वही दिलदार खुश आता है जो होवे बाँका ।
खूब लगती नहीं तेग जो खमदार नहीं ।।

१२

क्या हुआ जो खत मेरा पढ़ता नहीं ।
जानता है खूब वह मजमून को ।।

१३

जब से चाहा है तेरा चाहे-जक़न ।
आब चश्मों से मेरे जारी है ।।

१४

चला किश्ती में जब आगे से वह महबूब जाता है ।
कभू आँखें भर आती है कभूँ दिल डूब जाता है ।।

१५

मेरे आईनए दिल से तेरा नक्श ।
जो देखा तो किसी सूरत न जावे ।।

१६

मजमूँ तू शुक्र कर कि तेरा नाम सुन रक़ीब ।
गुस्से से बुत-सा हो गया लेकिन जला तो है ।।

जानजानाँ

मज़हर उपनाम; शम्सुद्दीन नाम; जानजानाँ पुकारने का नाम; बाप का नाम मिर्ज़ा जान; जन्म-काल १६६८ ई०; मृत्यु-काल १७८१ ई०।

इनका जन्म कालाबाग़ इलाके मालवा में हुआ था। इनके पिता आलमगीर के दरबार में मनसब थे। बादशाह आलमगीर ने इनका नाम जानजानाँ रक्खा। यद्यपि बाप ने शम्सुद्दीन नाम रक्खा था; पर बादशाह के रखे हुए नाम के आगे वह नहीं चला। इनके बाप भी शायर थे और 'जानी' उनका उपनाम था। १६ वर्ष की अवस्था में इनके बाप मर गये। ये ३० वर्ष की उम्र तक मदरसों और ख़ानकाहों की ख़ाक छानते रहे। सूफियों और संतों के सत्संग का इनको बड़ा शौक़ था। सैकड़ों हिन्दू-मुसलमान इनके शिष्य थे।

बचपन ही से ये सौन्दर्योपासक थे। कुरूप पुरुषों की गोद में जाते ही न थे और रूपवान की गोद से उतरते ही न थे। शायरी का शौक़ भी बचपन ही से था। जब वे दिल्ली आये, उन दिनों ताबाँ नामके एक नवयुवक के सौन्दर्य की बड़ी चर्चा थी। मज़हर ने उससे घनिष्ठता पैदा की और वे उसके आशिक हो गये।

मज़हर जानजानाँ कुछ बहुत पढ़े-लिखे न थे। पर रङ्ग-ढङ्ग, बोल-चाल, रहन-सहन, कट-छँट और अदब-क़ायदे के बड़े पाबंद थे। उनके साथ बैठनेवालों को बहुत सावधान रहना पड़ता था। अशिष्ट व्यवहार को वे सहन न कर सकते थे।

एक दिन एक नवाब साहब मुलाक़ात के लिये आये। प्यास लगने पर स्वयं सुराही से उँडेलकर उन्होंने पानी पिया; पर पानी पीकर उन्होंने आबख़ोरा सीधा न रक्खा। जानजानाँ आपे से बाहर हो गये। बिगड़कर

बोले—अजीब बेवक़ूफ़ अहमक़ था, जिसने तुम्हें नवाब बना दिया, जो सुराही पर आबख़ोरा भी रखना नहीं जानता।

सुकुमारता इनमें इतनी थी कि एक दिन दरज़ी ने टोपी ज़रा-सी टेढ़ी बना दी, उसे पहनकर निकले तो सिर में दर्द हो आया।

मौलवी ग़ुलाम यहिया किसी दैवी प्रेरणा से मिर्ज़ा जानजानाँ के मुरीद होने दिल्ली आये। उनकी दाढ़ी बहुत बड़ी थी। जुमा के दिन जामे मसजिद में मिर्ज़ा साहब से उनकी भेंट हुई। उन्होंने अपना अभिप्राय प्रकट किया। मिर्ज़ा जानजानाँ ने पहले तो उन्हे ग़ौर से देखा और फिर कहा—पहले दाढ़ी को तरशवाकर भलेमानसों की-सी सूरत बनाइये, तब हमारे यहाँ तशरीफ़ लाइयेगा। भला, यह रीछ की-सी सूरत जब मुझे अच्छी नहीं मालूम होती, तो ख़ुदा को कब पसन्द आयेगी?

मुल्ला तीन दिनों तक घर बैठे रहे; पर जब लगातार तीनों दिन तक दैवी प्रेरणा होती रही, तब मिर्ज़ा साहब की तरह दाढ़ी कतरवाकर वे मुरीदों में दाख़िल हुए।

सैयद इन्शाअल्ला खाँ से मिर्ज़ा जानजानाँ मज़हर की भेंट हुई थी। इन्शा ने उस भेंट की चर्चा अपनी एक पुस्तक में की है।

मज़हर साहब का एक दीवान फ़ारसी में है, जिसे उन्होंने ६० वर्ष की उम्र में बीस हज़ार शेरों में से एक हजार शेर चुनकर तैयार किया था। उर्दू में भी दीवान है, पर वह पूरा नहीं है। भाषा वही सौदा और मीर की है। ग़ज़लें सब आशिक़-माशूकों के चोचलों से भरी हैं। सौदा ने इनके शेरों की ख़ूब दिल्लगी उड़ाई है। वे लिखते हैं—

'मज़हर' का शेर फ़ारसी औ' रेख़ता के बीच।
'सौदा' यक़ीन जान कि रोड़ा है बाट का॥
आगाहे फ़ारसी तो कहें उसको रेख़ता।
वाक़िफ़ जो रेख़ता के ज़रा होवे ठाट का॥
सुनकर वो यह कहे कि नहीं रेख़ता है यह।
औ रेख़ता भी है तो फ़िरोज़शह की लाट का॥

अलक़िस्सा इसका हाल यही है जो सच कहूँ ।
कुत्ता है धोबी का कि न घर का न घाट का ।।

मिर्ज़ा साहब ने एक धोबिन घर में डाल ली थी । आखिरी शेर में उधर भी संकेत है ।

इनके निधन की घटना बड़े ही खेदजनक ढंग से हुई । मुहर्रम के दिन थे; ताज़िये निकल रहे थे । ये छत पर बैठे देख रहे थे । कहा जाता है कि उनके मुँह से निकल गया कि बारह सौ बरस बाद यह हल्ला-गुल्ला करना और मातम मनाना, काग़ज़ और बाँस के ढाँचों की इतनी इज्जत करना अक्ल की बात नहीं ।

ताजियावालों ने इसे सुन लिया । नवीं की रात थी । रात के समय एक व्यक्ति मिठाई का टोकरा लेकर आया । द्वार बन्द था । उसने पुकारा और कहा कि मैं मुरीद हूँ । भेंट-पूजा लेकर आया हूँ । मज़हर साहब बाहर निकले । निकलते ही उसने तमंचा मारा । गोली छाती के पार हो गई । वह तो भाग गया और ये मूर्छित होकर गिर पड़े । तीन दिनों तक जीवित रहे, पर पीड़ा से बेचैन रहते थे । ये तीन दिन इन्होंने बड़े धैर्य से काटे ।

शाहआलम बादशाह को मालूम हुआ तो उसने कहला भेजा कि हुलिया बतायें तो हम उसे पकड़वाकर दंड दें । मज़हर साहब ने उत्तर भेजा कि मैं अब मृत्यु की राह में हूँ । मरे को मारना अपराध नहीं है । घातक मिले तो आप दंड न दें, मेरे पास भेज दें ।

अंत में मुहर्रम की दसवीं रात के समय ये इस संसार से चल बसे । मृत्यु के कुछ दिन पहले ही से इन्हें अपना अन्त-काल निकट आया जान पड़ता था । इस बात का संकेत ये अपने शेरों में भी करते थे और मित्रों से भी बातचीत के समय कहा करते थे ।

मृत्यु से थोड़े ही दिन पहले एक व्यक्ति शागिर्द होने और इसलाह लेने के लिये आया । इन्होंने कहा—अब समय कुछ और है । इसलाह के होश-हवास किसे हैं ? एक शेर याद आता है, इसे ही इसलाह समझो—

लोग कहते है मर गया मज़हर ।
फिल हक़ीक़त में घर गया मज़हर ।।

मज़हर साहब को किसने मारा ? इस विषय में बड़ा विवाद है । कोई कहता है सुन्नी ने मारा, कोई कहता है शिया ने । हकीम क़ुदरतुल्ला खाँ क़ासिम का कथन है कि मज़हर साहब प्रायः हज़रत अली के विरुद्ध शेर कहा करते थे । इसी से बिगड़कर किसी सुन्नी ने उन्हें मार डाला ।

दिल्ली में चितली क़बर के पास ये दफ़न हुए थे । वह अब खानकाह कहलाती है । क़ब्र पर इन्ही का यह शेर लिखा है—

बलाहे तुरबते मन याफ़तन्द अज़ ग़ैब तहरीरे ।
कि ई मक्तूलरा जुज बेगुनाही नेस्त तकसीरे ।।

मज़हर साहब रहन-सहन के जैसे पाबन्द थे, वैसे ही भाषा की सफ़ाई पर भी उनका बहुत ध्यान था । उर्दू के पुरानेपन को उन्होंने काट-छाँटकर बहुत सुधारा । उनके शिष्यों में मुख्य मीर मुहम्मद बाकर, बसावन लाल 'बेदार', ख्वाजा अहसानुल्ला खाँ 'बयान' और इनामुल्ला खाँ 'यक़ीन' थे । इन सब के भी दीवान हैं और ये भी अच्छे शायर थे ।

मज़हर साहब के कुछ शेर, जो हाथ आये, पाठकों के मनोविनोदार्थ यहाँ दिये जाते हैं—

१

चली अब गुल के हाथों से लुटाकर कारवाँ अपना ।
न छोड़ा हाय बुलबुल ने चमन में कुछ निशाँ अपना ।।
य' हसरत रह गयी क्या क्या मजे से जिन्दगी करते ।
अगर होता चमन अपना गुल अपना बागबाँ अपना ।।
मेरा जी जलता है उस बुलबुले-बेकस की गुरबत पर ।
कि जिसने आसरे पर गुल के छोड़ा आशियाँ अपना ।।
जो तूने की सो दुश्मन भी नहीं दुश्मन से करता है ।
ग़लत था जानते थे तुझको जो हम मेहरबाँ अपना ।।

कोई आज़ुरदः करता है सजन अपने को ए ज़ालिम !
कि दौलत ख़्वाह अपना 'मज़हर' अपना जानेजाँ अपना ।।

२

गरचे अल्ताफ़ के क़ाबिल य' दिले ज़ार न था ।
लेकिन इस जौरो-जफ़ा का भी सज़ावार न था ।।
लोग कहते हैं मुवा मज़हरे बेकस अफ़सोस ।
क्या हुआ उसको, वह इतना भी तो बीमार न था ।।

३

जवाँ मारा गया ख़ूबाँ के बदले मीरज़ा 'मज़हर' ।
भला था या बुरा था, ज़ोर कुछ था, ख़ूब काम आया ।।

४

य' दिल कब इश्क़ के क़ाबिल रहा है ।
कहाँ इसको दिमाग़ो दिल रहा है ।।
ख़ुदा के वास्ते इसको न टोंको ।
यही यक शहर में क़ातिल रहा है ।।
नहीं आता इसे तकिया प आराम ।
य' सर पाँवों से तेरे हिल रहा है ।।

५

अगर मिलिये तो ख़फ़्क़त है वगर दूरी क़यामत है ।
ग़रज़ नाज़ुक दिमागों को मुहब्बत सख़्त आफ़त है ।।
कोई लेवे दिल अपने की ख़बर या दिलबर अपने की ।
किसी का यार जब आशिक़ कहीं हो, क्या क़यामत है ।।

६

तौफ़ीक़ दे कि शोर से यकदम तो चुप रहे ।
आख़िर मेरा य' दिल है इलाही जरस नहीं ।।

७

रुसवा अगर न करना था आलम में यों मुझे ।
ऐसी निगाहे-नाज़ से देखा था क्यों मुझे ।।

नाजी

नाजी उपनाम; सय्यद मुहम्मद शाकिर नाम; निवास-स्थान दिल्ली; जन्म-मरण का ठीक पता नहीं। मुहम्मदशाह के ज़माने मे थे। ये मुहम्मद-शाह के एक दरबारी अमीरखाँ के न्यामतखाने के दारोग़ा थे। शाह मुबारक आबरू से अपनी कविता में इसलाह लेते थे। इनका भी दीवान है। निन्दात्मक कविता ये अच्छी कर लेते थे। सब की ग़लतियाँ निकाला करते थे। पर स्वभाव विनोदी था, इससे लोगों को हँसाते भी थे।

बड़े गर्म-मिज़ाज और बात-बात में उलझ पड़नेवाले आदमी थे। एक बार जिसके पीछे पड़ गये, फिर उसको जी छुड़ाना कठिन हो जाता था। ये जवानी ही में मर गये थे।

नादिरशाह के हमले के वक्त मुहम्मदशाह की सेना की जो दुर्गति हुई, उसका वर्णन नाजी ने बड़ा दिलचस्प किया है। उसमें से नमूने के दो बंद यहाँ दिये जाते हैं:—

लड़े हुये तो बरस बीस उनको बीते थे।
दुआ के जोर से दाई दवा के जीते थे।
शराबें घर की निकाली मज़े से पीते थे।
निगारो नक्श में ज़ाहिर गोया कि चीते थे।
गले में हँसलियाँ बाजू ऊपर तिला के नाल॥
क़जा से बच गया मरना नहीं तो ठाना था।
कि मैं निशान के हाथी ऊपर निशाना था।
न पानी पीने को पाया वहाँ न खाना था।
मिले थे धान जो लश्कर तमाम छाना था।
न ज़फ़ों मतबखो दूकाँ न ग़ल्व वो बक्काल॥

यहाँ नाजी के कुछ आशिक़ाना शेर लिखे जाते हैं—

१

मुझको बातों में लगा मालूम नहीं क्या-क्या किया।
ले चला जी के तईं मुँह देखता मैं रह गया॥

२

देख मोहन तेरी कमर की तरफ़।
फिर गया मानी अपने घर की तरफ़।
जिन ने देखे तेरे लबे-शीरीं।
नज़र उनकी नहीं शकर की तरफ़॥
है मुहाल उनका दाम में आना।
दिल है उन सब बुतों का ज़र की तरफ़॥
तेरे रुख़सार की सफ़ाई देख।
चश्म दाना नहीं हुनर की तरफ़॥
हश्र में पाकबाज़ है नाजी।
बद अमल जायँगे सक़र की तरफ़॥

३

रंग तेरा गंदुमी देख औ बदन मख़मल सा साफ़।
होश खोकर आदमी भूलै है अपनी खुद व ख्वाब॥

४

ज़ुल्फ़ के हल्के में देखा जब से दाना खाल का।
मुर्ग दिल आशिक़ का तब से सैद है इस जाल का॥
गंदुमी चेहरे को अपने ज़ुल्फ़ में पिनहाँ न कर।
हिन्दुआँ सुनकर मुबादा शोर डालें काल का॥

५

ऐ सबा! कह बहार की बातें।
उस बुते गुलज़ार की बातें॥

छोड़ते कब हैं नक़द दिल को सनम ।
जब य' करते हैं प्यार की बातें ।।

६

है ग़रज़ मिलने में न उल्फ़त कुछ इस बेदर्द को ।
पूछता है क़ाने-ज़र आशिक के रंगे ज़र्द को ।।

७

इन बुतों को हम फ़क़ीरों से कहो क्या काम है ?
यह तो तालिब ज़र के है और ह्याँ ख़ुदा का नाम है ।।

८

वज़ीफ़ा रागिनी के सुर में ज़ाहिद कुफ्र है मत पढ़ ।
नहीं तसबीह तेरे हाथ में यह रागमाला है ।।

९

अगर हो वह बुते हिन्दू कभू अशनान को नंगा ।
भँवर में देखकर जमुना उसे गोता में जा गंगा ।।

१०

हुआ जब आइने में जलवागर मै तब लिया बोसा ।
जो आया अपने काबू में तो फिर मुँह देखना क्या है ।।

११

उस रुखे रोशन की जो कोई याद में मशगूल है ।
मेहर उसके रूबरू सूरजमुखी का फूल है ।।

१२

तसव्वुर से तेरे रुख के गई है नींद आँखों से ।
मुक़ाबिल जिसके हो खुरशीद क्योंकर उसको ख्वाब आवे ।।

१३

आज तो 'नाजी' सजन से करले अपना अर्ज़े हाल ।
मरने जीने का न कर बिसवास, होना हो सो हो ।।

ताबाँ

ताबाँ उपनाम; मीर अब्दुल हई नाम; जन्म-स्थान दिल्ली; जन्म-मरण के समय का ठीक पता नहीं। 'गुलशने हिन्द' के लेखक ने लिखा है कि उन्होंने उनको १७८६-८७ में लखनऊ में देखा था। फैलन साहब लिखते हैं कि १७९७ ई० तक वे जीवित थे।

उन दिनों दिल्ली में ताबाँ के रूप की बड़ी प्रशंसा थी। लोग उन्हें दूसरा यूसुफ़ कहते थे। उनके गोरे तन पर काली पोशाक ऐसी खिलती थी कि देखनेवाले लहालोट हो जाते थे।

ताबाँ की खूबसूरती की खबर यहाँ तक फैली कि बादशाह ने भी सुना। उन्हें भी देखने का शौक़ हुआ। एक रोज़ उसी राह से सवारी निकली, जिस राह में ताबाँ का मकान था। मकान के सामने पहुँचकर बादशाह ने आबेहयात (बादशाही ज़बान में पानी) माँगा। ताबाँ मोढ़े पर बने-ठने बैठे थे। बादशाह पानी पीकर उन्हें देखते हुये चले गये।

ताबाँ के रूप पर सारा शहर न्योछावर था; पर वह भी किसी के रूप पर आशिक़ थे। सुलेमान नामका एक लड़का था। ताबाँ उसी पर आसक्त थे। यद्यपि उसका वियोग उनको सहन नहीं करना पड़ता था; तथापि वे रात-दिन उसी के इश्क़ में आहें भरा करते और रोया करते थे। शराब में रात-दिन मस्त रहते थे। मेले-तमाशों में जाने के बड़े शौक़ीन थे। रईसों की महफ़िलें उनके बिना बेजान-सी रहती थीं। वे साधारण हैसियत के थे, पर अपने रूप और गुण की बदौलत अमीरों की तरह ऐश-आराम से रहते थे। इधर उनके चाहनेवालों में मिर्जा जानजानाँ और सौदा भी थे। सौदा कभी-कभी इसलाह भी दिया करते थे। माशूक़ जब खुद किसी का आशिक़ हो, तब उसके आशिक़ की तो बड़ी दुर्गति होती है। हज़रत

जानजानाँ ने अपने एक शेर में अपने दिल की यह तकलीफ़ कह ही डाली। वह शेर यह है—

कोई लेवे दिल अपने की ख़बर या दिलबर अपने की।
किसी का यार जब आशिक़ कहीं हो, क्या क़यामत है!

ताबाँ का भी दीवान है। वह शाह हातिम और मीर मुहम्मद अली 'हश्मत' के शागिर्द और मिर्ज़ा जानजानाँ के मुरीद थे।

जानजानाँ ताबाँ के आशिक़ थे। जलसों मे एक ओर शेर पढ़े जाते थे, दूसरी ओर जानजानाँ ताबाँ की ओर टकटकी लगाये देखा करते थे। ताबाँ भी बहुत शोख़ और चिबिल्ले हो चले थे। कभी-कभी जलसे ही में उठकर, कुछ कहने की आज्ञा लेकर जानजानाँ के कान के पास मुँह ले जाकर वाहियात बाते भी बक आया करते थे। जानजानाँ भी इस रस के रसिया थे। ताबाँ के साथ कानाफूसी करना उन्हें भी बड़ा प्रिय लगता था। खेद की बात है कि ताबाँ का भरी जवानी में देहान्त हो गया। ताबाँ की मृत्यु पर दिल्ली में शोक मनाया गया। मीर तक़ी ने भी अपनी एक ग़ज़ल के मक़ते में अपना शोक प्रकट किया है—

दाग़ है ताबाँ अलुर्रहमतः का छाती प 'मीर'।
हो नजात उसको बेचारा हमसे भी था आशना।।

ताबाँ जिस मकान में रहते थे, अभी तक वह मौजूद है।
अब ताबाँ के शेरों का मुलाहज़ा फ़रमाइये——

१

सरसब्ज़ ख़त से दूना हुआ हुस्न यार का।
आख़िर ख़िज़ाँ ने कुछ न उखाड़ा बहार का।।
किस किस तरह से दिल में गुज़रती हैं हसरतें।
है वस्ल से ज़ियादा मज़ा इन्तज़ार का।।

२

नहीं कोई दोस्त अपना यार अपना मेहरबाँ अपना।
सुनाऊँ किसको ग़म अपना अलम अपना बयाँ अपना।।

बहुत चाहा कि आवे यार या इस दिल को सब्र आवे।
न यार आया न सब्र आया दिया जी में नदाँ अपना।।
क़फ़स में तड़पे हैं यह अन्दलीबाँ सख़्त बेबस हैं।
न गुलशन देख सकते हैं न यह सब आशियाँ अपना।।
मुझे आता है रोना ऐसी तनहाई प ऐ 'ताबाँ'।
न यार अपना न दिल अपना न तन अपना न जाँ अपना।।

३

रहता हूँ ख़ाको-ख़ूँ में सदा लोटता हुआ।
मेरे ग़रीब दिल को इलाही य' क्या हुआ।।
मैं अपने दिल को गुंचये-तसवीर की तरह।
या रब कभू खुशी से न देखा खिला हुआ।।
हम बेकसी प अपनी न रोवें तो क्या करें।
दिल सा रफ़ीक़ हाय! हमारा जुदा हुआ।।

४

बेताबियों की इश्क़ के करता है क्या इलाज।
'ताबाँ' यही जो दिल है तो आराम हो चुका।।

५

आशना हो चुका हूँ मैं सब का।
जिसको देखा सो अपने मतलब का।।

६

सुन फ़स्ल गुल खुशी हो गुलशन में आइयाँ हैं।
क्या बुलबुलों ने देखो धूमें मचाइयाँ हैं।।
बीमार है जमीं से उठती नहीं असा बिन।
नरगिस को तुमने शायद आँखें दिखाइयाँ हैं।।
आईना रूबरू रख औ अपनी छब दिखाना।
क्या खुदपसंदियाँ हैं क्या खुदनुमाइयाँ हैं।।

खुरशीद गर कहूँ मैं तो जान है वह पीला।
जो मह कहूँ तेरा रू उस पर तो छाइयाँ हैं।।
जब पान खा के प्यारा गुलशन में जा हँसा है।
बे इख्तियार कलियाँ तब खिलखिलाइयाँ हैं।।
अब मेहरबाँ हुआ है 'ताबाँ' तेरा सितमगर।
आहें तेरी किसी ने शायद सुनाइयाँ हैं।।

७

होटों प तेरे ज़ालिम मिस्सी की यह धड़ी है।
या उनके तईं किसी ने मलमल किया है नीला।।

८

सुलेमाँ क्या हुआ गर तू नज़र आता नहीं मुझको।
मेरी आँखों की पुतली में तेरी तसवीर फिरती है।।

९

तबस्सुम देख उस गुंचा दहन का।
जिगर टुकड़े हुआ है हर कली का।।

१०

मैं ख़्वाब में देखा है उसे मेहँदी लगाये।
क्या जानिये किस किस का लहू आज बहेगा।

११

हरम को छोड़ रहूँ क्यों न बुतक़दे में शेख।
कि याँ हरएक को है मर्तबा खुदाई का।।

१२

हँसता है गुल चमन में तो नालाँ है अन्दलीब।
दो दिल खुशी न देखे कभी इस जहाँ के बीच।।

१३

जाती है उम्र हरदम हमको ख़बर नहीं है।
क्या जानिये कि कबतक हम बेख़बर रहेंगे।।

१४

मुक़र्रर नहीं कोई 'ताबाँ' का मज़हब।
कहीं है मुसलमाँ कहीं बरहमन है।।

१५

तुझे ऐ माहरू ! मैं शमा से तशबीह दूँ क्योंकर।
कि कुछ निस्बत नही है उसको वह नारी है तू नूरी।।

१६

इन बुतों को तो मेरे साथ मुहब्बत होती।
काश बनता मैं बरहमन हीं मुसलमाँ के यवज़।।

१७

महफ़िल के बीच सुन के मेरे सोज़े दिल का हाल।
बे इख्तियार शमा के आँसू ढुलक पड़े।।

१८

क़यामत मुझ प कल की रात उसके हिज्र में लाई।
न आया यार मेरा आज भी वह रात फिर आई।।

१९

इश्क़ क्या शै है किसी कामिल से पूछा चाहिये।
किस तरह जाता है दिल बे दिल से पूछा चाहिये।।

यकरङ्ग

यकरङ्ग उपनाम; मुस्तफ़ा कुलीखाँ नाम; निवास-स्थान दिल्ली; जन्म-मरण के समय का ठीक पता नहीं। मुहम्मदशाही दरबार के अमीरों में थे, और बड़ी शान-शौकत और सम्मान की ज़िंदगी बिताते थे। दिल्ली के गुणी शायरों में गिने जाते थे। पहले आबरू से इसलाह लेते थे। वृद्धावस्था में जानजानाँ मज़हर को अपना कलाम दिखा लेते थे। दिल्ली ही में इनका देहान्त हुआ।

ये बड़े आशिक़-मिज़ाज और हरफ़न-मौला थे। गाने-बजाने का भी अच्छा शौक़ रखते थे। रात-दिन यारों की सुहबत ही में काटते थे। अपने नाम के अनुसार अपने ज़माने के ये यकरङ्ग ही थे। इनका दीवान मिलता है। इनके कुछ शेर सुनिये—

१

यकरङ्ग पास और सजन कुछ नहीं बिसात।
रखता है ये दो नैन कहो तो नज़र करे।।

२

जो कोई तोड़ता है गुञ्चये गुल।
दिले बुलबुल शिकस्त करता है।।

३

यकरङ्ग ने तलाश किया है बहुत वले।
मज़हर सा इस जहाँ में कोई मीरज़ा नहीं।।

४

पारसाई औ जवानी क्योंके हो।
एक जागा आग पानी क्योंके हो।।

५

जिसके दर्दे-दिल में कुछ तासीर है।
गर जवाँ भी है तो मेरा पीर है।।

६

लगे हैं खूब कानों में बुतों के।
सखुन यकरङ्ग के गोया गुहर हैं।।

७

जुदाई से तेरी ऐ संदली-रङ्ग।
मुझे यह ज़िंदगानी दर्दे सर है।।

८

मुझको मालूम यों हुआ गुल से।
फूल जाते है उससे दौलतमंद।।

९

शबे फ़ुरकत में रो-रोकर सहर की।
हक़ीक़त क्या कहूँ मैं रात भर की।।
परेशाँ हम हुये ज़ुल्फ़ उनकी उलझी।
बला मेरे लगाई अपने सर की।।

१०

क्या जानिये विसाल तेरा हो किसे नसीब।
हम तो तेरे फिराक़ में ऐ यार! मर चले।।

११

रौनक़े इसलाम तेरे रू से है।
कुफ़्र का रिश्ता तेरे गेसू से है।।

१२

बेक़रारों के तईं आराम दिल।
ऐ मेरे प्यारे! तेरे पहलू से है।।

१३

तदबीर का कुछ बस नहीं तक़दीर के आगे।
तक़दीर की तहरीर मिटाई नहीं जाती।।
क्या पूछते हो हाल शबे-वस्ल का हम से।
यह बात है परदे की बताई नहीं जाती।।
मोती की गई आब उतर चढ़ नहीं सकती।
घट जाती है इज़्ज़त तो बढ़ाई नही जाती।।
दो रङ्गियों के बज़्म में रङ्गत नहीं जमती।
जबतक ग़ज़ल 'यकरङ्ग' की गाई नहीं जाती।।

१४

अब तो सजन हमीं को तबाही है तुम्हीं से।
हम सब तरफ़ से यार तुम्हारे गले पड़े।।

यकरङ्ग ने हिन्दी में भी कुछ कहा है। तबीयत के बड़े रङ्गीले थे ही; रसीले-रसीले दोहे, ठुमरियाँ, दादरे बहुत से बना दिये; जो अबतक भी वेश्याओं और कथकों में खूब प्रचलित हैं। यदि वे सब यकरङ्ग ही के बनाये है, तो संदेह नहीं कि वे बड़े अच्छे मुहूर्त में लिखे गये थे, जो अब तक अमर है।

अब यकरङ्ग की हिन्दी-रचनायें सुनिये—

१

होली

हरदम हरनाम भजो री।
जो हरदम हरिनाम को भजिहौ मुक्ति हो जइहैं तोरी।
पाप छोड़ के पुन्य जो करिहौ तब बैकुंठ मिलो री।।
करम से धरम बनो री।।
'यकरङ्ग' पिय से जाय कहो कोई हर घर रङ्ग मचोरी।
सुर नर मुनि सब फाग खेलत हैं अपनी अपनी ओरी।।
खबर कोई लेत न मोरी।।

२

होली आई पिया नहिं आये।
मोरा बिन पिया जिया घबराये, जाय कहाँ छाये।।
फाग खेलै सब अपने पिया सँग हमरा जिया ललचाये।
सगरी रैन मोहिं कलपत बीती नैन नीर भरि आये।।
जाय कहो कोई 'यकरङ्ग' पिय सों तुम बिन कछु न सुहाये।
फाग मास जल जाये, कौन अब गाये बजाये।।

३

पिया को मिलन कैसे जाओगी गोरी।
रङ्ग रूप सब जात रहोरी।।
ना अच्छे गुन ढँग ना अच्छे जोबना,
मैली भई अब चूँदर तोरी।।
करके सिङ्गार पिया घर जइयो,
तब देखि हैं पिया तोरी ओरी।।
जाय कहो कोई 'यकरङ्ग' पिय सों,
तुम बिन या गत हो गई मोरी।।

४

कजली

बरखा लागा मोरी गुइयाँ सैयाँ नाहीं आये मोर।
रिमझिम-रिमझिम मेघवा बरसे घटा उठी घनघोर।।
बिजली चमके बादर गरजे बरसत है चहुँओर।
पपिहा बोले कोयल कूके मोर मचावत सोर।।
चुन-चुन कलियाँ सेज बिछाइउँ बिन पिया हो गये भोर।
'यकरङ्ग' पिया सों जाय कहो कोउ राह तकत हौं तोर।।

५

ठुमरी

काहे गोरी चाल चलत अठिलात।
अटपट चाल चलो जिन गोरी पतली कमर बल खात।
चञ्चल चाल तोरे नैन रसीले जिहि चितवत बलि जात।
'यकरङ्ग' पिय को बेगि ले आओ कलपत हूँ दिनरात॥

६

मितवा रे नेकी से बेड़ा पार।
जो मितवा तुम नेकी न करिहउ बुड़ि जइहौ मँझधार॥
नेक करम से धरम सुधरिहैं जीवन के दिन चार।
'यकरँग'[१] माँगो खैर हशर की जासे हो निसतार॥

७

बाट चलत मोरी रोकत डगरिया ढीठ लँगर जसुदा को कन्हैया।
लपट झपट मोरी गागर फोरी मसक मसक गई मोरी सारी चुनरिया॥
बरजोरी मोरी बहियाँ मरोरी लचक गई मोरी पतरी कमरिया।
'यकरङ्ग' पिया कहो कैसे करूँ मैं अबही निपट मोरी बारी उमिरिया॥

८

साँवलिया मन भाया रे, बाँके यार।
सोहनी सूरत मोहनी मूरत हिरदै बीच समाया रे, बाँके यार।
देस में ढूँढा बिदेस में ढूँढ़ा अन्त को अन्त न पाया रे, बाँके यार!
काहू में अहमद काहू में ईसा काहू में राम कहाया रे, बाँके यार।
सोच विचार कें कहें 'यकरँङ्ग' पिया जिन ढूँढ़ा तिन पाया रे, बाँके यार॥

९

निसदिन जो हरि का गुन गाये रे, बिगड़ी बात वाकी सब बन जाये रे।
लाख कहूँ माने नहिं एको अब कहो कब लग हम समझाये रे।
सोच विचार के करो कुछ 'यकरँग' आखिर बनत बनत बन जाये रे॥

१०

बलमा रे झुलनियाँ मुहि का आज मँगा दे।
रतन जड़ाउ की झुलनी मँगा दे तो बिच लाल लगा दे॥
झुलनी पहन के पिया घर जइहों निरगुन राह बता दे।
झुलनी भी ला दे सारी मँगा दे 'यकरँग' रङ्ग रँगा दे॥

११

दादरा

कहो कैसे बलमा बने मोरी तोरी।
जब लग बात न मनिहौ मोरी॥
सूनी सेज मोहि कल न परत है तुम सौतिन सँग राज रजोरी।
जब से गये मोरी सुधि न लीनी तुम बिन प्रान तजत ह गोरी॥

१२

दोहरा

सम्पत तो हँस के कटे, बिपत कटे ना रोय।
'यकरँग' आसा राखिये, हरि चाहे सो होय॥
रङ्ग वही यकरँग रँगो, कि सबसे रँगा न जाय।
'यकरँग' तुम वह रँग रँगो, कि हर रँग में मिल जाय॥

१३

पहेलियाँ

'यकरँग' वह घर कौन है, जामें हैं दस द्वार।
ऐसे घर में जो बसे, वाको क्या इतबार॥

जीव और देह

१४

'यकरँग फल वह कौन जो, बिन बोये फरियायँ।
बढ़त बढ़त इतने बढ़ें, आखिर को झुकि जायँ॥

स्तन

फ़ुग़ाँ

फ़ुग़ाँ उपनाम; अशरफ़ अली खाँ नाम; पिता का नाम मिर्ज़ा अली खाँ 'निकस्ता'; ये अहमदशाह बादशाह के कोका (पोष्य भाई) थे। ज़रीफ़ुल्मुल्क कोका खाँ बहादुर की इनको उपाधि मिली थी। शायरी में ये 'नदीम' के शागिर्द थे। कोई-कोई इन्हें कज़लिबास खाँ 'उमीद' का शागिर्द बताते हैं। पर यह बात ग़लत है। खुद फ़ुग़ाँ ने 'नदीम' को अपना उस्ताद स्वीकार किया है——

हरचन्द अब नदीम का शागिर्द है फ़ुग़ाँ।
दो दिन के बाद देखिये उस्ताद हो गया।।

× × ×

दश्ते जुनूँ में क्यों न फिरूँ मैं बरहना पा।
अब तो फ़ुग़ाँ नदीम मेरा रहनुमा हुआ।।

अहमदशाह अब्दाली के हमलों से जब दिल्ली-दरबार की रौनक़ जाती रही, तब फ़ुग़ाँ भी मुरशिदाबाद चले गये। वहाँ से अवध आये। दिल्ली के निवासी सभ्यता और उठ-बैठ की कला में आदर्श माने जाते थे। नवाब शुजाउद्दौला का समय था। उन्होंने इनकी बड़ी ख़ातिर की। ये नवाब के दरबारियों में हो गये।

पर ये नाज़ुक मिज़ाज बहुत थे। एक दिन नवाब के हाथ से किसी तरह इनका कपड़ा जल गया। ये अप्रसन्न होकर अज़ीमाबाद चले गये। वहाँ राजा सितावराय ने इनका लखनऊ से भी बढ़कर सम्मान किया। जीवन भर ये वहीं रहे। वहीं इन्होंने १७७२ ई० में क़ब्र में निवास लिया।

फ़ुगाँ ने उर्दू-भाषा को और भी उन्नति दी है। सौदा भी इनकी कविता के क़ायल थे। ज़ौक भी इनकी बड़ी तारीफ़ किया करते थे। इनका दीवान मिलता है, जिसमें लगभग २००० शेर होंगे। उसमें गज़लें, कसीदे, मकते, रुबाइयाँ, मुखम्मस सभी कुछ हैं। लतीफ़ा कहने में ये एकता थे और बड़े हाज़िर-जवाब भी थे।

इनका स्वभाव बड़ा तेज़ था। ज़राभर भी स्वभाव के विरुद्ध हुआ कि बारूद में आग लग गयी। एक दिन का जिक्र है कि राजा सिताब-राय के दरबार में इन्होंने एक ग़ज़ल पढ़ी, जिसका तुक था—तालियाँ और जालियाँ। साहित्य के सब मर्मज्ञों ने उसकी प्रशंसा की। दरबार में एक जुगनू मियाँ थे। मसखरे थे। राजा साहब के विशेष कृपा-पात्रों में थे। उन्होंने कहा—आपने सब क़ाफ़िये तो बाँधे, पर एक तालियाँ रह गई। इन्होंने कुछ उत्तर न दिया। राजा साहब ने कहा—नवाब साहब, जुगनू मियाँ क्या कहते हैं? इन्होंने कहा—महाराज, मैंने इसे यों ही छोड़ दिया था। अब आप आज्ञा दें तो अब भी कह सकता हूँ। राजा साहब ने कहा—हाँ, कुछ कहना तो चाहिये। इन्होंने उसी वक़्त यह पढ़ा—

जुगनू मियाँ की दुम जो चमकती है रात को।
सब देख देख उसको बजाते हैं तालियाँ॥

सब दरबार चहचहा उठा। मियाँ जुगनू सिटपिटाकर रह गये। अब इनकी शायरी का कुछ मज़ा लीजिये—

१

ऐ शेख! अगर कुफ्र से इसलाम जुदा है॥
पस चाहिये तसवीह में जुन्नार न होता॥

२

काश आ जावे क़यामत औ कहे दीवाने हश्र।
वह 'फ़ुगाँ' जो है गरेबाँ-चाक फ़रियादी कहाँ॥

३

खत दीजियो छुपा के मिले वह अगर कहीं।
लेना न मेरे नाम को ऐ नामाबर कहीं॥
बादे सबा तू उक़दहकशा उसकी हूजियो।
मुझसा गिरफ्त दिल अगर आवे नज़र कहीं॥
बावर अगर तुझे नहीं आता तो देख ले।
आँसू कहीं ढलक गये लख़्ते-जिगर कहीं॥
ईज़ा 'फ़ुगाँ' के हक़ में यहाँ तक रवा नहीं।
ज़ालिम य' क्या सितम है? ख़ुदा से भी डर कहीं?

४

मेरा मुक़ाम है उस सर ज़मीं प आरोतन।
उधर को जाना है आख़िर जिधर गये अपने॥
किसे तू ढूँढ़ता फिरता है ऐ 'फ़ुगाँ' तनहा।
कि इस सरा के मुसाफ़िर तो घर गये अपने॥

५

सनम बता तो ख़ुदाई का मुझको क्या न हुआ।
हज़ार शुक्र कि तू बुत हुआ ख़ुदा न हुआ॥
कबाब हो गया आख़िर को कुछ बुरा न हुआ।
अजब यह दिल है जला तो भी बे-मज़ा न हुआ॥

६

बे फ़ायदा है आरज़ूए सीमो-ज़र फ़ुगाँ।
किस जिन्दगी के वास्ते यह दर्दे सर फ़ुगाँ॥
जलते हैं इस गली में फ़रिश्ते के पर फ़ुगाँ।
क्योंकर फिरे वहाँ से तेरा नामाबर फ़ुगाँ।

७

कहते है फ़स्ले गुल तो चमन से गुज़र गयी।
ऐ अन्दलीब तू! न क़फ़स बीच मर गयी॥

इतना कहाँ रफ़ीक़ बसारत है चश्म की ।
दिल भी उधर गया मेरी जीधर नज़र गयी ।।
मुझसे जो पूछते हो तो हर हाल शुक्र है ।
यों भी गुज़र गयी मेरी वों भी गुज़र गयी ।।

८

तार की तरह कहीं ज़ुल्फ़े-बुताँ से टूटे ।
या इलाही दिले बीमार बला से छूटे ।।

९

ज़इफ़ है दिले बीमार इस क़रीने से ।
अटक के आह निकलती है मेरे सीने से ।।

१०

खा पेंचो-ताब मुजको डसें अब व कालियाँ ।
ज़ालिम इसीलिये तैंने ज़ुल्फ़ें थीं पालियाँ ।।
हर बात बीच रूठना हरदम में नाखुशी ।
हर आन दूखना मुझे हरवक्त गालियाँ ।।
हमने शबे फ़िराक़ में सुनता है ऐ 'फ़ुगाँ ।
क्या ख़ाक सोके हसरतें दिल की निकालियाँ ।।
यह था ख़याल ख्वाब में हैगा य' रोज़ वस्ल ।
आँखे जो खुल गईं वही रातें हैं कालियाँ ।।

मीर

मीर उपनाम; मीर मुहम्मद तक़ी नाम; पिता का नाम मीर अब्दुल्ला; जन्म-स्थान आगरा; जन्म-काल १७०९ ई०; मृत्यु-काल १८०९ ई०।

मीर सर्वसाधारण में ख़ाने आरज़ू के भांजे करके प्रसिद्ध थे। ये मीर अब्दुल्ला की पहली स्त्री से हुये थे। पहली स्त्री के मर जाने पर मीर अब्दुल्ला ने ख़ाने आरज़ू की बहन से दूसरा विवाह किया। इसी सम्बन्ध से ये ख़ाने आरज़ू के भांजे कहलाते हैं।

इनका रंग गेहुँआ, क़द मझोला और शरीर पतला था। बचपन ही में पिता के मर जाने पर ये दिल्ली चले आये। ख़ाने आरज़ू ही ने इन्हें पाला-पोसा, लिखाया-पढ़ाया और शायरी करना सिखलाया। पर किसी धार्मिक मतभेद के कारण ये उन से अलग हो गये।

अपनी कविता के लिये ये दिल्ली में इतने प्रसिद्ध हो गये थे कि इनकी ग़ज़लों को लोग भेंट की तौर पर एक शहर से दूसरे शहर को ले जाते थे। पर अपनी स्वतंत्र प्रकृति के कारण इनका जीवन सदा ग़रीबी ही में बीता।

ये संसार में किसी को बड़ा नहीं समझते थे। फिर भला ख़ुशामद-पसन्द संसार इनकी ओर शुभ दृष्टि क्यों करने लगा? शाहआलम के दरबार में इनका बड़ा सम्मान था सही, दरबार में अमीर-उमरावों की महफ़िलों में इनके लिये सम्मान का स्थान रहता था सही, पर केवल सम्मान से तो पेट नहीं भर सकता। अपना और कुटुम्ब का पालन-पोषण करने के लिये तो धन की ज़रूरत होती है।

शाहआलम का ख़जाना ख़ाली पड़ा था। ख़ाली ऊपरी चमक-दमक शेष थी, उससे इनको क्या लाभ था?

धनाभाव से खिन्न होकर सन् १७७४ ई० में इन्होंने दिल्ली छोड़ी। दिल्ली से लखनऊ तक का पूरा गाडी-भाड़ा भी इनके पास न था। विवश होकर इन्होंने एक व्यक्ति को साझे में साथ कर लिया और दिल्ली को अंतिम प्रणाम किया।

दोनों व्यक्ति गाड़ी में बैठकर चलें। कुछ दूर आगे चलकर उस व्यक्ति ने कुछ बात शुरू की। इन्होंने उसकी ओर से मुँह फेर लिया। कुछ देर के बाद उसने फिर कोई बात चलाई; मीर साहब ने झुँझलाकर कहा—जनाब, आपने किराया दिया है, गाड़ी में बैठिये। बातों से आपका क्या सम्बन्ध? उसने कहा—हज़रत, हर्ज क्या है? राह में बातों से ज़रा जी बहलता है। मीर साहब बिगड़कर बोले—आपका तो जी बहलता है और मेरी जबान बिगड़ती है।

खैर; जैसे-तैसे लखनऊ पहुँचे। वहाँ एक सराय में उतरे। उस दिन शहर में कहीं मुशायरा था। इनको समाचार मिला। ये अपने को रोक न सके। उसी वक़्त ग़ज़ल लिखी, और कपड़े पहन कर मुशायरे में जा बैठे। पुराना रंग-ढंग, खिड़कीदार पगड़ी, पचास गज़ के घेर का जामा, एक पूरा थान कमर से बँधा, पटरीदार तह किया हुआ एक रूमाल, मशरू का पाजामा, नागफनी की अनीदार जूती, जिसकी नोक डेढ बीते ऊँची थी, कमर में एक ओर सीधी तलवार, दूसरी ओर कटार, हाथ में छड़ी।

इस रूप में इनको देखकर लखनऊ की नई कट-छँट के बाँके-तिर्छे नौजवान हँसे बिना न रह सके। मीर साहब बेचारे हाथ के तंग, ज़माने के सताये हुये, इस हँसी से और भी मर्माहत हुये और एक ओर बैठ गये।

सब ग़ज़लें पढ़ चुके। इनके सामने जब शमा आई तो सब की दृष्टि इन पर पड़ी। किसी-किसी ने पूछा—आप का वतन कहाँ है? मीर साहब ने समस्या-पूर्ति वाली गज़ल मे आगे लिखे मिसरे मिलाकर पढ़ा—

क्या बूदो-बाश पूछो हो पूरब के साकिनो!
हमको ग़रीब जान के हँस-हँस पुकार के॥

दिल्ली जो एक शहर था आलम में इन्तख़ाब।
रहते थे मुन्तख़िब ही जहाँ रोज़गार के।।
उसको फलक ने लूट के वीरान कर दिया।
हम रहने वाले हैं उसी उज़ड़े दयार के।।

सबको इनका परिचय प्राप्त हुआ। सबने इनसे अपने हास-परिहास के लिये क्षमा चाही। सबेरा होते-होते सारे शहर में मीर साहब के आने का समाचार फैल गया। नवाब आसफुद्दौला ने भी सुना। उन्होंने इनका दो सौ रुपये महीना वेतन नियत कर दिया।

क्रोध तो इनकी नाक पर रहता था। एक दिन नवाब ने एक ग़ज़ल चाही। ये उसके दूसरे-तीसरे दिन फिर गये, तो नवाब ने पूछा—मीर साहब, हमारी ग़ज़ल ले आये। मीर साहब आपे से बाहर हो गये। बोले—जनाब आली! मज़मून मेरी जेब मे तो भरे नही रहते कि आपने चाहा और मैंने ग़ज़ल निकाल कर देदी। नवाब बेचारे अच्छे स्वभाव के थे, कहने लगे—अच्छा, जब इच्छा हो, कह दीजियेगा।

एक दिन नवाब ने बुला भेजा। जब ये पहुँचे, तब वे हौज के किनारे खड़े थे। हाथ में छड़ी थी, पानी मे हरी-लाल मछलियाँ तैरती थीं, वे उनका खेल देख रहे थे। मीर साहब को देखकर वे बहुत प्रसन्न हुये और कहने लगे—मीर साहब! कुछ कहिये। मीर साहब ने ग़ज़ल सुनाना प्रारंभ किया।

नवाब सुनते जाते थे और छड़ी से मछलियों के साथ खेलते भी जाते थे। मीर साहब को यह अच्छा न लगता था। ये प्रत्येक शेर पर कुछ ठहर जाते थे। इन्हे तो एक 'वाह', 'वाह' कहने वाला चाहिये था। उधर नवाब का ध्यान दूसरी ओर था। नवाब केवल यह कहते जाते थे कि हां, पढ़िये। चार शेर पढ़कर मीर साहब ठहर गये और बोले—पढ़ें क्या? आप तो मछलियों से खेलते है, इधर ध्यान दे तो पढ़ूं। नवाब ने कहा—जो शेर होगा, वह आपही ध्यान आकर्षित कर लेगा। मीर साहब को यह बात बहुत बुरी लगी। ग़ज़ल को जेब में रखकर ये घर चले आये और फिर कभी न गये।

एक दिन ये बाजार से होकर जा रहे थे कि नवाब की सवारी सामने से आ रही थी। चार आँखें होते ही नवाब ने प्रेम से पूछा—मीर साहब, आप तो मुझको भूल ही गये, कभी आते ही नही। मीर साहब ने कहा—बाज़ार में खड़े-खड़े बातें करना यह कोई सभ्यता नही। यह बातचीत का क्या अवसर है? तात्पर्य यह कि मीर घर में जाकर बठ रहे और निराहार रहकर दिन बिताने लगे। अपने एक शेर में मीर कहते हैं—

फिरते है मीर ख्वार कोई पूछता नहीं।
इस आशिक़ी में इज्ज़ते सादात भी गई॥

मीर साहब की रहन-सहन बहुत सादी और पवित्र थी। स्वभाव अवश्य रूखा था, इसी से दूसरों को प्रसन्न रखना इनके लिये असंभव था। ग़रीब रहकर, भूख और प्यास से विकल होकर इन्होंने जीवन बिता दिया, पर कभी दीनता प्रगट न की। नौकरी के नाम से इन्हें चिढ़ थी। संसार से विरक्त-सा होकर ये घर में बैठे रहते। लोग इन्हें बददिमाग़ कहते, ये सुनते और समझते, पर किसी की परवा न करते थे। एक शेर में कहते है—

हालत तो यह कि मुझको ग़मों से नहीं फ़राग़।
दिल सोज़िशे-दरूनी से जलता है जूँ चिराग़॥
सीना तमाम चाक है सारा जिगर है दाग़।
है नाम मजलिसों में मेरा मीर बददिमाग़॥
अज़बस कि कम दिमाग़ी ने पाया है इश्तिहार।

निर्धनता का इतना दंड भोगते रहने पर भी इनका मस्तिष्क बहुत ऊँचा उठता था। ये अपने विचारों के बादशाह थे। न किसी के सामने कभी सिर झुकाया, न इनकी भौं का टेढ़ापन गया; मुसीबतो पर मुसीबतें झेलते रहे और अपनी आन-बान के साथ गर्दन ऊँची किये ही असार संसार से चले गये। इनके एक-एक पद में इनके हृदय की करुणा उमड़ी पड़ती है।

ये कभी किसी की बड़ाई न करते थे। यहाँ तक कि फ़ारसी के अजर-

अमर कवि हाफ़िज़ और सादी के शेर सुनकर भी ये सिर हिलाना अपरा समझते थे ; साधारण शायरों की तो बात ही क्या ?

एक बार लखनऊ में किसी ने पूछा—क्यों हजरत ! आजकल शाय कौन-कौन हैं ? मीर साहब ने फ़रमाया—एक सौदा, दूसरा मैं। फि कुछ सोचकर, आधे मीर दर्द। एक दूसरे ने पूछा—और सोज़ ? मीर साह ने कुछ क्षुब्ध होकर कहा—क्या सोज़ भी शायर हैं ? पूछनेवाले ने कहा— आखिर नवाब आसफुद्दौला के गुरु हैं। मीर साहब ने कहा—अच्छा, ए चौथाई इन्हें भी गिन लो। कुल पौने तीन शायर हैं।

लखनऊ में एक दिन कुछ साहित्य-प्रेमियों ने एकत्र होकर मीर भेंट करनी चाही। वे इनके घर गये। बाहर से पुकारा। लौंडी ने दरवाज खोला। हाल पूछकर वह भीतर गई, और एक बोरिया लाकर ड्योढ़ी बिछा गई। एक पुराना-सा हुक्का भी साफ़ करके सामने रख गई। इ के बाद मीर साहब भीतर से बाहर आये। सामयिक शिष्टाचार के बा आगंतुकों ने कुछ शेर सुनने की इच्छा प्रगट की। मीर साहब ने पहले त कुछ टाल-मटोल की ; पर बहुत आग्रह किये जाने पर इन्होंने स्पष्ट कह दि कि मेरे शेर आपकी समझ में नहीं आ सकते। इस उत्तर से खिन्न हो पर भी उन लोगों ने फिर आग्रह किया। मीर साहब ने फिर इन्कार किया इस पर उन लोगों ने कहा—जनाब, हम लोग अनवरी और ख़ाकानी व कविताएँ समझते हैं, आपही की न समझेंगे ? मीर साहब ने कहा—य ठीक है ; पर उनकी कुंजियाँ, टीका-टिप्पणियाँ और आलोचनाएँ-प्रत्य लोचनाएँ भी तो बहुत-सी हैं। और मेरी कविता के लिये तो उर्दू के मुहाव का ज्ञान होना आवश्यक है। आप उनसे वंचित हैं।

यह कहकर मीर साहब ने यह शेर पढ़ा—

इश्क बुरे हीं ख़याल पड़ा है चैन गया आराम गया।
दिल का जाना ठैर गया है सुबह गया या शाम गया ।।

फिर कहने लगे —आप इसमें कहेंगे कि ख़याल शब्द को ख़्याल क कहा ? इसका तो यहाँ यही उत्तर है कि मुहावरा यही है।

जब नवाब आसफ़ुद्दौला मर गये, तब सआदतअली खाँ गद्दी पर बैठे। मीर साहब दरबार जाना पहले ही छोड़ चुके थे। किसी ने इनको बुलाया भी नहीं। एक दिन नवाब की सवारी जा रही थी। ये रास्ते की एक मसजिद पर बैठे थे। सवारी सामने आई। सब उठकर खड़े हुये। मीर साहब वैसे ही बैठे रहे। सैयद इन्शा ख़वासो में थे। नवाब ने पूछा--इन्शा, यह कौन व्यक्ति है? इन्शा ने कहा--हुजूर, यह वही व्यक्ति है, जिसके चर्चे आप प्रायः सुन चुके हैं। जीविका का तो वह हाल और मिज़ाज का यह हाल। आज भी भूखा ही बैठा होगा।

सआदत अली खाँ ने दरबार में आकर मीर साहब को फिर बहाल किया और एक हजार रुपया भेंट-स्वरूप भेजा। चोबदार लेकर गया; पर मीर साहब ने वापस कर दिया और कहा--मसजिद में भिजवा दीजिय, में इतना मुहताज नहीं। सआदत अली खाँ यह उत्तर सुनकर चकित हो गये। मुसाहबों के समझाने-बुझाने से नवाब की आज्ञा से सैयद इन्शा खिलअत लेकर गये और उन्होंने अपनी ओर से समझाया कि भाई! अपने ऊपर न सही, अपने बाल-बच्चों पर तो दया करो। मीर साहब ने कहा--साहब, वे अपने मुल्क के बादशाह हैं, मैं अपने मुल्क का बादशाह हूँ। कोई अनजान मेरे साथ ऐसा व्यवहार करता तो मुझे कुछ मलाल न होता। वे मुझे अच्छी तरह जानते हैं और मेरी दशा से भी अच्छी तरह जानकार है। इतने दिनों के बाद दस रुपिल्ली के एक नौकर के हाथ खिलअत भेजी। मुझे भूखों मरना स्वीकार है, पर यह अपमान मुझे असह्य है।

पर सैयद इन्शा भी तो बातों के बादशाह थे। उन्होंने ऐसे ढंग से समझाया कि मीर साहब को स्वीकार करना ही पड़ा। ये दरबार में भी कभी-कभी जाने लगे। नवाब सआदत अली खाँ इनकी ऐसी इज़्ज़त करते थे कि अपने सामने बैठाते थे और अपना पेंचवाँ पीने को देते थे।

मीर साहब को बहुत कष्ट में देखकर लखनऊ के एक रईस बाल-बच्चों सहित इनको अपने घर ले गये और रहने के लिये एक अच्छा-सा मकान दिया। बैठक की बग़ल में एक बाग़ था और बाग़ की ओर खिड़कियाँ थीं। रईस

का अभिप्राय यह था कि खिड़कियों की राह बाग़ को देखकर मीर साहब की तबीयत हरी रहेगी। जब ये मकान में पहुँचे, तब खिड़कियाँ बन्द थीं। कई बरस बीत गये, पर इन्होंने खिड़कियाँ खोली ही नहीं।

एक दिन एक मित्र मिलने आया। उसने कहा—इधर बाग़ है। आप खिड़कियाँ खोलकर क्यों नहीं बैठते? मीर साहब ने आश्चर्य में आकर कहा—हाँअ्! क्या इधर बाग़ भी है? मित्र ने कहा—इसीलिये तो आप को यह मकान दिया गया था कि आप बाग़ से अपना जी बहलाते। मीर साहब ने अपनी ग़ज़लों की ओर, जो फटे-पुराने काग़ज़ों पर लिखी हुई आस-पास बिखरी पड़ी थीं, देखकर कहा—मैं तो इस बाग़ की चिन्ता में ऐसा उलझा रहता हूँ कि उस बाग़ की मुझे ख़बर ही नहीं। यह कहकर चुप हो रहे।

क्या अद्भुत कवि का जीवन है! बरसों बीत गये, खिड़की खोलने तक का अवकाश न मिला! इन्होंने संसार के बाग़ की ओर तो न देखा, पर भगवान् ने इनकी कविता के बाग़ को वह गौरव प्रदान किया कि उसमें सदा बसंत ही रहता है।

वसंत के आने के दिन थे। मीर साहब एक दिन ध्यान में मस्त टहल रहे थे। रह-रहकर यह मिसरा पढ़ते जाते थे—

अब के भी दिन बहार के यों हीं गुज़र गये।

एक सज्जन मिलने आये, और सलाम करके बैठ गये। थोड़ी देर तक बैठे रहकर वे उठे और सलाम करके चले गये। मीर साहब को कुछ पता न चला। सम्भव है, ये दूसरे चरण की पूर्ति के ध्यान में संसार से दूर थे।

गवर्नर-जनरल या दूसरे बड़े-बड़े साहब जब कभी लखनऊ आते, तो मिलने के लिये मीर साहब को भी बुलाते। पर मीर साहब एक न एक बहाना करके कभी मिलने नहीं जाते थे। कारण पूछने पर एक बार इन्होंने बताया था कि मुझसे जो कोई मिलता है तो या तो मुझे फ़क़ीर के ख़ान्दान का विचार करके या मेरी कविता का। पर साहब को ख़ान्दान से कोई मतलब नहीं।

मेरी कविता वे समझते नहीं। हाँ, कुछ इनाम देंगे। पर ऐसी भेंट अपमान के सिवा और कुछ नहीं।

महल्ले में अत्तार की एक दूकान थी। मीर साहब कभी-कभी उस दूकान पर जा बैठते थे। अत्तार के एक नौजवान लड़का था, जो खूब बन-ठनकर निकलता था। मीर साहब को अच्छा न लगता था। एक जगह आप कहते हैं।—

नाज़ुकियतें अत्तार के लौंडे में बहुत हैं।
इस नुस्खा की कोई न रही हमको दवा याद।।

पर उर्दू-कवि की तबीयत ही तो, कभी उस लौंडे पर प्रसन्न भी हो गये और यह कह डाला।—

'मीर' क्या सादे हैं बीमार हुवे जिसके सबब।
उसी अत्तार के लड़के से दवा लेते हैं।

यहा तक तो मीर साहब के बाहरी ढङ्ग-ढाँचे की बातें हुई। अब उनके भीतर के सौन्दर्य पर ध्यान दीजिये।

मीर साहब की सारी ज़िन्दगी एक प्रकार से मुफ़लिसी ही मे बीती। इससे इनकी कविता में करुण-रस का प्रवाह बड़े जोरों से बह रहा है। इन्होंने जो कुछ कहा है, अनुभव की गहराई से कहा है। एक-एक शब्द से असह्य मर्म-व्यथा टपकती है।

अपने विषय में भी इन्होंने बहुत कुछ कहा है। एक जगह कहते है —

तेरी चाल टेढ़ी तेरी बात रूखी।
तुझे 'मीर' समझा है याँ कम किसू ने।।

एक जगह पर क्या खूब कहा है —

मुझको शायर न कहो 'मीर' कि साहब मैंने।
दर्दो-ग़म कितने किये जमा तो दीवान किया।।

एक जगह फ़रमाते हैं—

बातें हमारी याद रहें फिर बातें ऐसी न सुनियेगा।
पढ़ते जो किसी को सुनियेगा तो देर तलक सिर धुनियेगा।।

मीर उर्दू-कवियों में एक स्थान रखते हैं। ये अपने रंग के एक ही कवि थे। ग़ालिब मीर के विषय में कहते हैं—

रेख़ते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो 'ग़ालिब'।
कहते हैं अगले ज़माने में कोई मीर भी था॥

'ग़ालिब' अपना यह अक़ीदा है बक़ौले 'नासिख़'।
आप बेबहरा है जो मुआतक़दे मीर नहीं॥

ज़ौक़ भी कहते हैं—

न हुआ पर न हुआ मीर का अन्दाज़ नसीब।
'ज़ौक़' यारों ने बहुत ज़ोर ग़ज़ल में मारा॥

मीर साहब की ग़ज़लों के छः बड़े दीवान पाये जाते हैं; जिनमें हज़ारों ग़ज़लें हैं। मीर की ग़ज़लें सौदा की ग़ज़लों से कहीं अच्छी हैं। उनमें साफ़ और सुलझी हुई बातें इस सुन्दरता से बैठा दी गई हैं कि सुनकर तबीअत फड़क उठती है। मुहावरों का ऐसा सुन्दर प्रयोग मीर के किसी पूर्ववर्ती कवि ने नहीं किया था।

ग़ज़लों के सिवा उनकी सात मसनवियाँ हैं, और प्रायः सब इश्क पर हैं।

मीर साहब फ़ारसी के उम्दा शेरों पर उर्दू का मिसरा भी लगा दिया करते थे। यह उनकी ख़ास चीज़ थी। मीर साहब ने कभी किसी की प्रशंसा में कोई कविता नहीं लिखी। इन्हे अपने ही से फ़ुरसत नहीं मिलती थी, दूसरे के गुण-दोष कहाँ देखते फिरते। सिर्फ़ एक मसनवी शिकारनामा में नवाब आसफ़ुद्दौला के शिकार का वर्णन किया है। इन्होंने अपने मुर्ग़े, बिल्ली, बिल्ले, कुत्ते और बकरी पर भी मसनवी लिखी है।

एक बार बरसात में ये एक अमीर के साथ मेरठ गये। रास्ते में बड़ी तकलीफ़ें झेलनी पड़ीं। उस पर उन्होंने बरसात की मुसीबत पर एक कविता लिख डाली। एक अजगरनामा भी लिखा है। दिल्ली के कवियों में उसके विरुद्ध बड़ी चहल-पहल रही।

मीर साहब ने 'निकातुश्शुअरा' नाम की एक पुस्तक १७५२ ई० में

१७

कहते थे कि यूँ कहते यूँ कहते अगर आता।
सब कहने की बातें हैं कुछ भी न कहा जाता।।

१८

बुत परस्ती को तो इस्लाम नहीं कहते हैं।
मातक़िद कौन है 'मीर' ऐसी मुसलमानी का।।

१९

उल्टी हो गयीं सब तदबीरें कुछ न दवा ने काम किया।
देखा इस बीमारे-दिल ने आख़िर काम तमाम किया।।
अहदे जवानी रो रो काटी पीरी में लीं आँखें मूँद।
यानी रात बहुत थे जागे सुबह हुई आराम किया।।
'मीर' के दीनो-मज़हब को अब पूछते क्या हो उनने तो।
क़श्क़ा खींचा दैर में बैठा कबका तर्क इस्लाम किया।।

२०

मुँह तका ही करे है जिस तिस का।
हैरती है य' आईना किस का।
शाम से कुछ बुझा सा रहता है।
दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिस का।।
थे बुरे मग़बचों के तेवर लेक।
शेख़ मैख़ाने से भला खिसका।।
फ़ैज़ ऐ अब्र चश्मे-तर से उठ।
आस दामन वसीअ है इसका।।
ताब किसको जो हाले-'मीर' सुने।
हाल ही और कुछ है मजलिस का।।

२१

मर रहते जो गुल बन तो सारा यह खलल जाता।
निकला ही न जी वरना काँटा-सा निकल जाता।।

२२

सब गये होशो-सब्रो-ताबो-तवाँ।
लेकिन ऐ दाग़ ! दिल से तू न गया ।।

२३

मेहर की तुझसे तवक्का थी सितमगर निकला।
मोम समझे थे तेरे दिल को सो पत्थर निकला ।।
अश्क तर क़तए ख़ूँ लख्ते जिगर पारए दिल।
एक से एक अदू आँख मे बेहतर निकला ।।
हमने जाना था लिखेगा तु कोई हर्फ़ ऐ मीर !
पर तेरा नामा तो इक शौक़ का दफ्तर निकला ।।

२४

टुक गोरे ग़रीबाँ की कर सैर कि दुनिया मे।
इन जुल्म-रसीदों पर क्या क्या न हुआ होगा ।।

२५

हम फ़क़ीरों से बे अदाई क्या।
आन बैठे जो तुमने प्यार किया ।।
सख्त काफ़िर था जिसने पहले 'मीर'।
मज़हबे-इश्क इख्तियार किया ।।

२६

दो दिन गये कि आँखे दरिया सी बहतियाँ थीं।
सूखा पड़ा है अब तो मुद्दत मे यह दोआबा ।।

२७

इब्तिदाये-इश्क है रोता है क्या ?
आगे आगे देखिये होता है क्या ?

२८

दिल मुझे उस गली में ले जाकर।
और भी खाक मे मिला लाया ।।

इब्तिदा ही में मर गये सब यार।
इश्क़ की कौन इन्तहा लाया।।
अब तो जाते हैं बुतकदे से 'मीर'।
फिर मिलेंगे अगर ख़ुदा लाया।।

२९

बुलबुल ग़ज़ल-सराई आगे हमारे मत कर।
सब हमसे सीखते हैं अन्दाज़ गुफ़्तगू का।।

३०

ग़म रहा जब तक कि दम में दम रहा।
दिल के जाने का निहायत ग़म रहा।।
सुबह पीरी शाम होने आयी 'मीर'।
तू न चेता याँ बहुत दिन कम रहा।।

३१

वसीयत 'मीर' ने मुझको यही की।
कि सब कुछ होना तो आशिक न होना।।

३२

ऐ शोरे-क़यामत हम सोते ही न रह जायँ।
इस राह से निकले तो हमको भी जगा लेना।।

३३

काम में कुदरत के कुछ बोला नहीं जाता है हाय!
खूबरू उसको किया लेकिन बहुत बदखू किया।।

३४

बेखुदी ले गई कहाँ हमको।
देर से इन्तज़ार है अपना।।
जिसको तुम आसमान कहते हो।
सो दिलों का गुबार है अपना।।

३५

मक्के गया मदीने गया करबला गया ।
जैसा गया था वैसा ही चल फिर के आगया ।।
देखा हो कुछ उस आमदो-शुद में तो मैं कहूँ ।
ख़ुद गुम हुआ तो बात की तह आप पा गया ।।

३६

वस्ल मे रंग उड़ गया मेरा।
क्या जुदाई को मुँह दिखाऊँगा ।।

३७

या रब ! किधर गये वे जो आदमी रविश थे।
ऊजड़ दिखाई दे है शहरो-दरो-नगर सब ।।
आलम के लोगों का है तस्वीर का सा आलम।
ज़ाहिर खुली है आंखें लेकिन है बेखबर सब ।।
'मीर' इस खराबे में क्या आबाद होवे कोई।
दीवारो दर गिरे है वीराँ पड़े है घर सब ।।

३८

हर जिस के ख्वाहाँ मिले बाज़ारे-जहाँ में।
लेकिन न मिला कोई ख़रीदारे मुहब्बत ।।

३९

फूल गुल शम्सो क़मर सारे ही थे।
पर हमें इनमें तुम्हीं भाये बहुत ।।
'मीर' से पूछा जो मैं आशिक़ हो तुम।
होके कुछ चुपके से शरमाये बहुत।

४०

सरसरी मत जहाँ से जा ग़ाफ़िल।
पाँव तेरा पड़े जहाँ टुक सोच ।।

होंठ अपना हिला न समझे बिन।
यानी जब खोले तो ज़बाँ टुक सोच।।
गुलो रंगो बहार परदे हैं।
हर अयाँ में है वह निहाँ टुक सोच।।
फ़ायदा सर झुके का शेब में 'मीर'।
पीरी से आगे ऐ जवाँ टुक सोच।।

४१

मेरे संगे मज़ार पर फ़रहाद।
रख के तेशः कहे है या उस्ताद!

४२

जी में था उससे मिलिए तो क्या क्या न कहिए 'मीर'।
पर जब मिले तो रह गये नाचार देखकर।।

४३

मर्ग इक माँदगी का वक़्फ़ा है।
यानी आगे चलेंगे दम लेकर।।

४४

आँखें लगी रहेंगी बरसों वहीं सभों की।
होगा क़दम का तेरे जिस जा निशाँ ज़मीं पर।।

४५

ऐ सबा! गर शहर के लोगों में हो तेरा गुज़ार।
कहियो हम सहरा नरवदों का तमामी हाले-ज़ार।।
खाके-देहली से जुदा हमको किया यकबारगी।
आसमाँ को थी कुदूरत सो निकाला यूँ गुबार।।
बस क़लम रख हाथ से जाने भी दे यह हर्फ़ 'मीर'।
काह के चाहे नहीं कुहसार होते बेवक़ार।।

४६

बज्म में मुँह उधर करें क्योंकर
और नीची नज़र करें क्योंकर ।
यों भी मुश्किल है वों भी मुश्किल है।
सर झुकाये गुज़र करें क्योंकर ।।
यह फ़लक पर है वह ज़मीं पर आह !
इनको ज़ेरो ज़बर करें क्योंकर ।।
दिल नहीं दर्दमन्द अपना 'मीर' ।
आहो-नाले असर करें क्योंकर ।।

४७

क्या कहिए क्या रखे है हम तुझसे यार ख्वाहिश ।
यक जाँ व सद तमन्ना यक दिल हज़ार ख्वाहिश ।।

४८

क्या पतंगे को शमअ रोए 'मीर' ।
उसकी शब को भी है सहर दरपेश ।।

४९

मीर जी ज़र्द होते जाते हो ।
क्या कहीं तुमने भी किया है इश्क़ ।।

५०

बन जो कुछ बन सके जवानी में ।
रात तो थोड़ी है बहुत है साँग ।।
'मीर' बन्दों से काम कब निकला ।
माँगना है जो कुछ ख़ुदा से माँग ।।

५१

रहे-मर्ग से क्यों डराते हैं लोग ।
बहुत इस तरफ़ से तो जाते हैं लोग ।।

५२

क्यों न देखूँ चमन को हसरत से।
आशियाँ था मेरा भी याँ परसाल ।।

५३

यही जाना कि कुछ न जाना हाय !
सो भी इक उम्र में हुआ मालूम ।।

५४

इसके कूचे से न कर शोरे क़यामत का ज़िकर।
शेख़ याँ ऐसे तो हंगामे हुआ करते हैं।।
बेबसी से तो तेरी बज़्म में हम बहरे बने।
नेको बद कोई कहे बैठे सुना करते है ।।
फ़ुरसते ख़्वाब नहीं ज़िक्रे बुताँ में हम को।
रात दिन राम-कहानी सी कहा करते हैं।।
यह ज़माना नहीं ऐसा कि कोई ज़ीस्त करे।
चाहते है जो बुरा अपना भला करते है ।।
क्या करें 'मीर जी' हम तुम से मआश अपनी अरज़।
ग़म को खाया करे है लोहू पिया करते हैं।।

५५

पढ़ते फिरेगे गलियों में इन रेख़तों को लोग।
मुद्दत रहेंगी याद ये बातें हमारियाँ ।।

५६

सैयद हो या चमार हो इस जा वफ़ा है शर्त ।
क्या आशिक़ी में पूछते हैं ज़ात के तईं ।।
आख़िर के यह सलूक हम अब तेरे देखकर ।
करते हैं याद पहली मुलाक़ात के तईं।।

५७

खोलकर दीवान मेरा देख क़ुदरत मुद्दई।
गर्चे हूँ मै नौजवाँ पर शायरों का पीर हूँ।।

५८

मैं तो ख़ूबाँ को जानता ही हूँ।
पर मुझे भी ये ख़ूब जाने हैं।।
क़ैसो फ़रहाद के व इश्क़ के शोर।
अब मेरे अहद में फ़िसाने हैं।।
मुश्को संबुल कहाँ व जुल्फ़ कहाँ।
शायरों के ये शाख़साने हैं।।
इश्क़ करते है उस परी-रू से।
'मीर' साहब भी क्या दिवाने है।।

५९

अब के जुनूँ में फ़ासला शायद ही कुछ रहे।
दामन के चाक और गरेबां के चाक में।।

६०

ज़बानें बदलते है हर आन ख़ूबाँ।
य' सब कुछ है बिगड़े जमानें की बातें।।
हमें दैरो-काबे से क्या गुफ़्तगू है।
चलीं जाती है ये सयाने की बातें।।

६१

जाय है जी नजात के ग़म में।
ऐसी जन्नत गई जहन्नम में।।
बे-ख़ुदी पर न 'मीर' की जाओ।
तुमने देखा है और आलम में।।

६२

इश्क़ करना नहीं आसान बहुत मुश्किल है।
छाती पत्थर की है उनकी जो वफ़ा करते हैं।।

६३

गो कि बुतख़ाने जा रहा हूँ मैं।
ब-ख़ुदा बा-ख़ुदा रहा हूँ मैं।।
सब गये दिल दिमाग़ ताबो तवाँ।
मैं रहा हूँ सो क्या रहा हूँ मैं।।
वर्क़ तो मैं न था कि जल बुझता।
अब्रतर हूँ कि छा रहा हूँ मैं।।

६४

खींचा है आदमी ने बहुत दूर आपको।
इस परदे में ख़याल तो कर टुक ख़ुदा न हो।।

६५

वारे दुनिया में रहो ग़मज़दा या शाद रहो।
ऐसा कुछ करके चलो याँ कि बहुत याद रहो।।

६६

ऐ ग़ाफ़िलाने दहर यह कुछ राह की है बात।
चलने को क़ाफ़िले हैं यहाँ तुम रहे हो सो।।

६७

खिलता हूँ वहाँ सुहबते रिन्दाना जहाँ हो।
मैं खुश हूँ उसी शहर से मैख़ाना जहाँ हो।।
इन उजड़ी हुई बस्तियों में दिल नहीं लगता।
है दिल में वहीं जा बसें वीराना जहाँ हो।।

६८

इब्तिदा ही में मर गये सब यार।
इश्क़ की पाई इन्तहा न कभू।।

६९

लुत्फ़ क्या हर किसू की चाह के साथ।
चाह वह है जो हो निबाह के साथ।।

७०

खीचता है दिलों को सहरा कुछ।
है मिज़ाजों में अपने सौदा कुछ।।
वैसे ज़ाहिर का लुत्फ़ है छुपना।
कम तमाशा नहीं य' परदा कुछ।।
ख़ल्क की क्या समझ मे वह आया।
आप मे तो गया न समझा कुछ।।

७१

यारो की आहो-ज़ारी होवे क़बूल क्योंकर।
उनकी ज़बाँ में कुछ है, दिल में है कुछ, दुआ कुछ।।

७२

ख़ानये दिल से ज़ीनहार बचा।
कोई ऐसे मकाँ से उठता है।।
यूँ उठे आह! उस गली से हम।
जैसे कोई जहाँ से उठता है।।

७३

सरापा आरज़ू होने ने बन्दा कर दिया हमको।
वगरना हम खुदा थे गर दिले बे मुद्दआ होते।।
फ़लक ऐ काश हमको खाक ही रखता कि उसमें हम।
ग़ुबारे-राह होते या किसू की खाके-पा होते।।

७४

आक़बत फ़रहाद मर कर काम अपना कर गया!
आदमी होवे किसी पेशे में जुरअत चाहिए।।

७५

शादी वो ग़म में जहाँ के एक से दस का है फ़र्क़।
ईद के दिन हँसिये तो दस दिन मुहर्रम रोइये।।

७६

अब करके फ़रामोश तो नाशाद करोगे।
पर हम जो न होंगे तो बहुत याद करोगे।।
कर देखोगे तुम तर्ज़े कलाम उसकी नज़र कर।
ए अहले-सख़ुन 'मीर' को उस्ताद करोगे।।

७७

फिरते फिरते आकबत आँखें हमारी मुँद गयी।
सो गये बेहोश थे हम राह के हारे हुये।।
प्यार करने का जो ख़ूबाँ हम प रखते हैं गुनाह।
उनसे भी तो पूछिये तुम इतने क्यों प्यारे हुए।।

७८

दिल किस तरह न खींचे अशआर रेख़ते के।
बेहतर किया है मैंने इस ऐब को हुनर से।।
बे ताक़ती ने दिल की आख़िर को मार रक्खा।
आफ़त हमारे जी की आई हमारे घर से।।
दिलकश य' मंज़िल आख़िर देखा तो राह निकली।
सब यार जा चुके थे आये जो हम सफ़र से।।

७९

तरफ़ होना मेरा मुश्किल है 'मीर' इस शेर के फ़न में।
युं हीं 'सौदा' कभू होता है सो जाहिल है क्या जाने।।

८०

तुमने जो अपने दिल से भुलाया हमें तो क्या?
अपने तईं तो दिल से हमारे भुलाइये।।

८१

दिलो-दीं-होशो-सबर सब ही गये।
आगे आगे तुम्हारे आने के।।

८२

ग़फ़लत में गयी आह मेरी सारी जवानी।
ए उम्र गुज़श्ता मैं तेरी क़द्र न जानी।।

८३

फ़कीराना आये सदा कर चले।
मियाँ खुश रहो हम दुआ कर चले।।
कहे क्या जो पूछे कोई हमसे 'मीर'।
जहाँ में तुम आये थे क्या कर चले।।

८४

करो तवक्कुल कि आशिक़ी में न यूँ करोगे तो क्या करोगे ?
अलम जो यह है तो दर्दमन्दों ! कहाँ तलक तुम दवा करोगे ?
जिगर में ताक़त कहाँ है इतनी कि दर्दे हिजराँ से मरते रहिये।
हज़ारों वादे विसाल के थे कोई भी जीते वफ़ा करोगे ?
अख़ीर उल्फ़त यही नहीं है कि जल के आख़िर हुए पतंगे।
हवा जो याँ की यह है तो यारो ग़ुबार होकर उड़ा करोगे।।

८५

हर कोई इस मुक़ाम पर दस रोज़।
अपनी नौबत बजाये जाता है।।
देख सैलाब इस बयाबाँ का।
कैसा सर को झुकाये जाता है।।

८६

था मुल्क जिनके ज़ेर नगीं साफ़ मिट गये।
तुम इस खयाल में हो कि नामो-निशाँ रहे।।

८७

सुनो सर गुज़श्ता हमारी ज़बानी।
सुनी गरचे जाती नहीं यह कहानी।।
मिला देता है ख़ाक में आदमी को।
मुहब्बत है कोई बला आसमानी।।

८८

फ़रहादो-कैस गुज़रे अब शोर है हमारा।
हर कोई अपनी नौबत दो दिन बजा गया है।।
ऐ 'मीर' शेर कहना क्या है कमाले-इन्सा!
यह भी ख़याल-सा कुछ ख़ातिर में आ गया है।।
शायर नहीं जो देखा तो तू है कोई साहिर।
दो चार शेर पढ़कर सब को रिझा गया है।।

८९

आलम आलम इश्क़ जुनूँ है दुनिया दुनिया तोहमत है।
दरिया दरिया रोता हूँ मैं सहरा सहरा वहशत है।।
क्या दिलकश है बज़्म जहाँ का जाते याँ से जिसे देखो।
वह ग़मदीदा रञ्जकशीदा आह सरापा हसरत है।।
आबेहयात वहीं ना जिस पर ख़िज़्रो-सिकंदर मरते रहे।
ख़ाक से हमने भरा व' चश्मा यह भी हमारी हिम्मत है।।

९०

तेरे बन्दे हम हैं ख़ुदा जानता है।
ख़ुदा जाने तू हमको क्या जानता है।।
नहीं इश्क़ का दर्द लज्जत से खाली।
जिसे ज़ौक है वह मज़ा जानता है।
मुझे जाने है आप सा ही फ़रेबी।
दुआ को भी मेरी दग़ा जानता है।।

९१

फिरते हैं 'मीर' ख्वार कोई पूछता नहीं।
इस आशिक़ी में इज्जते सादात भी गई ।।

९२

चर्ख पर अपना मदार देखिए कबतक रहे।
ऐसी तरह रोज़गार देखिए कबतक रहे ।।
गेसुओ-रुखसार यार आँखों ही में फिरते है।
'मीर' यह लैलों निहार देखिए कबतक रहे ।।

९३

बस न लग चल नसीम मुझसे कि मैं।
रह गया हूँ चिराग़ सा बुझकर ।।

९४

मिलिये उस शख्स से जो आदम होवे।
नाज़ उसको कमाल पर बहुत कम होवे ।।
हो गर्मे सखुन तो गिर्द आवे यक ख़ल्क।
खामोश रहे तो एक आलम होवे ।।

९५

मीर साहब ज़माना नाज़ुक है।
दोनों हाथों से थामिये दस्तार ।।
चार दिन का है यह झमेला सब।
सब से रखिये सलूक ही नाचार ।।

९६

ऐ तू कि याँ से आक़बतेकार जायगा।
गाफिल न रह कि क़ाफिला यकबार जायगा ।।

९७

हम खस्ता दिल हैं तुझ से भी नाज़ुक मिज़ाज तर।
त्योरी चढ़ाई तूने कि याँ जी निकल गया ।।

९८

टुक देख आँख खोल के उस दम की हसरतें।
जिस दम य' सूझेगी कि य' आलम भी ख़्वाब था।।

९९

इस तरह दिल गया कि अबतक हम।
बैठे रोते हैं हाथ मलते हैं।।
उमड़ी आती हैं आज यूँ आँखें।
जैसे दरिया कहीं उबलते हैं।।
रहम आख़िर है बैठ जा, मत जा।
सब्र कर टुक कि हम भी चलते हैं।।
तेरे बेख़ुद जो हैं सो क्या चेतें।
ऐसे डूबे कहीं उछलते हैं।।

१००

मीर के घर का हाल

क्या लिखूँ मीर अपने घर का हाल।
इस ख़राबी में मैं हुआ पामाल।।
कूचा मौज से है आँगन तंग।
कोठड़ी के हुबाब के से ढंग।।
चारदीवारी सौ जगह से ख़म।
तर तनक हो तो, सूखते हैं हम।।
लोनी लग लग के झड़ती है माटी।
आह क्या उम्र बेमज़ा काटी।।
झाड़ बाँधा है मेंह ने दिन रात।
घर की दीवारें हैंगी जैसे पात।।
वाउ में काँपते हैं जो थर थर।
उन पर रद्दा रखे कोई क्यों कर।।

कहीं घूँसों ने खोद डाला है।
कहीं चूहे ने सर निकाला है।।
कहीं घर है किसू छछूँदर का।
शोर हर कोने में है मच्छर का।।

कभू कोई सँपोलिया है फिरे।
कभू छत से हज़ारपाय गिरे।।
दब के मरना हमेशा मद्दे नज़र।
घर कहाँ साफ़ मौत ही का घर।।

ईंट मिट्टी का दर के आगे ढेर।
गिरती जाती है हौले हौले मुँडेर।।
बान झींगुर तमाम चाट गये।
भीग कर बाँस फाट फाट गये।।

पूछ मत ज़िन्दगानी कैसी है।
ऐसे छप्पर की ऐसी-तैसी है।।
जिस आला कोई खटोला खाट।
पाय पट्टी रहे हैं जिनके फाट।।

खटमलों से सियाह है सो भी।
चैन पड़ता नहीं है शब को भी।।
कीड़ा इक एक फिर मकोड़ा है।
साँझ से खाने ही को दौड़ा है।।

गर्चे बहुतों को मैं मसल मारा।
पर मुझे खटमलों ने मिल मारा।।
मलते रातों को घिस गई पोरें।
नाखुनों की हैं लाल सब कोरें।।

सोते तनहा न बान में खटमल।
आँख मुँह नाक कान में खटमल॥
दो तरफ़ से था कुत्तों का रस्ता।
काश जङ्गल में जाके मैं बसता॥

हो घड़ी दो घड़ी तो दुतकारूँ।
एक दो कुत्ते हों तो मैं मारूँ॥
चार जाते हैं चार आते हैं।
चार उफ़् उफ़् से मग़्ज़ खाते हैं॥

दिन है धूप रात को है ओस।
ख्वाबे राहत है यों से सौ सौ कोस॥
मेंह में घर के पाच छः छप्पर।
हम ग़रीबों के होते हैं सर पर॥

टट्टियाँ थीं जो आगे छप्पर के।
बहती फिरती है सहन में घर के॥
ता गले सब खड़े हैं पानी में।
ख़ाक है ऐसी ज़िन्दगानी में॥

अब तो अपना भी हाल बदतर है।
सर प गठरी है तिस प छप्पर है॥
चाक इस डौल से है हर दीवार।
जैसी छाती हो आशिकों की फ़िगार॥

घर की सूरत तो और रोती है।
छत भी बेइख़्तियार रोती है॥
मेंह एकबारगी जो टूट पड़ा।
कड़ी तख़्ता हरेक छूट पड़ा॥

ले गया पेचोताब पानी का।
कोठड़ी थी हुबाब पानी का॥
गठड़ी कपड़ा की मैं उठाई थी।
सर प भाई के चारपाई थी॥

अपना असबाब घर से हम लेकर।
अलगनी सबके हाथ में देकर॥
सफ़ की सफ़ निकली इस ख़राबी से।
ताकि पहुँचे किसी शिताबी से॥

मीर जी इस तरह से आते हैं।
जैसे कंजर कहीं को जाते हैं॥

सौदा

सौदा उपनाम; मिर्ज़ा मुहम्मद रफ़ी नाम; बाप का नाम मिर्ज़ा मुहम्मद शफ़ी; जन्म-स्थान दिल्ली; जन्म-काल १७१३ ई०; मृत्यु-काल १७८१ ई०।

सौदा के पूर्वज सिपाही-पेशा थे, और काबुल के रहनेवाले थे। मिर्ज़ा मुहम्मद शफ़ी व्यापार करते-कराते काबुल से दिल्ली आये। कुछ लोगों का कथन है कि पिता के सौदागर होने के कारण ही सौदा ने अपना उपनाम 'सौदा' रक्खा। जो हो, बाप सौदागर हो या मज़दूर, उर्दू के शायर बेटे का सौदा उपनाम हर हालत में सार्थक होता है।

सौदा पहले सुलेमान कुली खाँ के और फिर शाह हातिम के शागिर्द हुये। खान आरज़ू की संगति से भी इन्होंने साहित्यिक लाभ उठाया। पहले ये फ़ारसी में कविता लिखते थे। खान आरज़ू ने इनको सम्मति दी कि अपनी मातृ-भाषा में कविता लिखो, तो तुम्हें बड़ी कीर्ति प्राप्त होगी और तुम लोक-प्रसिद्ध होगे।

सौदा ने इस उपदेश को अपने लिये मार्ग-प्रदर्शक समझा। इन्होंने उर्दू में कविता लिखनी प्रारम्भ की। थोड़े ही समय में इनकी ऐसी प्रसिद्धि हुई कि इनकी उर्दू-कविताएँ दिल्ली ऐसे बड़े नगर में गली-कूचे, चौराहों पर सर्वसाधारण में बड़ी रुचि से पढ़ी जाने लगीं। यहाँ तक कि शाह-आलम बादशाह भी आकर्षित हुये, और वे अपना कलाम सौदा को इस-लाह के लिये देने लगे।

पर बादशाह से इनकी बहुत दिन नहीं पटी। एक दिन बादशाह ने पूछा—मिर्ज़ा, तुम कै ग़ज़लें रोज़ कह लेते हो? मिर्ज़ा ने कहा—जब

उमंग आती है तो दो-चार शेर कह लेता हूँ। बादशाह ने कहा—भई, हम तो पाख़ाने में बैठे-बैठे चार ग़ज़लें कह लेते हैं। सौदा ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—वैसी ही बू भी आती है।

यह कहकर ये दरबार से चले गये और फिर नहीं आये। बादशाह ने कई बार बुला भेजा और कहा कि हमारी ग़ज़ल बनाओ, हम तुम्हें राजकवि बना देंगे। सौदा ने कहा—आप के राज-कवि बनाने से क्या होता है? बनायेगी तो मेरी कविता मुझे राजकवि बना देगी।

सौदा घर बैठे रहे। चाहनेवाले बहुत-से थे। किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। बादशाह के दो ख्वाजासरा मेहरबाँ खाँ और बसंत खाँ की बदौलत सौदा के दिन बड़े ऐश-आराम से कटने लगे।

इनकी रचना की प्रसिद्धि यहाँ तक बढ़ी कि लखनऊ के नवाब शुजा-उद्दौला ने इन्हें पत्र में 'बिरादरमन मुशफ़िक़ मेहरबानमन' लिखकर लखनऊ बुलाया और दूत के हाथ मार्ग-व्यय के लिये पर्याप्त धन भेजा; पर सौदा को दिल्ली छोड़ना स्वीकार नहीं था। इन्होंने पत्रोत्तर के अन्त में यह रुबाई लिखकर लखनऊ जाना अस्वीकार कर दिया—

सौदा पये दुनिया तू बहर सू कबतक?
आवारा अजीं कूच बयाँ कू कबतक?
हासिल यही इससे न कि दुनिया होवे?
बिलफ़र्ज हुआ यों भी तो फिर तू कबतक?

कई वर्ष के उपरान्त सौदा के सहायक मर गये। सौदा बहुत घबराये। उन दिनों दिल्ली से भागनेवालों के लिये दो ही ठिकाने थे—लखनऊ और हैदराबाद। लखनऊ निकट था और हैदराबाद दूर। दिल्ली से जो निकलता था, सीधा लखनऊ की ओर मुँह करके चल खड़ा होता था।

सौदा भी आश्रय-दाता की तलाश में दिल्ली से निकले। उस समय इनकी अवस्था ६० या ६६ वर्ष के लगभग थी। पहले ये फर्रुख़ाबाद

के नवाब अहमद खाँ बंगश के पास कुछ दिन तक रहे और उन की प्रशंसा में कुछ क़सीदे कहे।

वहाँ से ये लखनऊ पहुँचे और नवाब शुजाउद्दौला का इन्होंने आश्रय ग्रहण किया। नवाब शुजाउद्दौला ने इनके आने से बड़ा हर्ष प्रकट किया। पर एक दिन उन्होंने कहा कि मिर्ज़ा, तुम्हारी वह रूबाई मेरे हृदय पर चित्रित हो गई है। यह कहकर उन्होंने उसे दुबारा पढ़ा। सौदा को अपनी दशा पर बड़ा शोक हुआ। उस दिन से ये फिर दरबार में न गये। यहाँ तक कि शुजाउद्दौला मर भी गये और आसफ़ुद्दौला सिंहासनासीन हुये।

एक दिन लखनऊ में मीर और सौदा की कविता के सम्बन्ध में दो व्यक्तियों में विवाद उठ खड़ा हुआ। दोनों ख़्वाजा बासित के मुरीद थे। दोनों उनके पास गये और उनसे निर्णय चाहा। उन्होंने कहा—दोनों उच्च श्रेणी के कवि हैं। पर अन्तर केवल इतना है कि मीर साहब का कलाम आह है और मिर्ज़ा साहब का वाह। उदाहरण के लिये उन्होंने यह शेर पढ़े—

सिर्हाने मीर के आहिस्ता बोलो।
अभी टुक रोते-रोते सो गया है॥

× × ×

सौदा की जो बालीं प गया शोरे-क़यामत।
खुद्दामे-अदब बोले अभी आँख लग है॥

दोनों में से एक, जो सौदा के पक्ष में थे, सौदा के पास आये और उन्होंने कुल बातें कह सुनाईं। सौदा मीर साहब के शेर को सुनकर मुसकुराये और बोले—शेर तो मीर साहब का है, पर दर्द ख़्वाही उनके दादा की मालूम होती है।

लखनऊ में एक मिर्ज़ा फ़ाख़िर मक्कीं रहते थे। उनसे इनकी ऐसी बिगड़ी कि शेरों के बदले खञ्जर तक की नौबत आ गई। अशरफ़ अली

खाँ नाम के एक सद्गृहस्थ ने १५ वर्ष की लगातार मेहनत से फ़ारसी की चुनी हुई कविताओं का एक संग्रह तैयार किया। वे उसे संशोधन और परिवर्तन-परिवर्द्धन के लिये मिर्ज़ा फ़ाख़िर के पास ले गये; क्योंकि मिर्ज़ा फ़ाख़िर उन दिनों फ़ारसी कविता के लिये बहुत प्रसिद्ध थे। मिर्ज़ा फ़ाख़िर ने अपनी योग्यता दिखलाने के लिये उसमें बहुत काट-छाँट की। कुछ दिनों के बाद जब यह समाचार अशरफ़ अली खाँ को मालूम हुआ, तब वे बेचारे किसी तरह कह-सुनकर उस संग्रह को मिर्ज़ा फ़ाख़िर के यहाँ से उठा लाये। पुस्तक को काट-कूटकर चलनी कर दी गई थी। वे उसे मिर्ज़ा सौदा के पास ले आये।

सौदा ने कहा—मुझे फ़ारसी भाषा का अभ्यास नहीं। उर्दू के कुछ शब्द इधर-उधर से जोड़ लेता हूँ, सो ईश्वर जाने, कैसे उन्हें हृदय में स्थान मिल जाता है। मिर्ज़ा फ़ाख़िर फ़ारसी के ज्ञाता है। उन्होंने जो कुछ किया होगा, समझकर किया होगा। यदि आप औरों की सम्मति चाहते हैं तो स्व० शेख अली हज़ीं के शिष्य शेख आयतुल्ला 'सना', मीर सम्सुद्दीन फ़कीर के शिष्य मिर्ज़ा भच्चू 'ज़र्रा' वर्तमान हैं। बङ्गाल में हकीम बू अली खाँ, फर्रुखाबाद में निज़ामुद्दीन बिलग्रामी, शाहजहानाबाद मे शाह नूरुल्ऐन वाक़िफ है, इन लोगों से सम्मति लीजिये।

अशरफ़ अली ने कहा—मिर्ज़ा फाख़िर तो इन फारसीदानों को कुछ समझते ही नहीं।

अस्तु; अशरफ़ अली खाँ के आग्रह से सौदा ने पुस्तक रख ली। सौदा ने पुस्तक खोलकर देखी तो कितने ही शब्द बिना अर्थ समझे ही काटे गये थे। इससे इन्हें बहुत दुःख हुआ। इन्होंने 'इबरतुल्ग़ाफ़िलीन' नाम की एक पुस्तक लिखी, जिसमें मिर्ज़ा फ़ाख़िर की साहित्यिक भूलों का खूब दिग्दर्शन कराया और उचित सम्मति भी दी।

मिर्ज़ा फ़ाख़िर को जब यह समाचार मिला, तब वे बहुत घबराये और बातचीत के लिये अपने शिष्य बक़ाउल्ला खाँ को उन्होंने सौदा के पास भेजा। बक़ाउल्ला खाँ भी शायर थे। कुछ देर तक उन्होंने अपने

गुरू का पक्ष लेकर ख़ूब बहस की। पर सौदा ने उन्हें निरुत्तर कर दिया, और कहा कि अपने उस्ताद से कह दो कि उस्तादों के शेरों को देखा करो, तो समझा भी करो।

तात्पर्य यह कि इस विवाद से मिर्ज़ा फ़ाख़िर का मनोरथ पूर्ण न हुआ। तब उन्होंने दूसरी चाल चली। लखनऊ में उनके चेले-चाटियों की कमी थी ही नहीं और शोख़ज़ादों की शेख़ी बढ़ी-चढ़ी थी। एक दिन सौदा अपने घर में निश्चिन्त बैठे थे कि मिर्ज़ा फ़ाख़िर के चेले ऊपर चढ़ आये और एक ने सौदा के पेट पर छुरी रखकर कहा कि मेरे उस्ताद के सम्बन्ध में आपने जो कुछ कहा, उसका फल चखो, या मेरे उस्ताद के पास चलकर निर्णय करो।

सौदा ने बातों के तोते तो ख़ूब उड़ाये थे, रात-दिन मज़मून बाँधने ही का वे अभ्यास करते रहते थे, पर आज का विषय तो बिल्कुल नया था। वे विवश हो गये और मियाने में बैठकर उस शैतानी दल के साथ चले। चौक में पहुँचने पर फ़ाख़िर के चेलों ने इन्हें अपमानित करना चाहा। वे झगड़े का कोई बहाना ढूँढ़ने लगे।

संयोग से उसी समय उधर से सआदत अली ख़ाँ की सवारी आ निकली। भीड़ देखकर उन्होंने सब समाचार मालूम किया और सौदा को हाथी पर अपने साथ बैठाकर वे ले गये। उस समय आसफ़ुद्दौला अन्तःपुर में भोजन करने बैठे थे। सआदत अली ख़ाँ भीतर गये और कहा कि भाई साहब, बड़ा अनर्थ है। आप का शासन ! और नगर में यह अन्धेर !

आसफ़ुद्दौला के पूछने पर उन्होंने सौदा का कुल समाचार कह सुनाया और कहा कि पिताजी ने मिर्ज़ा रफ़ी को 'बिरादरमन और मुशफ़िक़ मेहरबानमन' कहकर पत्र लिखा था। उन्हीं की आज यह दुर्गति हो रही है ? आज मैं न पहुँचता तो शहर के बदमाशों ने इन्हें बेइज़्ज़त कर डाला होता।

आसफ़ुद्दौला ने कहा—मिर्ज़ा फ़ाख़िर ने ऐसा किया तो मिर्ज़ा रफ़ी

को नहीं, बल्कि मुझे अपमानित किया। पिताजी ने इन्हें भाई लिखा तो ये मेरे चचा हुये।

यह कहकर आसफ़ुद्दौला बाहर निकल आये और क्रोध में उन्होंने आज्ञा दी कि शेख़ज़ादों का महल्ला का महल्ला उखड़वाकर फेंक दो, और उन्हें शहर से निकाल दो। मिर्ज़ा फ़ाख़िर को, जिस दशा में हो, उसी दशा में लाकर उपस्थित करो।

सौदा की भलमनसाहत देखिये कि यह आज्ञा सुनते ही ये हाथ जोड़कर उठ खड़े हुये और बोले—हुज़ूर! हम लोगों की लड़ाई का फ़ैसला क़ागज़-कलम के मैदान में आपही हो जाता है। आप इस बीच में न पड़ें। इससे मेरी बदनामी होगी। जितनी सहायता आप के प्रताप से पहुँची, वह पर्याप्त है।

सौदा की सहृदयता का नवाब के ऊपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपने सिपाहियों के साथ इन्हें घर तक भेजवा दिया। इतना ही नहीं, बल्कि पुरस्कार दिया और ६००) वार्षिक वेतन भी बाँध दिया। ऐसी तो उस समय की गुण-ग्राहकता थी।

नवाब सौदा पर बहुत ही प्रेम प्रकट करने लगे। कभी वे अन्तःपुर में होते और सौदा अपनी उपस्थिति की सूचना भेजते तो वे तत्काल बाहर निकल आते, प्रसन्न होते और सौदा को पुरस्कार देकर प्रसन्न करते थे।

सौदा लखनऊ ही में कब्र-वासी हुये। नवाब आसफ़ुद्दौला की कृपा-दृष्टि इन पर अन्तिम दम तक बनी रही।

सौदा बड़ी ही स्वतन्त्र प्रकृति के कवि थे। निन्दात्मक कविता लिखने में तो बस एक ही थे। इनके नौकर का नाम था, गुंचा। जहाँ किसी पर ये अप्रसन्न हुये कि पुकारते थे—ओ गुंचा, ला तो क़लमदान। ज़रा मैं इसकी ख़बर तो लूँ! इसने मुझे समझा क्या है?

बस, क़लम हाथ में आई कि लाज-शरम गई। फिर तो ये ऐसी जली-कटी सुनाते थे कि शैतान भी क्षमा माँगने लगे। जहाँ ज़रा-सा भी क्रोध इन्हें आया, बस क़लम उठाई और निन्दा का तूफ़ान ला दिया।

पंडित, मूर्ख, धनी-ग़रीब, भला-बुरा इन्होंने सबकी दाढ़ी नोची। ये इस प्रकार पीछे पड़ते थे कि पिंड छुड़ाना कठिन हो जाता था। यद्यपि मीर-ज़ाहक़, फ़िदवी, मक़ीं, बक़ा आदि ने भी इन्हें आड़े हाथों लिया, पर प्रसिद्धि इन्हीं के शेरों की हुई। बच्चे-बच्चे तक जानते थे। फ़िदवी ने सौदा के लिये एक बार लिखा था।

कुछ कट गई है पेटी कुछ कट गया है डोरा।
दुम दाब सामने से वह उड़ चला लटोरा।
भड़ुआ है, मसखरा है, सौदा उसे हुआ है।।

दिल्ली में मीर ज़ाहक़ नाम के एक हज़रत थे। बड़े हंसमुख, सरल स्वभाव और कवि भी थे। वेष-भूषा बिल्कुल दिल्ली के नमूने की थी। सिर पर हरी पगड़ी, बड़े घेर का अंगरखा जो प्रायः हरा ही होता था, गले में कंठा, दाहिने हाथ में एक चूड़ी, एक-एक उँगली में कई-कई अँगूठियाँ, दाढ़ी कटी हुई और मेंहदी लगी हुई, हाथ भी मेंहदी से लाल, मझोला क़द, रंग गोरा। सौदा से उनकी आजीवन नहीं पटी। पहले छेड़-खानी उन्होंने की थी। सौदा ने उनके विरुद्ध कुछ लिखने से पहले उनके पास जाकर प्रार्थना की थी कि 'आप हमारे पूज्य हैं, मैं आप का सेवक हूँ, मेरे सम्बन्ध में आप कुछ कहने का कष्ट न करें। ऐसा न हो कि मेरे मुँह से भी कुछ निकल जाय और क़यामत के दिन मैं अपराधी समझा जाऊँ।'

मीर ज़ाहक़ ने कहा—भई, यह तो कविता है। इसमें छोटाई बड़ाई क्या?

सौदा अब क्या करते? उन्होंने भी क़लम उठाई और ऐसी निन्दा लिखी कि पढ़कर आश्चर्य होता है कि मीर ज़ाहक़ जीते कैसे रहे; जब कि दिल्ली का बच्चा-बच्चा उनकी निन्दात्मक कविताएँ गली-कूचों में गाता फिरता था।

मीर ज़ाहक़ ने भी सौदा के विरुद्ध बहुत कुछ लिखा, पर एक विचित्र ढंग से वह नष्ट हो गया। मीर ज़ाहक़ का लड़का सौदा का शिष्य था।

मीर ज़ाहक़ मर गये, तब सौदा फ़ातिहा के लिये गये। अपना दीवान भी साथ लेते गये। शोक-प्रदर्शन और सहानुभूति प्रकट करने के बाद सौदा ने मीर ज़ाहक़ के लड़के से कहा कि तुम उनके लड़के हो, मैंने उनके विरुद्ध जो कुछ कहा है, उसे तुम क्षमा करो। यह कहकर उन्होंने नौकर से अपना दीवान मँगाकर उसे वहीं सबके सामने फाड़ डाला।

मीर ज़ाहक़ के लड़के ने भी उसी दम बाप का दीवान, जो सौदा की निन्दाओं से पूर्ण था, मँगाकर फाड़ डाला।

सौदा की कविता से तो दिल्ली की हवा बसी हुई थी। दीवान के फाड़े जाने पर भी उसका अंत नहीं होने पाया। पर मीर ज़ाहक़ की कविता उनके दीवान के साथ ही उनके लड़के के हाथ से लुप्त हो गई।

मीर ज़ाहक़ की निन्दा में कहे हुये सौदा के कुछ शेरों का मुलाहज़ा फ़रमाइये——

१

तोड़ खाता है जाके पाख़ाने।
यह बवासीर अपनी के दाने।।

२

शादी में गर किसी के घर यह जाय।
साहबे-ख़ाना रंडियाँ बुलवाय।।
राग गर हो कलावतों का वहाँ।
उस जगह गा रहा हो जीवन ख़ाँ।।
कैसी ही देवीदास परनी ले।
न सुने आप यह न सुनने दे।।
यही पूछे हरेक से बेशरम।
पूरी का आटा सख़्त है या नरम।।

३

खाना आवे तो इस तरह टूटे।
जैसे कोई किसी का घर लूटे।।

मारे लुक़मे तो इस तरह बदज़ात।
जैसे झाड़े कोई पटे के हात।।
देगची जब यह चाट के छोड़े।
मुँह को खाने से मोड़े तो मोड़े।।

४

जावे बाज़ार को अगर वह लईम।
ख़ल्क समझे कि पहुँची फ़ौज ग़नीम।।
नान या बनिये कुँजड़े हलवाई।
कहें आफ़त किधर से यह आई।।
भूक में जब इधर यह आता है।
लोगों को काट काट यह खाता है।।
जिन है या आदमी है या क्या है।
या कोई देव बौखलाया है।।

मीर ज़ाहक़ को सौदा ने इसी तरह की गालियाँ दी हैं।

एक बार आसफ़ुद्दौला शिकार को गये। जंगल से समाचार आया कि नवाब ने भीलों के बन में एक शेर मारा। सौदा ने एक शेर बना डाला—

यारो य' इब्ने मुलजिम पैदा हुआ दोबारा।
शेरे ख़ुदा को जिसने भीलों के बन में मारा।।

नवाब ने भी सुना। मित्र की तरह वे कहने लगे—मिर्ज़ा, तुम ने मुझे ख़ुदा के शेर का घातक बनाया?

सौदा ने हँसकर कहा—श्रीमन्! शेर तो ख़ुदा ही का था, न मेरा, न आप का।

नवाब आसफ़ुद्दौला की एक धाय थी। उसके एक छोटी-सी कन्या थी। कन्या प्यार के मारे बड़ी ढीठ हो रही थी। एक दिन नवाब सो रहे थे। लड़की ने इतना हल्ला मचाया कि नवाब की नींद उचट गई। वे झुंझलाकर बाहर निकल आये। सौदा को उसी क्षण उपस्थित होने के लिये

उन्होंने आज्ञा भेजी। सौदा आ हाज़िर हुये। नवाब ने कहा—मिर्ज़ा, इस लड़की ने मुझे बहुत हैरान कर रखा है। लड़की की निन्दा में कोई कविता लिखो।

यहाँ क्या देर थी? क़लम उठाया और एक निन्दात्मक कविता रच डाली। उसका एक शेर यह है—

लड़की वह लड़कियों में जो खेले।
न कि लौंडों में जाके डँड़ पेले।।

कुछ लोगों का कहना है कि लड़की पर निन्दात्मक कविता सौदा ने एक भठियारिन की लड़की के लिये लिखी थी, जो बड़ी लड़ाका और चंचल थी। सौदा उसी राह से रोज़ आते-जाते थे। एक दिन वह ध्यान पर चढ़ गई और उन्होंने उसकी निन्दा कर डाली।

एक बार इटावे के शेख़ क़ायम अली, जो अच्छे शायर थे, शिष्य होने के लिये सौदा के पास आये, और उन्होंने अपनी कविता सुनाई। सौदा ने पूछा—उपनाम क्या है? उत्तर—उम्मीदवार।

सौदा ने यह शेर पढ़ा—

हैं फ़ैज़ से किसी के शजर इनका बारदार।
इस वास्ते किया है तख़ल्लुस उमीदवार।।

स्त्री गर्भिणी होती है तो दिल्ली की बोलचाल में यह कहा जाता है कि उमीदवारी है। इस शेर में यही दिल्लगी की है।

बेचारे क़ायम अली लज्जित हो चले गये। उन्होंने अपना उपनाम 'कायम' कर लिया और वे किसी अन्य के शिष्य हो गये।

अज़ीमाबाद के रहनेवाले रासिख़ नाम के एक शायर थे। एक बार वे सौदा के पास शिष्य होने के लिये आये। सौदा ने पूछा—कुछ कहा हो तो सुनाइये।

रासिख़ ने यह शेर पढ़ा—

हुये हैं हम ज़ईफ़ अब दीदनी रोना हमारा है।
पलक पर अपनी आँसू सुबहे पीरी का सितारा है।।

सौदा ने उठकर उन्हें गले लगा लिया।

एक दिन मुशायरे में सैयद इन्शा ने यह ग़ज़ल पढ़ी—

झिड़की सही अदा सही चीने-जबी सही।
सब कुछ सही पर एक नहीं की नहीं सही॥

इससे आगे यह शेर पढ़ा—

गर नाज़नीं कहे से बुरा मानते हो तुम।
मेरी तरफ़ तो देखिये मैं नाज़नीं सही॥

सौदा भी मुशायरे में मौजूद थे। उसे सुनकर इन्होंने कहा—दरीं वे शक (इसमें क्या सन्देह है)।

उस समय सौदा बुड्ढे हो चले थे। और इन्शा की जवानी उभर रही थी।

एक दिन सौदा मुशायरे में बैठे थे। लोग अपनी-अपनी ग़ज़लें सुना रहे थ। १२,१३ वर्ष के एक लड़के ने ग़ज़ल पढ़ी। मतला यह था—

दिल के फफोले जल उठे सीने के दाग़ से।
इस घर को आग लग गई घर के चिराग से॥

सौदा चौंक उठे। पूछा—यह मतला किसने पढ़ा? लोगों ने लड़के की ओर संकेत किया। सौदा ने बड़ी प्रशंसा की। कई बार उससे पढ़वाया और अंत में कहा—मियाँ लड़के, तुम जवान होते तो नहीं दिखाई पड़ते। हुआ भी यही; वह लड़का थोड़े ही दिनों में जलकर मर गया।

जब सौदा लड़के थे, उस समय मीर जाफ़र ज़टल बुड्ढे हो चुके थे। उस समय नक़्क़ाशी की हुई रंगीन छड़ियाँ हाथ में रखने का प्रायः चलन था। एक दिन संध्या के समय ज़टल महाशय एक हरे रंग की छड़ी टेकते हुये टहलने को बाहर निकले। सौदा किताबें बग़ल में दबाये सामने से आ रहे थे। शिष्टाचार के ख़याल से इन्होंने झुककर सलाम किया। ज़टल ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। सौदा बचपन ही से कविता-मय हृदय के लिये प्रसिद्ध थे। जटल ने साहित्यिक चर्चा के लिये सौदा को बातों में लगा लिया।

ये साथ-साथ चले। ज़टल ने बातों ही बातों में कहा—मिर्ज़ा, इस मिसरे पर मिसरा तो लगाओ—

लाला दर बाग़ दाग़ चूँ दारद।

सौदा ने सोचकर कहा—

उम्र कोताह्त ग़म फ़िज़ूँ दारद।

ज़टल ने हँसकर कहा—दिनभर के भूखे थे, कोताह का ह खा गये?

सौदा ने फिर कहा—

अज़ ग़मे इश्क सीना खूँ दारद।

ज़टल ने कहा—वाह, दिल खून होता है कलेजा खून होता है, भला सीना क्या खून होगा? सीना पूरज़खूँ होता है।

सौदा ने फिर कहा—

चह कुनद मोज़िशे दरूं दारद।

ज़टल ने कहा—मिसरा तो ठीक है। पर ज़रा तबीयत पर ज़ोर देकर कहो।

सौदा तंग आ चुके थे। चुलबुली तबीअत तो बचपन ही से पाई थी। झूट बोल उठे—

यक असा सब्ज़ ज़ेर कूँ दारद।

ज़टल हँस पड़े और छड़ी उठाकर बोले—क्यों, हमसे भी? देख, तेरे बाप से कहूँगा।

सौदा लड़के थे ही, भाग गये।

सौदा का कुल्लियात छपा मिलता है। उसमें फ़ारसी के क़सीदे, मसनवियाँ, बहुत-सी हिकायतें और लतीफ़े पद्य-बद्ध हैं। फ़ारसी का एक छोटा दीवान है। बहुत-सी रसीली ग़ज़लें, रुबाइयाँ, क़ता, तारीखें, पहेलियाँ, वासोख्त, तरजीअबंद, मुखम्मस आदि सब प्रकार के विषय और छंद उस संग्रह में हैं। निन्दात्मक कविताओं का तो कहना ही क्या? वह तो सौदा की खास चीज़ ही ठहरी।

ग़ज़लें पहले भी लोग कहते थे; पर क़सीदे ऐसे अच्छे किसी ने नहीं

कहे थे, जैसे सौदा के है। सौदा क़सीदे के बादशाह कहलाते थे। वे स्वयं कहते हैं—

लोग कहते हैं कि सौदा का क़सीदा है खूब।
उनकी खिदमत में लिये मैं यह ग़ज़ल जाऊँगा।।

सौदा में ज़िन्दा-दिली खूब थी। वृद्धावस्था तक ये अपने बचपन को सुरक्षित रख सके थे। इनकी निन्दात्मक कविताओ के एक-एक चरण में इनकी शोख़ी लहरें मार रही है।

सौदा ने मरसिये भी कहे हैं। पर आजकल मरसियों की जो उन्नति हुई है, उसके सामने तो वे कुछ भी नहीं है। शायद उन्हीं मरसियों को देखकर यह मसल मशहूर हुई थी कि—

बिगड़ा शायर मरसिया-गो।
बिगड़ा गवैया मरसिया-ख्वाँ।।

बात भी ठीक ही है। मरसिया तो दुःखों का रोना है। दूसरों का रोना रोकर जो औरों को रुलाने की कोशिश करता है, उसे कौन पसन्द कर सकता है?

सौदा गद्य भी लिखते थे। उस समय का उर्दू-गद्य फ़ारसी और अरबी शब्दों के बोझ से बेतरह दबा रहता था। पर पद्य में इन्होंने कमाल का हाथ दिखलाया है। हिन्दी-भाषा में फ़ारसी महावरों को इन्होंने ऐसी खूबी से भरा है कि उन महावरों ने यहाँ की बोलचाल में घर कर लिये। उर्दू-भाषा को सुधारने में जिन कवियों और लेखकों की कीर्ति है, उनमें एक सौदा भी थे।

क़ाफ़िया बाँधने में तो सौदा अद्वितीय ही थे। चाहे जैसा टेढ़ा-सीधा क़ाफ़िया हो, ये बराबर उसी के जोड़ के क़ाफ़िये पर क़ाफ़िये बाँधते चले जाते थे।

सौदा उस समय की बोलचाल के हिन्दी महावरों का अच्छा प्रयोग कर लिया करते थे। सुनिये—

१

मुहब्बत के करूँ भुजबल की मैं तारीफ़ क्या यारो !
सितम परबत हो तो उसको उठा लेता है जूँ राई ।।

२

सावन के बादलों की तरह से भरे हुये ।
यह वह नयन हैं जिनसे कि जङ्गल हरे हुये ।।
बूँदी के जमधरों से वह भिड़ते हैं हम दिगर ।
लड़के मुझ आँसुओं के ग़ज़ब मन करे हुये ।।
ऐ दिल य' किससे बिगड़ी कि आती है फ़ौजे-अश्क़ ।
लख़ते-जिगर की लाश को आगे धरे हुए ।।

सौदा ने हिन्दी मे भी बहुत कुछ कहा है। कुछ पहेलियाँ आगे दी जाती हैं—

१

देखे हम दो टोपी दिये । मर्द इस्तरी उनसे जिये ।।

स्तन

२

अजब तरह की है इक नार । उसका क्या मैं करूँ बिचार ।।
वह दिन डूबे पी के सङ्ग । लाग रहे निशि वाके अङ्ग ।।
दिया बरे तो वह शरमाय । ढिग से सरक दूर हो जाय ।।

छाया

३

रुत का जोगी नहिं कनफटा । गुदड़ी ओढ़े सर पर जटा ।।
अङ्ग अङ्ग मोती से छाया । चार महीने जग को भाया ।।

भुट्टा

४

अति चञ्चल उज्जल सभी, हाड़ मास औ चाम ।
नर नारी सब एक सी, करें चाम के दाम ।।

मछली

५

वा बिन मोको भवन न भावे। जुफ़्त नहीं पै ताक़ कहावे॥

ताक़

६

मारे से वह जी उठे, बिन मारे मर जाय।
बिन पाँवों जग जग फिरे, हाथों हाथ बिकाय॥

तबला

उर्दू-कवियों में मीर और सौदा के विचार कहीं-कहीं टक्कर खा गये हैं। इस तरह के कुछ शेर सुनिये—

मीर—हमारे आगे तेरा जब किसी ने नाम लिया।
दिले सितमज़दह को हमने थाम थाम लिया॥
सौदा—चमन में सुबह जो उस जंगजू का नाम लिया।
सबा ने तेग़ का मौजे रवाँ से काम लिया॥
कमाल बन्दगीए इश्क़ है खुदावन्दी।
कि एक ज़न ने महे-मिस्र सा गुलाम लिया॥
मीर—गिला मैं जिससे करूँ तेरी बेवफ़ाई का।
जहाँ में नाम न ले फिर वो आशनाई का॥
सौदा—गिला लिखूँ मैं अगर तेरी बेवफ़ाई का।
लहू में ग़र्क़ सफ़ीना हो आशनाई का॥
दिखाऊँगा तुझे जाहिद उस आफ़ते-दीं को।
खलल दिमाग़ में तेरे है पारसाई का॥
मीर—चमन में गुल ने कल जो दावए जमाल किया।
जमाले-यार ने मुँह उसका खूब लाल किया॥
सौदा—बराबरी का तेरी गुल ने जब ख़याल किया।
सबा ने मार थपेड़ा मुँह उसका लाल किया॥
मीर—एक महरूम चले यार हमीं दुनिया से।
वरनः आलम को ज़माने ने दिये क्या क्या कुछ॥

सौदा—सौदा जहाँ में आके कोई कुछ न ले गया।
जाता हूँ एक मैं दिले पुर-आरज़ू लिये।।
मीर—रात सारी तो कटी सुनते परीशाँ-गोई।
मीरजी कोई घड़ी तुम भी तो आराम करो।।
सौदा—सौदा तेरी फ़रियाद से आँखों में कटी रात।
आई है सहर होने को, टुक तो कहीं मर भी।।
मीर—कुफ़्र कुछ चाहिये इसलाम की रौनक़ के लिये।
हुस्न जुन्नार है तसबीह सुलेमानी का।।
सौदा—हुआ जब कुफ़्र साबित है वो तमग़ाए मुसलमानी।
न टूटे शेख़ से जुन्नार तसबीहे सुलेमानी।।
मीर—मत रञ्ज कर किसी को कि अपने तो ऐतक़ाद।
दिल ढाय कर जो काबा बनाया तो क्या हुआ।।
सौदा—काबा अगरचे टूटा तो क्या जाए-ग़म है शेख़!
यह क़िसरे दिल नहीं कि बनाया न जायगा।।
मीर—न भूल ऐ आरसी! गर यार को तुझसे मुहब्बत है।
नहीं है ऐतबार इसका य' मुँह देखे की उल्फ़त है।।
सौदा—बगोले से जिसे आसेब औ सरसर से ज़हमत है।
हमारी ख़ाक यों बरबाद हो, ऐ अब्र! रहमत है।।

सौदा लगभग साठ वर्ष की अवस्था में दिल्ली से लखनऊ आये और सत्तर वर्ष की आयु तक जीते रहे। लखनऊ में वे आग़ा बाकर के इमामवाड़े में गाड़े गये। इब्राहीम अली खाँ 'तज़किरे गुलज़ार इबराहीमी' में लिखते हैं कि मिर्ज़ा ग़ुलाम हैदर 'मजज़ूब' सौदा के बेटे हैं और लखनऊ में रहते हैं। पर अब सौदा के वंश में शायद कोई नहीं है।

यहाँ सौदा की कविता के नमूने दिये जाते हैं—

१

दिल मत टपक नज़र से कि पाया न जायगा।
जूँ अश्क फिर ज़मीं से उठाया न जायगा।।

रुख़सत है बाग़बाँ कि टुक इक देख लें चमन।
जाते वहाँ जहाँ स फिर आया न जायगा।।
ज़ालिम मैं कह रहा कि तू इस खूँ से दर गुज़र।
सौदा का क़त्ल है य' छिपाया न जायगा।।

२

ग़ैर के पास यह अपना हो गुमाँ है कि नहीं।
जलवागर यार मेरा वरनः कहाँ है कि नहीं।।
मेहर हर ज़र्रा में मुझको ही नजर आता है।
तुम भी टुक देखो तो साहब नज़राँ है कि नहीं।।
पूछा सौदा से मैं यकरोज़ कि ऐ आवारा!
तेरे रहने का मुऐअन भी मकाँ है कि नहीं।।
देखा मैं क़िसरे फ़रीदूँ के दर उपर यक शख़्स।
हल्का जन हो के पुकारा कोई याँ है कि नहीं।।

३

यक क़तरए-मै ले उड़ी 'सौदा' को जगह से।
बारूद के तूदे को है बस एक तिल आतिश।।

४

नाविक ने तेरे सेद न छोड़ा ज़माने में।
तड़पे है मुर्ग क़िब्लानुमा आशियाने में।।
'सौदा' खुदा के वास्ते कर क़िस्सा मुख़्तसर।
अपनी तो नींद उड़ गई तेरे फ़िसाने में।।

५

कह कहके दुख अपना मैं किया मरज़ को खाली।
इतना न हुआ सुन के तेरी आँख भर आवे।।
सब से कहे सोता हूँ यह कह दें कि फिर आना।
बालीं प मेरे शोरे क़यामत अगर आवे।।

६

है परवरिश सुखुन की मुझे अपनी जाँ तलक।
जूँ शमा ज़िन्दगानी मेरी है ज़बाँ तलक।।
जिसकी बहार पहुँची न आखिर खिज़ाँ तलक।
आया न एक गुल कभी उस बोस्ताँ तलक।।

७

मक़दूर नहीं उसका तजल्ली के बयाँ का।
जो शमा सरापा हो अगर सिर्फ़ ज़बाँ का।।
इस हस्तिए-गुलशन में अजब दीद है लेकिन।
जब आँख खुली गुलकी तो मौसम है खिज़ाँ का।।

८

बेकस कोई मरे तो जले इस प दिल मेरा।
गोया य' है चिराग़ ग़रीबों के गोर का।।

९

किसी दीदारो काफ़िर को खयाल इतना नहीं आता।
सहर क्या हो चुका 'सौदा' के सर पर, शाम क्या होगा।।

१०

किसी का दीन किया हक़ ने किसी की दुनिया।
सबका सब कुछ किया पर तुजको हमारा न किया।।

११

मौजे आतिश है सैल आँखों में।
शायद इस दिलका आबला फूटा।।

१२

न जिया तेरी चश्म का मारा।
न तेरी जुल्फ़ का बँधा छूटा।।

१३

तेरे कूचे से जो मैं आपको चलते देखा।
जी किसी तन से न इस तरह निकलते देखा।।
सूझी तदबीर न तक़दीर को बहलाने की।
जब तुझे क़त्ल पर आशिक़ के मचलते देखा।।

१४

जी मेरा मुझसे यह कहता है कि टल जाऊँगा।
हाथ से दिल के तेरे अब मैं निकल जाऊँगा।।
क़तरए-अश्क हूँ प्यारे मेरे नज्ज़ारे से।
क्यों ख़फ़ा होते हो, पल मारते ढल जाऊँगा।।
छेड़ मत बादे बहारी कि मैं जूँ नकहते गुल।
फाड़ कर कपड़े अभी घर से निकल जाऊँगा।।

१५

हिन्दू हैं बुतपरस्त मुसलमाँ खुदा-परस्त।
पूजूँ मैं उस किसी को जो हो आशना-परस्त।।

१६

ऐ लाला! गो फ़लक ने दिये तुझको चार दाग़।
छाती मेरी सराह कि एक दिल हज़ार दाग़।।

१७

गर हो शराब खिलवतो माशूक़े खूबरू।
ज़ाहिद तुझे क़सम है जो तू हो तो क्या करे?

१८

हनोज़ आईना गर्द इस ग़म से अपने मुँह प मलता है।
खुदा जाने कि क्या क्या सूरतें इस ख़ाक में गड़ियाँ।।

१९

जिगर उनका है जो तुजको सनम कह याद करते हैं।
मियाँ! हमतो मुसलमाँ हैं खुदा भी कहते डरते हैं।।

२०

किस किस तरह की देखें इस बाग़ की फ़िज़ायें।
कीधर गये वो साक़ी वह अब्र वह हवायें।।

२१

क़िस्सा तो हुस्नो-इश्क़ का चुकता ह पल के बीच।
गर महकमे में क़ाज़ी के तू रूबरू न हो।।

२२

मेरी आँखों में तू रहता है मुज को क्यों रुलाता है।
समझ कर देख लो अपना भी कोई घर डुबाता है।।

२३

अबके भी दिन बहार के यों हीं चले गये।
फिर फिर गुल आ चुके प सजन तुम भले गये।।
पूछै है फूलों फल की ख़बर अब तो अन्दलीब।
टूटे झड़े ख़िज़ाँ हुये फूले फले गये।।

२४

ऐ गुन्चा-दहन प्यार से टुक हँसकर बोल।
क्या दिल है मेरा तू कि नहीं खुलता है।।

२५

ताक़त नहीं रोने की बहुत हिज्र से तेरे, गो दिल में य' ग़म है।
कोई दम की रमक़ है अब तन में जो मेरे, सो चश्म में नम है।।
भूले नहीं याँ कभी फिर आता है ऐ यार, और जाय है सब जा।
क्या मुझसे तेरा जुर्म हो साँझ सबेरे, जो इतना सितम है।।

२६

भर नज़र तुजको न देखा कभू डरते-डरते।
हसरतें जी की रहीं जी ही में मरते-मरते।।
क्या हमें फ़ायदा आँखों से बक़ौले 'सौदा'।
भर नज़र तुजको न देखा कभी डरते-डरते।।

२७

जूँ गुन्चा तू चमन में बन्दे क़बा को खोले ,
फिर गुल से ऐ पियारे ! बुलबुल कभू न बोले ।।
आवेगा चमन में ही तड़के वह मै-कशी को ।
शबनम से कह दे बुलबुल प्याले गुलों के धो ले ।।
कौन ऐसा अब कहे यह 'सौदा' गली में उसकी ।
आ तुजको ले चलें हम दिल खोल करके रो ले ।।

दर्द

दर्द उपनाम; सैयद ख्वाजा मीर नाम; पिता का नाम ख्वाजा मुहम्मद नासिर 'अन्दलीब'; जन्म और मृत्यु-स्थान दिल्ली; जन्म-१७१५ ई०; मृत्यु १७८३ ई०।

दर्द के पूर्वज बहुत पुराने समय में बुखारा से दिल्ली आये थे। इनका घराना दिल्ली में बहुत मान्य और प्रभावशाली माना जाता था। ये सूफ़ी मत के मानने वाले थे। इन्होंने सुप्रसिद्ध मुफ़्ती दौलत से मौलाना रूम की मसनवी का पाठ लिया था। कविता में ये शाह गुलशन के शिष्य थे। ये मीर तक़ी, मीर सौदा और जानजानाँ मज़हर के समकालीन थे। मीर तक़ी ने इनको आधा कवि माना है। सौदा ने इनके विषय में एक जगह कहा है—

सौदा बदल के क़ाफ़िया तू इस ग़ज़ल का लिख।
ऐ बेअदब! तू दर्द से बस दूबदू न हो।।

दिल्ली की तबाही के दिनों में बड़े-बड़े उमराव नगर छोड़कर भाग रहे थे। उर्दू के कवि तो एक-एक करके लखनऊ पहुँच रहे थे। रात-दिन मराठों का भय बना रहता था। पर मीर दर्द ने ईश्वर पर भरोसा रखकर घर नहीं छोड़ा और न किसी की नौकरी की। ये जीवन के अंतिम दम तक दिल्ली ही में रहे और वहीं मरे।

शहर में इनके हज़ारों मुरीद थे। इनको किसी तरह की तकलीफ़ न उठानी पड़ी। पूर्वजों को बादशाह से कुछ थोड़ी-सी जागीर मिली थी, उसीकी आय और मुरीदों की नज़र-भेंट से दिन कटा जाता था।

गान-विद्या का अच्छा अभ्यास था। इससे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध गवैये और

कलावंत अपनी चीज़ें सुनाने और सुधरवाने के लिये आया करते थे। इससे भी इनका मनोरंजन हुआ करता था।

ये प्रत्येक महीने की दूसरी और चौबीसवीं तिथियों में महफ़िल करते थे, जिसमें शहर के बड़े-बड़े गवैये, कलावंत और डोम आदि एकत्र होते थे और भगवद्भक्ति-सम्बन्धी गान होता था। ये दो दिन दर्द के पूर्वजों के मृत्यु-दिन थे। मुहर्रम के महीने में मरसियों की महफ़िल लगती थी।

ये शिष्टाचार के बड़े ही पाबन्द थे। चाहे कोई छोटा हो या बड़ा, ये शिष्टाचार के विरुद्ध उसकी बात सहन नहीं कर सकते थे। एक बार शाहआलम बादशाह ने स्वयं इनके यहाँ आना चाहा। इन्होंने स्वीकार न किया। पर हर महीने इनके यहाँ उत्सव होता ही रहता था। एकबार वे विना सूचना दिये ही चले आये। संयोग से उस दिन बादशाह के पैर में पीड़ा थी। उन्होंने ज़रा-सा पैर फैला दिया। इस अशिष्टता से दर्द के दिल में इतना दर्द हुआ कि ये कहे बिना न रहे। इन्होंने कह ही डाला कि यह सभा के नियमों के विरुद्ध है। बादशाह ने निवेदन किया कि क्षमा कीजिये; पैर की पीड़ा से मैंने विवश होकर ऐसा किया है। इन्होंने तत्काल उत्तर दिया—पैर में पीड़ा थी तो आपको आने की क्या ज़रूरत थी?

दर्द की कविता में तत्कालीन अन्य उर्दू-कवियों की कविता से पवित्रता अधिक है। ये स्वयं भी बहुत पवित्रता से रहते थे। इनके पिता भी कवि थे और अपना उपनाम 'अंदलीब' रखते थे। उनकी कविताओं के संग्रह का नाम 'नालए अन्दलीब' है।

इनके छोटे भाई सैयद मुहम्मद मीर 'असर' भी कवि थे। उनका भी दीवान है। 'ख़्वाब व ख़याल' नाम की उनकी लिखी हुई मसनवी बहुत अच्छी कही जाती है।

दर्द की कविता बहुत भाव-पूर्ण है। छोटे-छोटे पदों में इन्होंने मीर की तरह बड़े-बड़े भाव भरे हैं। इन्होंने कई पुस्तकें लिखीं। कुछ के नाम ये हैं—

दीवान उर्दू--इसमें ग़ज़लें, तरजीअबन्द और रुबाइयाँ हैं। क़सीदे और मसनवी इन्होंने नहीं लिखे।

दीवान फ़ारसी---यह भी संक्षिप्त है।

रिसाला इसरारुस्सलवात---इसे पन्द्रह वर्ष की अवस्था में लिखा था।

वारदाते दर्द---उन्तीस वर्ष की अवस्था में लिखा गया।

इल्मुल्किताब---इसमें १११ रिसालों का संग्रह है।

वाक़याते दर्द---यह भी रिसाला है।

नालये दर्द---

आहे सर्द---

दीवान फ़ारसी---

दीवान उर्दू

शमए महफ़िल---

हुरमते गिना---

दर्द की ग़ज़लों में सात या नौ शेर होते थे। छन्द छोटे होते थे। भाषा मीर और सौदा की समझिये। इन्होंने निन्दात्मक कविता एक भी नहीं लिखी।

सौदा को इनसे हार्दिक प्रेम था। सौदा जब लखनऊ चले गये, उन दिनों कोई एक सज्जन लखनऊ से दिल्ली जा रहे थे। सौदा से उन्होंने पूछा कि मैं दिल्ली जा रहा हूँ, किसी मित्र को कुछ संदेशा कहना हो तो कहिये, मैं पहुँचा दूँगा।

सौदा एक आह भरकर बोले---भाई, दिल्ली में मेरा कौन है? हाँ, ख्वाजा मीर दर्द की तरफ़ जा निकलो तो मेरा सलाम कह देना।

दिल्ली इतने बड़े नगर में सौदा को दर्द के सिवा और कोई व्यक्ति याद न आया।

यहाँ दर्द की कुछ कविताएँ दी जाती हैं---

१

जग में आकर इधर उधर देखा।
तू ही आया नज़र जिधर देखा॥

जान से हो गये बदन ख़ाली।
जिस तरफ़ तूने आँख भर देखा॥
नाला फ़रियाद आह औ ज़ारी।
आपसे हो सका सो कर देखा॥
उन लबों ने न की मसीहाई।
हमने सौ सौ तरह से मर देखा॥
ज़ोर आशिक़ मिज़ाज़ है कोई।
दर्द का क़िस्सा मुख़्तसर देखा॥

२

हमने किस रात नाला सर न किया।
पर उसे आह कुछ असर न किया॥
सबके यां तुम हुये करम फ़रमाँ।
इस तरफ़ को कभी गुज़र न किया॥
देखने को रहे तरसते हम।
न किया रहम तू ने पर न किया॥
तुझ से ज़ालिम के पास में आया।
जान का मैंने कुछ ख़तर न किया॥
क्यों भवें तानते हो बन्दा नवाज़।
सीना किस वक्त मे सिपर न किया॥
कितने बन्दों को जान से खाया।
कुछ ख़ुदा का भी तू ने डर न किया॥
आप से हम गुज़र गये कब के।
क्या है ज़ाहिर में गो सफ़र न किया॥
कौन सा दिल है जिसमें ख़ाना ख़राब।
ख़ाना आवाद तू ने घर न किया॥
सब के जौहर नज़र में आये 'दर्द'।
बे हुनर तू ने कुछ हुनर न किया॥

३

मक़दूर किसे है तेरे वस्फ़ों के रक़म का।
हक्का कि ख़ुदावन्द है तू लौह क़लम का॥
बसते है तेरे कूचे में सब शेख़ो बरहमन।
आबाद है तुझ से ही तो घर दैरो हरम का॥
है ख़ौफ़ अगर जी में तो है तेरे ग़ज़ब का।
और दिल में भरोसा है तो है तेरे करम का॥

४

जग मे कोई न टुक हँसा होगा।
कि न हँसने में रो दिया होगा॥
हाल मुझ ग़मज़दे का जिस तिस ने।
जब सुना होगा रो दिया होगा॥
दिल भी ऐ दर्द क़तरए ख़ूँ था।
आँसुओं में कहीं गिरा होगा॥

५

तुहमते चन्द अपने ज़िम्मे धर चले।
किस लिये आये थे औ क्या कर चले॥
ज़िन्दगी है या कोई तूफ़ान है।
हम तो इस जीने के हाथों मर चले॥
शमा की मानिन्द हम उस बज़्म में।
चश्मतर आये थे दामनतर चले॥
साकिया याँ लग रहा है चलचलाव।
जब तलक बस चल सके साग़र चले॥
'दर्द' कुछ मालूम है यह लोग हैं।
किस तरफ़ से आये थे कीधर चले॥

६

मदरसा या दैर था या काबा या बुतख़ाना था।
हम सभी मेहमान थे तू आप ही साहब खाना था॥
वाय नादानी कि बाद अज़ मर्ग यह साबित हुआ।
ख़्वाब था जो कुछ कि देखा जो सुना अफ़साना था॥

७

शेख़ काबा होके पहुँचा हम कुनिश्ते दिल में हो।
'दर्द' मंज़िल एक थी टुक राह का ही फेर था॥

८

किसी से क्या बयाँ कीजे बस अपने हाल अबतर का।
दिल उसके हाथ दे बैठे जिसे जाना न पहचाना॥

९

बुतख़ाना वरहमन का मुक़र्रर देखा।
काबा को भी शेख के मैं अक्सर देखा॥
दिल लगने की सूरत न कहीं देखी हाय!
जो कुछ देखा सो ख़ाक पत्थर देखा॥

१०

मौत! क्या आ के फ़कीरों से तुझे लेना है।
मरने से आगे ही यह लोग तो मर जाते है॥

११

दर्दे दिल के वास्ते पैदा किया इन्सान को।
वर्ना ताअत के लिये कुछ कम न थे कुर्रो-बयाँ॥

१२

हम तुझसे किस हविस की फ़लक जुस्तजू करें।
दिल ही नहीं रहा है जो कुछ आरज़ू करें॥
तर दामनी प' शेख़! हमारी न जाइयो।
दामन निचोड़ दें तो फ़रिश्ते वज़ू करें॥

१३

मुद्दत तलक जहान में हँसते फिरा किये।
जी में है खूब रोइये अब बैठकर कहीं।।

१४

हरदम बुतों की सूरत रखता है दिल नज़र में।
होती है बुतपरस्ती अब तो खुदा के घर में।।

१५

अपने बंदा प जो कुछ चाहो सो बेदाद करो।
यह न आ जाय कहीं जी में कि आज़ाद करो।।

१६

'दर्द' अपने हाल से तुझे आगाह क्या करे।
जो साँस भी न ले सके वह आह क्या करे।।

१७

दुश्वार होती ज़ालिम तुझको भी नींद आनी।
लेकिन सुनी न तू ने टुक भी मेरी कहानी।।

१८

गरचे बेज़ार तो है पर उसे कुछ प्यार भी है।
साथ इन्कार के परदे में कुछ इक़रार भी है।।
दिल भला ऐसे को ऐ 'दर्द'! न क्योकर दीजे।।
एक तो यार है और तिस प तरहदार भी है।।

१९

बाहर न आ सकी तू क़ैदे खुदी से अपनी।
ऐ अक्ल बेहक़ीक़त! देखा शऊर तेरा।।

२०

अगर वह बुत किसी सूरत से मेरा राम हो जाये।
तो पूंजू इस यक़ीदे से कि कुफ़्र इसलाम हो जाये।।

तेरी तिरछी निगाहों ने रखा है नीम बिसमिल कर।
अगर फिर कर नज़र देखे तो मेरा काम हो जाये ।।

२१

क्या फ़र्क दागो गुल में अगर गुल में बू न हो।
किस काम का वह दिल है कि जिस दिल में तू न हो ।।

२२

ऐ 'दर्द' ! बहुत किया परेखा हमने।
देखा तो अजब यहाँ का लेखा हमने ।।
बीनाई न थी तो देखते थे सब कुछ।
जब आँख खुली तो कुछ न देखा हमने ।।

२३

पीरी चली और गई जवानी अपनी।
ऐ 'दर्द'! कहाँ है ज़िन्दगानी अपनी ।।
कल और कोई बयाँ करेगा उसको।
कहते हैं हम आप कहानी अपनी ।।

२४

वाक़िफ़ न याँ किसी से हम हैं न कोई हमसे।
यानी कि आ गये हैं बहके हुये अदम से ।।

२५

नज़र मेरे दिल की पड़ी 'दर्द' किस पर।
जिधर देखता हूँ वही रूबरू है ।।

२६

क़ासिद से कहो फिर ख़बर उधर ही को ले जाय।
याँ बेख़बरी आ गई जब तक कि ख़बर आय ।।

२७

करे क्या फ़ायदा नाचीज़ को तक़लीद अच्छों की।
कि जम जाने से कुछ ओला तो गौहर हो नहीं सकता ।।

२८

किधर बहकी फिरती है ऐ बेकसी ! तू।
तेरी जिन्स का याँ खरीदार मैं हूँ।।

२९

हम तुझसे किस हविस की फ़लक ! जुस्तजू करें।
दिल ही नहीं रहा है जो कुछ आरज़ू करें।।

३०

मुहताज अब नहीं हम नासेह ! नसीहतों के।
साथ अपने सब वोह बातें लेती गई जवानी।।

३१

सूरतें क्या क्या मिली हैं खाक में।
है दफीना हुस्न का ज़ेरे-ज़मीं।।

३२

जितनी बढ़ती है उतनी घटती है।
ज़िन्दगी आप ही आप कटती है।।

सोज़

सोज़ उपनाम; सैयद मुहम्मद मीर नाम; बाप का नाम सैयद ज़िया-उद्दीन; जन्म-स्थान दिल्ली; मृत्यु-स्थान लखनऊ; जन्म-काल १७१६ ई०; मृत्यु-काल १७९६ ई०।

सोज़ पुरानी दिल्ली मे करावलपुरा मुहल्ले में रहते थे। इनके पूर्वज बुखारा से आये थे। इनके पिता तीर चलाने की कला में बड़े प्रवीण थे। सोज़ भी इस कला में प्रसिद्ध हुए। शारीरिक शक्ति इतनी अधिक थी कि इनका धनुष दूसरा चढ़ा नहीं सकता था। कसरत भी खूब करते थे। सवारी और सिपहगरी में भी निपुण थे। सुन्दर अक्षर 'नस्तालीक़' लिखने में भी ये बहुत प्रसिद्ध थे। शाहआलम का समय था। दिल्ली उजड़ रही थी। जीविका की खोज में लोग भाग रहे थे। सोज़ भी फ़क़ीरी भेस में चल निकले और लखनऊ पहुँचे। वहाँ कुछ क़दर न हुई तो वहाँ से मुरशिदाबाद चले गये। वहाँ भी सौभाग्य उदय न हुआ तो फिर लखनऊ आये। अब की बार भाग्य ने पलटा खाया। सोज़ नवाब आसफ़ुद्दौला के गुरू हुए, और आराम से रहने लगे; पर थोड़े ही दिनों बाद नवाब भी चल बसे।

पहले ये अपना उपनाम मीर रखते थे। पर जब मीर तक़ी ने भी वही उपनाम रक्खा, तब इन्होंने बदलकर सोज़ कर लिया। एक शेर में ये दोनों उपनामों की ओर संकेत करते हैं—

कहते थे पहले 'मीर' मीर तब न मुये हज़ार हैफ़।
अब जो कहे है सोज़ सोज़ यानी सदा जला करो॥

एक दिन इनके एक परिचित ने आकर कहा कि अमुक व्यक्ति आपके उपनाम की दिल्लगी उड़ा रहे थे कि 'यह सोज़ गोज़ क्या उपनाम रक्खा है,

हमें पसन्द नहीं'। सोज़ ने कहा—कुछ परवा नहीं; अब की बार मुशायरे में तुम यही प्रश्न मुझसे करना। उसने ऐसा ही किया। और उच्च-स्वर से पूछा—हज़रत, आपका उपनाम क्या है? सोज़ ने कहा—इस फ़क़ीर ने उपनाम तो मीर रक्खा था। पर इसे मीर तक़ी साहब ने पसन्द कर लिया। फ़क़ीर ने सोचा कि इनके आगे उसका नाम न चलेगा। विवश होकर सोज़ उपनाम रक्खा। (हँसी उड़ाने वाले व्यक्ति की ओर संकेत करके) पर सुनता हूँ, ये साहब गोज़ करते हैं।

मशायरे में अजीब क़हक़हा उड़ा। दूर बैठनेवाले न सुन सके थे। उन्होंने कई बार यही कहलवाया और सुनकर सब चहचहा उठे। मीर तक़ी और सोज़ गोज़ कहनेवाले सज्जन बैठे सुना किये।

शेर पढ़ने का सोज़ का अजब ढंग था। पढ़ते वक्त ये शेर में वर्णित भावों को प्रत्यक्ष दिखाने का भी प्रयत्न करते थे। स्वर बड़ा ही करुणा-जनक था। शेर बड़ी ही कोमलता से पढ़ते थे। कभी शमा का मज़मून बाँधते थे, तब शेर पढ़ते समय एक हाथ में शमा उठा लेते थे और दूसरे हाथ से आड़ करके फ़ानूस का भाव दिखलाते थे। यदि क्रोध का कोई विषय होता था तो स्वयं त्योरी चढ़ा लेते थे और क्रोध की मूर्ति दिखलाई पड़ते थे। एक समय ये नीचे लिखा शेर पढ़ रहे थे—

गये घर से जो हम अपने सबेरे।
सलामअल्लाह खाँ साहब के डेरे॥
वहाँ देखे कई तिफ़्ले परीरू।
अरेरेरे ! अरेरेरे अरेरे !!

चौथा मिसरा पढ़ते-पढ़ते ज़मीन पर ऐसे गिर पड़े, मानों परीज़ादों को देखते ही चेतनता चली गई। और 'अरेरे, अरेरे' कहते-कहते ज़मीन पर गिर पड़े और बेहोश हो गये।

एक बार इससे भी अधिक आकर्षक घटना हो गई थी। यह शेर पढ़ रहे थे—

ओ यारे सियाह जुल्फ़ सच कह ।
बतला दे दिल जहाँ छुपा हो ।।
कुंडली तले देखियो न होवे ।
काटा न हफ़ीं तेरा बुरा हो ।।

पहले मिसरे पर डरते-डरते बचकर झुके, मानों कुण्डली-तले देखने को झुके हैं। और जिस समय कहा कि 'काटा न हफ़ीं,' बस तत्काल ही हाथ से छाती मसोसकर ऐसे अचेत लेट गये कि मुशायरे के लोग उठ खड़े हुए और कुछ लोग सँभालने के लिये आगे बढ़ आये।

सोज़ की कविता में महावरों की सफ़ाई खूब है। ये प्रायः ग़ज़ल ही कहा करते थे और छोटे-छोटे छन्द ही पसन्द करते थे। बातें बड़ी मीठी और साफ़ कहते थे। माशूक़ के स्थान पर ये जान या मियाँ जान का प्रयोग किया करते थे। आबेहयात के लेखक इन्हें उर्दू ग़ज़लों का शेख सादी कहते हैं।

इनके बेटे भी कवि थे। उनका उपनाम दाग़ था। सुन्दर थे और सौन्दर्योपासक भी थे। जवानी ही में वे इश्क़ के पीछे चल बसे।

सोज़ के शागिर्दों में नवाज़िश एक ऐसे शागिर्द थे, जो इनके स्वर के अन्दाज़ में ग़ज़ल पढ़ा करते थे। प्रसिद्ध पुस्तक 'फ़िसाना अजायब' के लेखक मिर्ज़ा रजब अली 'सुरूर' सोज़ के शिष्य थे।

सोज़ का दीवान ३०० पृष्ठों का है। २८८ पृष्ठों में ग़ज़लें और १२ पृष्ठों में मसनवियाँ, रुबाइयाँ और मुख़म्मस आदि हैं।

यहाँ इनकी कुछ कविताएँ दी जाती हैं।

१

भला रे इश्क़ तेरी शौक़तो-शाँ ।
भाई, मेरे तो उड़ गये औसाँ ।।
एक डर था कि जी बचे न बचे ।
दूसरे ग़म ने खाई मेरी जाँ ।।

आरज़ी हुस्न पर न हो मग़रूर ।
मेरे प्यारे य' गौ है यह मैदाँ ।।
और तो और कहके दो बातें ।
'सोज़' कहलाया साहबे दीवाँ ।।

२

अहले ईमाँ सोज़ को कहते हैं काफ़िर हो गया ।
आह या रब राज़े दिल उन पर भी ज़ाहिर हो गया ।।
दर्द से महरूम हूँ दरमाँ से मुझको काम क्या ।
यारे ख़ातिर था सो मेरा बारे शातिर हो गया ।।
क्या मसीहाई है तेरे लाल लब में ऐ सनम !
बात के कहते ही देखो 'सोज़' शाइर हो गया ।।

३

मुँदी गर चश्म ज़ाहिर दीदए बेदार हो पैदा ।
दरो दीवार से शक्ले जमाले यार हो पैदा ।।
तड़पती क्यों है ऐ बुलबुल कमाल इतना तो पैदा कर ।
कि तेरा अश्क जिस जग्गह पड़े गुलज़ार हो पैदा ।।
मसीहाई है तेरी तेग़ में क्या 'सोज़' को डर है ।
जो लाखों बार होवे क़त्ल लाखों बार हो पैदा ।।

४

खड़े रहनेवालो मगर 'सोज़' है यह ।
भला इसके दिल का तो अरमान निकला ।।
मेरा कुश्ता ऐसा तो है जिसकी ख़ातिर ।
य' खुरशेद फाड़े गरेबान निकला ।।

५

अब्र के क़तरे से हो जाते हैं मोती नासहा ।
क्या हमें रोने से अपने कुछ न हासिल होयगा ।।

६

अपने रोने से गर असर होता ।
क़तरए अश्क भी गुहर होता ।।
जिनके नामे पहुँचते हैं तुझ तक ।
काश मैं उनका नामाबर होता ।।

७

अगर मैं जानता है इश्क़ में धड़का जुदाई का ।
तो महशर तक न लेता नाम हरगिज़ आशनाई का ।।
ख़ुदाया किसके हम बंदे कहावें सख्त मुश्किल है ।
रखे है हर सनम इस दहर में दावा खुदाई का ।।
ख़ुदा की बंदगी का 'सोज़' है दावा तो ख़िलक़त को ।
वले देखा जिसे बन्दा है अपनी ख़ुदनुमाई का ।।

८

आज इस राह दिलरुबा गुज़रा ।
जी प क्या जानिये कि क्या गुज़रा ।।
रात को नींद है न दिन को चैन ।
ऐसे जीने से ऐ ख़ुदा ! गुज़रा ।।
'सोज़' के क़त्ल पर कमर मत बाँध ।
ऐसा जाना है क्या गया-गुज़रा ।।

९

बुलबुल कहीं न जाइयो ज़िनहार देखना ।
अपने ही बन में फूलेगी गुलज़ार देखना ।।
सौदा की बात भूल गई 'सोज़' तुझको हैफ़ !
जो कुछ ख़ुदा दिखावे सो लाचार देखना ।।

१०

क़ाज़ी हज़ार तरह के किस्सों में आ सका ।
लेकिन न हुस्नो इश्क़ का झगड़ा चुका सका ।।

रुस्तम ने गो पहाड़ उठाया तो क्या हुआ ।
उसको सराहिये जो तेरा नाज़ उठा सका ।।
ऐ 'सोज़' अज़्म कूचए-कातिल न कर अबस ।
तू एक भी बता दे कि वाँ जा के आ सका ।।

११

तुझ प क़ुरबान मेरी जान दिलो-दीं मेरा ।
एक बारी तो सुन अफ़सानए रंगीं मेरा ।।
बूए गुल शाख़ हवा में से भी लेता है पहन ।
किस क़दर शोख़ है अल्लाह यं गुलचीं मेरा ।।

१२

बुलबुल ने जिसका जलवा जाकर चमन में देखा ।
दो आँख मूँद हमने वह मन ही मन में देखा ।।
यों देखने से मेरे क्या फ़ायदा किसी को ।
देखा उन्हींने मुझको जिनने सुख़न में देखा ।।

१३

इस सिवा खोज न पाया तेरे दीवाने का ।
क़तरए ख़ूँ है मगर ख़ारे बयाबाँ में लगा ।।

१४

जनाज़ेवालो न चुपके क़दम बढ़ाये चलो ।
उसी का कूचा है, टुक करते 'हाय-हाय' चलो ।।

१५

एक बारी धक से होकर दिल की फिर निकली न साँस ।
किस शिकारन्दाज का यह तीरे बेआवाज़ है ।।

मीर हसन

हसन उपनाम; मीर गुलाम हसन नाम; पिता का नाम मीर गुलाम हुसैन 'ज़ाहक'; जन्म-स्थान दिल्ली; जन्म १७३६ ई०; मृत्यु १७८६ ई०।

इनके पूर्वज हिरात के रहनेवाले थे। जीविका की खोज में वे दिल्ली आये और यहीं बस गये। दिल्ली की तबाही के बाद ये अपने पिता के साथ फ़ैज़ाबाद आये और बहू बेगम साहबा के भाई नवाब सालार जंग के यहाँ नौकरी की। १७७५ ई० में नवाब आसफ़ुद्दौला गद्दी पर बैठे और फ़ैज़ाबाद बदलकर लखनऊ राजधानी हुआ तो ये भी लखनऊ चले गये, और वहीं नवाब सालारजंग की मुसाहिबत में सम्मान के साथ रहने लगे और वहीं इनका देहान्त हुआ। इनकी क़ब्र मुहल्ला मुफ्तीगंज लखनऊ में है।

मीर हसन का रंग भूरा और क़द लम्बा था। ये दाढ़ी मुँड़वाते थे। पगड़ी पुराने ढंग की बाँधते और पोशाक अपने बाप की सी पहनते थे। पर लखनऊ जाने पर इनके वेश-भूषे में बहुत अन्तर आ गया था। ये सिर पर बाँकी टोपी, बदन में तनज़ेब का चुस्त आस्तीन का अँगरखा और कमर में दुपट्टा बाँधने लगे थे।

मीर हसन अरबी कम जानते थे, पर फ़ारसी की अच्छी शिक्षा मिली थी। ये बड़े विद्वान् थे। प्रारम्भ मे इनके कविता-गुरु ख्वाजा मीर दर्द थे। युवावस्था में इन्हें अपने पिता के साथ अवध जाना पड़ा। अवध में ये अपनी कविता मीर ज़ियाउद्दीन 'ज़िया' को दिखाने लगे। मिर्ज़ा रफ़ी 'सौदा' से भी ये इसलाह लिया करते थे। होते-होते ये लखनऊ के उच्च-श्रेणी के कवियों में गिने जाने लगे।

कविता के अच्छे मर्मज्ञ होने पर भी इन्होंने किसी को अपना शिष्य नहीं बनाया। यहाँ तक कि अपने पुत्र ख़लीक को भी इसलाह न दी और उसे

'मसहफ़ी' के सुपुर्द कर दिया । पर इनके पोते अनीस, मूनिस और उन्स ऐसे मरसिया-गो हुये कि उर्दू-भाषा में उनके कारण भी मीर हसन के वंश का नाम अमर हो गया ।

मीर हसन के चार बेटे थे । उनमे तीन—ख़लीक, ख़ल्क और मुहसिन कवि थे ।

मीर हसन ने 'बेनज़ीर और बदरे मुनीर' का क़िस्सा पद्य में अद्वितीय लिखा है । इस मसनवी का नाम इन्होंने 'सहरुल्बयान' रक्खा है । आबे हयात के लेखक इसके विषय मे कहते हैं—

'इसकी सफ़ाइए बयान और लुत्फ़े महावरा और शोख़िए मज़मून और तर्ज़े अदा की नज़ाकत और जवाब व सवाल की नोंक-झोंक हद्दे तौसीफ़ से बाहर है । बावजूद इसके कि सहरुल्बयान की तसनीफ़ के ज़माने को १२५ बरस से ज़ियादा गुज़र गये, लेकिन उसकी ज़बान क़रीब-क़रीब वही है जो आजकल मुरव्वज है । उसकी फ़साहत के कानों मे कुदरत ने कैसी सुनावट रक्खी थी ! क्या उसे सौ बरस आगे वालों की बातें सुनाई देती थी कि जो कुछ कहा, वही मुहावरा और वही बातचीत जो आज हम तुम बोल रहे है ?'

उर्दू में और भी कवियों ने मसनवियाँ लिखी है, पर जनता की कसौटी पर दो ही खरी उतरीं—एक गुलज़ार-नसीम और दूसरी सहरुल्बयान । गुलज़ार-नसीम एक हिन्दू शायर पंडित दयाशंकर 'नसीम' की लेखनी का चमत्कार है । सहरुल्बयान को 'मसनवी मीर हसन' भी कहा जाता है ।

बदरे मुनीर के सिवा मीर हसन ने एक मसनवी 'गुलज़ार अदम' और लिखी थी, जिसमें शाह मदार की छड़ियों के साथ इनके एक सफ़र का ज़िक्र है और फ़ैज़ाबाद की प्रशंसा और लखनऊ की निन्दा है । उस मसनवी से उस समय की स्त्रियों की पोशाक और बहुत से रस्म-रिवाजों का पता चलता है । तीसरी मसनवी इन्होंने एक और लिखी थी, पर बदरे मुनीर की सूर्य-प्रभा मे इनका और कोई सितारा न चमका ।

इनके सिवा हसन ने कई विनोदात्मक रचनायें भी की है; जिनमें

'हजो अजीम कश्मीरी', 'हजो कस्साब' और 'नक़ल कलावन्त' मुख्य हैं; पर सभी शिष्ट भाषा में मनोरंजक ढंग से लिखी गई है।

इनकी मशहूर किताब 'तज़किरत्तुशोअरा' है, जिसमे लगभग ३०० शायरों का वर्णन है। यह फ़ारसी में है।

मीर हसन स्वाभाविक कवि थे। भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था। बोलचाल के महावरों और लोकोक्तियों से ये खूब वाक़िफ़ थे। वर्णन-शैली इनकी ऐसी अच्छी है कि घटना का चित्र आँखों के सामने आ जाता है। इनकी ग़ज़लें इनकी मसनवी के जोड़ की न हुई। फिर भी वे सरसता और लालित्य से रहित नही हैं।

आबेहयात के लेखक को मुश्किल से इनकी पाँच ग़ज़लें मिला थीं; पर अब इनका दीवान नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ में छप गया है और मेरे पास है।

यहाँ मीरहसन की कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

१

गर इश्क़ से कुछ मुझको सरोकार न होता।
तो ख़्वाबे अदम से कभी बेदार न होता॥
या रब! मैं कहाँ रखता तेरा दागे मुहब्बत।
पहलू में अगर मेरे दिले ज़ार न होता॥
दुनियाँ मे तो देखा न सिवाये ग़मो-अन्दोह।
मैं काश कि इस बज़्म में हुशियार न होता॥
करता मैं 'हसन' क़ुद्स के आलम ही में परवाज़।
हस्ती का अगर अपनी गिरफ़्तार न होता॥

२

इश्क़ का राज़ गर न खुल जाता।
इस क़दर तो न हमसे शरमाता॥
आके तब बैठता है वह हम पास।
आप में जब हमें नहीं पाता॥

मर गये हम तो कहते-कहते हाल ।
कुछ तो तू भी ज़बाँ से फ़रमाता ।।
मैं न सुनता किसी की बात 'हसन' ।
दिल जो बातें न मुझको सुनवाता ।।

३

सैरे-गुलशन करें हम उस बिन क्या ?
अब न वह दिल न वह दिमाग़ रहा ।।

४

ख़ार से फूटे फफोले पाँवों के ।
दर्द ही आखिर मेरा दरमाँ हुआ ।

५

कैसी वफ़ा ? कहाँ की मुहब्बत ? किधर की मेहर ?
वाक़िफ़ ही तू नही की होता है प्यार क्या ?

६

नहीं मुझको दुश्मन से शिकवा 'हसन' ।
मेरा दोस्त मुझको सताने लगा ।।

७

हम न हँसते है औ न रोते हैं ।
उम्र हैरत में अपनी खोते हैं ।।
याद आती है उसकी जब बातें ।
दिल 'हसन' दोनों मिलके रोते है ।।

८

मर गये यों ही तेरे हम ग़म में ।
हसरतें कितनी रह गई हम में ।।
कौन गाड़ा है नीम बिसमिल याँ ।
ज़लज़ला जो उठे हैं आलम में ।।

जी दिया किस पतंग ने अपना।
शमा रोती है किस के मातम में।।
क़तरए ख़ूं 'हसन' तू उसको न जान।
दिल य' आया है दीदए नम में।।

९

मैंने तो भर नज़र तुझे देखा नहीं अभी।
रखियो हिसाब में न मुलाक़ात आज की।।

१०

मज़े न देखे कभी हमने ज़िन्दगानी के।
यों ही गुज़र गये अफ़सोस दिन जवानी के।।
सुना न एक भी शब उसने हाले-दिल मेरा।
नसीब जागे न अफ़सोस इस कहानी के।।
सबाते हस्ती को टुक भी हुआ न अपनी हसन।
मिसाले बर्क़ गये रोज़ शादमानी के।।

११

जब तक जिये मुसीबत ग़म की न सर से सरकी।
सर से गुज़र के आख़िर हमने मुहिम य' सर की।।

१२

क़ैसो फ़रहाद के रोने की जब आती है लहर।
कोहो-सहरा में घटा जाके बरस आती है।।
ज़िंदगी है तो ख़िज़ाँ के भी गुज़र जायँगे दिन।
फ़स्ले गुल जीतों को फिर अगले बरस आती है।।

१३

क्या हँसे अब कोई औ क्या रो सके।
दिल ठिकाने हो तो सब कुछ हो सके।

१४

हसन देता है तू क्यों जी बुतों पर।
मिला देंगे तुझे यह क्या ख़ुदा से ?

१५

था हिज्र भला कि हमें थी उमीदे वस्ल।
फिर हिज्र का ख़याल बँधा वस्ले-यार में ।।
दीवाने गाह रुख़ के रहे गाह जुल्फ के।
यह उम्र कट गई इसी लैलो-निहार में ।।

१६

ग़ैरों की बात क्या कहूँ उसकी तो याद में।
अपना भी मुझको ध्यान कभी है कभी नहीं ।।

१७

मैं हश्र में क्या रोऊँ कि उठ जाते हैं तेरे।
बरपा हुई इक मुझ प क़यामत तो यहीं और ।।

१८

इज़हारे ख़ामुशी में है सौ तरह की फरियाद।
ज़ाहिर का यह परदा है कि मैं कह नहीं सकता ।।
क्या पूछे है मुझसे मेरी ख़ामोशी का बायस।
कुछ तो सबब ऐसा है कि मैं कह नहीं सकता ।।

१९

इश्क़ कबतक आग सीने में मेरे भड़कायगा।
राख तो मैं हो चुका हूँ, ख़ाक अब सुलगायगा ।।
कर चुके सहरा में वहशत फिर चुके गलियों में हम।
देखिये अब काम हमको इश्क क्या फ़रमायगा ।।
नौ गिरफ्तारी के बायस मुज़तरिब सैयाद हों।
लगते-लगते जी क़फ़स में भी मेरा लग जायगा ।।

२०

गुल है ज़ख्मी बहार के हाथों।
दिल है सद चाक यार के हाथों।।
दम बदम क़ता होती जाती है।
उम्र लैलो-निहार के हाथों।।
जाँ ब-लब हो रहा हूँ मिस्ले हुबाब।
मैं तेरे इन्तज़ार के हाथों।।

२१

न बर्ग हूँ मैं गुल का न लाले का शजर हूँ।
मैं लख्ते दिले रीश हूँ औ दाग़े जिगर हूँ।।
ख़ाली नहीं है मुझसे हरमो-दैरो-दिलो-चश्म।
मैं मज़हरे हक़ हूँ कि जिधर देखो तिधर हूँ।।
पाता है नहीं राह किसी दिल मे इलाही।
मैं किस दिले नाकाम की आहों का असर हूँ।।
नै शीशए-मै हूँ न 'हसन' साग़रे लबरेज़।
मै इक दिले पुर दर्द हूँ औ दीदए तर हूँ।।

२२

जी निकलता है इधर औ वह गुज़र करता नहीं।
मरते हैं हम औ उसे कोई ख़बर करता नहीं।।
कौन सी वह रात जाती है कि जिसमें तेरे बिन।
शाम से जूँ शमा रो-रो मै सहर करता नहीं।।

२३

मज़ा बेहोशिये उल्फ़त का हुशियारों से मत पूछो।
अज़ीज़ाँ ख़्वाब की लज़्ज़त को बेदारों से मत पूछो।।
गुलों को कब ख़बर है हाल ज़ारे अन्दलीबों से।
हक़ीक़त मुफ़लिसों की आह ज़रदारों से मत पूछो।।

ख़बर दिल की अगर चाहो मेरे अश्कों से तुम सुन लो।
य' वाक़िफ़ ख़ूब हैं इस घर से हरकारों से मत पूछो।।
हुआ है इन दिनों वह आशनाओं से भी बेगाना।
ख़राबी को 'हसन' की आजकल यारों से मत पूछो।।

२४

मुँह देखते ही उसका आँसू मेरा वहाना।
रोने का या रब! अपने अब क्या करूँ बहाना।।
तू हो चुका है मेरा जी दे के तुझको लूँगा।
दिल दे रखा है तुझको आगे ही मैं बयाना।।

२५

देखेंगे फिर इन आँखों से हम रूए यार भी।
होवेगा यह तमाम कभी इन्तज़ार भी।।
आईना ही को कब तलक दिखलावगे जमाल।
बाहर खड़े हैं कितने और उमीदवार भी।।
गर तू नहीं तो जाके करें क्या चमन में हम।
तुझ बिन हमें ख़िज़ाँ से है बदतर बहार भी।।
इक जाने नातवान ही शिकवा 'हसन' नहीं।
ठहरा न अपने पास दिले बेक़रार भी।।

२६

न हम होश में मै परस्ती से गुज़रे।
हुए जब कि बेहोश मस्ती से गुज़रे।।
न ठहरा ज़रा क़ाफ़िला इस सरा में।
लिये हसरतें याँ की बस्ती से गुज़रे।।
रहे जिसमें ख़तरा सदा नेस्ती का।
बस ऐ ज़िन्दगी! ऐसी हस्ती से गुज़रे।।
चली अब जवानी कहो टुक 'हसन' से।
ख़ुदा के लिये बुतपरस्ती से गुज़रे।।

२७

मसनवी सहरुल्बयान का एक नमूना—

न सुध बुध की औ न मंगल की ली।
निकल शहर से राह जंगल की ली॥
बिछा मिर्गछाले को औ' लेके बोन।
दुजानू सम्हल के वोह जुहरा जबीन॥
किदारा बजाने लगी शौक में।
लगी दस्तो-पा मारने शौक में॥

इन्शा

इन्शा उपनाम; इन्शा अल्ला खाँ नाम; पिता का नाम हकीम माशा अल्ला खाँ; जन्म-स्थान मुर्शिदाबाद; जन्म सन् का ठीक पता नहीं; मृत्यु-काल १८१७ ई०।

इन्शा के पूर्वज भारत में समरक़न्द या नजफ़ (ईरान) से आये थे। पहले वे काश्मीर में बसे और फिर काश्मीर से दिल्ली आये। इन्शा के पिता माशा अल्ला खाँ शाही दरबार में हकीम थे, और दरबारी मुसाहबों और उमरावों में उनकी अच्छी पैठ थी। उनका घराना दिल्ली और लखनऊ में बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था; और उनके घराने की रहन-सहन अनुकरणीय मानी जाती थी। कौटुम्बिक नियमों की पाबन्दी इतनी कड़ी थी कि उनके घर की स्त्रियों के वस्त्र धोबी को नहीं दिये जाते थे। या तो घर ही में साफ़ कर लिये जाते थे या जला दिये जाते थे।

दिल्ली में मुसलमानी राज्य के पतन के समय मीर माशा अल्ला भी उसे छोड़कर मुर्शिदाबाद चले गये थे। इंशा अल्ला खाँ का जन्म वहीं हुआ था। पिता ने इन्शा अल्ला खाँ को बड़ी ही तत्परता और सावधानी से शिक्षा दिलाई। बचपन ही से इन्शा बड़े मेधावी, चंचल और प्रतिभावान् थे। यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि उर्दू कवियों में इतना अच्छा दिमाग़ किसी का नहीं था। इन्शा यदि कवि न हुये होते और इन्हें अनुकूलता मिली होती तो ये भारत के एक बहुत बड़े पुरुष हुये होते। सब विषयों की ओर इनकी स्वाभाविक रुचि थी, और प्रतिभा ऐसी थी कि जिस विषय में ध्यान देते थे, उसमें शीघ्र ही विज्ञता प्राप्त कर लेते थे।

पढ़ने के दिनों में इन्हें गाने का भी शौक़ था। क़ाफ़िया भी जोड़ने

लगे गये थे। सितार बजाना भी सीख गये थे। शिक्षा समाप्त करने पर इनकी रुचि का झुकाव कविता की ओर हुआ, और इन्होंने अपना जीवन ही उस पर न्योछावर कर दिया।

इन्शा जन्म-कवि थे। इन्होंने किसी से इसलाह नहीं ली। पहले कुछ दिनों तक अपनी कविता अपने पिता को दिखला लिया करते थे। उनको भी कविता करने का कुछ शौक़ था, और 'मसदर' उपनाम रखते थे। पर पीछे दिखलाने की आवश्यकता ही नहीं हुई।

मुर्शिदाबाद में ये बहुत दिन नहीं टिके। भारत के राजनीतिक गगन में बड़ी उथल-पुथल हो रही थी। इन्शा को दिल्ली आना पड़ा। उस समय दिल्ली का शाही दरबार बड़ी टूटी-फूटी दशा में था। फिर भी शाहआलम बादशाह ने—चाहे कविता के प्रेम से, चाहे बादशाही शान-शौकत के ख़याल से—इन्शा को ख़िलअत दी और इन्हें बड़े सम्मान से अपने पास रक्खा।

इन्शा ने अपने गुणों से, मधुर भाषण, हाज़िर जवाबी, चुटकुलों और कविता से दरबार पर ऐसा प्रभाव जमा लिया कि शाहआलम को इन्शा के बिना चैन ही न पड़ती थी।

दिल्ली में उस समय सौदा और मीर न थे। हाँ, सौदा, मीर और दर्द के कुछ शागिर्द अवश्य थे, जो बुड्ढे हो चले थे और नये बाँकपन से भड़कते थे। उन्होंने इन्शा का मुक़ाबला किया। इन्शा कविता के रग-रग से वाक़िफ़ थे। इन्होंने उन बुड्ढे शायरों को एक मुशायरे में ऐसा लथाड़ा कि सब के दाँत खट्टे हो गये। उन्होंने भी इन्शा के विरुद्ध अपने जी का ज्वर ख़ूब निकाला। पर इन्शा के आगे उनकी कुछ दाल न गली।

मुशायरे में बादशाह भी अपनी ग़ज़लें भेजते थे। इन्शा ने निवेदन किया कि अमुक-अमुक व्यक्ति बादशाह की ग़ज़ल की हँसी उड़ाते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि बादशाह ने ग़ज़ल भेजना ही बंद कर दिया।

जब इन्शा के विरोधियों को यह समाचार मिला, तब वे बहुत झुँझलाये। अगले मुशायरे में वे लोग अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर

आये। इन्शा ने उस मुशायरे में ऐसी जोरदार ग़ज़ल पढ़ी कि सब के छक्के छूट गये। ग़ज़ल की कुछ कड़ियाँ ये हैं :—

यक तिफ़्ल दबिस्ताँ है फ़लातूँ मेरे आगे।
क्या मूँ है अरस्तू जो करे चूँ मेरे आगे॥
क्या माल भला क़िसरे फ़रीदूँ मेरे आगे।
काँपे है पड़ा गुम्बदे गरदूँ मेरे आगे॥
मुँह देख तो नक्क़ारचीए पीले फ़लक भी।
नक्क़ारे बजाकर कहे दूँ दूँ मेरे आगे॥
बोले है यही खामा कि किस किस को मैं बाँधूँ।
बादल से चले आते है मज़मूँ मेरे आगे॥
मुजरे को मेरे खुसरो व परवेज़ हों हाज़िर।
शीरीं भी कहे आके बला लूँ मेरे आगे॥
वह मारे फ़लक काहे-कशाँ नाम है जिसका॥
क्या दख़ल जो बल खा के करे फ़ूँ मेरे आगे॥

इसके बाद मीर क़ुदरतुल्ला ख़ाँ क़ासिम के सामने शमा आई। वे शेर पढ़ना शुरू करना ही चाहते थे कि मुशायरे के प्रधान को यह संदेह हुआ कि वे इन्शा की निन्दा करेंगे। उन्होंने दोनों में सुलह करा दी।

इन्शा ने बहुत नम्रता से अपने स्वभाव की सरलता का परिचय दिया। वे मीर साहब के गले लिपट गये और कहा—आप सुशिक्षित और कवि हैं। भला, मैं आपको व्यंग कैसे बोल सकता हूँ? हाँ, मिर्ज़ा अज़ीम बेग से मेरी शिकायत अवश्य है कि वे ख़्वामख़्वा बददिमाग़ी करते हैं। दाद देना तो दर किनार, शेर पर सिर तक नहीं हिलाते। आख़िर किस बिरते पर?

अन्त में सब में सुलह हो गई।

उन दिनों शाही दरबार की बड़ी दीन दशा थी। बादशाह नाम को था, फ़क़ीर कहना चाहिये। इन्शा को बड़ी मुश्किलों से धन मिलता

था। रोज़ इन्हें बादशाह के जेब से पैसे निकालने के लिए कुछ न कुछ नई तरकीबें करनी पड़ती थीं। मान लीजिये कि जुमेरात (वृहस्पति) का दिन है। इन्शा बातें करते-करते यकायक चुप हो जाते और फिर थोड़ा ठहर कर कहते—

इन्शा—पीरो मुरशिद ! गुलाम को इजाज़त है ?

बादशाह—खैर बाशद। कहाँ ? कहाँ ?

इन्शा—हुज़ूर, आज जुमेरात है। गुलाम बनीकरीम जाय, शाहे दीन व दुनिया के दरबार में कुछ अर्ज करे।

बादशाह—(अदब से) हाँ, हाँ, भई, ज़रूर चाहिये। इन्शा ! हमारे लिये भी कुछ अर्ज़ करना।

इन्शा—गुलाम को और आरज़ू कौन-सी है ? यही दीन की आरज़ू, यही दुनिया की मुराद।

यह कहकर फिर खामोश हो जाते। बादशाह कुछ और बातें करने लगते। एक लमहे के बाद फिर यह कहते—पीरो मुरशिद ! फिर गुलाम को इजाज़त हो।

बादशाह—ऐ ! ऐ! भाई इन्शा ! अभी तुम गये नहीं ?

इन्शा—हुज़ूर बादशाह आलीजाह के दरबार से गुलाम खाली हाथ क्योंकर जाये ? कुछ नज़र व नमाज़, कुछ चिराग़ी को तो मरहमत हो।

बादशाह—हाँ भई, दुरुस्त, दुरुस्त। मुझे तो खयाल ही नहीं रहा।

बादशाह जेब में हाथ डालते और कुछ रुपये निकालकर इन्शा के हाथ पर रख देते। इन्शा कुछ आशीर्वाद के वाक्य कहकर फिर कहते—

हुज़ूर, दूसरी जेब में दस्त मुबारक जाय तो फ़िद्दी का काम चले। क्योंकि वहाँ से फिरकर भी तो आना है।

बादशाह—हाँ, हाँ भई, सच है, सच है। भला, वहाँ से दो-दो खजूरें तो किसी को लाकर दो। बाल-बच्चे क्या जानेंगे कि आज तुम कहाँ गये थे ?

यह एक दिन का हाल है। इसी तरह प्रतिदिन इन्शा को बादशाह

की जेब से अपने खाने भर के लिये धन निकालना पड़ता था। इस तरह से कै दिन चल सकता था? अंत में इन्शा को दिल्ली छोड़नी पड़ी। लखनऊ में आसफ़ुद्दौला के दान-दाक्षिण्य की बड़ी प्रशंसा फैल रही थी। दिल्ली से जो वहाँ गया, वह फिर लौटकर नहीं आया। इन्शा ने भी वहीं की राह पकड़ी।

लखनऊ में सैयद इन्शा के पहुँचने से कुल मुशायरे गूंज उठे। वहाँ पहले ये सुलेमान शिकोह के यहाँ नौकर हुये। वहाँ से इनके गुणों की प्रशंसा सुनकर सआदत अली खाँ ने इन्हें अपने पास बुला लिया। तब से ये, जबतक रहे, उन्हीं की सरकार में रहे। वहाँ से हटे तो घर में ऐसे बैठे कि मर ही कर उठे।

इन्शा यद्यपि सुशिक्षित थे, पर थे बड़ी ही स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य। जब जो जी में आया कह डाला; जब जो जी में आया कर डाला।

दरबार में जाते तो एक ओर किसी को अदब से सलाम करते, किसी को देखकर मुसकिरा देते, किसी को मुँह चिढ़ा देते और किसी को आँखें मटका देते। कभी दिल्ली के बाँके बने हैं तो कभी लखनऊ के छैले; कभी आधी दाढ़ी मुँड़ा दी तो कभी भौंवें सफाचट करा दी।

मसहफ़ी से इनकी चोचें चल जाया करती थीं। मसहफ़ी ने कहा है—

वल्लाह कि शायर नहीं तू भाँड़ है भँडुवे।

एक दिन इन्शा नवाब साहब के साथ बैठे खाना खा रहे थे। गरमी से घबराकर पगड़ी उतार कर रख दी। सिर मुँड़ा हुआ देखकर नवाब को कुछ दिल्लगी सूझी। उन्होंने चुपके से, पीछे से, एक चपत जमा दी। इन्शा ने टोपी सिर पर रखकर, वैसे ही खाते-खाते कहा—सच है, बड़े-बूढ़े बचपन में कहा करते थे कि नंगे सिर खाना खाने से शैतान चपतें मारा करता है। सो आज सच साबित हुआ।

एक दिन नवाब ने रोज़ा रक्खा और हुक्म दिया कि कोई आने न पावे। इन्शा को कोई जरूरी काम था। ये पहुँचे। पहरेदार ने कहा कि आज हुक्म नहीं है, आगे आप मालिक हैं। इन्शा कुछ देर तक वहीं खड़े

रहे। नवाब से आंतरिक प्रेम होते हुए भी ये सावधान रहा करते थे। इन्होंने कमर खोली, अँगरखा उतार डाला, और स्त्रियों की तरह दुपट्टा ओढ़कर बड़े हाव-भाव से नवाब के सामने जा खड़े हुये। नवाब की दृष्टि पड़ते ही आप नाक पर उँगली रखकर बोले—

मैं तेरे सिदक़े न रख मेरी प्यारी रोज़ा।
बन्दी रख लेगी तेरे बदले हज़ारी रोज़ा॥

नवाब खिलखिलाकर हँस पड़े। इन्हें जो कुछ कहना-सुनना था कह-सुनकर हँसते-खेलते चले आये।

लखनऊ में मीर अली नाम के एक मरसिया कहने वाले और गान-विद्या में प्रसिद्ध व्यक्ति थे। वे अपने घर ही में मजलिस करके पढ़ते थे। किसी के यहाँ जाकर न पढ़ते थे। उन्हें नवाब ने कई बार बुलवाया, पर वे न गये। नवाब का इस व्यवहार से रुष्ट होना स्वाभाविक था।

जब नवाब की नाराज़ी का समाचार मीर अली को मिला, तब वे बहुत आगा-पीछा सोचकर दक्खिन जाने की तैयारी करने लगे। शाम को इन्शा घर आये। कमर खोल ही रहे थे कि देखा कि यात्रा की तैयारी हो रही है। पूछने पर मालूम हुआ कि मीर अली साहब दक्खिन जा रहे हैं। जाने का कारण पूछने पर मालूम हुआ कि वही मामला है। संभव है, नवाब का कोप कुछ रंग लाये। इन्शा ने उसी वक्त कमर बाँधी। नवाब के पास पहुँचे। नवाब ने आश्चर्य करके पूछा कि कुशल तो है? तुम फिर क्यों आये?

इन्होंने पहले एक शेर पढ़ा—

दौलत बनी है और सआदतअली बना।
या रब बना बनी में हमेशा बनी रहीं॥

फिर कहा—हजूर इस वक्त रुखसत होकर चला तो मन में आया कि एक बार अपने दूल्हा की दुलहिन राज्य-लक्ष्मी का तो दर्शन कर लें। सचमुच राज्य-लक्ष्मी बारहो आभरन और सोलहो शृङ्गार से सजी थीं। सिर पर झूमर, वह कौन? मौलवी दिलदार अली साहब। कानों में

झुमके, वह कौन ? दोनों साहबज़ादे। गले में नौलखाहार, वह कौन ? ख़ान अल्लामा। पर जो गौर करता हूँ तो नाक में नथ नहीं।

नवाब ने पूछा—वह कौन ?

इन्शा ने कहा—मीर अली साहब।

इसके बाद इन्शा ने मीर अली का कुल दास्तान सुनाया। नवाब ने कहा—उन्होंने जो भविष्य का भय सोचा है, यह अनुचित है। मैं तो उनको लखनऊ का गौरव समझता हूँ।

इस प्रकार दोनों ओर का सन्देह मिटाकर इन्शा तरक्क़ी का परवाना और ५००) पुरस्कार-स्वरूप लेकर लौटे।

उस समय अवध के रेज़ीडेन्ट जान बेली साहब थे। इन्शा की प्रसिद्धि वे सुन चुके थे, पर कभी मिलने का संयोग न हुआ था। एक दिन बेली साहब नवाब साहब से मिलने आये। नवाब ने पहले ही कह रक्खा था कि इन्शा ! आज तुमको साहब से मिलायेंगे।

साहब आया। नवाब ओर वह कुरसियों पर आमने-सामने बैठे। इन्शा नवाब के पीछे खड़े होकर रुमाल हिला रहे थे। बातें करते-करते साहब ने इन्शा की ओर देखा। इन्होंने मुँह बना लिया। उसने आँखे नीची कर लीं। वह मन में सोचने लगा कि इस आदमी की कैसी सूरत है ? यह ध्यान में आते ही उसने फिर इनकी ओर देखा। इन्होंने अब की बार और भी मुँह बिगाड़ लिया। वह शरमाकर दूसरी ओर देखने लगा। उसने जो फिर देखा तो इन्होंने ऐसा मुँह बनाया कि पहले से भी अद्भुत। उसने नवाब से पूछा कि यह मुसाहिब आपके पास कब से मुलाज़िम हैं ? नवाब ने कहा—हाँ, आपने नहीं देखा ? मैयद इन्शा अल्ला ख़ाँ यही तो हैं।

साहब ख़ूब हँसा। फिर तो दोनों में ख़ूब बातें हुई। इन्शा की वाक्-शक्ति ने उस पर कुछ ऐसा असर डाला कि जब वह कभी आता तो पहले इन्शा को पूछता। साहब के साथ रेज़ीडेंसी के मीर मुंशी अली नक़ी ख़ाँ भी आया करते थे। उनसे इनकी बड़ी मनोरंजक चोटें हो जाया

करती थीं। जब वे रूखसत होते तो इन्शा कहा करते कि 'मीर मुंशी साहब का अल्लाह बेली'।

मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह का मकान नदी के कंठ पर ही था। एक बार वहाँ स्नान का एक मेला लगा। इन्शा रंग के गोरे और सुन्दर थे। कश्मीरी पंडित का भेस बनाकर, ये बड़े सबेरे घाट पर जाकर बैठे, और ज़ोर-ज़ोर से श्लोक पाठ करने लगे। लोग स्नान के लिये आते थे। सब स्त्री, पुरुष, बच्चे, जवान, बुड्ढे इनकी ओर आकर्षित होते थे। ये उनसे पूजा करवाते और तिलक लगा देते थे।

कुछ मित्रों से इन्होंने अपना भेद कह दिया था। उन्होंने सुलेमान शिकोह को खबर दी। वे देखने आये। देखा तो इन्शा के आगे नाज, आटा, पैसा, कौड़ी का ढेर लगा है और इतना कि घाट वाले दूसरे पण्डितों से कहीं अधिक। वे खूब हँसे।

फ़ायक नाम के एक कवि थे। न जाने क्यों वे इन्शा पर रुष्ट हो गये थे। उन्होंने इन्शा के सम्बन्ध में एक निन्दात्मक कविता लिखी और स्वयं लाकर सुनाई। इन्शा बहुत खुश हुये। बहुत उछले-कूदे। खूब प्रशंसा की और पाँच रुपये भी दिये। जब वह चलने लगे तो ये बोले कि ज़रा ठहरिये। अभी आपका कुछ और हक़ बाक़ी है। क़लम उठाकर इन्होंने यह लिखकर उनके हवाले किया—

फ़ायक़े बेहया चु हजवम गुफ्त।
दिले मन सोख्त सोख्त सोख्ता बेह॥
सिलाअश पंज रूपया दादम।
दहने सग ब-लुक़मा दोख्ताबेह॥

दिल्ली में हाफ़िज़ अहमद यार एक प्रसिद्ध मौलवी थे। इन्शा से उनकी खूब पटती थी। एक दिन हाफ़िज़ साहब इन्शा से मिलने आये। रास्ते में पानी आ गया और इन्शा के घर पहुँचते-पहुँचते मूसलाधार बर-

सने लगा। वह जाकर बैठे ही थे कि इन्शा नङ्ग-धड़ङ्ग एक खारुयें की लुंगी बाँधे दौड़कर आये और उन्हे देखते ही उछलने लगे। हाथ फैला-फैलाकर उनके चारोंओर घूमते थे और यह कहते जाते थे—

भर भर छाजों बरसत नूर।
रद्द बलैयाँ दुश्मन दूर॥

इन सब किस्सों के लिखने का हमारा तात्पर्य यह है कि इनसे इन्शा की चुलबुली तबीयत का पता चलता है। खेद है कि एक घटना ऐसी हो गई, जिससे यह चमकता हुआ बुलबुल एकान्त कमरे में क़ैद हो गया और वहीं मर गया।

नवाब सआदत अली खाँ राजसी प्रकृति के मनुष्य थे। स्वच्छता और शिष्टता का वे अपने प्रत्येक काम में ध्यान रखते थे। इन्शा ने अपनी लच्छेदार बातों से उन्हे परचा लिया था ज़रूर, पर दोनों के स्वभावों में बड़ा अन्तर था।

इन्शा मेलों-ठेलों में जाने के बड़े शौक़ीन थे। पर नवाब की प्रकृति इसके बिलकुल विपरीत थी। कोई मेला-ठेला होता तो इन्शा बातें बना कर, हठ करके, नवाब की इच्छा न रहते हुए भी, चले ही जाते थे।

मुँहलग हो जाने के कारण दो एक बार इन्शा के मुँह से ऐसी बातें भी निकल गईं, जिनसे नवाब ने अपना अपमान समझा। इन्हीं कारणों से ये नवाब के चित्त से उतरते गये। वे भी इन्शा को पराजित करने का मार्ग ढूंढ़ने लगे। एक दिन ये घर पर नहीं थे। सआदत अली खाँ ने इन्हें बुला भेजा। चोबदार ने वापस जाकर इनकी अनुपस्थिति का समाचार कहा। नवाब ने अप्रसन्न होकर आज्ञा दी कि हमारे सिवा और किसी के यहाँ न जाया करो। यह क़ैद इनको बहुत अखरी।

उसी अवसर में इनका नौजवान बेटा तालाअल्ला खाँ मर गया। दिल पर इसकी गहरी चोट लगी। मस्तिष्क भी कुछ विक्षिप्त-सा हो गया। एक दिन सआदत अली खाँ की सवारी इनके मकान की ओर से निकली। शोक और क्रोध से पीड़ित इन्शा ने बीच राह में खड़े होकर

उनकी खूब भर्त्सना की। परिणाम यह हुआ कि नवाब ने वेतन भी बन्द कर दिया। अब उन्मत्त होने में क्या कसर थी ?

दिल्ली के सआदत यार ख़ाँ "रङ्गीं" इन्शा के पगड़ी-बदल भाई थे। इन्शा ने एक शेर में कहा है—

अजब रङ्गीनियाँ होती हैं कुछ बातों में ऐ इन्शा !
बहम मिल बैठते हैं जब सआदत यार ख़ाँ औ हम ।।

अब आगे इन्शा का हाल इनके मित्र सआदत यार ख़ाँ की ही ज़बानी सुनिये—

"मैंने लखनऊ में सैयद इन्शा के वह-वह रङ्ग देखे, जिनका ख़याल करके दुनिया से जी बेज़ार होता है। एक तो वह औज का ज़माना था कि सआदत अली ख़ाँ की नाक के बाल थे। दरवाजे पर घोड़े, हाथी, पालकी, नालकी के हजूम से रास्ता न मिलता था। दूसरी वह हालत कि फिर जो मैं लखनऊ गया तो देखा कि ज़ाहिर दुरुस्त था, मगर दरख्ते इक़बाल की जड़ को दीमक लग गई थी। मैं एक शख्स की मुलाक़ात को गया। वह अस्नायगुफ्तगू में दोस्ताने-दुनिया की ना आशनाई और बेवफ़ाई की शिकायत करने लगे। मैंने कहा कि अलबत्ता ऐसा है। मगर फिर भी ज़माना ख़ाली नहीं। उन्होंने ज़ियादा मुबालग़ा किया। मैंने कहा कि एक हमारा दोस्त इन्शा है कि दोस्त के नाम पर जान देने को मौजूद हैं। वह ख़ामोश हुये और कहा कि अच्छा; ज़ियादा नहीं, आज आप उनके पास जाइये और कहिये, हमें एक तरबूज़ ख़ुद बाज़ार से लाकर खिला दो। मौसम का मेवा है, कुछ बुरी बात भी नहीं है। मैंने कहा—भला, यह भी कुछ फ़रमाइश है। वह बोले कि बस, यही फ़रमाइश है। मगर शर्त यह है कि वह ख़ुद लाकर खिलायें; बल्कि चार आने के पैसे भी आप मुझसे ले जायँ। मैं उसी वक्त उठकर पहुँचा। इन्शा आदते क़दीम के बमूजिब देखते ही दौड़े। सिदक़े क़ुरबान गये। बलायें लेने लगे। मैंने कहा—यह नाज़ अन्दाज़ ज़रा ताक़ में रक्खो। पहले एक तरबूज़ तो लाकर खिलाओ। गरमी ने मुझे जला दिया। उन्होंने आदमी

को पुकारा। मैंने कहा कि आदमी का सही नहीं। तुम आप जाओ और एक अच्छा-सा शहीदी तरबूज़ देखकर लाओ। उन्होंने कहा—नहीं, आदमी माक़ूल है, अच्छा ही लायेगा। मैंने कहा—नहीं; खाऊँगा तो तुम्हारा ही लाया हुआ खाऊँगा। उन्होंने कहा—तू दीवाना हुआ है? यह बात क्या है? तब मैंने दास्तान सुनाई। उस वक्त उन्होंने एक ठण्डी साँस भरी और कहा कि भाई, वह शख्स सच्चा और हम तुम दोनों झूठे। क्या करूँ? ज़ालिम की क़ैद में हूँ। सिवा दरबार के घर से निकलने को हुक्म नहीं।

तीसरा रङ्ग—मैं सौदागरी के लिये घोड़े लेकर लखनऊ गया और सराय में उतरा। शाम हुई तो मालूम हुआ कि करीब ही मुशायरा होता है। खाना खाकर मैं भी जलसे में पहुँचा। अभी दो-तीन सौ आदमी आये थे। लोग बैठे बात करते और हुक्के पी रहे थे। मैं भी बैठा हूँ। देखता हूँ कि एक शख्स मैली-कुचैली रुईदार मिरज़ई पहने, सर पर एक मैला-सा फेंटा, पाँव में घुटन्ना, गले में तोबड़ा डाले, एक हुक्का हाथमें लिये आया और सलाम-आलेक कर बैठ गया। किसी ने उससे मिज़ाज पुरसी भी की। उसने अपने तोबड़े में हाथ डालकर तम्बाकू निकाला और अपनी चिलम पर सुलफ़ा जमाकर कहा—भई, ज़रा-सी आग हो तो इसपर रख देना। उसी वक्त आवाज़ें बुलन्द हुई, और गुड़गुड़ी, सटक, पेचवाँ से लोग तवाज़ा करने लगे। वह बे दिमाग़ होकर बोला—साहब, हमें हमारे चाल पर रहने दीजिये। नहीं तो हम जाते हैं। सबने उसकी बात के लिये तसलीम और तामील की। दम भर के बाद फिर बोला—क्यों साहब! अभी मुशायरा शुरू नहीं हुआ? लोगों ने कहा—जनाब, लोग जमा होते जाते है। सब साहब आ जाँय, तो शुरू हो। वह बोला—साहब, हम तो अपनी ग़ज़ल पढ़ देते हैं।

यह कहकर तोबड़े में से काग़ज़ निकाला और ग़ज़ल पढ़नी शुरू कर दी—

कमर बांधे हुए चलने को याँ सब यार बैठे है।
बहुत आगे गये बाक़ी जो है तैयार बैठे है॥

न छेड़ ऐ नगहते बादे बहारी राह लग अपनी।
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेज़ार बैठे हैं।।
तसव्वुर अर्श पर है और सर है पाय साक़ी पर।
ग़रज़ कुछ ज़ोर धुन में इस घड़ी मै-ख्वार बैठे हैं।।
बसाने नक्श पाये रहरवाँ कूए-तमन्ना में।
नहीं उठने की ताक़त क्या करें लाचार बैठे हैं।।
य' अपनी चाल है उफ़तादगी से अब कि पहरों तक।
नज़र आया जहाँ पर सायए-दीवार बैठे हैं।।
कहाँ सब्रो-तहम्मुल, आह नङ्गों-नाम क्या शै है।
मियाँ रो पीटकर इन सबको हम यकबार बैठे है।।
नजीबों का अजब कुछ हाल है इस दौर में यारो।
जहाँ पूछो यही कहते है हम बेकार बैठे है।।
भला गर्दिश फ़लक की चैन देती है किसे 'इन्शा'।
ग़नीमत है कि हम-सूरत यहाँ दो-चार बैठे है।।

वह तो ग़ज़ल पढ़, क़ाग़ज़ फेंक, सलाम-आलेक कहकर चले गये। मगर ज़मीन व आसमान में सन्नाटा छा गया, और देर तक दिलों पर आलम रहा। जिसकी कैफ़ियत बयान नहीं हो सकती। ग़ज़ल पढ़ने में मैंने भी पहचाना। हाल मालूम किया तो बहुत रंज हुआ। और घर पर जाकर फिर मुलाक़ात की।

चौथी दफा जो लखनऊ गया तो पूछता हुआ घर पहुँचा। अफ़सोस, जिस दरवाजे पर हाथी झूमते थे, वहाँ देखा कि ख़ाक उड़ती है और कुत्ते लोटते हैं। ड्योढ़ी पर दस्तक दी। अन्दर से किसी बुढ़िया ने पूछा कि कौन है भाई ?—वह उनकी बीबी थीं। मैंने कहा—सआदतयार खाँ देहली से आया है। चूँकि सैयद इन्शा से इन्तहा दरजे का इत्तहाद था। उस अक़ीक़ा ने पहचाना। दरवाज़े पर आकर बहुत रोईं और कहा कि भैया ! उनकी तो अजब हालत है। ऐ लो, मैं हट जाती हूँ। तुम अन्दर आओ और देख लो।

मैं अन्दर गया। देखा कि एक कोने में बैठे हैं। तन बरहना है। दोनों जानुओं पर सर धरा है। आगे राख के ढेर हैं। एक टूटा-सा हुक्का पास रक्खा है। या तो वह शान व शौकत के जमघट देखते थे। वह गरम-जोशी और चुहलों की मुलाक़ातें होती थीं, या यह हालत देखी। बेइख्तियार दिल भर आया। मैं भी वहीं ज़मीन पर बैठ गया, और देर तक रोया। जब जी हल्का हुआ तो मैंने पुकारा कि सैयद इन्शा! सर उठाकर उस नज़रे हसरत से देखा जो कहती थी कि क्या करूँ, आँख में आँसू नहीं। मैंने कहा—क्या हाल है? एक ठण्डी साँस भरकर कहा—शुक्र है। फिर इस तरह सर को घुटनों पर रख लिया कि न उठाया।'

यह एक कवि का जीवन-वृत्तान्त है। इसे पढ़कर आँखों में आँसू आये बिना नहीं रहते। इन्शा ने एक ही जीवन में सुख-दुःख दोनों देखे। दुःख की घड़ियाँ भी उन्होंने सुख से काट दीं।

अब इन्शा की कविता पर विचार कीजिये—

इन्शा की कविताओं का एक कुल्लियात्त (संग्रह) है, उसमें इतनी चीज़ें हैं—

१—उर्दू ग़ज़लों का दीवान।

२—दीवान रेख्ती, पहेलियाँ, तिलिस्मात के नुस्ख़े और क़वायद पश्तो।

३—उर्दू के क़सीदे।

४—फ़ारसी के क़सीदे।

५—दीवान फ़ारसी।

६—मसनवी शेरबिरंज।

७—मसनवी फ़ारसी बेनुक्त।

८—शिकार-नामा (फ़ारसी)।

९—निन्दात्मक पद्य—गरमी, भिड़ों, खटमलों, मक्खियों, पिस्सुओं आदि और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की निन्दायें।

१०—मसनवी आशिक़ाना।

११—हाथी और चंचल प्यारी हथिनी की शादी।

१२—फुटकर शेर।

१३—दीवान बेनुक्त।

१४—मातए आमिल (फ़ारसी)।

१५—मुर्ग़ नामा (उर्दू)।

इस कुल्लियात्त के सिवा दो पुस्तकें इनकी और हैं—

१—दरियाय लताफ़त—क़वायद उर्दू; मन्तिक, मानी, बयान आदि के सम्बन्ध में।

२—रानी केतकी की कहानी।

ग़ज़लों के दीवान का क्या कहना है! एक-एक शेर आशिक़-माशूक़ के चोचलों से भरे हैं।

एक मुशायरे में जुरअत और मसहफ़ी भी मौजूद थे। इन्शा ने एक ग़ज़ल पढ़ी। जिसका पहला शेर यह है—

लगाके वर्फ़ में साक़ी सुराहिए-मै ला।
जिगर की आग बुझे जल्द जिससे वह शै ला॥

कुल पाँच शेरों की ग़ज़ल थी। इसे सुनकर सबने अपनी-अपनी ग़ज़लें रख दीं और कहा—अब पढ़ना व्यर्थ है।

रेख्ती सआदत यार खाँ रंगीं की ईजाद है। पर इन्शा ने उस पर और रंग चढ़ा दिया। पीछे से लखनऊ के जान साहब ने उसमें जान ही डाल दी।

इन्शा भारत की बहुत-सी भाषायें जानते थे। कभी पंजाबी में बातें करते-करते पूरब की बोली बोलने लगते थे; कभी ब्रजवासी बनकर ब्रजभाषा बोलने लगते थे; कभी मराठी, कभी काश्मीरी, कभी अफ़गानी, कभी कुछ, कभी कुछ। मतलब यह कि ये बहु-भाषा-विज्ञ और बड़े प्रतिभाशाली पुरुष थे। पूरबी बोली में इनका एक शेर सुनिये—

मुतफ़िक्करी में फ़िक्र भई मुफ्त आइके।
झाऊ मियाँ को भौं प जो पटकेसि घुमाइ के॥

इन्शालखाँ मियाँ बड़े फाजिल जहीन हैं ।
सदरह पढ़े हैं जिन सेती तलबिल्म आइके ।।

ये अरबी, फ़ारसी और तुर्की भी जानते थे । उर्दू-ग़ज़लों में फ़ारसी और अरबी के मिसरे भी ये जोड़ दिया करते थे । फ़ारसी में तो इनकी अद्‌भुत योग्यता थी । गद्य और पद्य दोनों बहुत अच्छा लिखते थे । भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रान्तों के रस्म-रिवाज तथा किस्से-कहानियों की भी जानकारी इनको थी ।

कुछ ग़ज़लें सुनिये—

१

मिले पारे से जो हरताल करके राख का जोड़ा ।
जो ताम्बेसुरजी उगलें कोई नब्बे लाख का जोड़ा ।।
नहीं कुछ भेद से खाली य' तुलसीदासजी साहब ।
लगाया है जो यक भौंरे से तुमने आँख का जोड़ा ।।
लपटकर कृश्नजी से राधिका हँसकर लगी कहने ।
मिला है चाँद से ए लो अँधेरे पाख का जोड़ा ।।
य' सच समझो कि इन्शा है जगत सेठ इस ज़माने का ।
नहीं शेरो सखुन में कोई उसके साख का जोड़ा ।।

२

ऐ इश्क़जी ! आओ महाराजों के राजा
दंडोत है तुमको ।
कर बैठे हो तुम लाखों करोड़ों ही के सर चट
इक आन में चटपट ।।
है नूरे बसर मर्दुम के दीदे में पिनहाँ
मानिन्द कन्हैया ।
सो अश्क के क़तरों से पड़ा खेले है झुरमुट
औ आँखें हैं पनघट ।।

३

दिले सितम ज़दह बेताबियों ने लूट लिया।
हमारे क़िब्ला को वहाबियों ने लूट लिया॥
सुनाया रात को क़िस्सा जो हीर राँझे का।
तो अहले दर्द को पंजाबियों ने लूट लिया॥

४

फबन, अकड़, छब, निगाह, सजधज़,
जमाल, तर्ज़ खिराम आठों।
न होवे उस बुत के गर पुजारी,
तो क्यों हो मेले का नाम आठों॥

५

लिया गर अक्ल ने मुँह में दिले बेताब का गुटका।
तो जोगी जी धरा रह जायगा सीमाब का गुटका॥

इन्शा ने अरबी और तुर्की में भी शेर कहे हैं, और फ़ारसी में तो बुलबुल की तरह चहके हैं।

दरियाय लताफ़त उर्दू का पहला व्याकरण है। उसमें पहले तो उर्दू बोलनेवालों के भिन्न-भिन्न समूहों की भाषाओं के समूने हैं। फिर व्याकरण के नियम हैं। शिष्ट से लेकर अश्लील भाषा तक के नियम उसमें लिखे हैं।

उन दिनों उर्दू हिन्दी का कोई झगड़ा नहीं था। इसलिए फ़ारसी पिंगल के 'मफ़ऊल मफ़ाईलुन मफ़ऊल नफ़ाईलुन' के स्थान पर उर्दू में

बी जान परीख़ानम बी जान परीख़ानम

और 'फ़ायलुन मफ़ाईलुन फ़ायलुन मफ़ाईलुन' के स्थान पर

चितलगन परीख़ानम चितलगन परीख़ानम

का नवाविष्कार इंशा ने किया था।

यही नहीं, छंदो के नाम भी हिन्दी रखे हैं। जैसे, मुसल्लस का नाम तिकड़ा और मुरब्बा का नाम चौकड़ा।

इन्शा आशु-कवि थे। संयोग ही से ये नवाब सआदत अली खाँ ऐसे राजनीति-प्रिय व्यक्ति के पास पड़ गये थे। किसी साहित्य-रसिक आश्रयदाता की संगति में पड़ते तो आज इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा का हम सौगुना अधिक प्रकाश देखते।

एक दिन नवाब सआदत अली खाँ इन्शा की गोद में सिर रखकर लेटे हुये बजरे में नदी की सैर करते हुये चले जा रहे थे। नदी के कंठ पर एक हवेली थी। उस पर लिखा था—हवेली अली नक़ी बहादुर की।

नवाब ने कहा—इन्शा, देखो यह पद्य न हो सका। इसे तुम पद्य कर दो। इन्शा ने उसी समय कहा—

न अरबी न फारसी न तुरकी।
न सम की न ताल की न सुर की॥
यह तारीख कही है किसी लुर की।
हवेली अली नक़ी खाँ बहादुर की॥

जब शाह नसीर देहलवी लखनऊ गये तो वे इन्शा से भी मिले और कहा कि भाई! मैं तो तुम से ही मिलने आया हूँ। नहीं तो मेरा यहाँ और कौन है? इन्शा ने कहा—शाह साहब, यहाँ के दरबार की हवा कुछ और है। क्या कहूँ, लोग जानते हैं कि मैं शायरी करके नौकरी बजा लाता हूँ; पर मैं स्वयं नहीं जानता कि क्या कर रहा हूँ। देखो, आज सबेरे का गया शाम को आया। कमर खोल रहा था, कि चोबदार आया कि जनाब आली फिर याद फ़रमा रहे हैं। गया तो देखता हूँ कि कोठे पर फ़र्श है। चाँदनी रात है। पहियेदार छपरखट में आप बैठे हैं। फूलों का गजरा सामने धरा है। एक गजरा हाथ में है। उसे उछालते हैं और पाँव के इशारे से छपरखट आगे बढ़ता जाता है। मैंने सलाम किया। हुक्म हुआ—इन्शा, कोई शेर तो पढ़ो। अब फ़रमाइये कि ऐसी हालत में कि अपना ही क़ाफ़िया तंग हो, शेर क्या ख़ाक़ याद आये? खैर; उस वक्त यही समझ में आया। वहीं कहकर पढ़ दिया—

लगा छपरखट में चार पहिये उछाला तू ने जो ले के गजरा ।
तो मौज दरियाय चाँदनी में वह ऐसा चलता था जैसे बजरा ।।

यही मतला सुनकर खुश हो गये । फ़रमाइये, इसे शायरी कहते हैं ?

सैयद इन्शा यदि कवि न हुये होते तो वे अधिक काम के आदमी होते । कविता ने उन्हें डुबोया और उनकी कविता को सआदत अली खाँ की मुसाहबत ने ।

इन्शा ने शुद्ध हिन्दी बोलचाल में रानी केतकी की कहानी लिखी है । उसमें अरबी फ़ारसी का एक भी शब्द नहीं आने पाया है ।

पाठकों के मनोरंजनार्थ उसका कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

'सिर झुकाकर नाक रगड़ता हूँ उस अपने बनाने वाले के साम्हने जिसने हम सबको बनाया और बात की बात में वह कर दिखाया जिसका भेद किसी ने न पाया ।

'अब यहाँ से कहनेवाला यों कहता है एक दिन बैठे बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी, कोई कहानी ऐसी कहिये जिसमें हिन्दी छुट और किसी बोली की पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप खिले, बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो । अपने मिलनेवालों में से एक कोई पढ़े-लिखे पुराने-धुराने डाग बड़े घाग यह खटराग लाये सिर हिलाकर मुँह ठठियाकर नाक भौं चढ़ाकर आँखें पथराकर कहने लगे यह बात होती दिखाई नहीं देती । हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न ठुस जाय, जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते-चालते हैं ज्यों का त्यों वही सब डौल रहे और छाँह किसी की न पड़े, यह नहीं होने का ।'

'सुखपाल और चंडालों पर और रथों पर जितनी रानियाँ और महारानी लक्ष्मी बास पीछे चली आती थीं सबको गुदगुदियाँ सी होने लगीं । उसमें कहीं भरथरी का स्वाँग आया, कहीं जोगी जैपाल आ खड़े हुए, कहीं महादेव और पारवती दिखाई पड़े, कहीं गोरख जागे, कहीं मछन्दर नाथ भागे, कहीं कच्छ मच्छ बाराह सन्मुख हुए, कहीं बामन रूप, कहीं हरनाकुस और नरसिंह, कहीं राम लछमन सीता साम्हने आये, कहीं रावन और लंका का बखेड़ा

सारे का सारा दिखाई देने लगा। कहीं कन्हैया जी का जन्माष्टमी में होना, और बसुदेव का गोकुल में ले जाना, और उनका उस रूप से बढ़ चलना और गायें चरानी और मुरली बजानी और गोपियों से धूम मचानी और राधिका का रस और कुबजा का बस कर लेना, कहीं बनसी बट चीर घाट वृन्दावन करील की कुंज बरसाने में कहना और उस कन्हैया से जो कुछ हुआ था सब का सब ज्यों का त्यों आँखों आना और द्वारका में जाना और वहीं सोने के घर बनाना और फिर ब्रज को न आना और सोलह सौ गोपियों का तल-मलाना सामने आ रहा।'

कहानी भर में आदि से अंत तक 'कि' का प्रयोग नहीं हुआ। इन्शा ने इसे विदेशी शब्द समझकर छोड़ दिया। पर 'कि' संस्कृत के 'किम्' का प्राकृत रूप है। जिसे आज हम खड़ीबोली कहते हैं, इन्शा ने उसके शुद्ध रूप में यह कहानी लिखने का प्रयत्न किया था। शब्द तो अरबी फ़ारसी के नहीं आये, पर विदेशी महावरों से वह नहीं बच सके।

अब हम इन्शा की जीवन-कथा यहीं समाप्त करते हैं और इनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत करते हैं—

१

झिड़की सही अदा सही चीने-जबीं सही।
यह सब सही पर एक नहीं की नहीं सही॥
मरना मेरा जो चाहे तो लग जा गले से टुक।
अब का हीं दम य' मेरा दमे वापसी सही॥
गर नाज़नी के कहने से माना बुरा हो कुछ।
मेरी तरफ़ तो देखिये मैं नाज़नीं सही॥
मंजूर दोस्ती जो तुम्हें है हरेक से।
अच्छा तो क्या मुज़ायक़ा 'इंशा' से की सही॥

२

जिगर की आग बुझे जिससे जल्द वह शै ला।
लगाके बर्फ़ में साक़ी सुराहिये-मै ला॥

क़दम को हाथ लगाता हूँ उठ कहीं घर चल ।
ख़ुदा के वास्ते इतने तो पाँव मत फैला ।।
नज़ाक़त उस गुले राना की देखियो 'इन्शा' ।
नसीमे सुबह जो छू जाय रंग हो मैला ।।

३

दीवार फाँदने में देखोगे काम मेरा ।
जब धम से आ कहूँगा साहब सलाम मेरा ।।
अच्छा मुझे सताओ जितना कि चाहो मैं भी ।
समझूँगा गर है 'इन्शा' अल्लाह नाम मेरा ।।
पूछा किसी ने मुझको उनसे कि कौन है यह ।
तो बोले हँस के यह भी है इक गुलाम मेरा ।।
महशर की तिशनिगी से क्या ख़ौफ़ सैद इंशा ।
कौसर का जाम देगा मुझको इमाम मेरा ।।

४

यह जो महन्त बैठे हैं राधा के कुंड पर ।
अवतार बनके गिरते हैं परियों के झुंड पर ।।
ऐ मौसिमे ख़िज़ाँ लगे आने को तेरे आग ।
बुलबुल उदास बैठी है इक सूखे डुंड पर ।।
राजाजी एक जोगी के चेले प ग़श हैं आप ।
आशिक़ हुये हैं वाह अजब लुंड मुंड पर ।।
'इंशा' ने सुन के क़िस्सए फ़रहाद यों कहा ।
करता है इश्क़ चोट तो ऐसे ही मुंड पर ।।

५

ख़राबात की जब से लज्जत पड़ी है ।
छुटा बैठना मसजिदो-ख़ानक़ा का ।।

६

रखते हैं कहीं पाँव तो पड़ता है कहीं और।
साक़ी तू ज़रा हाथ तो ले थाम हमारा ।।

७

क्या ख़ुदा से इश्क़ की मैं रू-नुमाई माँगता।
माँगता भी उससे तो सारी ख़ुदाई माँगता ।।

८

मिल गया सीने से सीना फिर यह कैसा इज़्तराब।
मर मिटे पर भी गया अपने न दिल का इज़्तराब ।।
इश्क़ वह फल है कि जिसके तुख़्म हैं यह अश्क सुर्ख़।
बे ख़ुदी है मग़्ज़ उसका और छिलका इज़्तराब ।।

९

हैफ़ ! ऐयाम जवानी के चले जाते हैं।
हर घड़ी दिन की तरह हम तो ढले जाते हैं ।।

१०

है निहाँ लुत्फ़ो करम चीने-जबीं की तह में।
हाँ, छुपी साफ़ है इक उनकी नहीं की तह में ।।

११

गर यार मै पिलाये तो फिर क्यों न पीजिये।
ज़ाहिद नहीं, मैं शेख़ नहीं, मैं वली नहीं ।।

१२

क्या हँसी आती है मुझको हज़रते इन्सान पर।
फ़ेल बद तो ख़ुद करें लानत करें शैतान पर ।।

१३

दिल को ले भागी किधर हाथ से तेरे 'इन्शा'।
कोई खिड़की भी तो इस गुम्बदे बे दर में नहीं ।।

१४

शेख़ो-बरहमन दैरो-हरम में ढूँढ़ते हो क्या ला-हासिल ।
मूँद के आँखें देखो तो है सारी खुदाई सीने में ।।

१५

जी में क्या आ गया 'इन्शा' के य' बैठे बैठे ।
कि पसंद उसने किया आलमे तनहाई को ।।

१६

छेड़ने का तो मज़ा तब है कहो और सुनो ।
बात में तुम तो ख़फ़ा हो गये तो और सुनो ।।

१७

गालियाँ सुन जी में आता है ।
लीजे तेरी ज़बान में चुटकी ।।

१८

सतर मंसूर के लोहों से हुई यह तहरीर ।
यानी सरदार नहीं वह जो सरेदार नहीं ।।

जुरअत

जुरअत उपनाम; शेख़ कलन्दर बख़्श प्रसिद्ध नाम; असली नाम यहिया खाँ; पिता का नाम हाफ़िज़ अमान; स्थान दिल्ली; जन्म-काल का ठीक-ठीक पता नहीं; मृत्यु-काल १८१० ई० । ख़ुमख़ानए जावेद में इनका मृत्यु-काल १८२८ ई० लिखा है ।

इनके पूर्वज राय अमान मुहम्मदशाही-शासन में दरबान थे । उनके नाम से दिल्ली में घंटाघर के पास राय अमान का कूचा अब तक प्रसिद्ध है । नादिरशाह ने जब १७३९ में दिल्ली पर चढ़ाई की थी, तो उसने अपने सिपाहियों का सामना करने के अपराध में राय अमान को भी मृत्यु-दंड दिया था । राय अमान गला घोंटकर मार डाले गये । इनके कुल को अकबर के समय में अमान की उपाधि मिली थी ।

जुरअत जाफ़रअली हसरत के शिष्य थे । हसरत भी अच्छे कवि थे । जुरअत कविता के अतिरिक्त ज्योतिष और गान-विद्या के भी पण्डित थे । सितार बहुत अच्छा बजाना जानते थे ।

दुःख की बात है कि ये भरी जवानी में अंधे हो गये । इन्होंने एक बार अन्धे होने का स्वाँग रचा था । होते-होते स्वाँग सच्चा होके रहा ।

बात यह थी कि ये बड़े सौन्दर्योपासक थे । सुन्दरी स्त्रियों को आँख भर के देखने का इन्हें बहुत शौक़ था । पर, परदे के कारण वह शौक़ पूरा नहीं होता था ।

ये चुटकले ख़ूब कहते थे । मसख़रे भी थे और दिन-रात हँसना-हँसाना ही एक काम था । उस समय के अमीर-उमरावों को हँसी-मसख़री से अधिक ज़रूरी कोई काम भी न था । चारोंओर से जुरअत की माँग रहा करती थी । आज एक अमीर के यहाँ हैं; कल दूसरे के; परसों तीसरे के । अमीरों को

हँसाते और ख़ुश रखते थे और ऐश-आराम में अपने दिन काटते थे। दिन-रात कहकहे और चहचहे की ज़िन्दगी थी।

एक दिन एक बेगम साहबा ने जुरअत के क़हक़हे-चहचहे सुने। वे मुग्ध हो गईं। नवाब साहब से उन्होंने कहा कि हम भी बातें सुना करेंगी, इन्हें घर में लाकर खाना खिलाओ। बस, फिर क्या था। जुरअत के दिन फिरे। परदे की आड़में एक ओर बेगम बैठ जाती थीं, दूसरी ओर जुरअत। वे हँसी-मज़ाक़ की बातें सुनकर ख़ूब ख़ुश हुआ करती थीं। होते-होते नाम-मात्र का परदा रह गया। धीरे-धीरे वह परदा भी जाता रहा। ये घर में नाना, मामा, चाचा और दादा कहे जाने लगे। ख़ूब हेलमेल बढ़ा।

कुछ दिनों के बाद इन्होंने यह बहाना किया कि आँखें दृष्टिहीन हो गई हैं। इस बहाने का कारण यह था कि जिससे स्वच्छन्दता से सुन्दरियों का रूप देखकर आँखें सुख पायें। अब तो बेखटके घरों में आने और जाने लगे। परदे की आवश्यकता ही न रही।

प्रायः यह देखा गया है कि मालिक-मालकिन किसी अतिथि का अधिक सत्कार करें तो नौकर उससे जलने लगते हैं। एक दिन दोपहर को ये सोकर उठे। इन्होंने लौंडी से कहा कि बड़े आफताबे में पानी भर ला। लौंडी न बोली। इन्होंने फिर पुकारा। उसने कहा कि बीबी जाज़रूर (पाख़ाने) गई है। इनके मुँहसे निकल गया—पागल हुई है, सामने तो रक्खा है, देती क्यों नहीं? बीबी दूसरे दालान में थीं। लौंडी दौड़ी हुई बीबी के पास गई और कहने लगी—यह मुवा कहता है कि मैं अन्धा हूँ। इसको तो सब सूझता है। यहाँ तो यही भंडा फूटा; पर ईश्वर ने सचमुच इन्हें अन्धा ही कर दिया।

पहले ये नवाब मुहब्बत खाँ बरेली की सरकार में नौकर हुए। मीर इंशा अल्ला ख़ाँ और इनकी ख़ूब पटती थी। सन् १७९९ में ये लखनऊ पहुँचे, और मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह के नौकर हुए। एक बार वेतन देर से मिला, तब आपने यह शेर कहा—

जुरअत अब बन्द है तनख़्वाह तो कहते हैं य' हम।
कि ख़ुदा देवे न जबतक तो सुलेमाँ कब दे॥

नवाब शुजाउद्दौला के यहाँ करेला नाम का एक भाँड़ था। वह दिल्ली से उनके साथ आया था। एक दिन महफ़िल में उसने एक नक़ल की। एक हाथ में एक लकड़ी लेकर और दूसरे हाथ से टटोलता हुआ वह फिरने और कहने लगा—हुजूर! शायर भी अंधा, शेर भी अंधा—

सनम सुनते हैं तेरे भी कमर है।
कहाँ है किस तरफ़ को है किधर है॥

जुरअत भी वहाँ उपस्थित थे। अपने ऊपर उसका यह आक्रमण समझकर ये बहुत झुँझलाये। घर आकर इन्होंने भाँड़ की निन्दा लिखी और ख़ूब धूल उड़ाई। उसे सुनकर करेला और कड़वाया। दूसरे जलसे में उसने फिर अंधे की नक़ल की और वह लाठी लेकर फिरने लगा। जुरअत का एक शेर है—

इस शब तेरी जुल्फ़ों की हिकायात है वल्लाह।
क्या रात है, क्या रात है, क्या रात है, वल्लाह॥

क्या रात है, क्या रात है, कहकर वह लाठी टेकता चलता था। सारी ग़ज़ल उसने इसी मज़ाक के साथ पढ़ी। जुरअत बहुत बिगड़े। घर आकर इन्होंने उसकी निन्दा लिखी—

अगला झूले बगला झूले सावन मास करेला फूले।

करेले को भी समाचार मिला। उसने अगली बार एक गर्भिणी का स्वाँग भरा और कहने लगा कि इसके पेट में भुतना घुस गया है। वह स्वयं सयाना बनकर बैठा। जैसे भूतों और सयानों में झगड़ा होता है, उसी तरह लड़ते-झगड़ते उसने कहा—अरे नीच, क्यों ग़रीब माँ का प्राण लेना चाहता है। जुरअत हो तो बाहर निकल आ, अभी जलाकर भस्म कर दूँगा।

इस पर जुरअत और भी बिगड़े। अबकी बार इन्होंने उस करेले की ऐसी ख़बर ली कि वह क्षमा-प्रार्थना के लिये इनकी सेवा में उपस्थित हुआ। उसने कहा—मैं चाहे आकाश के तारे तोड़ लाऊँ, तौ भी उसकी चर्चा महफ़िल की सीमा के भीतर ही रहेगी। पर आप का एक-एक शब्द, जो मेरे विरुद्ध

कहा जायगा, प्रलय तक लोगों की ज़बान पर रहेगा और सारे संसार में प्रसिद्ध हो जायगा।

पता नहीं, यह किम्बदन्ती कहाँ तक सच है। जुरअत ने जो निन्दात्मक कविता लिखी है, वह इतनी जोरदार तो नहीं है कि एक भाँड़ उससे परास्त हो सके।

एक दिन इन्शा जुरअत से भेंट करने आये। उस वक्त जुरअत सिर झुकाये बैठे हुए कुछ सोच रहे थे। इन्शा ने पूछा—किस चिन्ता में बैठे हो? जुरअत ने कहा—एक मिसरा ध्यान में आया है, इसे मतला करना चाहता हूँ। इन्शा ने पूछा—सुनाइये तो सही। जुरअत ने कहा—नहीं पूरा होने पर ही सुनाऊँगा।

बहुत आग्रह करने पर इन्होंने सुनाया—

उस ज़ुल्फ़ प फबती शबे दैजूर की सूझी।

इन्शा ने तत्काल दूसरा मिसरा कहा—

अंधे को अंधेरे में बड़ी दूर की सूझी।

जुरअत हँस पड़े और अपनी लकड़ी उठाकर इन्शा को मारने दौड़े। इन्शा बचते फिरते थे और ये पीछे पीछे टटोलते थे। क्या बेफ़िक्री का जमाना था!

जुरअत कोई अच्छे पढ़े-लिखे न थे। अरबी तो बिलकुल नहीं जानते थे। पर कविता की प्रतिभा स्वाभाविक थी। इश्क के गली-कूचे से खूब जानकार थे। तबीयत में जब उमंग आती थी तो उर्दू के ऊँचे कवियों के जोड़ के शेर कह डालते थे। जुरअत का दीवान मिलता है। उसमें हर तरह की ग़ज़लें हैं। रुबाइयाँ, मुख़म्मस, वासोख़्त, हजो और तारीखें भी हैं। इन्होंने मीर ही का रास्ता पकड़ा है।

एक दिन एक मुशायरे में, जिसमें मीर भी मौजूद थे, इनकी एक ग़ज़ल की बड़ी वाह-वाही हुई। ये छेड़ने के लिये या प्रशंसा से कुछ अभिमान में आकर एक शिष्य का सहारा लेकर मीर के पास जा बैठे और मीर से कहने लगे कि आपके सामने ग़ज़ल पढ़नी तो गुस्ताख़ी है। पर कहिये, आज की

ग़ज़ल कैसी रही ? पहले तो मीर की तेवरी पर बल आ गये। जब जुरअत ने फिर पूछा, तब भी वे टाल-टूल गये। तीसरी बार पूछे जाने पर मीर ने निधड़क कह दिया—'तुम शेर तो कहना जानते नहीं हो, अपनी चूमाचाटी कह लिया करो।' बस, मीर के इस वाक्य ही में जुरअत की कविता का सारा रहस्य है।

सचमुच उसमें चूमाचाटी ही है। पर जो कुछ है, वह अपने ढंग का निराला ही है। इनके पढ़ने का ढंग भी बड़ा प्रभावशाली था। इनके शेर तो यों ही चुहचुहाते होते थे। इनके पढ़ने के ढंग से वे और भी रसीले हो जाते थे और ख़ूब दाद मिलती थी।

इन्होंने सौदा और मीर की ग़ज़लों पर भी ग़ज़लें लिखी हैं और अच्छी लिखी हैं। कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं :—

मीर— बुरक़ा को उठा चेहरे से वह बुत अगर आये।
अल्लाह की क़ुदरत का तमाशा नज़र आये॥

सौदा— इस दिल की तुफ़्फ़े आह से कब शोला बर आये।
बिजली को दमे सर्द से जिसके हज़र आये॥

मसहफ़ी— हरगिज़ न मेरा दिल दिले माशूक बर आये।
या रब न शबे वस्ल के पीछे सहर आये॥

जुरअत— उस परदानशीं से कोई किस तरह बर आये।
जो ख़्वाब में भी आये तो मुंह ढाँक कर आये॥

मीर— अब करके फ़रामोश तो नाशाद करोगे।
पर हम जो न होंगे तो बहुत याद करोगे॥

सौदा— जिस रोज़ किसी और प बेदाद करोगे।
यह याद रहे हमको बहुत याद करोगे॥

जुरअत— हैं किसका जिगर जिस प यह बेदाद करोगे।
लो हम तुम्हें दिल देते हैं क्या याद करोगे॥

मीर— हमारे आगे तेरा जब किसी ने नाम लिया।
दिले सितमज़दह को हमने थाम थाम लिया॥

सौदा— चमन में सुबह जो उस जंगजू का नाम लिया।
सबा ने तेग़ का मौज़े रवाँ से काम लिया।।

जुरअत— पास जा बैठा जो मैं कल इक तेरे हमनाम के।
रह गया बस नाम सुनते ही कलेजा थाम के।।

मीर— चमन में गुल ने कल जो दावए-जमाल किया।
जमाले-यार ने मुँह उसका ख़ूब लाल किया।।

सौदा— बराबरी का तेरी गुल ने जब ख़याल किया।
सबा ने मार थपेड़ा मुँह उसका लाल किया।।

जुरअत— जो तेग़े यार ने ख़ूँ-रेज़ी का ख़याल किया।
तो आशिकों ने भी मुँह उसका ख़ूब लाल किया।।

इस प्रकार जुरअत ने बड़े-बड़े कवियों से टक्कर लेने की बड़ी जुरअत की है। अब इनकी चुनी हुई ग़ज़लें सुनिये—

१

लग जा गले से ताब अब ऐ नाज़नीं नहीं।
है है खुदा के वास्ते मत कर नहीं-नहीं।।
पहलू में क्या कहे जिगर व दिल का क्या है रंग।
किस रोज़ अश्क ख़ूनी से तर आस्तीं नहीं।।
फ़ुरसत जो पाके कहिये कभू दर्दे दिल तो हाय।
वह बदगुमाँ कहे है कि हमको यक़ीं नहीं।।
हैरत है मुझको क्यों कि वह 'जुरअत' है चैन से।
जिस बिन क़रार जी को हमारे कहीं नहीं।।

२

जुस्तजू में दिल के बहलाने को जी खोना पड़ा।
जो हँसी की बात थी उसका हमें रोना पड़ा।।
कोई दिल माँगे था तो कहते थे हम मुँह धो रखो।
सो यह कहते-कहते अब अश्कों से मुँह धोना पड़ा।।

३

लगती नहीं पलक से पलक वस्ल में भी आह।
आँखों को पड़ गया है मज़ा इन्तज़ार का।।

४

याद आता है तो क्या फिरता हूँ घबराया हुआ।
चम्पई रँग उसका औ जोबन वो गदराया हुआ।।

५

कैसा पैग़ाम आके य' तू ने सबा दिया।
मिस्ले चिराग़े सुबह जो दिल को बुझा दिया।।

६

या वहीं का हो रहेगा या अदम को जायगा।
फिर नहीं फिरने का इस कूचे में अब जो जायगा।।
गुलशने गीती में जो आवेगा क्या पावेगा याँ।
गुंचा सा कुछ और अपनी गाँठ का खो जायगा।।

७

सुबह होते ही जो वह ग़ायब हुआ महताब सा।
वस्ल की यह रात थी या हमने देखा ख़्वाब सा।।

८

उसके आने में अब जो देर है कुछ।
यह भी किस्मत का हेर-फेर है कुछ।।
था वह 'जुरअत' ही उसके कूचे में।
वह जो इक ख़ाक सा ढेर है कुछ।।

९

जाते हैं उसके दर से प जाना मुहाल है।
जिस जा क़दम पड़े है उठाना मुहाल है।।
रोने में और आतिशे उल्फ़त भड़क उठी।
अब इस लगी का दिल से बुझाना मुहाल है।।

जा बैठते थे दर प जो उसके वो दिन गये।
ऊधर को अब तो आँख उठाना मुहाल है॥

१०

ग़म बहुत दुनिया में है पर इश्क़ का ग़म और है।
है इसी आलम में लेकिन उसका आलम और है॥

११

शब को टुक ख़्वाब जो आता है तो टुक उसका ख़याल।
आँख लगने नहीं पाती कि जगा देता है॥
लख़्ते दिल को मेरे यह अश्के-रवाँ में है बहार।
बर्गे-गुल जूँ कोई दरिया में बहा देता है॥
घर से वह जावे जहाँ मैं भी वहीं हूँ मौजूद।
नहीं मालूम मुझे कौन बता देता है॥

१२

अज़ीज़ो वस्ल में भी हम जो रो-रो के न सोते थे।
सो अन्देशा था रोज़े-हिज्र का उस दिन को रोते थे॥

१३

कुछ हम तो न समझे कि शबे वस्ल किधर थी।
टुक जुल्फ़ से जो रुख़ प नज़र की तो सहर थी॥

१४

बुलबुल सुने न क्योंके क़फ़स में चमन की बात।
आवारए वतन को लगे ख़ुश वतन की बात॥
सर दीजे राहे इश्क़ में पर मुँह न मोड़िये।
पत्थर की सी लकीर है यह कोहकन की बात॥

१५

चली आती है नादाँ! सुबहे पीरी।
जवानी की गँवा मत बेख़बर रात॥

१६

मरहम पज़ीर कौन सा है घाव जो नहीं।
पर एक ज़ख्मे तेग़े-ज़बाँ का नहीं इलाज ।।

१७

गया वह दिल भी पहलू से कि जिसको।
कभी रोते थे छाती से लगा कर ।।

१८

नातवानी पर कुछ अपना ज़ोर चलता ही नहीं।
दिल पसौ सदमें हैं लेकिन दम निकलता ही नहीं ।।

१६

उसके शम्मे हुस्न से दिल था मुनव्वर अब तो आह !
एक मुद्दत से चिराग़ इस घर में जलता ही नहीं ।।

२०

क़ैसो-फ़रहाद की थी एक ही मंज़िल लेकिन।
वह बयाबाँ की गया राह वह कुहसार की राह ।।

२१

हम भी इस बाग़े-जहाँ में शब की शब मेहमान हैं।
मिस्ले शबनम सुबह को गिरिया कुनाँ उठ जायँगे ।।

२२

वस्ल की रात मेरा जी ही निकल जाता है।
जब कि आवाज़ यह आती है कि अब रात नहीं ।।

२३

ख़ाक हो जाना दिले सोजां का क्या आता है याद।
ख़ाक होते देखते हैं जब किसी अख़गर को हम ।।

२४

लोग सब कहते हैं इस बीमारे ग़म को क्या हुआ।
जानते हम भी नहीं हैं यह कि हमको क्या हुआ ?

मसहफ़ी

मसहफ़ी उपनाम; शेख़ ग़ुलाम हमदानी नाम; पिता का नाम शेख़ वली मुहम्मद; जन्म-स्थान अमरोहा (मुरादाबाद) के निकट अकबरपुर; जन्म-काल १७५० ई०; मृत्यु-काल १८२४ ई०। लखनऊ में कब्रवासी हुये।

मसहफ़ी ने कहाँ और किससे शिक्षा पाई ? यह अज्ञात है। कोई-कोई कहते हैं कि ये अमानी के शागिर्द थे। इनके दीवानों से यह पता चलता है कि ये फ़ारसी भाषा के अच्छे जानकार थे और साहित्य का अध्ययन इन्होंने अच्छा किया था।

मसहफ़ी अमरोहा से दिल्ली आये। पर दिल्ली के लोग छोड़-छोड़ कर भाग रहे थे। ये भी वहाँ बहुत दिन नहीं टिक सके और दिल्ली से टाँडा (फैजाबाद) पहुँचे। नवाबी शासन का पतन हुआ तो टाँडा से लखनऊ पहुँचे; वहाँ भी न जम सके तो दिल्ली वापस गये; पर वहाँ भी टिक न सके तो लखनऊ वापस आ गये।

लखनऊ में सुलेमान शिकोह का दरबार ही दिल्ली से भागे हुओं के लिये शरण का स्थान था। ये भी वहीं जाकर नौकर हुये। पहले कुछ दिनों तक ये सुलेमान शिकोह की ग़ज़लें दुरुस्त किया करते थे। जब इन्शा वहाँ पहुँचे, तब उनकी प्रतिभा के आगे इनकी प्रतिभा मंद पड़ गई। शुलेमान शिकोह इन्शा को अपनी ग़ज़लें दिखाने लगे। इनका मासिक वेतन भी घटा दिया गया।

इन्शा से इनकी ख़ूब चोंचे चला करती थीं। दोनों ने एक दूसरे पर गंदी-गंदी गालियों की बौछार की है। लखनऊ में इनके सैकड़ों शागिर्द थे। वे भी उस्ताद का पक्ष लेकर इन्शा का मज़ाक उड़ाया करते

थे। पर इन्शा तो एक छँटे थे। उन्होंने मसहफ़ी की ऐसी ख़बर ली कि उनका सब रंग फीका पड़ गया।

एक दिन मसहफ़ी के शागिर्दों ने एक दल तैयार किया। दल इन्शा की निन्दात्मक कवितायें पढ़ता हुआ शहर में निकला। इन्शा को एक दिन पहले ही से ख़बर हो चुकी थी। इन्शा तो एक चलते-पुर्जे; उन्होंने उनके स्वागत की खूब तैयारियाँ की। मिठाई, शरबत, पान, हार आदि मँगाकर वे तैयार थे। जब दल उनके मकान के पास आया, तब वे अपने मित्रों के साथ लेकर अगवानी को गये। सब को बड़े आदर से अपने मकान पर लाकर उन्होंने बड़ा स्वागत किया। इत्र लगाया, मिठाई, शरबत, पान, और हार से सत्कार किया, अपनी निन्दा की ग़ज़लें सुनीं और वाह-वाह कहकर खूब उछले-कूदे। जो बहुत ही अश्लील गज़लें थीं, उन्हें दो-दो बार सुना। मतलब यह कि खूब ख़ातिर करके उस दल को बिदा किया।

दूसरे दिन इन्शा ने भी एक दल निकाला। कुछ लोग हाथी पर बैठे थे, कुछ अन्य सवारियों पर थे। सब मसहफ़ी की निन्दा के शेर पढ़ रहे थे। लड़के आसमान पर सिर उठाये फिरते थे। यह मसहफ़ी के शागिर्दों के दल का जवाब था। इससे मसहफ़ी की सारे शहर में बड़ी दिल्लगी हुई। दोनों ओर से इसी तरह की नोंक-झोंक होती रहती थी।

इन्शा गले में दुपट्टा रक्खा करते थे। जिसका एक छोर आगे लटकता था, दूसरा पीछे। इसको लक्ष्य करके मसहफ़ी के एक शागिर्द 'मुन्तज़िर' ने यह मिसरा कहा—

बाँधी दुमे लंगूर में लंगूर की गर्दन।

इन्शा भला कब चुप रहने वाले थे! उसी वक्त उन्होंने मसहफ़ी के सिर के सफ़ेद बाल और बुढ़ापे के गोरे रंग की ओर लक्ष्य करके कहा—

सफ़रः प ज़राफ़त के ज़रा शेख़ को देखो।
सर लून का मुँह प्याज का अमचूर की गर्दन॥

मसहफ़ी के कुछ दाँत टूट गये थे। उन्होंने बुढ़ापे में शादी की थी। इसलिये दाँतों में मिस्सी लगाना अनिवार्य था। उनके मुँह को लक्ष्य करके इन्शा कहते हैं—

यों ख़ातिरे शरीफ़ में गुज़रा कि बज़्म में।
कुचला हुआ शरीफ़ा ग़ज़ल को बनाइये।।
ऐसे नजिस कसीफ़ क़वाफ़ी से नज़्म में।
दन्दाने रेख्ता प फँफूँदी जमाइये।।

इसी तरह के ख़ुराफ़ात दोनों ओर से बके जाते थे।

मसहफ़ी बेचारे ग़ज़लें बेचा भी करते थे। दो-तीन तख्तियाँ पास धरी रहती थीं। मुशायरे की तरह में ग़ज़लें लिख रखते थे। मुशायरे के दिन लोग आते और आठ आने से एक रुपये तक देकर ग़ज़लें ले जाया करते थे और अपने नाम से पढ़ते थे। मसहफ़ी उनके नाम का मक़ता भी कर देते थे।

इन्होंने बुढ़ापे में शादी की थी। इनके एक साला था। वह ग़ज़लें उठा ले जाता और बेच आता था। जो शेर बच रहते, साला उनमें से कुछ अपने लिये लेकर बाक़ी इन्हें लौटा जाता था। ये उन्हीं शेरों को स्वयं मुशायरे में पढ़ते थे। अच्छे-अच्छे शेर तो बिक जाते थे; बाकी नीरस रह जाते; जिन्हें सुनकर मुशायरे में कोई दाद भी न देता था। एक मुशायरे में तो मसहफ़ी ने दाद न मिलने से झुँझलाकर ग़ज़ल का काग़ज़ जमीन पर पटक दिया था।

एक मुशायरे में मीर तक़ी भी मौजूद थे। मसहफ़ी ने एक ग़ज़ल पढ़ी, जिसके दो शेर ये हैं—

तनहा न वो हाथों की हिना ले गई दिल को।
मुखड़े को छुपाने की अदा ले गई दिल को।।
याँ लाल फ़सूँ साज़ ने बातों में लगाया।
दे पेंच उधर जुल्फ़ उड़ा ले गई दिल को।।

आख़िरी शेर सुनकर मीर तक़ी ने फरमाया—भई, ज़रा फिर तो पढ़ना। उनका इतना कहना हज़ार प्रशंसाओं से कम नहीं था। मसहफ़ी ने मीर के इस अनुरोध को अपने लिए बड़ा गौरव समझा और कई बार उठ-उठकर सलाम किया।

मसहफ़ी के उर्दू में आठ दीवान हैं। उनमें हज़ारों ग़ज़लें, क़सीदे, रुबाइयाँ और मसनवियाँ हैं। एक दीवान में इन्शा की निन्दा में लिखी गई ग़ज़लों का संग्रह है। इनके सिवा मसहफ़ी की लिखी तीन पुस्तकें और भी हैं—तज़किरा शुअराय उर्दू, तज़किरा शुअराय फ़ारसी और दीवान फ़ारसी। मसहफ़ी आशु कवि थे। आनन-फानन में ग़ज़लें लिख देते थे।

ये वृद्धावस्था में बहरे भी हो गये थे। इनके समकालीन इन्शा, जुरअत और मीर हसन आदि थे। मसहफ़ी की अच्छी ग़ज़लें तो बिक गईं, जो छँटी-छटाई थर्ड क्लास बाकी रहीं, वे मसहफ़ी की उस्तादी के उपयुक्त नहीं। यहाँ उनकी उन्हीं बची-खुची, रूखी-सूखी, तलछट ग़ज़लों के दीवान से कुछ अशआर उद्धृत किये जाते हैं—

१

पीरी से हो गया यूँ इस दिल का दाग़ ठण्डा।
जिस तरह सुबह होते कर दें चिराग़ ठण्डा॥
क्या हम टुकड-गदा हैं जो 'मसहफ़ी' य' सोचें।
है गर्म उसका चूल्हा उसका उज़ाग़ ठण्डा॥

२

साफ़ चोली से अयाँ हैं बदने सुर्ख़ तेरा।
नहीं छिपता तहे शबनम चमने सुर्ख़ तेरा॥

३

निगाहे लुत्फ़ के करते ही रंगे-अंजुमन बिगड़ा।
मुहब्बत में तेरे हमसे हरेक अहले-वतन बिगड़ा॥
तेरी मिज़गाँ की रावत चढ़ गई जब उनप लड़ने को।
पड़ी पूना के अन्दर खलबली सारा दकन बिगड़ा॥

४

न गया कोई अदम को दिले-शादाँ लेकर।
याँ से क्या क्या न गये हसरतो-अरमाँ लेकर।।
बाग़ वह दश्ते जुनूँ था कि कभी जिसमें से।
लाल वो गुल गये साबित न गरेबाँ लेकर।।

५

आँख सीधी नहीं करता कि मुक़ाबिल हो निगाह।
आरसी नाज़ से वह देखै है शरमाये हुये।।
उसके कूचे से जो उठ आते हैं हम दीवाने।
फिर उन्हीं पाँवों चले जाते हैं बौराये हुये।।

६

पीरी में और भी हुये ग़ाफ़िल हज़ार हैफ़!
बे इख्तियार ले गई हमको य' ख्वाबे-सुबह।।

७

एक दिन रो के निकाली थी वहाँ उल्फ़ते दिल।
अब तलक दामने सहरा है ग़ुबार आलूदह।।

८

जब से आईना-रू है तिफ्ले-हज्जाम।
नहीं बिन देखे उसके दिल को आराम।।

९

जो देखी उँगलियाँ वह गोरी-गोरी।
बना खुरशीद पानी की कटोरी।।

१०

जुम्बिशे लब ने तेरी मेरी ज़बाँ कर दी बन्द।
तू ने कुछ पढ़के अजब मुझ पै यह मन्तर मारा।।

११

तू देखते ही उसको जो दीवाना हो गया।
सच कहियो 'मसहफ़ी' तेरे क्या जी में आ गई।।

१२

जब कोहो-बयाबाँ में जा हमने कदम मारा।
फरहाद न कुछ बोला मजनूँ ने न दम मारा।।

१३

कभी जो यूँ भी मिले तुम तो मेहरबानी है।
ग़रज़ वह वस्ल का वादा तो दर किनार रहा।।

१४

हसरत पै उस मुसाफ़िरे-बेकस के रोइये।
जो थक के बैठ जाता हो मंजिल के सामने।।

१५

ओ दामन उठाके जाने वाले।
टुक हमको भी ख़ाक से उठा ले।।

१६

सदमे सौ दिल पे हुये हमने न जाना क्या था।
हायरे ज़ौक ! वोह उल्फ़त का ज़माना क्या था।।

नज़ीर

मियाँ नज़ीर आगरे (अकबराबाद) के ताजगंज मुहल्ले के रहनेवाले थे। इनका जन्म सन् १७४० ई० और मरण सन् १८३० ई० में हुआ और ये अपने मुहल्ले ताजगंज ही में गाड़े गये।

मियाँ नज़ीर मकतब में लड़के पढ़ाया करते थे। पेशवा जब आगरे में नज़रबन्द थे, तब बहुत दिनों तक नज़ीर उनके लड़कों को पढ़ाने जाया करते थे। आगरे के माईथान मुहल्ले में ये सेठों और महाजनों के लड़कों को भी पढ़ाने जाया करते थे। उसीसे इनकी जीविका चलती थी।

कहते हैं कि पेशवा ने नज़ीर को एक छोटी-सी घोड़ी दी थी। उसी घोड़ी पर चढ़कर नज़ीर लड़कों को पढ़ाने, मित्रों से भेंट-मुलाक़ात करने और सौदा-सुलुफ़ खरीदने बाज़ार जाया करते थे। शहर के लड़कों से इनकी खूब बनती थी। जब ये घर से निकलते तो लड़कों का झुंड इनके साथ लग जाता था। लड़कों के लिये ये छोटी-छोटी और सरल कविताएं रच देते थे, जिसे लड़के गली-कूचे में गाते फिरते थे।

आगरे में ये इतने लोकप्रिय थे कि मरने के बाद हर साल होली के अवसर पर इनकी क़ब्र पर मेला लगा करता था। लोग वहाँ जाते, जलसे में शरीक़ होते और रतजगा करके इनकी कविता का पारायण किया करते थे। आजकल वह मेला बन्द हो गया है।

नज़ीर वेदान्ती थे। सूफ़ी-धर्म के अनुयायी थे। मुसलमान होकर भी इन्होंने हिन्दू देवी-देवताओं की प्रशंसा में कविताएँ लिखी हैं।

नज़ीर जनता के कवि थे। इन्होंने किसी बादशाह या राजा-रईस की प्रशंसा में एक पंक्ति भी नहीं लिखी। न ये लोभी थे, न खुशामदी; बल्कि अपनी अवक़ात के मुक़ाबले में ये दानवीर थे। एक दिन मक-

ब से मासिक वेतन लेकर लौट रहे थे। किसी ने अपनी कन्या के विवाह के लिये धन की सहायता माँगी। नज़ीर ने, जो कुछ पास था, सब दे डाला।

आगरे के लोग इनको साधु के समान मानते थे। इनकी कविताएँ हिन्दू और मुसलमान दोनों बड़े चाव से पढ़ते हैं: ऐसा प्रायः देखा गया है कि मुसलमान फ़क़ीर जब किसी हिन्दू को देखते हैं, तब नज़ीर का यह पद्य गाने लगते हैं—

क्या क्या कहूँ मैं कृश्न कन्हैया का बालपन।
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन॥

और जब किसी मुसलमान को देखते हैं, तब नज़ीर का यह पद्य गाने लगते हैं—

गर दिल की सफ़ा चाहे तो कलमे को पढ़ा कर।
यह कलमा वह कलमा है कि दिन रात जपा कर॥

शाहबाज़ साहब औरंगाबादी ने अपने 'दबिस्ताने नज़ीर' की भूमिका में लिखा है—

'यह तो मशहूर है कि नज़ीर मुल्ला थे और मकतब पढ़ाया करते थे। नज़ीर गो देखने में बहुत मुनकसिर और मुतवाज़अ थे और खाकसारी सिवा ज़मीन के आसमान की तरफ़ नज़र उठाकर भी न देखते थे, लेकिन उनके ख़यालात हमेशा अर्श ही पर रहते थे। हरचन्द उनके मकतब में मामूली लड़के होते थे। मगर अपनी बुलन्द ख़याली से उनको आलमे क़ुद्स के तलाज़मे दिनरात दस्तबस्ता नज़र आते थे।'

'नज़ीर हक़ीक़त में अपने वक़्त के रिफ़ार्मर थे और सैयद मग़रबी से कहीं बढ़कर थे। गो उन्होंने सदरुस्सदूरी नहीं की, इब्तदा से इन्तहा तक महवे इसलाह ज़रूर रहे। गो अलीगढ़ कालिज की तरह उन्होंने बज़ाहिर कोई क़ौमी मदरसा क़ायम नहीं किया, मगर मानियन उनका दबिस्तान रफ़ीउश्शान ज़रूर था और हनोज़ है। अलीगढ़ कालिज मुमकिन है ज़माने के इनक़िलाब से मादूम हो जावे, मगर दबिस्ताने नज़ीर

जबतक ज़बाने उर्दू बाक़ी है, दुनिया से मादूम नहीं हो सकता। यह वह कालिज है जिसका बुनियादी पत्थर नज़ीर के हकीमाना दिल ने रक्खा, जिसका मसाला नज़ीर के शायराना दस्तों ने फ़राहम किया, जिसकी तामीर शौहरते आम ने की, और जिसकी मरम्मत मक़बूलिये अवाम के ज़रिये से बराबर क़यामत तक रहेगी। यह वह कालिज है, जिसकी क्लासें दिन रात खुली हैं; जिसके प्रोफ़ेसर हर वक़्त अपनी ड्यूटी पर हाज़िर हैं। जहाँ लेक्चरों का सिलसिला कभी मुनक़िता नहीं होता और सबसे बड़ी बात यह है कि जहाँ तालिबइल्म हर मज़हब व मिल्लत के बिला फ़र्क़ तालीम पाते हैं। मुबारक हैं, वह लोग जो इस कालिज का कोर्स पूरा करके इख़लाकी युनिवर्सिटी का सब से आला और बकार-आमद पास हासिल करते हैं।'

फैलन साहब का मत है—

'योरपीय दृष्टि से हिन्दुस्तानी में नज़ीर ही एकमात्र कवि कहे जा सकते हैं। नज़ीर में वह सब गुण थे जो किसी प्रतिभाशाली पुरुष में होते हैं उनका काव्य ही उनका जीवन-चरित्र है। वह वास्तव में बड़े स्वतन्त्र थे और भाग्य के भले या बुरे किसी चक्र की परवा न करते थे। उन्होंने कभी अपनी रचनाओं के संग्रह करने की परवा न की। जिस किसी ने माँगा, चाहे वह मित्र हो या शिष्य, आपने उसे दे डाला। यही एक-मात्र कवि थे, जिन्होंने बच्चों की ममता पर कविता की है और दीन-हीन अभागे और पीड़ित लोगों के साथ सहानुभूति प्रकट की है। नज़ीर ने मातृभाषा की वह सेवा की है, जो अंग्रेज़ी में शेक्सपियर और चासर ही कर सके।'

एक अंग्रेज़ की तो यह राय है। दूसरे अंग्रेज़ सर जार्ज ग्रियर्सन का कहना है कि—

'यद्यपि नज़ीर की रचना एक विशेष प्रकार की रुचि वाले पाठकों में आदरणीय है, पर तुलसी, सूर और जायसी तथा उसी समय के अन्य धुरंधर कवियों की कविताओं की तरह सर्वसाधारण में ग्राह्य नहीं।

साधारण बोलचाल में होने पर भी उनकी कविता ऐसी अश्लील है कि उसको अंग्रेज़ी के शिष्ट और शिक्षा-प्राप्त लोग पढ़ने के योग्य भी नहीं समझते।'

दोनों अंग्रेज़ों की रायें किसी हद तक सही हैं। पर दोनों ने अपने-अपने कथन में अत्युक्ति से काम लिया है। नज़ीर की मातृभाषा की सेवा शेक्सपियर और चासर के जोड़ की नहीं कही जा सकती। उसी तरह उनकी रचना का अधिकांश ऐसा है जो शिष्ट और शिक्षा-प्राप्त सज्जनों के सर्वथा पढ़ने योग्य है। हाँ, कहीं कहीं इतना अश्लील भी है, जो नज़ीर के कीर्ति-चन्द्र का कलंक है। रागसागरोद्भव और रागकल्पद्रुम में नज़ीर की कविता का जो अंश छपा है, वह पुस्तक-प्रणेता की रुचि-विशेष का द्योतक है, न कि नज़ीर की कविता का दिग्दर्शन। उर्दू-कवियों में तो प्रायः सब ने बेहद खुली हुई अश्लील बातें कही हैं। नज़ीर में भी उनकी कुछ बू आ गई है।

नज़ीर ने हिन्दुओं के प्रति जो सद्भाव-प्रदर्शन किया है, वह उर्दू-साहित्य में एकदम नई बात है। नज़ीर के न पहले और न पीछे, किसी भी मुसलमान कवि ने हिन्दुओं के देवी-देवताओं, त्यौहारों और मेलों-ठेलों के सम्बन्ध में ऐसी ललित सर्वप्रिय रचना की, जिनसे दोनों जातियों में सद्भाव बढ़ता। नज़ीर का यह प्रयत्न बहुत प्रशंसनीय था, जिसकी ओर अंग्रेज़ समालोचकों का ध्यान सबसे पहले जाना चाहिये था।

नज़ीर ने सब रसों में कवितायें की हैं। उर्दू के अन्य प्रसिद्ध कवियों ने फ़ारसी कवियों का अनुसरण किया है; पर नज़ीर ने अपना रास्ता स्वयं चुना और वे किसी के पीछे न लगे। आश्चर्य इस बात का है कि आबेहयात के विद्वान् लेखक प्रोफ़ेसर आज़ाद ने भी नज़ीर की जीवनी अपनी पुस्तक में नहीं दी। क्या इसका कारण यह तो नहीं कि नज़ीर ने 'कृष्ण कन्हैया का बालपन' लिखा था? या उन्होंने आशिक़-माशूकों की आह-ऊह और चुलबुलाहट की कविता कम की है?

जो हो; नज़ीर अपने ढंग के उर्दू के एक ही कवि थे। हम उर्दू कवियों में इनका होना ग़नीमत समझते हैं।

नज़ीर ने अपने समय के प्रायः प्रत्येक विषय पर कवितायें लिखी हैं। इनकी कवितायें अलग-अलग छोटी-छोटी पुस्तकों के आकार में आदमी-नामा, रोटी-नामा, हंस-नामा और जोगी-नामा आदि नामों से बाज़ार में बिकती है।

यहाँ नज़ीर की कुछ कवितायें संक्षिप्त रूप में, नमूने के तौर पर दी जाती हैं——

श्रीकृष्ण की बाल-लीला

यारो सुनो य 'दधि के लुटैया' का बालपन।
औ मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन॥
मोहन सरूप नृत्य करैया का बालपन।
बन-बन के ग्वाल गौवें चरैया का बालपन॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥१॥
ज़ाहिर में सुत वो नन्द जसोदा के आप थे।
वरना वो आपी माई थे और आपी बाप थे॥
परदे में बालपन के ये उनके मिलाप थे॥
जोती-सरूप कहिए जिन्हें सो वो आप थे॥
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन।
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥२॥
उनको तो बालपन से न था काम कुछ ज़रा।
संसार की जो रीति थी उसको रखा बजा।
मालिक थे वह तो आपी उन्हें बालपन से क्या।
वाँ बालपन जवानी बुढ़ापा सब एक था।
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन॥
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन॥३॥
बाले हो बिर्जराज जो दुनिया में आगये।
लीला के लाख रङ्ग तमाशे दिखा गये।

इस बालपन के रूप में कितनों को भा गये।
यक यह भी लहर थी जो जहाँ को जता गये।
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन।।
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन।।४।।
सब मिलके यारो कृष्ण मुरारी की बोलो जै।
गोबिन्द छैल कुंजबिहारी की बोलो जै।
दधि चोर गोपीनाथ बिहारी की बोलो जै।
तुम भी नज़ीर कृष्ण मुरारी की बोलो जै।
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन।।
क्या क्या कहूँ मैं कृष्ण कन्हैया का बालपन।।५।।

होली

जब फागुन रंग झमकते हों तब देख बहारें होली की।
और डफ़ के शोर खड़कते हों तब देख बहारें होली की।
परियों के रंग दमकते हों तब देख बहारें होली की।
खुम शीशे जाम झलकते हों तब देख बहारें होली की।
महबूब नशे में झुकते हों तब देख बहारें होली की।।१।।
हो नाच रङ्गीली परियों का बैठे हों गुलरू रङ्ग भरे।
कुछ भागी तालें होली की कुछ नाज़ अदा के ढङ्ग भरे।
दिल भूखे देख बहारों को और कानों में आहङ्ग भरे।
कुछ तबले खड़कें रङ्ग भरे कुछ ऐश के दम मुँहचंग भरे।
कुछ घुँघरू ताल झनकते हों तब देख बहारें होली की।।२।।
औ एक तरफ़ दिल लेने को महबूब गवैयों के लड़के।
हर आन घड़ी गत भरते हों कुछ घट बढ़ के कुछ बढ़ बढ़ के।
कुछ नाज़ जतावें लड़ लड़ के कुछ होली गावें अड़ अड़ के।
कुछ लचके शोख़ कमर पतली कुछ हाथ चले कुछ तन फड़के।
कुछ काफ़िर नैन मटकते हों तब देख बहारें होली की।।३।।

गुलज़ार खिले हों परियों के और मजलिस की तैयारी हो।
कपड़ों पर रङ्ग के छींटें से ख़ुश रंग अजब गुलकारी हो।
मुँह लाल गुलाबी आँखें हों ओर हाथों में पिचकारी हो।
उस रंग भरी पिचकारी को अँगिया पर तक कर मारी हो।
सीनों से रंग ढलकते हों तब देख बहारें होली की ॥४॥

ब्रह्मानन्द

हैं आशिक़ औ माशूक़ जहाँ वाँ शाह वज़ीरी है बाबा।
नै रोना है नै धोना है नै दर्दे असीरी है बाबा।
दिन रात बहारें चुहलें हैं और ऐश सफ़ीरी है बाबा।
जो आशिक़ हुए सो जानें हैं यह भेद फ़कीरी है बाबा।
हर आन हँसी हर आन ख़ुशी हर वक्त अमीरी है बाबा॥
जब आशिक़ मस्त फ़कीर हुये फ़िर क्या दिलगीरी है बाबा॥१॥
कुछ ज़ुल्म नहीं कुछ ज़ोर नहीं कुछ दाद नहीं फ़रियाद नहीं।
कुछ क़ैद नहीं कुछ बन्द नहीं कुछ ज़ब्र नहीं आज़ाद नहीं।
शागिर्द नहीं उस्ताद नहीं वीरान नहीं आबाद नहीं।
हैं जितनी बातें दुनिया की सब भूल गये कुछ याद नहीं।
हर आन हँसी हर आन ख़ुशी हर वक्त अमीरी है बाबा॥
जब आशिक़ मस्त फ़कीर हुए फिर क्या दिलगीरी है बाबा॥२॥
जिस सिम्त नज़र कर देखे हैं उस दिलवर की फुलवारी है।
कहीं सब्ज़ी की हरियाली है कहीं फूलों की गुलकारी है।
दिन रात मगन ख़ुश बैठे हैं और आस उसी की भारी है।
बस आप ही वह दातारी है और आपही वह भण्डारी है।
हर आन हँसी हर आन ख़ुशी हर वक्त अमीरी है बाबा॥
जब आशिक़ मस्त फ़कीर हुए फिर क्या दिलगीरी है बाबा॥३॥
हम चाकर जिसके हुस्न के हैं वह दिलवर सब से आला है।
उसने ही हमको जी बख्शा उसने ही हमको पाला है।

दिल अपना भोला भाला है औ इश्क़ बड़ा मतवाला है ।
क्या कहिये और नज़ीर आगे अब कौन समझने वाला है ।
हर आन हँसी हर आन ख़ुशी हर वक्त अमीरी है बाबा ।।
जब आशिक़ मस्त फ़कीर हुए तब क्या दिलगीरी है बाबा ।।४।।

बंजारा-नामा

टुक हिर्स हवा को छोड़ मियाँ मत देस बिदेस फिरे मारा ।
क़ज्ज़ाक़ अजल का लूटे है दिन रात बजाकर नक्क़ारा ।
क्या बधिया भैंसा बैल शुतर क्या गोनी पल्ला सर भारा ।
क्या गेहूँ चावल मोठ मटर क्या आग धुआँ औ अङ्गारा ।।
सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब लाद चलेगा बञ्जारा ।।१।।

गर तू है लक्खी बञ्जारा औ खेप भी तेरा भारी है ।
ऐ ग़ाफ़िल तुझसे भी चढ़ता यक और बड़ा व्यापारी है ।।
क्या शक्कर मिसरी क़न्द गरी क्या साँभर मीठा खारी है ।
क्या दाख़ मुनक्का सोंठ मिरिच क्या केसर लौंग सुपारी है ।।
सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब लाद चलेगा बञ्जारा ।।२।।

जब चलते चलते रस्ते में यह गौन तेरी ढल जाएगी ।
यक बधिया तेरी मिट्टी पर फिर घास न चरने पाएगी ।।
यह खेप जो तूने लादी है सब हिस्सों में बट जाएगी ।
धी पूत जमाई बेटा क्या बञ्जारन पास न आएगी ।।
सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब लाद चलेगा बञ्जारा ।।३।।

क्या जी पर बोझ उठाता है इन गोनों भारा-भारी के ।
जब मौत का डेरा आन पड़ा फिर दोनों हैं व्यापारी के ।।
क्या साज़ जड़ाऊ ज़र ज़ेवर क्या गोटे थान किनारी के ।
क्या घोड़े ज़ीन सुनहरी के क्या हाथी लाल अंबारी के ।।
सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब लाद चलेगा बञ्जारा ।।४।।

मग़रूर न हों तलवारों पर मत भूल भरोसे ढालों के।
सब पट्टा तोड़ के भागेंगे मुँह देख अजल के भालों के॥
क्या डिब्बे मोती हीरों के क्या ढेर ख़ज़ाने मालों के।
क्या बकुचे ताश मुशज्ज़र के क्या तख़्ते शाल दुशाले के॥
सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब लाद चलेगा बञ्जारा॥५॥

जोगी

रात दिन हिज्र में जोगी सा बना फिरता हूँ।
बेक़रारी से तेरे नाम की जपता सुमरन॥
दम बदम आह की पोंगी से बजाना य' सदा।
देखिए कौन से दिन हर हमें देंगे दरशन॥
कोई कहता है कि जोगी जी किधर को आये।
सच कहो कौन सी नगरी में तुम्हारा है वतन॥
तुम तो आते हो नज़र हमको नये से जोगी।
सच कहो जोग लिया तुमने य' किसके कारन॥
गर गुरू हुक्म हो बनवा दें तुम्हारा अस्थल।
शहर में बाग़ में या बर लबे दरियाए जमुन।
या कि मथुरा जो पसन्द आए तो वाँ जगह लें।
या खदिर बन में महाबन में हो या वृन्दाबन॥
तब तो सुन सुन के कहा मैंने य' उससे बाबा!
तुमको क्या काम फ़क़ीरों से य' करना अनबन॥
औ वतन पूछ हमारा तो य' सुन रख बाबा!
या गली दोस्त की या यार के घर का आँगन॥
उस के कूचे में सदा मस्त रहा करते हैं।
वही बस्ती वही नगरी वही जंगल वही बन॥
जब से उस शोख़ के फन्दे में फँसे टूट गए।
जितने थे मज़हबो मिल्लत के जहाँ में बन्धन॥

नाम को पूछो तो है नाम हमारा आशिक़।
सब से आज़ाद हुये यार का लेकर दामन।।
पंथ की पूछों तो जोगी न जनम के न अतीत।
इश्क़ के मेल में हम प्रेत का रखते हैं बरन।।
गर रहें जीते तो जीने की नहीं फ़िक्र हमें।
और मर जायँ तो हरगिज़ नहीं परवाय कफ़न।।
हम में औ जोगी की सूरत में बड़ा फ़र्क़ है जान।
कहाँ जोगी की अदा औ कहाँ आशिक़ की फबन।।
ख़ाक है यार के कूचे की भभूत अब हर आन।
हमने भी राख़ बनाई है जलाकर तन मन।।
और अस्थल के बनाने की कही तूने जो बात।
यह बखेड़ा वो करे जिसके कने हो कुछ धन।।
हम फ़कीरों को भला काम है क्या अस्थल से।
वही अस्थल है जहाँ मार के बैठे आसन।।
जा पड़े याद में उस शोख़ की जिस बस्ती में।
वही गोकुल है हमें और वही वृन्दाबन।।

कलजुग

दुनिया अजब बाज़ार है, कुछ जिंस याँ की साथ ले।
नेकी का बदला नेक है, बद से बदी की बात ले।
मेवा खिला मेवा मिले फल फूल दे फल पात ले।
आराम दे आराम ले, दुख दर्द दे आफ़ात ले।
कलजुग नहीं करजुग है यह, याँ दिन को दे और रात ले।
यह ख़ूब सौदा नक़्द है, इस हाथ दे उस हाथ ले।।१।।
अपने नफ़े के वास्ते मत और का नुक़सान कर।
तेरा भी नुक़साँ होएगा, इस बात ऊपर ध्यान कर।
खाना जो खा तो देखकर, पानी जो पी तो छानकर।
याँ पाँव को रख फूँक कर और ख़ौफ़ से गुज़रान कर।

कलजुग नहीं करजुग है यह, याँ दिन को दे और रात ले।
क्या खूब सौदा नक़्द है, इस हाथ दे उस हाथ ले ।।२।।

बरसात

बादल हवा के ऊपर हो मस्त छा रहे हैं।
झड़ियों की मस्तियों से धूमें मचा रहे हैं।
पड़ते हैं पानी हरजा जल थल बना रहे हैं।
गुलज़ार भीगते हैं सब्ज़े नहा रहे हैं।
क्या क्या मची हैं यारो ! बरसात की बहारें ।।१।।
गाती हैं गीत कोई झूले पै करके फेरा।
'मारूजी आज कीजै याँ रैन का बसेरा'।
है ख़ुश किसी को आकर है दर्दो ग़म ने घेरा।
मुंह ज़र्द बाल बिखरे और आँखों में अँधेरा।
क्या क्या मची हैं यारो ! बरसात की बहारें ।।२।।
छत गिरने का किसी जा गुल शोर हो रहा है।
दीवार का भी धड़का कुछ होश खो रहा है।
दर दर हवेली वाला हर आन रो रहा है।
मुफ़लिस सो झोंपड़े में दिल शाद सो रहा है।
क्या क्या मची हैं यारो ! बरसात की बहारें ।।३।।
कोई पुकारता है 'लो यह मकान टपका।
गिरती है छत की मिट्टी और सायबान टपका।
छलनी हुई अटारी कोठा निदान टपका।
बाक़ी था एक ओसारा सो वह भी आन टपका।'
क्या क्या मची हैं यारो ! बरसात की बहारें ।।४।।
फुन्सी किसी के तन में सर पर किसी के फोड़े।
छाती पै गरमी दाने और पीठ में ददोड़े।
खा पूरियाँ किसी को हैं लग रहे मकोड़े।

आते हैं दस्त जैसे दौड़ें इराक़ी घोड़े ।
क्या क्या मची हैं यारो ! बरसात की बहारें ।।५।।

हैं जिसके तन मुलायम मैदे की जैसे लोई ।
वह इस हवा में ख़ासी ओढ़े फिरे है लोई ।
और जिनकी मुफ़लिसी ने शर्मो हया है खोई ।
है उनके सर पै सिरकी या बोरिये की खोई ।
क्या क्या मची हैं यारो ! बरसात की बहारें ।।६।।

यह रुत वो है कि जिसमें ख़ुर्दो कबीर ख़ुश हैं ।
अदना ग़रीब मुफ़लिस शाहो वज़ीर ख़ुश हैं ।
माशूक शाद ख़ुर्रम आशिक़ असीर ख़ुश हैं ।
जितने हैं अब जहाँ में अब ऐ नज़ीर ! ख़ुश हैं !
क्या क्या मची हैं यारो ! बरसात की बहारें ।।

मुफ़लिसी

जब आदमी के हाल पे आती है मुफ़लिसी ।
किस किस तरह से उसको सताती है मुफ़लिसी ।
प्यासा तमाम रोज़ बिठाती है मुफ़लिसी ।
भूका तमाम रात सुलाती है मुफ़लिसी ।
यह दुःख वह जाने जिस पे कि आती है मुफ़लिसी ।।
कहिये तो अब हकीम की सबसे बड़ी है शाँ ।
ताज़ीम जिसकी करते हैं नव्वाब और खाँ ।
मुफ़लिस हुए तो हज़रते लुक़मान क्या हैं याँ ।
ईसा भी हो तो कोई नहीं पूछता मियाँ ।
हिकमत हकीम की भी डुबाती है मुफ़लिसी ।।
जो अहले फ़ज़ल आलिम ओ फ़ाज़िल कहाते हैं ।
मुफ़लिस हुए तो कलमा तलक भूल जाते हैं ।

पूछे कोई अलिफ़ तो उसे बे बताते हैं।
वह जो ग़रीब ग़ुरबाके लड़के पढ़ाते हैं;
उनकी तो उम्र भर नहीं जाती है मुफ़लिसी ॥

जब रोटियों के बँटने का आकर पड़े शुमार।
मुफ़लिस को देवें एक तवंगरको चार-चार।
गर और माँगे वह, तो उसे झिड़कें बार-बार।
इस मुफ़लिसी का आह बयाँ क्या करूँ मैं यार!
मुफ़लिसको इस जगह भी दबाती है मुफ़लिसी ॥

बीबी की नथ न लड़कों के हाथों कड़े रहे।
कपड़े मियाँ के बनिये के घर में पड़े रहे।
जब कड़ियाँ बिक गयीं तो खंडरमें अड़े रहे।
जंजीर नै किवाड़ न पत्थर गड़े रहे।
आखिर को ईंट ईंट खुदाती है मुफ़लिसी ॥

कैसा ही आदमी हो पर अफ़लासके तुफ़ैल।
कोई गधा कहे उसे ठहराये कोई बैल।
कपड़े फटे तमाम बढ़े बाल फैल फैल।
मुँह खुश्क दाँत जर्द बदनपर जमा है मैल।
सब शक्ल कैदियोंकी बनाती है मुफ़लिसी ॥

दुनिया में ले के शाहसे ऐ यारो ता फ़कीर।
खालिक़ न मुफ़लिसी में किसी को करे असीर।
अशराफ़ को बनाती है अिक आनमें हक़ीर।
क्या क्या मैं मुफ़लिसी की खराबी कहूँ 'नज़ीर'
वह जाने जिसके दिल की जलाती है मुफ़लिसी ॥

आदमी

दुनिया में बादशाह है सो है वह भी आदमी।
और मुफ़लिसो-गदा है सो है वह भी आदमी।

ज़रदार बेनवा है सो है वह भी आदमी।
नेमत जो खा रही है सो है वह भी आदमी।
टुकड़े जो माँगता है सो है वह भी आदमी ।।१।।
अशराफ़ और कमीने से ले शाह ता वज़ीर।
हैं आदमी ही साहबे-इज़्ज़त भी औ' हक़ीर।
याँ आदमी मुरीद हैं और आदमी ही पीर।
अच्छा भी आदमी ही कहाता है ऐ 'नज़ीर'।
और सब से जो बुरा है सो है वह भी आदमी ।।२।।

रोटियाँ

जब आदमी के पेट में आती हैं रोटियाँ।
फूली नहीं बदन में समाती हैं रोटियाँ।
आँखें परी-रुखों से लड़ाती हैं रोटियाँ।
सीने उपर भी हाथ चलाती हैं रोटियाँ।
जितने मज़े हैं सब यें दिखाती है रोटियाँ ।।१।।
रोटी न पेट में हो तो फिर कुछ जतन न हो।
मेले की सैर ख़्वाहिशे बाग़ो चमन न हो।
भूखे ग़रीब दिल की ख़ुदा से लगन न हो।
सच है कहा किसी ने कि भूखे भजन न हो।
अल्लाह की भी याद दिलाती हैं रोटियाँ ।।२।।
रोटी से नाचे प्यादा क़वायद दिखा दिखा।
असवार नाचे घोड़े को कावा लगा लगा ।
घुँघरू को बाँधे पैक भी फिरता है जा बजा।
और इस सिवा जो ग़ौर से देखा तो जाबजा।
सौ सौ तरह के नाच नचाती हैं रोटियाँ ।।३।।

ककड़ी

पहुँचे न उसको हरगिज काबुल दरे की ककड़ी।
नै पूरबो न पच्छुम खूबी भरे की ककड़ी ।।

नै चीन के परे की औ नै दरे की ककड़ी।
दक्खिन की औ न हरगिज़ उससे परे की ककड़ी।।
क्या ख़ूब नर्म नाज़ुक इस आगरे की ककड़ी।
और जिसमें ख़ास काफ़िर इस्कंदरे की ककड़ी।
क्या प्यारी प्यारी मीठी औ पतली पतलियाँ हैं।
गन्ने की पोरियाँ हैं रेशम की तकलियाँ हैं।।
फरहाद की निगाहें शीरी की हँसलियाँ हैं।
मज़नू की सर्द आहें लैला की उँगलियाँ हैं।।
क्या ख़ूब नर्म नाज़ुक इस आगरे की ककड़ी।
और जिसमें ख़ास काफ़िर इसकंदरे की ककड़ी।।

बिरह-दुख

मुझे ऐ दोस्त तेरा हिज्र अब ऐसा सताता है।
कि दुश्मन भी मेरे अहवाल पर आँसू बहाता है।।
य' बेताबी य' बेख़्वाबी य' बेचैनी दिखाता है।
न दिल लगता है घर में औ न सहरा मुझको भाता है।।
अगर कुछ मुँह से बोलूँ तो मज़ा उलफ़त का जाता है।
वगर चुपका हूँ रहता तो कलेजा मुँह को आता है।।
मरा दरदेस्त अन्दर दिल अगर गोयम ज़बाँ सोज़द।
वगर दम दर कशम तरसम कि मग़्ज़े उस्तख़्वाँ सोज़द।।

कूक करूँ तो जग हँसे, औ चुपके लागे घाव।
ऐसे कठिन सनेह का, किस विध करूँ उपाव।।

कभी होकर ग़रेबाँ चाक सहरा को निकलता हूँ।
कभी घबरा के फिर घर की तरफ़ नाचार चलता हूँ।।
लगी है आग दिल में शमा-सा जलकर पिघलता हूँ।
धुआँ उठता है आहों का बरंगे मोम गलता हूँ।।

बदन में देखकर शोला भड़कते हाथ मलता हूँ ।
भभूके तन से उठते हैं सतीं की तरह जलता हूँ ।।
ज़े ताबे आतिशे दूरीं कि मीं सोज़द दिलो जाँ रा ।
नमूदा नब्ज़े मन पुर आबला दस्ते तबीबाँरा ।।

बिरह आग तन में लगी, जरन लगे सब गात ।
नारी छूअत बैद के, पड़े फफोला हात ।।

कहाँ तक खाइये ग़म अब तो ग़म खाया नहीं जाता ।
दिले-बेताब को बातों से बहलाया नहीं जाता ।।
क़दम रखता हूँ जिस जा वाँ से सरकाया नहीं जाता ।
ये पत्थर हाथ से तिल पर भी उसकाया नहीं जाता ।।
पड़ा हूँ दश्त में रस्ता कहीं पाया नहीं जाता ।
जो चाहूँ भाग जाऊँ भाग भी जाया नहीं जाता ।।
मकाने यार दूर अज़ मन न पर दारम न पाए दिल ।
अजब दर मुश्किल उफ्तादम चसाँ तै साज़म ई मंज़िल ।।

ना मेरे पंख न पाँव बल, मैं अपंख पिय दूर ।
उड़ न सकूँ गिर गिर पड़ूँ रहूँ बिसूर बिसूर ।।

उधर दिल मुझसे कहता है कि तू चल यार के डेरे ।
इधर तन मुझसे कहता है कि तू मत मुझको दुख दे रे ।।
जो कहना दिल का करता हूँ तो रहता है वो घर मेरे ।
व गर तन की सुनूँ तो और दुख पड़ते हैं बहुतेरे ।।
न दिल माने न तन माने हरइक अपनी तरफ़ फेरे ।
करूँ मैं क्या 'नज़ीर' ऐसी जो मुश्किल आनकर घेरे ।।
दिलम दिलदार मी जोयद तनम आराम मी ख़्वाहद ।
अजायब कशमकश दारम कि जानम मुफ्त मी काहद ।।

दिल चाहै दिलदार को, तन चाहै आराम ।
दुबधा में दोनों गये, माया मिली न राम ।।

ग़ज़लें

१

वो मुझको देख कुछ इस ढब से शर्मसार हुआ ।
कि मैं फ़क़त हया ही पर उसकी निसार हुआ ।।
सभों को हँस के दिये बोसे औ हमें गाली ।
हज़ार शुक्र भला इस क़दर तो प्यार हुआ ।।
हमारे मरने को हाँ तुम तो झूठ समझे थे ।
कहा रक़ीब ने लो अब तो एतबार हुआ ।।
क़रार करके न आया वो संग-दिल काफ़िर ।
पड़े क़रार पै पत्थर ये कुछ क़रार हुआ ।।
गले का हार जो उस गुल-बदन के टूट गया ।
तो डर नज़र का वहीं उसको एक बार हुआ ।।
किसी से और तो कुछ बस चला न उसका 'नज़ीर' ।
निदान मेरे ही आकर गले का हार हुआ ।।

२

नज़र पड़ा यक बुते परीवश निराली सजधज नई अदा का ।
जो उम्र देखो तो दस बरस की य' क़हर आफ़त ग़ज़ब ख़ुदा का ।।
जो शक्ल देखो तो भोली भाली जो बातें सुनिये तो मीठी मीठी ।
प' दिल वो पत्थर कि सर उड़ा दे जो नाम लीजे कभी वफ़ा का ।।
जो घर से निकले तो यह क़यामत कि चलते चलते क़दम क़दम पर ।
किसी को ठोकर किसी को झिड़की किसी को गाली निपट लड़ाका ।।
य' राह चलते में चुलबुलाहट कि दिल कहीं है नज़र कहीं है ।
कहाँ का ऊँचा कहाँ का नीचा ख़याल किसको क़दम की जा का ।।
लड़ावे आँखें वह बेहिजाबी कि फिर पलक से पलक न मारे ।
नज़र जो नीचे करे तो गोया खिला सरापा चमन हया का ।।

य' चंचलाहट य' चुलबुलाहट ख़बर न सर की न तन की सुध-बुध ।
जो चीरा बिखरा बला से बिखरा न बन्द बाँधा कभू कबा का ।।
गले लिपटने में यों शिताबी कि मिस्ल बिजली के इज़तराबी ।
कहीं जो चमका चमक चमक कर कहीं जो लपका तो फिर झपाका ।।
न वह सँभाला किसी का सँभले न वह मनाए मने किसी के ।
जो क़त्ले आशिक़ प' आके मचले तो ग़ैर का फिर न आशना का ।।
'नज़ीर' हट जा परे सरक जा बदल ले सूरत छिपा ले मुँह को ।
जो देख लेवेगा वह सितमगर तो यार होगा अभी झड़ाका ।।

३

जब मैं सुना कि यार का दिल मुझसे हट गया ।
सुनते ही इसके मेरा कलेजा उलट गया ।।
छीना था दिल को चश्म ने लेकिन मैं क्या करूँ ।
ऊपर ही ऊपर उस सफ़े मिज़गाँ में बँट गया ।।
क्या खेलता है नट की कला आँखों-आँखों में ।
दिल साफ़ ले लिया है जो पूँछा तो नट गया ।।
आँखों मे मेरे सुबह क़यामत गयी झमक ।
सीने से उस परी के जो परदा उलट गया ।।
आँखें तुम्हारी क्या फिरीं इस वक्त मेरी जान !
सच पूछिये तो मुझसे ज़माना पलट गया ।।

४

सहर जो निकला मैं अपने घर से तो देखा यक शेख हुस्न वाला ।
झलक वो मुखड़े में उस सनम के कि जैसे सूरज में हो उजाला ।।
बहुत य' मैंने तो चाहा पूछूँ मैं नाम उसका वले वो गुलरू ।
न मुझसे बोला न की इशारत न दी तसल्ली न कुछ सँभाला ।।
तिहारी आसा लगी है निस दिन तिहारे दरसन को तरसै नैना ।
दुलारे सुन्दर अनूठे अबरन हठीले मोहन अनोखे लाला ।।

अगिनि बरस है हिया में मोरे बिरह में तोरे ए मनमोहनवाँ !
तोरे जो नैना ने मोहा मुहिको न जीव तनिकौ भवा दुखाला ।।

५

मर मर मुझे कहता था सो मरता हूँ मैं यारो ।
अब लाओ कहाँ है वो मेरा कोसनेवाला ।।
क़ासिद तू मेरा नाम तो लीजो न व लेकिन ।
कहना कोई मरता है तेरा चाहनेवाला ।।
जङ्गल में मेरे हाल पै कोई भी न रोया ।
गर फूट के रोया तो मेरे पाँव का छाला ।।
औरों को जो गिरते हुए देखा तो लिया थाम ।
हम गिर भी पड़े तो भी न ज़ालिम ने सँभाला ।।
बोसे की तलब की तो कहा नाज़ से चल दूर ।
और दिल को कहा ले तो वहीं हँस के कहा ला ।।
मुझ जुल्फ़ के मारे को न ज़ंजीर पिन्हाओ ।
काफ़ी है मेरी क़ैद को एक मकड़ी का जाला ।।

६

दूर से आये थे साक़ी सुनके मैख़ाने को हम ।
बस तरसते ही चले अफ़सोस पैमाने को हम ।।
मै भी है मीना भी है साग़र भी है साक़ी नहीं ।
दिल में आता है लगा दें आग मैख़ाने को हम ।।
बाग़ में लगता नहीं सहरा से घबराता है दिल ।
अब कहाँ ले जाके बैठें ऐसे दीवाने को हम ।।
क्या हुई तक़सीर हमसे तू बता दे ऐ नज़ीर !
ताकि शादी मर्ग समझें ऐसे मर जाने को हम ।।

७

पलकों की झपक पुतली की फिरत सुरमे की लगावट वैसी ही ।
ऐ यार नज़र मक्कार अदा त्योरी की चढ़ावट वैसी ही ।। १ ।।

वह अँखिया मस्त नशीली सीं कुछ काली सीं कुछ पीली सीं।
चितवन की दग़ा नजरों की कपट सैनों की लड़ावट वैसी ही ।। २ ।।
वह रात अँधेरी बालों सी वह माँग चमकती बिजली सी।
जुल्फ़ों की खुलत पट्टी की जमत चोटी की गुँधावट वैसी ही ।। ३ ।।
वह छोटी-छोटी सख़्त कुचें वह कच्चे-कच्चे सेब ग़जब।
अँगिया की भड़क गोटों की चमक बन्दों की कसावट वैसी ही ।। ४ ।।
वह चञ्चल चाल जवानी की ऊँची एँड़ी नीचे पंजे।
कफ़्शों की खटक दामन की झटक ठोकर की लगावट वैसी ही ।। ५ ।।
कुछ हाथ हिलें कुछ पाँव हिलें फड़कें बाजू थिरकै सब तन।
गाली वो बला ताली वो सितम उँगली की नचावट वैसी ही ।। ६ ।।
चञ्चल अचपल मटके चटके सर खोले ढाँके हँस-हँस के।
क़हक़ह की हँसावट और ग़ज़ब ठट्ठों की उड़ावट वैसी ही ।। ७ ।।
हर वक्त फ़बन हर आन सजें दम दम में बदलें लाख सजें।
बाहों की झपक घूँघट की अदा जोबन की दिखावट वैसी ही ।। ८ ।।

८

न था मालूम उलफ़त में कि ग़म खाना भी होता है।
जिगर की बेकली औ दिल का घबराना भी होता है ।।
सिसकना आह करना अश्क भर लाना भी होता है।
तड़पना लोटना बेताब हो जाना भी होता है ।।
कफ़े अफ़सोस को मलमल के पछताना भी होता है।
किये पर अपने फिर आपी हीं दुख पाना भी होता है ।।
अगर दानिस्तम् अज़ रोज़े अजल दाग़े जुदाई रा।
न मी करदम बदिल रोशन चिराग़े आशनाई रा ।।

जो मैं ऐसो जानती, प्रीत किये दुख होय।
नगर ढँढोरा पीटती, प्रीत न कीजो कोय ।।

९

सुबह जब बोल उठा मुर्ग़े-सहर कुकुड़ू-कूँ।
उठ गये पास से वह रह गया मैं टुटरूँ-टूँ।।

१०

न गुल अपना न ख़ार अपना न ज़ालिम बाग़बाँ अपना।
बनाया आह किस गुलशन में हमने आशियाँ अपना।।

११

बिलफ़र्ज अगर हम हुये हव्वा के शिकम से।
आदम के तईं पूँछिये वह किसका जना है।।
हिकमत का उलट फेर नहीं जिसकी नज़र में।
वह कहते हैं ग़ाफिल ये बक़ा है ये फ़ना है।।
यक उसकी दवा समझी नहीं जाती 'नज़ीर' आह।
कुछ और ही माजून का नुसख़ा ये बना है।।

१२

ऐश कर ख़ूबाँ में ऐ दिल, शादमानी फिर कहाँ।
शादमानी गर रही तो ज़िन्दगानी फिर कहाँ।।
लज्ज़ते जन्नत के मेवों की बहुत होंगी वहाँ।
पर ये मीठी गालियाँ ख़ूबाँ की खानी फिर कहाँ।।
सैर कर दुनिया की ग़ाफ़िल ज़िंदगानी फिर कहाँ।
ज़िन्दगी गर फिर मिली तो नौजवानी फिर कहाँ?

१३

कल जो टुक रोया किसी की याद में वह गुलबदन।
अश्क थे आँखों में या मोती कुचल कर भर दिये।।

१४

कल शबे वस्ल में क्या जल्द कटी थीं घड़ियाँ।
आज क्या मर गये घड़ियाल बजाने वाले।।

१५

रोऊँगा आके तेरी गली में अगर मैं यार।
पानी ही पानी होगा हरेक घर के आसपास।।

१६

झगड़ा न करे मिल्लतो मजहब का कोई याँ।
जिस राह में जो आन पड़े खुश रहे हर आँ।।
ज़ुन्नार गले या कि बग़ल बीच हो क़ुरआँ।
आशिक़ तो क़लन्दर है न हिन्दू न मुसलमाँ।।
काफ़िर न कोई साहबे इस्लाम रहेगा।
आख़िर वही अल्लाह का यक नाम रहेगा।।

दोहे

भेंट भई जाने कहीं, नैनन आँसू लाय।
है कोई ऐसा मीत जो, पीतम मँदिर बताय।। १।।
प्रीतम या मनमोहि के, कीन्हों मान गुमान।
बिन देखे वा रूप के, मेरे कलपत प्रान।। २।।
कूक करूँ तो जग हँसे, औ चुपके लागे घाव।
ऐसे कठिन सनेह का, किस बिध करूँ उपाव।। ३।।
आह दई कैसी भई, अनचाहत को संग।
दीपक के भावें नहीं, जल जल मरत पतंग।। ४।।
विरह आग तन में लगी, जरन लगे सब गात।
नारी छूवत वैद के, पड़े फफोले हाथ।। ५।।
ना मेरे पंख न पाँव बल, मैं अपंग पिय दूर।
उड़ न सकूँ गिर गिर पड़ूँ, रहूँ बिसूर बिसूर।। ६।।
दिल चाहे दिलदार को, तन चाहे आराम।
दुबिधा में दोनों गये, माया मिली न राम।। ७।।
जो मैं ऐसा जानती, प्रीत किये दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीत न कीजै कोय।। ८।।

नासिख़

नासिख़ उपनाम; इमामबख़्श नाम; पिता का नाम ख़ुदाबख़्श; स्थान लखनऊ, जन्म-काल अनिश्चित। १८३८ ई० मे ६४, ६५ वर्ष की अवस्था में देहान्त हुआ। कुछ लोग कहते हैं कि ये लगभग सौ वर्ष तक जीवित थे।

कुछ लोग कहते हैं कि ये ख़ुदाबख़्श की गोद आये थे। ख़ुदाबख़्श इनके असली पिता न थे। वे लाहौर में रहते थे और काश्मीर और काबुल आदि स्थानों से केसर, बनफ़सा आदि का व्यापार तथा डेरा सीने का काम किया करते थे। उनके पास काफी धन था।

इनके असली बाप ग़रीबी के कारण पश्चिम से पूर्व को आये। फैजाबाद में नासिख़ का जन्म हुआ। ख़ुदाबख़्श ने नासिख़ के ग़रीब बाप से इन्हें गोद ले लिया। उसने इन्हें अच्छी शिक्षा दिलाई, जिससे ये बड़े होकर इतने नामी हुए।

ख़ुदाबख़्श के मरने के बाद उसके भाइयों ने उसकी दौलत पर दावा किया। नासिख़ ने कहा—मुझे उनके धन-दौलत से कुछ वास्ता नहीं। जैसे मैं उन्हें बाप समझता था, वैसे आप को समझता हूँ। इतना निवेदन अवश्य है कि उनकी तरह आप भी मेरी आवश्यकतायें पूरी करते रहें।

उन्होंने स्वीकार किया; पर नासिख़ उनकी आँखों में खटकते ही रहे। चचा को संदेह था कि कभी ये चाहेंगे तो पिता की कुल सम्पत्ति के अधिकारी बन जायँगे। अतएव वह इनको मारने की चिन्ता करने लगे।

इनको उन दिनो रक्त विकार का रोग हो रहा था। इससे ये बेसनी रोटी घी में चूर कर खाया करते थे। निर्दयी चचा ने उसमें विष मिला दिया। इन्हें किसी तरह मालूम हो गया। लोग कहते हैं, एक जिन से इनकी

दोस्ती थी, उसी ने इन्हें बता दिया। जो हो; उसी वक्त इन्होंने दो-चार दोस्तों को बुलाकर उनके सामने रोटी का टुकड़ा कुत्ते के सामने डाला। विष प्रमाणित हो गया।

कुछ दिनों बाद उत्तराधिकार का झगड़ा चला। मामला शाही अदालत तक पहुँचा। फैसला नासिख के अनुकुल हुआ और ये एक अच्छी सम्पत्ति के अधिकारी हुये। उस समय इन्होंने जीकी जलन मिटाने के लिये कई रुबाइयाँ लिखी थीं। उनमें से दो यह हैं—

मशहूर है गरचे इफ्तराय अमाम।
पर करते नहीं ग़ोर ख़वास और अवाम॥
वारिस होना दलील फ़रज़ंदी है।
मीरास न पा सका कहीं कोई ग़ुलाम॥
कहतें रहे अमामे अदावत से ग़ुलाम।
मीरासे पिदर पाई मगर मैंने तमाम॥
इस दावए बातिल से सितमगारों को।
हासिल यह हुआ कर गये मुझको बदनाम॥

अस्तु; सम्मत्ति पाने पर इनके दिन पहले से भी अधिक बेफ़िक्री के साथ कटने लगे। लखनऊ के राजधानी होजाने पर ये फ़ैजाबाद से लखनऊ चले गये और वहीं आजीवन रहे। लखनऊ के टकसाली मुहल्ले में इनका घर था।

ये बड़े कसरती जवान थे। छोटी उम्र ही से इन्हें कसरत का शौक लग गया था। ये ख़ुद भी कसरत करते थे और अपने परिचितों को भी कसरत के लिये उत्साहित करते थे। इनको ख़ासा तगड़ा शरीर मिला था। रोज ये १२९७ डंड लगाते थे। ऋतु अच्छी हुई तो यह संख्या बढ़ ही जाती थी, घटती कभी न थी।

इनका क़द लम्बा और छाती चौड़ी थी। सिर मुँड़ाये रहते थे और खारुँवें की लुंगी पहनकर शेर की तरह बैठा करते थे। जाड़े में भी तंजेब का कुरता पहनते थे। कभी बहुत जरूरत हुई तो लखनऊ की छींट का दोहरा

क़ुरता पहन लेते थे। किसी पर क्रुद्ध होते तो 'बेअदब गुस्ताख़ दुम-कटा भैंसा' कहा करते थे।

दिन-रात में एक ही बार खाना खाते थे। और खाते भी थे कितना? पूरे पाँच सेर। जब किसी मौसम का कोई ख़ास फल पसन्द आ जाता था तो उस दिन अन्न का आहार न करके वह फल ही खाते थे। आम पर जी ललचाया, तो टोकरे के टोकरे ख़ाली कर दिये। जामन पर जी चला, तो एक ढेर उसका भी चट कर गये। नाँद में पानी भरवाकर फल उसमें डलवा देते थे। पास बैठ जाते थे। फिर नाँद ख़ाली ही करके उठ खड़े होते थे। कभी भुट्टे खाने बैठते तो नमक-मिर्च और नीबू के साथ उसका भी वारा-न्यारा कर डालते थे। प्रत्येक ऋतु में दो-तीन बार इस प्रकार के फलाहर होते थे।

इनके भोजन का समय सबको मालूम था। ये भोजन एकान्त में करते थे। भोजन का इनका तरीका अँगरेजों से मिलता-जुलता था। ये कई चीजों को एक साथ सान कर नहीं खाते थे। एक प्याला नौकर ने सामने किया, पहले उसे इच्छानुसार खा लिया। फिर दूसरा आया, उसे साफ किया। फिर तीसरा आया, उसे ख़ाली किया। ये कहते थे कि मिलाकर भोजन करने से उसका असली स्वाद जाता रहता है। जब ये भोजन कर चुकते थे, तब सामने खाली बरतनों का एक पहाड़सा लग जाता था। इनका आकार देखने से जान पड़ता था कि चार-पाँच सेर खाना इनके उपयुक्त ही था।

आग़ा कलब हुसेन खाँ इनके दोस्त थे। वे भी अच्छे कसरती शहसवार और बलवान व्यक्ति थे। उन्हें कविता का भी शौक़ था। ये उनके यहाँ महीनों रहा करते थे। एक बार जब वे सोराँव के तहसीलदार थे, उन्होंने इनको जंगल की हरियाली की सैर के लिये बुलाया। एक दिन इनके लिये खास-खास स्वादिष्ट खाने बनवाये गये। पर ज़रा देर हो गई। उसी समय कुछ नौकर अपना-अपना खाना लेकर डयोढ़ी से निकले। इन्होंने सब को बुलाकर पूछा कि यह किसके लिये है? उत्तर मिला—हम लोगों का खाना है। इन्होंने सब के खाने रखवा लिये। चाट-पोंछ कर ख़ाली बरतन उनके

हवाले कर दिये, और कहा कि हमारा खाना तुम लोग खा लेना। आग़ा साहब को समाचार मिलते ही वे दौड़े आये, पर यहाँ तो कांड समाप्त हो चुका था।

इनका यह नियम था कि पहर रात रहे, ये कसरत प्रारंभ करते थे। सबेरा होते-होते उससे निपट लेते थे। बाल-बच्चे थे ही नहीं। शायद शादी भी नहीं की थी। कसरत के बाद सुस्ताते, फिर नहाते और फिर कभी सहन में और कभी भीतर फ़र्श पर बैठ जाते थे। सबेरे ही से शागिर्दों का आना-जाना शुरू हो जाता था। दोपहर को सब चले जाते थे, तब ये द्वार बन्द करके भोजन पर बैठ जाते थे। भोजन के भारी बोझ को उठाकर आराम करते थे। तीसरे पहर उठते थे। शागिर्द फिर आते थे।

शाम को सब को विदा करके ये नौकर को भी बाहर कर देते थे और भीतर से ताला जड़कर कोठे पर एक एकान्त कमरे में चले जाते थे। वहाँ थोड़ी देर आराम करके फिर काव्य-चर्चा में लग जाते थे। शागिर्दों की ग़ज़लें एक खारुवें की थैली में बन्द करके नौकर बगल में रख जाता था। ये उन्हें भी शुद्ध करते थे और तबीअत उमंग पर आती थी तो स्वयं भी कुछ लिखते थे। रात का तीसरा पहर होते ही काग़ज़ तह करके रख देते थे और फिर कसरत में लग जाते थे।

हुक्के का बड़ा शौक था। तरह-तरह के छोटे-बड़े अच्छे से अच्छे हुक्के मँगाते थे। कुछ भेंट में पा जाते थे। उन्हें सजाते थे। कलियों, गुड़-गुड़ियों, सटक, पेचवाँ, चोंगानी और मदरियों से एक कोठरी भरी थी। जलसों में प्रत्येक मेहमान के सामने एक एक हुक्का रखा जाता था। ऐसा नहीं था कि एक ही हुक्का सब का मुँह चूमता फिरे।

लोग कहते थे कि एक जिन से इनकी दोस्ती थी। एक दिन ये मुगदर हिला रहे थे। सामने देखा तो एक व्यक्ति और भी खड़ा हुआ मुगदर हिला रहा है। जवानी के जोश में ये उससे लिपट गये। थोड़ी देर तक ज़ोर होता रहा। फिर इन्होंने पूछा कि तू कौन है? उसने कहा—मैं जिन हूँ। तुम्हारी कसरत का ढंग मुझे पसन्द है, इसीलिये कभी-कभी इधर भी आ निकलता

हूँ। तुम्हारे खाने में भी शरीक हो जाता हूँ। मगर परिचय के बिना प्रेम का आनन्द नहीं। इसलिये आज अपने को प्रकट करता हूँ। उसी दिन से दोनों में जान-पहचान हो गई। उसी जिन ने विष से भी इन्हें आगाह किया था। जिन से परिचित होने से पहले जब ये खाने बैठते तो कभी-कभी इनके आगे से रोटियाँ ग़ायब हो जाती थीं। एक साहब फरमाते हैं कि कभी-कभी खाते खाते कोई-कोई चीज़ अकारण ही खिड़की से बाहर भी फेंक दिया करते थे। यह किस्सा मन-गढ़न्त जान पड़ता है। पाँच सेर खाने वाले के लिये इस तरह के अनोखे किस्से गढ़े जाने ही चाहिये।

जन्म भर इन्होंने किसी की नौकरी नहीं की। धन भी था, सम्मान भी था, शौक़ीन मिज़ाजों की सुहबत भी थी, तो फिर और क्या चाहिये था?

पहली बार प्रयाग आये हुये थे। हैदराबाद से राजा चंदूलाल ने १२ हजार रुपये भेजकर इन्हें बुला भेजा। इन्होंने उत्तर लिख भेजा कि यहाँ से जाऊँगा तो अब लखनऊ ही जाऊँगा। राजा ने १५ हजार भिजवाकर बड़े आग्रह के साथ इन्हें फिर बुलाया और लिखा कि यहाँ आइयेगा तो राजकवि की उपाधि दिलवाऊँगा; दरबार की हाज़िरी का कोई बन्धन न रहेगा। मुलाकात आपकी खुशी पर रहेगी; पर ये न गये। रुपये अपने मित्र के पास रखवा दिये और आवश्यकतानुसार खर्च करते रहे।

जीवन भर ये फ़ैजाबाद, लखनऊ, प्रयाग, काशी, अज़ीमाबाद और पटने से आगे नहीं गये। लखनऊ से बाहर होते ही छटपटाने लगते थे। एक बार कहा था :—

दश्त से कब वतन को लौटूँगा।
कि छठा अब तो साल आ पहुँचा॥

ये बड़ी ही स्वतन्त्र प्रकृति के मनुष्य थे। कभी-कभी नवाब से नहीं पटती थी तो लखनऊ से कुछ दिनों के लिये बाहर चले जाते थे।

एक दिन एक साहब मुलाक़ात के लिये आये। उस समय ये कुछ मित्रों के साथ आँगन में कुर्सियों पर बैठे थे। वे भी वहीं बैठ गये। उनके हाथ में एक छड़ी थी। सामने एक ढेला पड़ा था। वे छड़ी से ढेले को धीरे-

धीरे तोड़ने लगे। प्रायः लोगों की ऐसी आदत होती है कि बेकारी में या तो पैर हिलाने लगते या मिट्टी कुरेदने लगते हैं, या तिनके तोड़ने लगते हैं। नासिख का धैर्य अन्त में जाता रहा। इन्होंने नौकर को पुकारा। वह सामने आया। उसे हुक्म हुआ कि एक टोकरा मिट्टी लाकर इनके सामने रख दो, जिससे ये अच्छी तरह अपना शौक पूरा करें।

इनके शागिर्दों में प्रायः सब अमीरज़ादे ही थे। एक दिन शाह गुलाम आज़म सेवा में उपस्थित हुये। नासिख तख्ते पर शीतल-पाटी बिछाकर बैठे थे। वे भी उसी पर बैठ गये। अपनी आदत के अनुसार वे शीतलपाटी का एक तिनका तोड़कर नह से नोचने लगे। इन्होंने नौकर से झाड़ू मँगाकर उनके सामने रख दी और कहा—लीजिये, जी-भरकर इसे तोड़िये, शीतलपाटी नोच डालियेगा तो फिर यहाँ यह कहाँ मिलेगी? वे बेचारे लजाकर रह गये।

ऐसे ही एक अमीरज़ादे एक दिन आकर इनके पास बैठ गये। पास ही ताक़ में शीशे के दो चमचे रक्खे थे, जो बहुत सुन्दर और नयी चीज़ थे। उन्होंने उसमें से एक को उठा लिया, उसकी तारीफ़ की और फिर बातें प्रारम्भ कीं। हाथ में लेकर उस चम्मच से वे खुटखुटाते भी रहे। शीशे की चीज़, एक ठेस लगी, झट से दो टुकड़े हो गये। नासिख ने दूसरा चम्मच उनके आगे रख दिया और कहा—अब इससे काम लीजिये।

एक दिन नासिख अपने बाग़ के बँगले में बैठे थे और शेर बनाने की धुन में थे। एक साहब आकर बैठ गये। ये बहुत विकल हुये। उठ-कर टहलने लगे। फिर बैठे। पर वे हज़रत टस से मस न हुये। सभ्यता के खयाल से ये उन्हें उठ जाने के लिये कहना भी नहीं चाहते थे और तबीअत ऐसी उभार पर आ गई थी कि कविता का लोभ अलग सता रहा था। ये फिर उठ-बैठे, पर वे न समझे। तब इन्होंने चिलम से आग लेकर बँगले की टट्टी पर रख दी और स्वयं बैठकर लिखने लगे।

अब तो उन हज़रत का भी शरीर हिला। वे उठ खड़े हुये और कहने लगे—शेख साहब, यह क्या हो रहा है? देखते हैं? शेख साहब ने

उनका हाथ पकड़ लिया और कहा—जाते कहाँ हो? अब तो हम दोनों यहीं जलकर राख होंगे। तुमने मेरे मज़मून को खाक में मिला दिया; मेरे दिल को जलाकर राख कर दिया! भला, अब मैं तुम्हें जाने दूंगा?

इसी तरह एक दिन एक व्यक्ति और आये। वे भी ऐसे जमकर बैठे कि ये उकता गये। नौकर को बुलाकर कहा—भाई, मज़दूरों को बुलाकर सामान उठवाओ। वे बेचारे मुँह ताकने लगे। इन्होंने कहा—मुँह क्या ताकते हो? घर पर तो आपने कब्ज़ा कर ही लिया। ऐसा न हो कि सामान भी हाथ से जाता रहे।

इन कहानियों से मालूम होता है कि इनकी तबीअत में वह चुल-बुलापन, जो उर्दू-कवियों की खास चीज़ है, नहीं था। पर कविता एक ऐसी चीज़ है, जो अपना रङ्ग लाये बिना नहीं रहती। मीर घसीटा नाम के एक व्यक्ति मर गये, तब नासिख ने ये शेर लिखे—

जब मीर घसीटा मर गये हाय।
हरएक ने अपने मुंह को पीटा॥
नासिख ने कही यह सुन के तारीख।
अफ़सोस कि मौत ने घसीटा॥

प्रयाग में एक दिन ये एक मशायरे में शामिल हुये। इन्होंने जो ग़ज़ल पढ़ी उसका मतला यह था—

दिल अब अह्लेतर-सा हुआ चाहता है।
यं काबा कलीसा हुआ चाहता है॥

एक भोले-भाले लड़के ने भी उसी तरह पर अपनी ग़ज़ल पढ़ी। जिसका पहला मतला यह था—

दिल उस बुत प शैदा हुआ चाहता है।
खुदा जाने अब क्या हुआ चाहता है॥

महफ़िल में धूम मच गई। सब वाह-वाह करने लगे। नासिख बड़े न्याय-प्रिय थे। इन्होंने भी लड़के की पीठ ठोंकी और कहा—तुम्हारा

मतला मतलों में सूर्य है। मैं अपना पहला मिसरा ग़ज़ल में से निकाल डालूंगा।

एक दिन ये किसी सौदागर की कोठी में गये। उसका लड़का, जो बड़ा सुन्दर था, सामने लेटा हुआ सो रहा था। आखें अधखुली थीं। ये देखकर मुग्ध हो गये। मुँहसे आधा मिसरा निकल पड़ा:—

है चश्म नीम बाज़ अजब ख़्वाबे नाज़ है।

पर दूसरा मिसरा बैठता न था। घर आने पर भी ये उसी की चिन्ता में लगे रहे। इनके एक शागिर्द वज़ीर मिलने आये। चुप्पी का कारण जानने पर उन्होंने दूसरा मिसरा लगा दिया, जिसमे ये बड़े ख़ुश हुये। पूरा शेर यों हुआ:—

है चश्मे नीम बाज़ अजब ख़्वाबे नाज़ है।
फ़ितना तो सो रहा है दरे फ़ितना बाज़ है।।

एक दिन वज़ीर ने अपना एक शेर सुनाया—

वो ज़ुल्फ़ लेती है ताबो दिलो तवाँ अपना।
अँधेरी रात में लुटता है कारवाँ अपना।।

ये बड़े प्रसन्न हुये और उन्हें पुरस्कृत किया। ये वज़ीर को अपने अन्य शागिर्दों से अधिक प्यार करते थे। वज़ीर पहले अतिश के शागिर्द थे, पीछे नासिख के हो गये।

नासिख शायरी में किसी के शागिर्द न थे। फ़ारसी की शिक्षा इनको हाफ़िज़ वारिस अली लखनवी से मिली थी। अरबी का ज्ञान भी किसी क़दर अच्छा था।

लड़कपन में ये ग़ज़ले बनाया करते थे; संकोच-वश किसी को दिखाते न थे। एक बार मीर तक़ी के पास ले गये। मीर ने इसलाह न दी। ये लौट आये। इन्होंने सोचा—मीर भी तो आखिर आदमी ही हैं, कोई देवता तो हैं नहीं। तब से ये स्वयं अपने मार्ग-प्रदर्शक बने। ग़ज़लें बनाकर रख लेते, कुछ दिनों के बाद उसे फिर पढ़ते और आवश्यक काट-

छाँट करके फिर उसे रख छोड़ते; कुछ दिन बीत जाने पर उसे फिर पढ़ते और कुछ फेर-फार करते। इस तरह करते-करते ये अपना संशोधन आप ही कर लेने लगे। जबतक पूरी दिलजमई न हुई, इन्होंने किसी को अपनी ग़ज़ल न सुनाई, न मशायरे में पढ़ी।

मिर्ज़ा हाजी साहब के मकान पर मशायरा होता था। इन्शा, जुरअत, मसहफ़ी आदि जमा होते थे। ये भी वहाँ जाते; पर सुना करते थे, कहते कुछ न थे। उन कवियों की आपस में खूब चोंचें चलती थी। इन पर भी रंग चढ़ता जाता था। जब उन कवियों ने मैदान छोड़ा, तब नासिख़ मैदान में आये। मिर्ज़ा हाजी और क़तील आदि ने इन्हें खूब उत्साहित किया। ये बढ़ के हाथ मारने लगे।

उन्हीं दिनों आतिश भी चमकने लगे थे। एक बार वे कई महीने बाद फ़ैजाबाद से आये। मशायरे में उन्होंने नासिख़ की ग़ज़लें सुनीं। ईर्ष्या से वे तड़पकर रह गये। मशायरे में उन्होंने इतने जोश में आकर ग़ज़ल पढ़ी कि छाती से रक्त निकलने लगा। बस, उसी दिन से दोनों में बिगाड़ हुआ। दोनों की आपस में सदा चख़चख़ रही और लखनऊ वालों ने दोनों ओर होकर खूब तमाशे देखे।

नासिख़ के तीन दीवान हैं; पर दो ही प्रसिद्ध हैं। एक प्रयाग में संगृहीत हुआ था। परेशानी के ज़माने में वह तैयार हुआ था। इसलिये उसका नाम 'दफ्तरे परेशान' रक्खा गया। दीवानों के सिवा एक मसनवी 'नज़्म सिराज' और एक 'मौलूद शरीफ़' भी इनका लिखा हुआ है। 'नज़्म सिराज' की कविता बहुत लचर है।

नासिख़ तारीख़ बहुत लिखा करते थे। जहाँ कोई घटना हुई, मामूली बुख़ार भी आया, तो उसकी भी तारीख़ लिख दी।

इनकी ग़ज़लों में नाज़ुक ख़याली बहुत है। अत्युक्ति कहने में उर्दू के मुख्य कवियों में ये एक हैं। इनकी कविता मे शब्दों का संगठन, बयान की सफ़ाई तथा महावरों का उचित प्रयोग खूब है।

जब कोई अपरिचित कविता-प्रेमी इनके पास आता और कविता

सुनने की इच्छा प्रकट करता, तब उसकी परीक्षा के लिये ये कुछ अटपटे शेर रख छोड़ते थे। उसे सुनाते; यदि वह सुनते ही बेतहाशा तारीफ़ करने लगता तो ये उससे विरक्त-सा होकर दो-एक शेर पढ़ने के बाद चुप हो जाते थे। यदि वह शेर सुनकर चुप रह जाता और सोच में पड़ जाता, तब ये समझते कि हाँ! यह कोई समझदार व्यक्ति है। तब ये उसे अच्छी-अच्छी ग़ज़लें सुनाते थे। इनके अटपटे शेरों में से नमूने का एक शेर यह है :—

टूटी दरिया की कलाई ज़ुल्फ़ उलझी दाम में।
आदमी मख़मल में देखे मोरचे बादाम में॥

प्रायः ये अपने मुँह से शेर सुनाते भी कम थे। जब कोई सुनने की इच्छा प्रकट करता, तो ये दीवान उसके आगे रखकर कहते कि इसमें से जो पसन्द हो, पढ़ लीजिए।

बाहर रहने पर लखनऊ का वियोग इनके लिये असह्य हो जाता था। प्रयाग में इन्होंने एक शेर में अपनी क्या मर्म-व्यथा प्रकट की है!—

तीन तिरबेनी औ दो आँखे मेरी।
अब इलाहाबाद भी पंजाब है॥

नासिख पहले मुन्नत जमात के थे, फिर शिया हो गये। ये बहुत सरल और मिलनसार स्वभाव के थे। पर रात-दिन अपने ख़यालात में ऐसे डूबे रहते थे कि लोग इन्हें अभिमानी और रूखी तबीअत का आदमी समझते थे। एक बात ज़रूर थी कि ये शिष्टाचार के नियमों की पाबंदी में बड़े शख्त थे; जैसा कि पहले लिखी हुई घटनाओं से प्रकट है; पर शिष्ट पुरुषों की सुहबत से ये बड़े प्रसन्न होते थे।

नासिख के शागिर्दों में वज़ीर, बर्क, रश्क, वहू, मुनीर, नादिर, आबाद और ताहिर मुख्य थे।

इनकी कविता के कुछ नमूने आगे उद्धृत किये जाते हैं—

१

दिल उसको दिया हमने तक़सीर इसे कहते हैं।
मारा ग़मे फ़ुरक़त ने ताज़ीर इसे कहते हैं।।
जो मुझसे गुरेज़ाँ था कल उसको मैं घर अपने।
बातों में लगा लाया तक़रीर इसे कहते हैं।।
दीवानी सी जङ्गल में फिरती है पड़ी लैली।
ज़ज्बे दिले आशिक़ की तासीर इसे कहते हैं।।
हैं पेशे नज़र अपने हर वक्त तसव्वर मे।
परियों की बस ऐ 'नासिख़' तसख़ीर इसे कहते है।।

२

धूप बेहतर है शबे फ़ुरक़त की बदतर चाँदनी।
सायक़े की तौर से पड़ती है मुझ पर चाँदनी।।
ख़ूब रोऊँ ऐ शबे ग़म है मुकद्दर चाँदनी।
बाद बारिश साफ़ हो जाती है अक्सर चाँदनी।।
मेरे घर की राह कतरा कर निकल जाता है चाँद।
रहती है फ़ुरक़त की शब बाहर ही बाहर चाँदनी।।
खाकसारी भी न छोड़े दे खुदा जिसको उरूज।
आसमाँ पर माहेताबाँ है ज़मीं पर चाँदनी।।
भूल कर ओ चाँद के टुकड़े इधर आ जा कभी।
मेरे वीराने में भी होजाय दम भर चाँदनी।।
क्या शबे महताब में बे यार जाऊँ बाग़ को।
सारे पत्तों को बना देती है खञ्जर चाँदनी।।
ग़ैर तारीकी शबे फ़ुरक़त में ऐ 'नासिख़' नहीं।
हाँ, अगर ज़ख़्मी हूँ तो निकले मुकर्रर चाँदनी।।

३

समाये गो न हम उसकी नज़र में एक दिन लेकिन।
ग़ुबार अपना पस अज़मुरदन है सुरमा चश्मे दुश्मन को।।

४

दम बुलबुले असीर का तन से निकल गया।
झोंका नसीम का जोंही सन से निकल गया।।
उस इश्क़ गुल के जाते ही बस आ गई ख़िज़ाँ।
हरगुल भी साथ बू के चमन से निकल गया।।
सुनसान मिस्ल वादिये ग़ुरबत है लखनऊ।
शायद कि 'नासिख़' आज वतन से निकल गया।।

५

ख़ाक में मिल जाइये ऐसा अखाड़ा चाहिये।
लड़के कुश्ती देवे हस्ती को पछाड़ा चाहिये।।
और तख़्तों की हमारी क़ब्र में हाजत नहीं।
बानये महबूब का कोई किवाड़ा चाहिये।।
इन्तहाए लाग़री से जब नज़र आया न मैं।
हँस के वो कहने लगे बिस्तर को झाड़ा चाहिये।।
आँसुओं से हिज्र में बरसात रखिये साल भर।
हमको गरमी चाहिये हरगिज़ न जाड़ा चाहिये।
मर गया हूँ हसरते नज्ज़ारए अब्रू में मैं।
ऐन काबे में मेरे लाशे को गाड़ा चाहिये।।
लड़ते हैं परियों से कुश्ती पहलवाने इश्क़ हैं।
हमको 'नासिख़' राजा इन्दर का अखाड़ा चाहिये।।

६

पोंछता अश्क अगर गोशये दामाँ होता।
चाक करता मैं जुनूँ में जो गरेबाँ होता।।
ऐ अजल ! एक दिन आख़िर मुझे आना है वले।
आज आती शबे फ़ुरक़त में तो एहसाँ होता।।
ऐ बुतो ! होती अगर मेहरो मुहब्बत तुम में।
कोई काफ़िर भी न वल्लाह मुसलमाँ होता।।

७

बाम पर नंगे न तुम आओ शबे महताब में।
चाँदनी पड़ जायगी मैला बदन हो जायगा।।
गर उठाकर शहर से सहरा में बिठलाओगे तुम।
बस वही मिस्ले दरख्त अपना वतन हो जायगा।।

८

फिर बहार आई चमन में ज़ख्म दिल आले हुये।
फिर मेरे दाग़े जिगर आतश के परकाले हुये।।
किस तरह छोड़ूँ यकायक उसकी जुल्फ़ों का ख़याल।
एक मुद्दत से य' काले नाग हैं पाले हुये।।
वह परी पैकर कहा करता है अक्सर फ़ख्र से।
अब तो 'नासिख़' भी हमारे चाहने वाले हुये।।

९

आतशे इश्क़ वह है जिसमें समुन्दर जल जाय।
इक शरर जाय जो पत्थर में तो पत्थर जल जाय।।
तन बदन फूँक दिया है शबे फ़ुरक़त ने मेरा।
क्या अजब है जो मेरे जिस्म से बिस्तर जल जाय।।
है वो परकालए आफ़त क़दे माँजूँ तेरा।
दीजिए उससे जो तशबीह सनोबर जल जाय।।
आतशीं चेहरा है हर शाहिदे मजमूँ 'नासिख़'।
क्या अजब है मेरे अशआर का दफ्तर जल जाय।।

१०

है अजब तरह की वहशत तेरे दीवाने में।
जी न आबादी में लगता है न वीराने में।।
आफ़ताब उस में अगर आवे तवा बन जावे।
नूर का दख्ल नहीं मेरे सियह-खाने में।।

नोश कर शौक़ से दिल खोल के सर्फ़ा क्या है ।
ख़ौफ़ बदहज़मी का 'नासिख' नहीं ग़म खाने में ।।

११

माहे नौ है मिस्ल अब्रू लेकिन उसका रू नहीं ।
माहे कामिल सूरते रू है मगर अब्रू नहीं ।।
कौन सा तन है कि मिस्ले रूह जिसमें तू नहीं ।
कौन गुल है जो तेरा मस्कन बरंगे बू नहीं ।।
जिस्म ऐसा घुल गया है मुझ मरीज़े इश्क़ का ।
देखकर कहते हैं सब तावीज़ है बाज़ू नहीं ।।

१२

वायज़ा मसजिद से अब जाते हैं मैख़ाने को हम ।
फेंक कर ज़र्फ़े वज़ू लेते हैं पैमाने को हम ।।
तेरे आगे कहते हैं गुल खोलकर बाज़ूए बर्ग ।
गुलशने आलम से हैं तैयार उड़ जाने को हम ।।
अक़्ल खो दी थी जो ऐ 'नासिख' जुनूने इश्क़ ने ।
आशना समझा किये इक उम्र बेगाने को हम ।।

१३

तेरे कूचे में खड़ा रहता हूँ मैं ऐ यार ! चुप ।
रात दिन जिस शक्ल से हो सूरते दीवार चुप ।।
क़ीमत इस शीरीं ज़बानी से बयाँ यूसुफ़ ने की ।
रह गया हैरत से सारा मिस्र का बाज़ार चुप ।
फ़ाश होते हैं कमाले इश्क़ में इसरारे इश्क़ ।
जोशे मस्ती में नहीं मुमकिन कि हो मैख़्वार चुप ।।
क्यों नहीं देता किसी को तू जवाब ऐ संगदिल !
सुन के जब आवाज़ को रहते नहीं कुहसार चुप ।।
लाल होती हैं ज़बाने 'नासिख' अपने सामने ।
बुग्ज़ से दुश्मन रहे बस सुनके यह अशआर चुप ।।

१४

आज मुझको दश्ते वहशत में वतन याद आ गया।
बूए गुल को बाद बरबादी चमन याद आ गया॥
ए अज़ीज़ो आज मेरा जी न डूबा जाय क्यों।
अपने यूसुफ़ का मुझे चाहे ज़कन याद आ गया॥
अपने सर को फोड़कर अब जान शीरीं क्यों न दूं।
बस्तियों पर मुझ को 'नासिख़' कोहकन याद आ गया॥

१५

यों नज़ाकत से गिराँ सुर्मा है चश्मे यार को।
जिस तरह हो रात भारी मर्दुमें बीमार को॥

१६

सियह बख्ती में कोई कब किसी का साथ देता है।
कि तारीकी में साया भी जुदा होता है इन्साँ से॥

१७

मरतबा कम हिर्से रिफ़अत से हमारा हो गया।
आफ़ताब इतना हुआ ऊँचा कि तारा हो गया॥

१८

क्यों नहीं होता मुझे ग़म आशिक़े जाँबाज़ का।
देख रोती है बरूए लाशा परवाना शमा॥

१९

सरे उश्शाक़ यहाँ बिकते हैं माशूक़ वहाँ।
कूए क़ातिल है जुदा मिस्र का बाज़ार जुदा॥

२०

भेजना ख़त का किया उस बुत ने बंद।
अब ख़ुदाया मौत का पैग़ाम भेज॥

२१

यों न बातें चबा चबा के करो।
मेहरबाँ बात है नबात नहीं।।

२२

इस क़दर खाया तेरी फ़ुरक़त मे ग़म।
दिल हमारा ज़िन्दगी मे सेर है।।

२३

जान बचने की कोई सूरत नज़र आती नहीं।
ले चली फ़िरदौस को फ़ुरकत मुझे इक हूर की।।

२४

मुतज़र्रिर न हो दिमाग़ कभी।
गुल न हो अक़्ल का चिराग़ कभी।।

२५

उसके हाँ आफ़ताब आरिज़ है।
दिन ही आठों पहर है रात नहीं।।

२६

जी में है रख के सर मै मो जाऊं।
तकिया मख़मल का है तुम्हारा पेट।।

२७

बदन शराब कशी मे खुमे शराब बना।
है अपनी रूह बदन में बरंग बूए शराब।।

२८

तमन्ना है साक़ी कभी बज्में मै में।
वो सरशार हो और हुशियार मैं हूँ।।

२९

सिवाय मक्र ज़माने में रस्मो-राह नहीं।
वह कौन जा है जहाँ चाह ज़ेर काह नहीं।।

३०

तायरे रूह को कर देते हैं क्योंकर बिसमिल।
तीर रखते हैं परीरू न कमाँ रखते हैं।।

३१

हिर-फिर के दायरे ही में रखता हूँ मैं क़दम।
आई कहाँ से गरदिशे परकार पाँव में।।

३२

मैं गो कि हुस्न से ज़ाहिर में मिस्ले माह नहीं।
हज़ार शुक्र कि बातिन मेरा सियाह नहीं।।

३३

मेरी आँखों ने मुझे देखके वह कुछ देखा।
कि ज़बाने मज़: पर शिकवा है बीनाई का।।

३४

है य' वह राह कि ता अर्श पहुँचता है बशर।
दिल में दरवाज़ा है इस गुम्बदे मीनाई का।।

३५

मिसी आलूद: लब पर रंग पाँ है।
तमाशा है तहे आतश धुवाँ है।।

३६

तिरछी नज़रों से न देखो आशिक़े दिलगीर को।
कैसे तीरन्दाज़ हो सीधा तो कर लो तीर को।।

३७

ज़िन्दगी ज़िन्दादिली का नाम है।
मुर्दा दिल खाक जिया करते हैं।।

३८

मिल गया ख़ाक में पिस-पिस के हसीनों पर मैं।
क़ब्र पर बोये कोई चीज़ हिना पैदा हो।।

३९

झुक झुक के शीशे मिलते हैं, हँस हँस के जाये मय।
यह मयकदा मुकाम नहीं है ग़ुरूर का।।

आतिश

आतिश उपनाम; ख्वाजा हैदर अली नाम; पिता का नाम ख्वाजा अली बख्श; स्थान लखनऊ; जन्म-काल अनिश्चित; मृत्यु १८४७ ई० ।

आतिश के पिता दिल्ली के रहने वाले थे; पर लखनऊ में आ बसे थे। आतिश का जन्म लखनऊ में हुआ। ये ख्वाजाज़ादों के खान्दान से थे और पीरी मुरीदी का फ़क़ीरी सिलसिला भी क़ायम था। पर इन्होंने शायरी का हाथ पकड़ा और परम्परा की वृत्ति को त्याग दिया। हाँ, उसमें से स्वच्छन्दता और संतोष को अवश्य साथ ले लिया था।

पद्य-रचना का शौक़ इन्हें बचपन ही से था। इससे ये पर्याप्त शिक्षा प्राप्त न कर सके। पर प्रतिभावान बड़े थे। प्रतिभा ने इनकी शिक्षा की कमी को पूरा कर दिया। फ़ारसी के सिवा अरबी में भी इन्होंने योग्यता प्राप्त कर ली, और अपने समय के ये उस्ताद कहलाये। इनके सैकड़ों शागिर्द थे।

ये मसहफी के शागिर्द थे। इनकी कविता ने इनके साथ ही इनके उस्ताद के नाम को भी चमका दिया। इनकी और मसहफ़ी की कविता में उजाले और अँधेरे का अन्तर है।

ये बड़े सीधे-साधे और भोले-भाले थे। पर ठाट सिपाहियाना रखते थे और मस्त और निश्चिन्त थे। रहन-सहन में कुछ फ़क़ीरी की भी गंध रहती थी। बुढ़ापे तक तलवार बाँधते रहे, सिर पर कभी जुल्फ़, कभी हैदरी टोपी और उसी में सब्ज़ी का एक तुर्रा लगाये रहते थे। एक बाँकी टोपी भौं पर धरे बाँके-तिरछे बने जिधर चाहते थे, चले जाते थे। बाली खाँ की सराय में एक पुराने मकान में रहते थे। उस महल्ले के एक तरफ़ जङ्गल था। ये प्रायः उजाड़ जङ्गल में फिरते रहते थे।

लखनऊ दरबार से इनको अस्सी रुपये महीने मिलते थे। उनमें से १५ रुपये घर में दे देते थे। बाक़ी ग़रीबों को, या जिन्हें जरूरत होती थी, बाँट देते थे। महीने से पहले ही हाथ खाली करके बैठ जाते थे। कभी-कभी उपवास भी हो जाता था। पर दरवाज़े पर एक घोड़ा ज़रूर बँधा रहता था। शागिर्दों में कुछ ऐसे थे, जो इनकी खोज-खबर लिया करते थे और खाने-पीने में तकलीफ़ न होने देते थे। प्रायः मीर दोस्त अली ख़लील को इनकी सेवा का सौभाग्य मिलता रहता था। कई शागिर्दों के यहाँ से भी कुछ मासिक बँधा था।

आतिश बड़ा स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य थे। ये दरबार में भी नहीं जाते थे और न कभी इन्होंने किसी अमीर उमराव की प्रशंसा ही में कुछ कहा। अपने टूटे-फूटे घर में, छप्पर की छाया में, बोरिया बिछाकर बैठे रहते थे, और फ़क़ीर की तरह जीवन बिताते थे। अमीरों की अपेक्षा ग़रीबों को अधिक चाहते थे। जब कोई ग़रीब आता तो उससे बड़े प्रेम से बातें करते; पर कोई अमीर आता तो दुत्कार देते थे। कभी कोई अमीर सलाम करके बैठने के लिये आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा रहता, तो ये कहते कि हूँ, क्यों साहब! बोरियों को देखते हो? कपड़े बिगड़ जायँगे? यह तो फ़क़ीर का तकिया है, यहाँ मसनद तकिया कहाँ? परिणाम यह हुआ कि ग़रीब से अमीर तक सब उसी तकिये से आकर सलाम कर गये और ये अपनी आन-बान को निभा ले गये।

एक दिन भले-चंगे बैठे थे कि मृत्यु का ऐसा झोंका आया कि दीपक की तरह बुझ गये। आतिश के घर में राख के सिवा और क्या होता? ख़लील ने मृत्यु की सब रस्में पूरी कीं। बीबी, एक लड़का और एक लड़की छोड़ मरे थे। उनका भी भरण-पोषण ख़लील ही ने किया।

नासिख और ये समकालीन थे। दोनों में बड़ी नोंक-झोंक रहती थी। मशायरे में और घर में बैठे भी दोनों एक दूसरे पर चोट करते रहते थे। एक बार नवाब आग़ा मीर के यहाँ मशायरा था। वे नासिख के तरफ़दार थे। उनका इरादा मशायरे में सब के सामने नासिख को

खिलअत देने का था : यार लोगों ने आतिश के पास तरह का मिसरा उस समय भेजा, जब मशायरा एक दिन बाक़ी रह गया।

उनका अभिप्राय यह था कि आतिश को समय कम मिले और ये ग़ज़लें न कह सकें। इस व्यवहार से आतिश बहुत जले। कहने लगे—लखनऊ अब रहने योग्य नहीं रहा। हम न रहेंगे। शागिर्दों ने जमा होकर मनाया-चुनाया और तसल्ली दी कि परवा मत कीजिये, हम लोग दो-दो शेर कहेंगे तो सैकड़ों हो जायेंगे। आतिश झुँझलाकर शहर के बाहर चले गये। फिरते-फिरते एक मसजिद में जा बैठे। वहाँ ग़ज़ल तैयार की और मशायरे में गये। जाते समय एक कड़ाबीन भी भरकर लेते गये थे और ऐसे स्थान पर बैठे थे, जहाँ से नासिख़ का ठीक सामना पड़ता था। कड़ाबीन के साथ ये ख़ुद भी भरे बैठे थे। बार-बार उसे उठाते थे और रख देते थे। पहले नासिख़ ने ग़ज़ल पढ़ी, जिसका मतला यह था—

मिसी आलूदः लब पर रंग पाँ है।
तमाशा है तहे आतिश धुंवाँ है॥

आतिश का शब्द सुनते ही आतिश आग-बबूला हो गये। जब इनके सामने शमा आई, तब इन्होंने यह मतला पढ़ा—

य' किस रश्के मसीहा का मकाँ है।
ज़मीं जिसकी चहारुम आसमाँ है॥

नवाब साहब डरे कि कहीं यह कड़ाबीन न चला दें। उन्होंने चुपके से दरोग़ा को इशारा करके एक और खिलअत मँगाई और दोनों उस्तादों को सम्मानित किया।

नासिख़ से इतना विरोध होने पर भी आतिश ने उनकी मृत्यु पर बहुत शोक प्रकट किया और उस दिन से शेर कहना ही छोड़ दिया। नासिख़ आतिश से नौ वर्ष पहले मरे थे।

एक शागिर्द निठल्ले बैठे रहने से घबराकर बाहर जाने का इरादा कर रहा था। आतिश ने कहा—म्याँ, कहाँ जाओगे? जो ख़ुदा दे, उसी

पर सन्तोष करो। एक दिन वह विदा लेने आया और पूछने पर कहा कि कल बनारस जा रहा हूँ। कोई चीज़ चाहिये तो आज्ञा दीजिये। आतिश ने हँसकर कहा—इतना काम करना कि वहाँ के खुदा को ज़रा हमारा भी सलाम कह देना। शागिर्द ने हैरान होकर पूछा—हज़रत! यहाँ के खुदा से वहाँ का खुदा क्या जुदा है? आतिश ने कहा—शायद यहाँ का खुदा कंजूस है, वहाँ का खुदा दाता होगा। वे बेचारे समझ गये और बाहर जाने का इरादा छोड़कर घर बैठे रहे।

एक दिन आतिश को नमाज़ का ध्यान आया। किसी शागिर्द से कहा—भई, हमें नमाज़ तो सिखाओ। शागिर्द था सुन्नी। उसने सुन्नत जमात की नमाज़ सिखा दी और यह भी कह दिया कि, उस्ताद! खुदा की इबादत जितनी ही छिपकर की जाय, उतनी ही सफल होती है। भोले-भाले आतिश दरवाज़ा बन्द करके उसी तरह नमाज़ पढ़ा करते। खलील इनके खास शागिर्द थे। उनसे बाहर-भीतर कहीं कुछ छिपाव न था। एक दिन उन्होंने इनकी नमाज़ देख ली। वे हैरान होकर कहने लगे—उस्ताद, आपका मज़हब क्या है? इन्होंने कहा—शिया। खलील ने कहा—आप नमाज़ तो पढ़ते हैं सुन्नियों की। इन्होंने कहा—भई, मैं क्या जानूं। अमुक व्यक्ति ने जैसा सिखाया, मैं वैसा करता हूँ। मुझे क्या मालूम कि एक खुदा की दो-दो नमाज़ें है। उस दिन से ये शियों की सी नमाज़ पढ़ने लगे।

आतिश के जितने शागिर्द थे, उतने किसी उस्ताद को नसीब नहीं हुये। इनके शागिर्दों में रिन्द, सबा, खलील, जलील, बिसमिल और 'गुलज़ार नसीम' के कर्त्ता पंडित दयाशंकर 'नसीम' बहुत प्रसिद्ध हैं।

आतिश का एक दीवान है, जो उनके सामने ही छप गया था और उसकी बड़ी क़दर हो चली थी। अब भी आतिश की ग़ज़लें महफ़िलों में बड़े शौक़ से गाई जाती हैं और गानेवालों में उनका खूब प्रचार है।

आतिश की भाषा बामहावरे और ज़ोरदार है। लखनऊ की बोल-चाल का वह एक अच्छा नमूना है।

यहाँ आशित की कुछ चुनी हुई ग़ज़लें और शेर दिये जाते हैं—

१

दहन पर है उनके गुमाँ कैसे कैसे ।
कलाम आए हैं दरमियाँ कैसे कैसे ।।
ज़मीने चमन गुल खिलाती है क्या क्या ।
बदलता है रंग आसमाँ कैसे कैसे ।।
तुम्हारे शहीदों में दाखिल हुए हैं ।
गुलो लाला ओ अरगवाँ कैसे कैसे ।।
बहार आई है नश्शे में झूमते हैं ।
मुरीदाने पीरे मुग़ाँ कैसे कैसे ।।
अजब क्या छुटा रूह से जामए तन ।
लुटे राह में कारवाँ कैसे कैसे ।।
न गोरे सिकन्दर न है कब्रे दारा ।
मिटे नामियों के निशाँ कैसे कैसे ।।
बहारे गुलिस्ताँ की है आमद आमद ।
ख़ुशी फिरते हैं बागबाँ कैसे कैसे ।।
दिले दीदये अह्ले आलम में घर है ।
तुम्हारे लिये है मकाँ कैसे कैसे ।।
करे जिस क़दर शुक्रे नेअमत वो कम है ।
मज़े लूटती है ज़बाँ कैसे कैसे ।।

२

अदम से जानिबे हस्ती तलाशे यार में आये ।
हवाए गुल में हम किस वादिये पुरख़ार में आये ।।
जवानी है कहाँ अब यार की वह सूरते तिफ़ली ।
हुए ढँग और ही रँग और ही रुखसार मे आये ।।

३

निकलती किस तरह है जाने मुज़तर देखते जाओ ।
हमारे पास से जाओ तो फिर कर देखते जाओ ।।
जिधर जाते हो हर घर में से यह आवाज़ आती है ।
मसीहा हो जो बीमारों को दम भर देखते जाओ ।।
न फेरो उससे मुँह 'आतिश' जो कुछ दरपेश आ जावे ।
दिखाता है जो आँखों को मुक़द्दर देखते जाओ ।।

४

लगाती आग बिजली की चमक है खानए तन में ।
बरसता मिह नहीं बे यार ख़ाक उड़ती है सावन में ।।
बहारे लाला वो गुल मे लगी है आग गुलशन में ।
गरेबाँ फाड़कर चल बैठिये सहरा के दामन मे ।।
शरीफ़े काबा को काबा मुबारक हम तो ऐ 'आतिश' ।
बुतों को घूरने को जाते हैं दैरे बरहमन में ।।

५

मेरे सनम का किसी को मकाँ नहीं मालूम ।
ख़ुदा का नाम सुना है निशाँ नहीं मालूम ।।
अख़ीर हो गये ग़फ़लत में दिन जवानी के ।
बहारे उम्र हुई कब ख़िजाँ नहीं मालूम ।।
जहाँ वो कारे जहाँ मे हूँ बेख़बर बदमस्त ।
किधर ज़मी है किधर आसमाँ नहीं मालूम ।।
छुटेंगे ज़ीस्त के फंदे मे कौन दिन 'आतिश' ।
जनाज़ा होगा कब अपना रवाँ नहीं मालूम ।।

६

हवाए दौर मेरा ख़ुश गवार राह में है ।
ख़िज़ाँ चमन मे है रुखसत बहार राह में है ।।

शबाब तक नहीं पहुँचा है आलमे तिफ़्ली।
हिनोज़ हुस्न जवानीए यार राह में है॥
अदम के कूच की लाज़िम है फ़िक्र हस्ती में।
न कोई शहर न कोई दयार राह में है॥
तरीक़े इश्क़ में ऐ दिल असाए आह है शर्त।
कहीं चढ़ाव किसी जा उतार राह में है॥
सबीले इश्क़ का सालिक है वाअज़ों की न सुन।
ठगों के कहने का क्या एतबार राह में है॥
जगह है रहम की यार एक ठोकर इसको भी।
शहीदे नाज़ का तेरे मज़ार राह में है॥
न बदरक़ा है न कोई रफ़ीक़ साथ अपने।
फ़क़त इनायते परवर्दिगार राह में है॥
मुक़ाम तक भी हम अपने पहुँच ही जाएँगे।
ख़ुदा तो दोस्त है दुश्मन हज़ार राह में हैं॥
थकें जो पाँव तो चल सर के बल न ठहर 'आतिश'।
गुले मुराद है मंज़िल में ख़ार राह में है।

७

मगर इसको फ़रेबे नरगिसे मस्ताना आता है।
उलटती हैं सफ़े गर्दिश में जब पैमाना आता है॥
ज़ियारत होगी काबे की यही ताबीर है इसकी।
कई शब से हमारे ख़्वाब मे बुतख़ाना आता है॥
फँसा देता है मुग़्ें दिल को दामे ज़ुल्फ़े पेचाँ में।
तुम्हारे ख़ाले रुख़ को भी फ़रेबे दाना आता है॥
ख़ुदा का घर है बुतख़ाना हमारा दिल नहीं 'आतिश'।
मुक़ामे आशना है याँ नहीं बेगाना आता है॥

८

य' किस रश्के मसीहा का मकाँ है ।
ज़मीं जिसकी चहारुम आसमाँ है ।।
ख़ुदा पिनहाँ है आलम आशकारा ।
निहाँ है गंज वीराना अयाँ है ।।
तकल्लुफ़ से बरी है हुस्ने जानाँ ।
क़बाये गुल में गुल बूटा कहाँ है ।।
इलाही एक दिल किस किस को दूं मैं ।
हज़ारों बुत है याँ हिन्दोस्ताँ है ।।

९

तड़पते हैं न रोते है न हम फ़रियाद करते हैं ।
सनम की याद में हरदम खुदा को याद करते हैं ।।
उन्ही के इश्क़ में हम नालए फ़रियाद करते हैं ।
इलाही देखिये किस दिन हमें वे याद करते है ।।
शबे फुरकत में क्या क्या साँप लहराते हैं सीने पर ।
तुम्हारी काकुले पेचाँ को जब हम याद करते है ।।
नया यह जज्बए दिल औ नई तासीर उल्फ़त से ।
हमें वह भूल बैठे है जिन्हें हम याद करते हैं ।।

१०

गेसुए मुश्कीं रुखे महबूब तक आने लगे ।
चश्मए खुरशेद में भी साँप लहराने लगे ।।
मर भी जाऊँ तो न 'आतिश' गोरपर आये वो गुल ।
कारे तमकीं को गुरूरे हुस्न फ़रमाने लगे ।।

११

फ़रेबे हुस्न से गबरा मुसल्माँ का चलन बिगड़ा ।
खुदा की याद भूला शेख बुत से बरहमन बिगड़ा ।।

किसी की जब कोई तकलीद करता है मैं रोता हूँ।
हँसा गुल की तरह गुंचा जहाँ उसका दहन बिगड़ा॥
लगे मुँह भी चिढ़ाने देते देते गालियाँ साहब।
ज़बाँ बिगड़ी तो बिगड़ी थी ख़बर लीजै दहन बिगड़ा॥

१२

सुन तो सही जहाँ में है तेरा फ़िसाना क्या ?
कहती है तुझको ख़ल्के ख़ुदा ग़ायबाना क्या ?
ज़ेरे ज़मीं से आता है जो गुल सो ज़र बकफ़।
क़ारूँ ने रास्ते में लुटाया ख़ज़ाना क्या ?
आती है किस तरह से मेरी क़ब्ज़े रूह को।
देखूं तो मौत ढूंढ़ रही है बहाना क्या ?
बेताब है कमाल हमारा दिले हज़ीं।
मेहमाँ सराय जिस्म का होगा रवाना क्या ?
याँ मुद्दई हसद से न दे दाद तो न दे।
'आतिश' ग़ज़ल य' तू ने लिखी आशिक़ाना क्या ?

१३

ख़ुदा ने बर्क़ तज्जली तुझे जमाल दिया।
हमारी आँखों को दीदार का ख़याल दिया॥
किसी को मुल्क दिया है किसी को माल दिया।
फ़क़ीर हूँ मुझे अल्लाह ने य' हाल दिया॥
शबे विसाल में उस चेहरए मुनौवर से।
हटा के ज़ुल्फ़ को 'आतिश' बला को टाल दिया॥

१४

'आतिश' यही दुआ है ख़ुदाए करीम से।
मुहताज ऐ करीम न कीजो बख़ील का॥

१५

जाये भी लोग बैठे भी उठ भी खड़े हुये ।
मैं जा ही ढूंढ़ता तेरी महफ़िल में रह गया ।।

१६

बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का ।
जो चीरा तो यक क़तरए खूँ न निकाला ।।

१७

बागे आलम का हरेक गुल है खुदा की सूरत ।
बाग़वाँ कौन है इसका ? य' चमन है किसका ?

१८

कूचे से यार के न सबा दूर फेंक इसे ।
मुद्दत के बाद आई है ख़ाक अपनी राह पर ।।

१९

वहशी थे बूए गुल की तरह से जहाँ में हम ।
निकले तो फिर के आये न अपने मकाँ से हम ।।

२०

बाज़िए इश्क़ जुज़ अन्दोह रामो रंज नहीं ।
खेल ले हर कोई जिसको य' वो शतरंज नहीं ।।

२१

बदन सा शहर नहीं दिल सा बादशाह नहीं ।
हवास खम्सा से बेहतर कोई सिपाह नहीं ।।

२२

जामे शराबे इश्क़ से दोनों हैं बेखबर ।
बुलबुल चमन में मस्त है हम कूए यार में ।।

२३

मुहब्बत से बना लेते हैं अपना दोस्त दुश्मन को ।
झुकाती है हमारी आजिज़ी सरकश की गरदन को ।।

२४

तेग़ में जौहर कहाँ वह अबुए ख़मदार के।
ज़ख़्म दिखलाई नहीं देते हैं इस तलवार के।।

२५

तुम सैर करके क्या फिरे अंधेर हो गया।
बाज़ार आके रौनके बाज़ार ले चले।।

२६

हिज्र में वस्ल का मिलता है मज़ा आशिक़ को।
शौक़ का मरतबा जब हद से गुज़र लेता है।।

२७

आँखें नहीं हैं चेहरे पर तेरे फ़क़ीर के।
दो ठीकरें हैं भीख के दीदार के लिये।।

२८

जो चलन चाहें चले आतिश बुताने-बे वफ़ा।
हुस्न जब पैदा हुआ सब ऐब पिनहाँ हो गये।।

२९

कूचए महबूब में मं ख़ानए काबा में शेख़।
बुतकदे में बरहमन आतिश कदे में गब्र है।।

३०

जब सँभाला उस परी पैकर ने कुछ हुस्नो सबाब।
शीया सुन्नी हो गये हिन्दू मुसलमाँ हो गये।।

३१

हज़ारों हसरतें जावेंगी मेरे साथ दुनिया से।
शरारो बर्क़ से भी असँए हस्ती को कम पाया।।

३२

कुफ्रो इस्लाम की कुछ कैद नहीं ऐ आतिश!
शेख हो या कि बिरहमन हो पर इन्साँ होवे।।

३३

इश्क के सदमें उठाने को जिगर भी चाहिये।
खूँ हुआ मेरी तरह आतिश किसी का दिल कहाँ।।

३४

सर शमा-सा कटाइये पर दम न मारिये।
मंजिल हजार सिम्त हो हिम्मत न हारिये।।

३५

याद रखने की जगह है य' तिलिस्मे हैरत।
सुबह को देखते ही भूल गये शाम को हम।।

ज़ौक़

ज़ौक उपनाम ; शेख़ मुहम्मद इब्राहिम नाम ; ख़ाक़ानिए हिन्द उपाधि ; पिता का नाम शेख़ मुहम्मद रमज़ान; स्थान दिल्ली ; जन्म-काल १७८९ ई० ; मृत्यु-काल १८५४ ई० ।

ज़ौक़ के पिता एक साधारण सिपाही थे। वे दिल्ली में काबुली दरवाजे के पास रहते थे। जब बालक इब्राहिम पढ़ने योग्य हुये, तब अनुभवी पिता ने इन्हें महल्ले के एक हाफ़िज़ के पास बिठा दिया। हाफ़िज़ का नाम गुलाम रसूल था। वे कवि थे। शौक़ उपनाम रखते थे। उन्होंने इब्राहिम को धार्मिक शिक्षा के साथ फ़ारसी और साहित्य की भी अच्छी शिक्षा दी। उनकी देखा-देखी इब्राहिम भी शेर कहने लगे। शौक़ साहब इनके शेरों को देख दिया करते थे और उत्साहित भी करते थे। शौक़ किस ढाँचे के शायर थे यह इनके इस शेर से मालुम हो सकता है—

शेख़ बघारे शेखी अपनी मुफ्त के लुक़मे खाता है।
दूध मलीदा खाते हैं याँ मस्त कलन्दर घी खिचड़ी ।।

इब्राहिम के एक सहपाठी काज़िम हुसेन थे। उन्हें भी शेर बनाने का शौक़ था। एक दिन उन्होंने अपनी एक ग़ज़ल सुनाई। इब्राहिम ने पूछा—यह ग़ज़ल कब कही ? काज़िम ने कहा—हम तो शाह नसीर के शागिर्द हो गये। इब्राहिम को भी शाह नसीर से मिलने का शौक़ हुआ। ये भी गये और उनके शागिर्द हो गये। इन्होंने अपना उपनाम ज़ौक़ रक्खा। इनकी लड़कपन की शायरी का एक नमूना यह है—

माथे प तेरे झमके है झूमर का पड़ा चाँद।
ला बोसा चढ़े चाँद का वादा था चढ़ा चाँद ।।

शाह नसीर के साथ ज़ौक़ भी मशायरे में जाने और ग़ज़लें पढ़ने लगे। ये कविता की शिक्षा शाह साहब से और अरबी-फ़ारसी की शिक्षा उस समय के सबसे बड़े विद्वान् अब्दुल रज्ज़ाक से पाते थे। वहीं इनकी मित्रता स्व० प्रोफ़ेसर आज़ाद के पिता से हुई। वे भी वहाँ पढ़ने जाया करते थे।

शाह साहब के शाहज़ादे मियाँ मुनीर भी कविता करते थे। उनको अपनी कविता का घमंड भी बहुत था। शाह साहब भी अपने पुत्र की कविता बड़े ध्यान से सुधारते थे। बल्कि ज़ौक़ की उपेक्षा भी कर जाते थे। इससे ज़ौक़ का चित्त उस्ताद से खट्टा होता गया। उस्ताद अपने पुत्र को पढ़ाने-के लिये ज़ौक़ को निरुत्साहित भी करने लगे। इससे ज़ौक़ ने उनके पास जाना-आना छोड़ दिया।

ज़ौक़ की प्रतिभा बड़ी उच्च-कोटि की थी। ये अपने ही पैरों अपनी उन्नति का मार्ग तै करने लगे। एक दिन एक जगह मुशायरा था। ज़ौक़ ने भी ग़ज़ल कही थी। पर बिना सुधरवाई हुई ग़ज़ल को मुशायरे में पढ़ने का साहस इनको न होता था। ये बेचैन होकर घर से निकले। शाम होते-होते जामे मसजिद तक जा पहुँचे। संयोग से वहाँ मीर कल्लू हक़ीर बैठे मिले। जान-पहचान पहले से थी। मियाँ हक़ीर ने देखते ही पूछा—क्यों भाई, उदास क्यों हो? कुशल तो है? ज़ौक़ ने अपनी मानसिक वेदना कह सुनाई। मीर साहब ने कहा—ज़रा मुझे भी तो अपनी ग़ज़ल सुनाओ। ज़ौक़ ने ग़ज़ल कही। हक़ीर साहब ने ग़ज़ल को पसन्द करके कहा—जाओ, निर्भय होकर मुशायरे में ग़ज़ल पढ़ो। कोई कुछ एतराज़ करेगा तो मैं निपट लूँगा। ज़ौक़ को बड़ा प्रोत्साहन मिला। इन्होंने मुशायरे में जाकर ग़ज़ल पढ़ी। वहाँ इनकी बड़ी तारीफ़ हुई। उसी दिन से इनका हौसला दिनोंदिन बढ़ने लगा।

उन दिनों अकबरशाह दिल्ली के बादशाह थे। उन्हें तो शेर आदि का कुछ शौक़ था नहीं। हाँ, उनके साहबज़ादे मिर्ज़ा अबूज़फ़र, जो उन दिनों युवराज थे और पीछे बहादुरशाह के नामसे बादशाह हुए, कविता के अच्छे शौक़ीन थे। वे स्वयं भी ग़ज़लें बनाते थे और 'ज़फ़र' अपना उपनाम रखते

थे। उनके पास तत्कालीन कवियों का अच्छा जमघट रहता था। जिनमें फ़िराक़, सैद, एहसान, ज़ार, क़ासिम, इश्क़, अज़ीम और ममनूं आदि मुख्य थे। ज़ौक़ का भी दिल उस मंडली में पहुँचने को बहुत लालायित हो रहा था। ये थे एक ग़रीब सिपाही के लड़के, इनको क़िले में किसी अमीर उमराव की ज़मानत और सिफारिश के बिना कौन घुसने देता? पर इनको वहाँ पहुँचने की लगन पक्की थी। इनका भावी सौभाग्य ही इनका मार्ग-प्रदर्शक हुआ। मीर क़ाज़िम हुसेन ने इन्हें युवराज के दरबार में पहुँचा दिया।

युवराज की ग़ज़लें पहले शाह नसीर देख दिया करते थे। पर उन दिनों वे दक्खिन चले गये थे, इससे मीर क़ाज़िम हुसेन उनका काम चलाते रहे। पर वे भी युवराज की सिफ़ारिश से जान अलफिन्स्टन साहब के मीर मुंशी होकर चले गये। इसलिये युवराज की ग़ज़लें बनानेवाला अब कोई न रहा।

एक दिन युवराज तीर चला रहे थे। ज़ौक़ भी वहाँ पहुँच गये। युवराज ने देखते ही कहा—भाई इब्राहिम, उस्ताद दक्खिन चले गये, क़ाज़िम हुसेन उधर चले गये, तुमने भी हमें छोड़ दिया? उसी वक्त उन्होंने एक ग़ज़ल जेब से निकालकर दी और कहा कि इसे ठीक कर दो। ज़ौक़ ने वहीं बैठकर ग़ज़ल ठीक कर दी और युवराज को ग़ज़ल सुनाई। युवराज को ग़ज़ल बहुत पसन्द आई। उन्होंने कहा—भाई, कभी-कभी आकर मेरी ग़ज़लें बना जाया करो। कुछ दिनों के बाद ज़ौक़ युवराज के काव्य-गुरु हो गये।

उन दिनों अकबरशाह और युवराज में बनती न थी। अकबरशाह युवराज को अपना बेटा मानते ही न थे। वे अपने दूसरे लड़कों में से कभी किसी को, कभी किसी को युवराज बनाने की कोशिश में थे। इससे युवराज का मासिक वेतन भी ५०००) मासिक से घटकर ५००) मासिक हो गया था। इसी ग़रीबी में ज़ौक़ भी जा पहुँचे। चार रुपये महीना इनका वेतन नियत हुआ। बाप ने बहुत चाहा कि बेटा इस छोटे वेतन को स्वीकार न करे, पर भाग्य ने जो चाहा, वही हुआ।

दिल्ली में नवाब इलाही बख्श 'मारूफ़' एक प्रसिद्ध रईस थे। वे भी कविता के प्रेमी थे। ज़ौक़ की प्रशंसा सुनकर उन्होंने बड़े प्रेम से बुलाया

और अपनी ग़ज़ल सुधारने को दी। उस समय ज़ौक़ की उम्र १६, २० वर्ष की थी। चढ़ती जवानी थी। उधर नवाब साहब भी, यद्यपि बुड्ढे हो चले थे, पर तबीअतदारी में नौजवानों के कान काटते थे। दोनों में खूब पटी। उनके मन के अनुसार ही ज़ौक़ उनकी ग़ज़ल बना दिया करते थे। पहली स्वरचित ग़ज़ल, जो ज़ौक़ ने उन्हें सुनाकर उनका मन मोह लिया था, उसका मतला यह था—

निगह का वार था दिल पर फड़कने जान लगी।
चली थी बर्छी किसी पर किसी के आन लगी॥

नवाब साहब फड़क उठे। उसी समय ज़ौक़ के काव्य-गुरु शौक़ भी वहाँ आ पहुँचे। ज़ौक़ ने उठकर उनको बड़े अदब से सलाम किया। वे ज़ौक़ से इसलिये रुष्ट थे कि ज़ौक़ उनके शागिर्द होकर भी दूसरों को ग़ज़लें क्यों दिखाते हैं और मुशायरे में उनके साथ क्यों नहीं चलते? पर ज़ौक़ एक नेक शागिर्द की तरह सदा उनका सम्मान करते थे। आते ही शौक़ साहब ने नवाब साहब को अपनी ग़ज़लें सुनानी शुरू कीं। ज़ौक़, जो नवाब की बग़ल ही में बैठे थे, उठकर जाने लगे तो नवाब ने धीरे से कान में कहा—'कान बदमज़ा हो गये, तुम अपना कोई शेर सुनाते जाओ'। ज़ौक़ ने एक ग़ज़ल, जो उन्हीं दिनों लिखी थी, नवाब को सुनाई, जिसके दो मतले ये हैं—

जीना नज़र अपना हमें असला नहीं आता।
गर आज भी वह रश्के मसीहा नहीं आता॥
मज़कूर तेरी बज़्म में किसका नहीं आता।
पर ज़िक्र हमारा नहीं आता नहीं आता॥

नवाब के पास ज़ौक़ हफ्ते में दो बार जाया करते और उनकी ग़ज़लें बना आया करते थे। नवाब साहब बड़े दानी पुरुष थे। ज़ौक़ अपने जीवन भर में बार-बार उन्हें बड़े सम्मान से याद किया करते थे।

कई वर्ष के बाद शाह नसीर दक्खिन से लौट आये। उन्होंने फिर मुशायरे जारी किये। ज़ौक़ भी जाने लगे। एक दिन शाह नसीर ने एक ग़ज़ल

पढ़ी। जिसकी तरह थी—आतिशो आबो खाको बाद। उन्होंने कहा—इस ज़मीन पर जो चलेगा, उसे मैं भी उस्ताद मानूँगा। ज़ौक़ ने दूसरे मुशायरे में उस तरह पर एक ग़ज़ल पढ़ी। शाह साहब ने उस पर बहुत से तर्क-वितर्क किये, पर ज़ौक़ ने प्रमाण दे-देकर अपना पक्ष बड़ी ख़ूबीसे समर्थन किया।

ज़ौक़ ने उसी छंद और क़ाफ़िये में एक ग़ज़ल और लिखी, जिसका पहला शेर यह है :—

सरसरो कोह में हों, गर आतिशो आबो खाको बाद।
आज न चल सकेंगे पर आतिशो आबो खाको बाद॥

इस पर शाह नसीर की ओर से यह आक्षेप हुआ कि पत्थर में आग की गति का क्या प्रमाण है? ज़ौक़ ने कहा—जब पहाड़ में बढ़ने के कारण गति है तो उसके भीतर की अग्नि में भी गति होनी चाहिये। विरोधी ने पत्थर में अग्नि होने का प्रमाण माँगा। ज़ौक़ ने कहा—यह तो प्रत्यक्ष ही है। इसमें प्रमाण की क्या आवश्यकता? विरोधी ने किसी कवि का प्रमाण माँगा। ज़ौक़ ने एक फ़ारसी का और एक सौदा का यह शेर सुनाया—

हर संग में शरार है तेरे ज़हूर का।

इस विवाद से लोगों का बड़ा मनोरंजन हुआ। ज़ौक़ विजयी हुए। उस दिन से ये पुराने कवियों के काव्य-ग्रन्थों को और भी ध्यान से अध्ययन करने लगे।

अकबरशाह ने इनकी कविता से प्रसन्न होकर इनको 'ख़ाक़ानिए हिन्द' की उपाधि दी। उस समय इनकी अवस्था १९ वर्ष की थी। ख़ाक़ानिए हिन्द की उपाधि अनेक वृद्ध और प्रशंसित कवियों को छोड़कर एक युवक को मिली, इस पर लोगों ने चर्चा की। एक सभा में भी इस पर कुछ बातें हो रही थीं। मियाँ कल्लू हक़ीर भी मौजूद थे। उन्होंने कहा—भई, कवि की आयु न देखकर उसकी कविता देखिये। कविता, जिस पर उपाधि मिली थी, वहाँ पढ़ी गई। फिर किसी को यह कहने का साहस न हुआ कि बादशाह ने अनुचित किया। सच है—

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः ।

जब ज़फ़र बादशाह हुए और बहादुरशाह नाम से प्रसिद्ध हुए, तब इनका मासिक वेतन सात रुपये से २०) मासिक कर दिया गया । पर इन्होंने कभी अपने वेतन के सम्बन्ध में एक शब्द भी किसी से नहीं कहा । जब कभी अपनी आर्थिक स्थिति पर दुःख होता था तो यह शेर पढ़ा करते थे—

यों फिरे अहले कमाल आशुफ्तः हाल अफ़सोस है ।

मिर्ज़ा मुग़ल बेग वज़ीर थे, तब इन्हें बहुत अर्थ-कष्ट था । मुग़ल बेग का मंत्रित्व समाप्त हो गया, तब नवाब हामिद अली खाँ का ज़माना आया । उनके समय में इनका वेतन १००) मासिक हो गया । एक बार बहादुरशाह बीमारी से उठे, तब ज़ौक़ ने उसकी खुशी में एक क़सीदा कहा । जिसपर इन्हें खान बहादुर की उपाधि और हौदे आदि से सुसज्जित हाथी इनाम में मिला । फिर एक बड़े ज़ोर-शोर का क़सीदा कहा, जिस पर एक गाँव मिला । अब इन्हें अर्थ-कष्ट नही रह गया ।

ज़ौक़ का क़द छोटा और रंग साँवला था । चेहरे पर माता के दाग़ थे । इनको नौ बार माता निकली थीं । बदन खासा तगड़ा था । आँखें बड़ी तेज़ थीं । प्रायः सफेद कपड़े पहनते थे, जो उनपर अच्छे खिलते थे । स्वर बड़ा मधुर था । मुशायरे में जब ग़ज़ल पढ़ते तो सुनने वाले लहालोट हो जाते थे । अपनी ग़ज़ल ये स्वयं पढ़ते थे, किसी और से पढ़वाते न थे । इनकी स्मरण-शक्ति इतनी अच्छी थी कि जिस पुस्तक को एक बार पढ़ लेते थे, फिर चाहे वर्षों बीत जाय उसकी छोटी से छोटी बात भी याद रहती थी । जब इनकी अवस्था एक वर्ष की भी नहीं थी, तब की एक घटना इन्हें याद थी ।

ज़ौक़ हृदय के बड़े दयालु थे । उम्र भर कभी इन्होंने अपने हाथ से किसी पशु का वध नहीं किया । जवानी में एक दिन साथियों ने कहीं से ताक़त का एक नुस्खा प्राप्त किया । उसकी प्रत्येक चीज़ का एकत्र करना एक-एक व्यक्ति के ज़िम्मे कर दिया गया । चालीस चिड़ियों का मग्ज़ जमा करने का काम इन्हें मिला । ये घर आये । जाल फैला दिया । तीन चिड़े

फँसे। वे पिंजड़े में बंद किये गये। ज़ौक़ ने जब उनका कूदना और फुदकना देखा, तब यकायक इनके मन में यह विचार उठा कि ये भी तो प्राण रखते हैं। हमारी ही तरह इनको भी सुख दुःख का अनुभव होता होगा। जरा-सी देर के सुख के लिये इनका प्राण लेना बड़ी बेइन्साफ़ी होगी। यह विचार मन में आते ही इन्होंने पिंजड़े को खोल दिया। जाल को तोड़-फोड़ डाला। तीनों पक्षी उड़ गये। इन्होंने मित्रों से जाकर कह दिया कि हम तुम्हारे नुस्ख़े में शामिल नहीं।

ये प्रायः टहला करते थे। मकान के सामने एक लम्बी-सी गली थी। उसी में फिरा करते थे। एक बार रात के वक्त टहलते-टहलते आये और कहने लगे—अभी एक साँप गली में चला जाता था। एक शागिर्द ने पूछा—तो हज़रत, आपने उसे मारा नहीं? किसी को पुकारा होता। ज़ौक़-ने कहा—भाई, आख़िर वह भी तो जान रखता है।

एक बार का ज़िक्र है कि ये कविता लिखने में तन्मय हो रहे थे। चिड़ियाँ बरामदे में घोंसला बना रही थीं। उनके तिनके जो गिरते थे,उन्हें लेने को वे बार-बार ज़मीन पर आतीं और इधर-उधर बैठा करती थीं। एक बार एक चिड़िया इनके सिर पर आ बैठी। इन्होंने उड़ा दी। वह फिर आ बैठी। इन्होंने फिर उसे उड़ा दी। इसी तरह वह बार-बार आकर बैठने लगी और ये उड़ाते रहे। अंत में हँसकर इन्होंने कहा—मालूम होता है, चिड़ियों ने मेरे सिर को कबतूर का अड्डा समझ लिया है। उस समय इनके सुप्रसिद्ध शिष्य प्रो० आज़ाद और चक्षुहीन कवि वीरान भी वहाँ बैठे थे। वीरान ने ज़ौक की बात का अभिप्राय नहीं समझा। उन्होंने आज़ाद से पूछा। जब उन्हें सब बातें मालूम हुई तो वे बोले—हमारे सिर पर तो नहीं बैठती। ज़ौक ने मुसकुराते हुये कहा—बैठे क्योंकर? जानती है कि यह मुल्ला है, आलिम है, हाफ़िज़ है, अभी कल्मा पढ़कर 'बिस्मिलाह अल्लाहो अकबर' कर दूंगा। दिवानी है जो तुम्हारे सिर पर आये?

ज़ौक साहित्य के विद्वान् और बड़े अध्ययन-शील थे। इनके विषय में इनके योग्य शिष्य आज़ाद लिखते हैं—

'फ़रमाते थे कि मैंने साढ़े सात सौ दीवान पुराने शायरों के देखे और उनका खुलासा किया। ख़ान आरज़ू की तसनीफ़ात, टेकचन्द बहार की तहक़ीक़ात और इस किस्म की और किताबें गोया उनकी ज़बान पर थीं; मगर मुझे इस बात का ताज्जुब नहीं। अगर पुराने शायरों के हज़ारों शेर उन्हें याद थे तो मुझे हैरत नहीं, गुफ्तगू के वक्त जिस तड़ाके से वे शेर सनद में देते थे, मुझे इसका भी खयाल नहीं। हाँ, ताज्जुब यह है कि तारीख़ का जिक्र आये तो वह एक साहबे नज़र मुवर्रिख़ थे; तफ़सीर का ज़िक्र आये तो ऐसा मालूम होता था कि गोया तफ़सीरे कबीर देख कर उठे हैं। जब तक़रीर करते थे, यह मालूम होता था कि शेख़ शिबली हैं या बायज़ीद बुस्तामी बोल रहे हैं। रमल और ज्योतिष का ज़िक्र आये तो वह ज्योतिषी थे। मुझे ताज्जुब यह है कि उनके दिमाग़ में इस क़दर मज़ामीन महफ़ूज़ क्योंकर रहे। इल्मेतिब ख़ूब हासिल किया। मगर काम न किया। ख़ौफ आता कि ऐसा न हो, बेपर्वाई से किसी का ख़ून हो जाय।'

इनको आडम्बर बिल्कुल पसंद न था। प्रोफ़ेसर आज़ाद लिखते हैं—

'एक तंग व तारीक मकान था, जिसकी अँगनाई इस क़दर छोटी थी कि एक छोटी-सी चारपाई एक तरफ़ बिछती थी; दो तरफ़ इतना रास्ता रहता था कि एक आदमी चल सके। हुक्का मुँह में लगा रहता था। खुर्री चारपाई पर बैठे रहते थे। लिखे जाते थे या किताब देखे जाते थे। गर्मी, जाड़ा, बरसात तीनों मौसमों की बहारें वहीं बैठे गुजर जाती थीं। उन्हें कुछ खबर न होती थी। कोई मेला, कोई ईद और कोई मौसम बल्कि दुनिया के शादी व ग़म से उन्हें सरोकार न था। जहाँ अव्वल रोज़ बैठे, वहीं बैठे, और जभी उठे कि दुनिया से उठे।'

'उनको मामूल था कि रात को खाने से फ़ारिग़ होकर बादशाह की ग़ज़ल कहते थे। फिर वज़ू करते और एक लोटे पानी से कुल्लियाँ करके नमाज़ पढ़ते, फिर वज़ीफा शुरू होता। ज़ेरे आसमान कभी टहलने जाते, कभी क़िब्लारू ठैर जाते। अगर्चे आहिस्ता-आहिस्ता पढ़ते थे, मगर अक्सर

अवक़ात इस जोशे दिल से पढ़ते कि मालूम होता गोया सीना फट जायगा।'

ज़ौक़ का बहुत समय बादशाह की ग़ज़लें बनाने मे जाता था। जितनी अच्छी ग़ज़लें होतीं थीं, प्रायः सब में बादशाह अपना नाम डलवा लेते थे। इससे ये अपनी ग़ज़लें बादशाह को सुनाते ही नहीं थे। यदि किसी तरह वे बादशाह के कानों तक पहुँच जाती थीं, तो बादशाह उसी से मिलती-जुलती नई ग़ज़ल बनाकर इसलाह के लिये इन्हें दे देते थे। ये यदि अपनी ग़ज़ल से उसे बढ़िया बनाते तो अपनी ग़ज़ल का मान मारा जाता। घटिया बनाते तो बादशाह के कान खड़े होते; इससे ये अपनी ग़ज़लें अपने ख़ास ख़ास मित्रों तक ही रखते थे।

ज़ौक़ अपना मन का यह दुःख इन शब्दों में प्रकट करते हैं;—

ज़ौक़ मुरत्तिब क्यों के हो दीवाँ शिकवए फ़ुरसत किससे करें।
बाँधे गले में हमने अपने आप 'ज़फ़र' के झगड़े हैं॥

जो ग़ज़लें इन्होंने अपने उपनाम से कहीं थीं, यदि वे जमा की जातीं तो ज़फ़र के चारों दीवानों के बराबर होतीं। बादशाह कि फ़रमाइशें दम लेने की फ़ुरसत न देती थीं, फिर भी ये कुछ अपना कहीं लेते। पर कितने दुःख की बात है कि सन् १८५७ के ग़दर में इनका वह काव्य भी नष्ट हो गया। प्रोफेसर आज़ाद ने अपने गुरु की साहित्यिक हानि का जो करुण वर्णन किया है, उसे हम यहाँ ज्यों का त्यों उद्धृत करते है—

'फ़साहत का दिल कुमला जाता होगा जब उनके दीवान मुख्तसर पर निगाह पड़ती है। उनका बयान एक मुसीबत का फ़िसाना है और मरसिया-ख़ानी उसकी मेरा फ़र्ज है। फ़र्माते थे कि बचपन में जब कि १५-१६ बरस की उम्र थी, हमने अपना दीवान मुरत्तिब किया था और उसे बड़े शौक से लिखा था। फिर ज़माने ने फ़ुर्सत न दी। जो ग़ज़ल होती, जुदा क़ाग़ज पर लिखी जाती, इसी तरह ताक़ में रख देते कि फ़ुरसत में नज़रसानी करेंगे। जब ताक़ भर गया, तकिये के ग़िलाफ मे भर दिये, घर में भेज दिये कि एहतियात से रखना।'

'उस्ताद की वफ़ात से चंद रोज़ बाद मैं (प्रो० आज़ाद) ने और ख़लीफा इस्माईल ने चाहा कि कलाम को तर्तीब दें। सब ज़ख़ीरा निकाला। मेहनत ने उसके इन्तख़ाब में पसीने की जगह लहू बहाया ; क्योंकि बचपन से लेकर दमे वापसी तक का कलाम उन्हीं में था और बहुत-सी ग़ज़ले बादशाहों की, बहुतेरी ग़ज़ले शागिर्दों की भी मिली हुई थीं।'

'चुनांचे अव्वल उनकी अपनी ग़ज़ले और क़सीदे इन्तख़ाब कर लिये। यह काम कई महीनों में खत्म हुआ। पहले ग़ज़ले साफ़ करनी शुरू कीं। इस ख़ता का मुझे इक़रार है कि काम को मैंने जारी किया, मगर बाइतमीनान किया। मुझे क्या मालूम था कि इस तरह यकायक ज़माने का वर्क़ उलट जायागा। आलम तहो-बाला हो जायगा, हसरतों के ख़ून बह जायँगे, दिल के अरमान दिल में रह जायँगे। एक साथ सन् १८५७ ई० का ग़दर हो गया। किसी का किसी को होश न रहा। चुनांचे अफ़सोस है कि ख़लीफ़ा महम्मद इस्माईल उनके फ़र्ज़न्द जिस्मानी के साथ ही उनके फ़र्जन्द रूहानी (काव्य) भी दुनिया से रहलत कर गये। मेरा यह हाल हुआ कि फ़तहयाब लश्कर के बहादुर दफ़ैतन घर में घुस आये, बन्दूकें दिखाई कि जल्द निकलो। दुनिया आखों में अन्धेर थी, भरा हुआ घर सामने था और मैं हैरान खड़ा था कि क्या-क्या कुछ उठाकर ले चलूं। इनकी ग़ज़लों पर नज़र पड़ी। यहीं ख़याल आया कि महम्मद हुसेन, ज़िन्दगी बाक़ी है तो सब कुछ हो जायगा, मगर उस्ताद कहाँ से पैदा होंगे जो ग़ज़लें फिर आके कहेंगे। अब उनके नाम की ज़िन्दगी है तो इन पर मुनहसिर है। ये हैं तो वे मरकर भी ज़िन्दा हैं, ये गये तो नाम भी न रहेगा। वहीं संग्रह उठाकर बग़ल में मारा। सजे-सजाये घर को छोड़, २२ नीम जानों के साथ घर से बल्कि शहर से निकला। ग़रज़ मैं तो आवारा होकर ख़ुदा जाने कहाँ का कहाँ निकल आया। हाफ़िज़ गुलाम रसूल 'वीरान' ने शेख मरहूम (उस्ताद ज़ौक़) के बाज़ दर्दख्वाह दोस्तों से ज़िक्र किया कि मसौदा का सरमाया तो सब दिल्ली के साथ बरबाद हुआ। इस वक़्त यह ज़ख्म ताज़ा है; अगर अब दीवान मुरत्तिब न हुआ तो कभी न होगा। हाफ़िज़ मौसूफ़ को खुद भी

हज़रत मरहूम उस्ताद का कलाम बहुत कुछ याद था और ख़ुदा ने उनकी बसीरत की आँखें (ज्ञान-चक्षु) ऐसी रोशन की थीं कि बेसारत के मोहताज नहीं थे। बावजूद इसके लिखने की सख़्त मुश्किल हुई। ग़रज़ कि एक मुश्किल में कई-कई मुश्किलें थीं। उन्होंने इस मुहिम का सरअंजाम किया और सन् १२७६ हिजरी में एक मजमुआ, जिसमें अक्सर ग़ज़ले तमाम, अक्सर नातमाम, बहुत से मुतफ़र्रिक अशआर और चन्द क़सीदे हैं, छापकर निकाला, मगर इबरत की आँखों से लहू टपका; क्योंकि जिस शख़्स ने दुनिया की लज्ज़तें, उम्र के मुख़्तलिफ़ मौसम और मौसमों की बहारें दिन की ईदें, शबकी शबबरातें, बदन के आराम, दिल की ख़ुशियाँ, तबीयत की उमंगें सब छोड़ीं और एक शेर (काव्य) को लिया, जिसकी इन्तहा तमन्ना यही होगी कि इसकी बदौलत नाम नेक बाक़ी रहेगा, तबाहकार ज़माने के हाथों आज उसकी उम्र भर की मिहनत ने यह सरमाया दिया और जिसने अदना-अदना शागिर्दों को साहबे दीवान कर दिया, उसको यह दीवान नसीब हुआ! ख़ैर; यों ही ख़ुदा चाहे तो बन्दे का क्या चले। मेरे पास बाज़ क़सीदे हैं, अक्सर ग़ज़लें हैं, ये दाख़िल हो जायँगी या नातमाम ग़ज़लें पूरी हो जायँगी, मगर तस्नीफ़ के दरिया में से प्यास भर पानी भी नहीं।'

ज़ौक़ की कविता उच्च भावों से पूर्ण है। ये महावरों के उस्ताद थे। भाषा पर इनका पूरा अधिकार था। प्रेम का रहस्य-वर्णन इनकी कविता में ख़ूब है। जहाँ जवानी की उमंगें हैं, वहाँ वेदान्त और ईश्वर-परायणता की तरंगे भी हैं।

ये बड़े प्रत्युत्पन्नमति थे। एक बार दरबार में बैठे थे। एक साहब किसी बेगम की कोई बात लेकर आये और बादशाह के कान में कहकर चलने लगे। हकीम अहसानुल्ला साहब ने पूछा—इतनी जल्दी?

यह सुनकर उन्होंने कहा—

अपनी ख़ुशी न आये न अपनी ख़ुशी चले।

बादशाह ने ज़ौक़ की ओर देखकर कहा—उस्ताद, देखना क्या साफ़ मिसरा है। ज़ौक़ ने तत्काल निवेदन किया—

लाई हयात आये क़ज़ा ले चली चले।
अपनी ख़ुशी न आये न अपनी ख़ुशी चले॥

दीवान चन्दूलाल ने हैदराबाद से इनके पास एक समस्या, ५००) और ख़िलवत भेजकर बुलाया। इन्होंने ग़ज़ल तो भेज दीं, पर स्वयं न गये। ग़ज़ल का अंतिम शेर यह था—

आजकल गर्चे दकन में है बड़ी क़द्रे सख़ुन।
कौन जाये ज़ौक़ पर दिल्ली की गलियाँ छोड़कर॥

प्रोफ़ेसर आज़ाद ने एक दिन वहाँ न जाने का सबब पूछा तो इन्होंने यह लतीफ़ा सुनाया—

"कोई मुसाफ़िर दिल्ली में महीना बीस दिन रहकर चला। यहाँ एक कुत्ता हिल गया था। वह वफ़ा का मारा साथ हो लिया। शाहदरे पहुँचकर दिल्ली याद आई, और रह गया। वहाँ के कुत्ते को देखा, गर्दनें फ़बाँ, बदन तय्यार, चिकने-चिकने बाल। एक कुत्ता इन्हें देखकर ख़ुश हुआ और दिल्ली का समझ बहुत ख़ातिर की। मिठाई के बाज़ार में ले गया। हलवाई की दूकान से एक बालूशाही उड़ाकर सामने रक्खी। भटियारे की दूकान से एक रोटी झपटा। ये ज़ियाफ़तें खाते और दिल्ली की बातें सुनाते रहे। तीसरे दिन रुख़सत माँगी। उसने रोका। इन्होंने दिल्ली के सैर-तमाशे और ख़ूबियों के ज़िक्र किये। आख़िर चले और दोस्त को भी दिल्ली आने की ताकीद कर आये। उसे भी ख़याल रहा और एक दिन दिल्ली का रुख़ किया। पहले ही मरघट के कुत्ते मुर्दार खाने वाले ख़ूनी आँखें, काले-काले मुँह नज़र आये। ये लड़ते-भिड़ते निकले। दरिया मिला। देर तक किनारे पर फिरे। आख़िर कूद पड़े। मरघट पार करके पहुँचे। शाम हो गई थी। शहर में गली-कूचों के कुत्तों से बच-बचाकर डेढ पहर रात हो गई तो दोस्त से मुलाकात हुई। ये बेचारे अपनी

हालत पर शरमाये। बज़ाहिर ख़ुश हुए और कहा—ओहो! इस वक़्त तुम कहाँ? दिल में कहते थे कि रात ने पर्दा रक्खा, वर्ना दिन में यहाँ क्या रक्खा था। उसे लेकर इधर-उधर फिरने लगे। यह चाँदनी चौक है, यह दरीबा है, यह जामा मस्जिद है। मेहमान ने कहा—यार, भूख के मारे जान निकली जाती है, सैर हो जायगी, कुछ खिलवाओ तो सही। इन्होंने कहा, तुम अजब वक़्त आये हो, अब क्या करूँ। सौभाग्य की बात है कि जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर जानी कबाबी मिरचों की हाँड़ी भूल गये थे। इन्होंने कहा—लो यार, बड़ी किस्मत वाले हो। वह दिनभर का भूखा था। मुँह फाड़कर गिरा और साथ ही मुँह से मग़ज़ तक गोया बारूद उड़ गई। छींककर पीछे हटा और जलकर कहा—वाह, यही दिल्ली है। इन्होंने कहा—इस चटख़ारे के मारे ही तो यहाँ पड़े हैं।'

एक दिन एक बुड्ढा चूरन की पुड़ियाँ बेंचता फिरता था और आवाज़ देता था—

तेरे मन-चले का सौदा है खट्टा और मीठा।

बादशाह के कान में उसकी बात पड़ गई। उन्होंने कुछ पद्य लिख कर ज़ौक़ के पास भेज दिये। ज़ौक़ ने दस दोहे लगा दिये। सरकारी कंचनियों ने उसे लै से गाया। दूसरे दिन सारे शहर में वह बच्चे-बच्चे की ज़बान पर हो गया। उनमें से दो बन्द, जो प्रोफ़ेसर आज़ाद को याद थे, ये हैं—

ले तेरे मन-चले का सौदा है खट्टा और मीठा।
कुँजड़े की सी हाट है दुनिया जिन्स है सारी इकट्ठी।
मीठा चाहे मीठा ले ले खट्टी चाहे खट्टी।
ले तेरे मन-चले का सौदा है खट्टा और मीठा॥
रूप रंग पर भूल न दिल में देख अक़ल के बैरी।
ऊपर मीठी नीचे खट्टी अम्बुआ की सी कैरी॥
ले तेरे मन-चले का सौदा है खट्टा और मीठा॥

एक फ़क़ीर यह सदा लगाता था—

कुछ राहे ख़ुदा दे जा जा तेरा भला होगा।

बादशाह को पसंद आई। ज़ौक़ ने उसपर बारह दोहरे लगा दिये। हुत दिनों तक गली-कूचों में वह गाया जाता रहा—

मुहताज ख़राबाती या पाक नमाज़ी है।
कुछ कर न नज़र उस पर वाँ नुक्ता नवाज़ी है।।
कुछ राहे खुदा दे जा जा तेरा भला होगा।।
दुनिया के किया करता है सैकड़ों तू धन्दे।।
पर काम ख़ुदारा भी कर ले कोई ह्याँ बन्दे।
कुछ राहे खुदा दे जा जा तेरा भला होगा।।
दुनिया है सरा इसमें तू बैठा मुसाफ़िर है।
औ जानता है याँ से जाना तुझे आख़िर है।।
कुछ राहे ख़ुदा दे जा जा तेरा भला होगा।।
जो रब ने दिया तुझको तो नाम पै रब के दे।।
गर याँ न दिया तू ने वाँ देवेगा क्या बन्दे।
कुछ राहे ख़ुदा दे जा जा तेरा भला होगा।।
देवेगा उसी को तू वह जिसको है दिलवाता।
पर है यह 'ज़फ़र' तुझको आवाज़ सुना जाता।।
कुछ राहे ख़ुदा दे जा जा तेरा भला होगा।।

शारीरिक निर्बलता के कारण रमज़ान के दिनों में रोज़े नहीं रखते । पर किसी के सामने पानी तक न पीते थे। नौकर को इशारे मालूम । वह आवश्यकता होने पर ऊपर बुला ले जाता, जहाँ ये आवश्यकता-सार खान-पान कर लेते थे।

ये स्वभाव के बहुत सरल, सच्चरित्र और दयालु पुरुष थे। कभी किसी का बुरा न चाहते थे, न किया। इनके दिल में भगवान् का डर दा बना रहता था। इन्होंने किसी की निन्दा में एक भी शब्द नहीं लिखा। किसी अन्य कवि ने भी इनकी निन्दा में कुछ नहीं लिखा।

इनके शागिर्द इतने अधिक थे कि उतने शायद ही और किसी उर्दू-कवि के रहे हों। इनमें से कई तो बहुत योग्य निकले। बादशाह ज़फ़र को छोड़कर इनके शिष्यों में सब से अधिक प्रसिद्ध कवि, उर्दू-अरबी, फ़ारसी के विद्वान् शम्सुलउल्मा मौलवी मुहम्मदहुसेन 'आज़ाद' प्रोफ़ेसर गवर्नमेंट कालेज लाहौर हुए। दूसरे शागिर्द हज़रत दाग़ हुये, जिनकी प्रखर प्रतिभा और अद्भुत कवित्व-शक्ति ने उर्दू के संसार में बहुत मान पाया।

ज़ौक़ ने मरने से तीन घन्टे पहले यह शेर कहा था—

कहते हैं आज ज़ौक़ जहाँ से गुज़र गया।
क्या ख़ूब आदमी था ख़ुदा मग़फ़रत करे॥

यहाँ ज़ौक़ के दीवान से कुछ शेर चुनकर दिये जाते हैं—

१

किसी बेकस को ऐ बेदाद गर मारा तो क्या मारा।
जो आपी मर रहा हो उसको गर मारा तो क्या मारा॥
न मारा आप को जो ख़ाक हो अक्सीर बन जाता।
अगर पारे को ऐ अक्सीर गर मारा तो क्या मारा॥
बड़े मूज़ी को मारा नफ़्से अम्मारा को गर मारा।
नहंगो अज़दहा ओ शेर नर मारा तो क्या मारा॥
नहीं वह क़ौल का सच्चा हमेशा क़ौल दे दे कर।
जो उसने हाथ मेरे हाथ पर मारा तो क्या मारा॥
तुफ़ंगो तीर तो ज़ाहिर न था कुछ पास क़ातिल के।
इलाही फिर जो दिल पर ताक के मारा तो क्या मारा॥

२

हो राज़े दिल न यार से पोशीदा यार का।
परदा जो दरमियाँ न हो दिल के ग़ुबार का॥
है दिल की दाँव-घात में मिज़गाँ से चश्मे यार।
करती है क़स्द टट्टी की ओझल शिकार का॥

३

नाला इस शोर से क्यों मेरा दुहाई देता।
ऐ फ़लक गर तुझे ऊँचा न सुनाई देता।।
देख छोटों को है अल्लाह बड़ाई देता।
आसमाँ आँख के तिल में है दिखाई देता।।
मुँह से बस करते न हरगिज़ ऐ खुदा के बन्दे!
गर हरीसों को खुदा सारी खुदाई देता।।
देख गर देखना है 'ज़ौक़' कि वह परदानशीं।
दीदये रोजने दिल से है दिखाई देता।।

४

जो फ़रिश्ते करते है कर सकता है इन्सान भी।
पर फ़रिश्तों से न हो जो काम है इन्सान का।।
देखना ऐ 'ज़ौक़' होंगे आज फिर लाखों के खून।
फिर जमाया उसने लाले लब पै लाखा पान का।।

५

आँख से अश्क सिफ़त मुझको गिरा कर न सम्हाल।
मैं नहीं वह कि सम्हाले से सम्हल जाऊँगा।।
जुम्बिशे बर्ग सिफ़त बाग़े जहाँ में ऐ 'ज़ौक़'।
कुछ न हाथ आयेगा तो हाथ ही मल जाऊँगा।।

६

पानी तबीब दे है हमें क्या बुझा हुआ।
है दिल ही ज़िन्दगी से हमारा बुझा हुआ।।
हम आप जल बुझे मगर इस दिल की आग को।
सीने में हमने 'ज़ौक़' न पाया बुझा हुआ।।

७

है और इल्में अदब मकतबे मुहब्बत में।
कि है वहाँ का मुअल्लिम जुदा अदीब जुदा।।

जुदा न दर्द जुदाई हो गर मेरे आज़ा।
हरूफ़ दर्द की सूरत हों ऐ तबीब जुदा॥
हजूम अश्क के हमराह क्यों न हो नाला।
कि फ़ौज से नहीं रहता कभी नक़ीब जुदा॥
किया हबीब को मुझसे जुदा फलक ने अगर।
न कर सका मेरे दिल से ग़मे हबीब जुदा।
करें जुदाई का किस किस का रंज हम ऐ 'ज़ौक़'!
कि होनेवाले हैं सब हमसे अनक़रीब जुदा॥

८

दाँत यूँ चमके हँसी में रात उस महपारा के।
मैंने जाना माहताबाँ पारा पारा हो गया॥
एक दम भी हमको जीना हिज्र में था नागवार।
पर उमीदे वस्ल में बरसों गुज़ारा हो गया॥
'ज़ौक़' इस बहरे जहाँ में क़िस्तिये उम्रे रवाँ।
जिस जगह पर जा लगी, वह ही किनारा हो गया॥

९

शुक्र परदे ही में उस बुत को हया ने रक्खा।
वर्ना ईमान गया ही था ख़ुदा ने रक्खा॥
बेनिशाँ पहले फ़ना से हो जो तुझको बक़ा।
वर्ना है किसका निशाँ ज़ौक़े फ़ना ने रक्खा॥

१०

सफ़े हस्ती कर रहा हूँ वस्ल की उम्मीद पर।
बे निशाँ हो लूँ तो फिर नामो निशाँ पैदा करूँ॥

११

नशा दौलत का बद अतवार को जिस आन चढ़ा।
सर पै शैतान के एक और भी शैतान चढ़ा॥

इश्क़ के ढब पै न कोई बजुज़ इन्सान चढ़ा।
इसके क़ाबू पै चढ़ा तो यही नादान चढ़ा॥

१२

गर सियहबख़्त ही होना था नसीबों में मेरे।
ज़ुल्फ होता तेरे रुख़्सार पै या तिल होता॥
मौत ने कर दिया नाचार वगर्ना इन्साँ।
है वह ख़ुदबीं कि ख़ुदा का भी न क़ायल होता॥
आप आईनये हस्ती में है तू अपना हरीफ़।
वर्ना याँ कौन था जो तेरे मुक़ाबिल होता॥
सीन-ए चर्ख़ में हर अख़्तर अगर दिल है तो क्या।
एक दिल होता मगर दर्द के क़ाबिल होता॥

१३

अजल आई न शबे हिज्र में और तूने फ़लक।
बे अजल हमको तमन्नाए अजल में मारा॥
आँख से आँख है लड़ती मुझे डर है दिलका।
कहीं यह जाय न इस जंगो जदल में मारा॥
न हुआ पर न हुआ मीर का अन्दाज़ नसीब।
'ज़ौक़' यारों ने बहुत ज़ोर ग़ज़ल में मारा॥

१४

क्या जाने उसे वहम है क्या मेरी तरफ़ से।
जो ख़्वाब में भी रात को तनहा नहीं आता॥
मे जाता जहाँ से हूँ तू आता नहीं याँ तक।
काफ़िर तुझे कुछ खौफ़ ख़ुदा का नहीं आता॥
दुनिया है वह सय्याद कि सब दाम में इसके।
आजाते हैं लेकिन कोई दाना नहीं आता॥
क़िस्मत से ही लाचार हूँ ऐ 'ज़ौक़' वगर्ना।
सब फ़न में हूँ मैं ताक़ मुझे क्या नहीं आता॥

१५

न क्यों तेरे दाँतों से झूटा हो मोती।
कि दावा किया था सफ़ाई का झूटा।।
ख़ुदा जाने है 'ज़ौक़' झूटा कि सच्चा।
नहीं है बले आशनाई का झूटा।।

१६

ज़ाहिद शराब पीने से क़ाफ़िर बना मैं क्यों?
क्या डेढ़ चुल्लू पानी में ईमान बह गया।।

१७

आँखें मेरी तलुओं से वह मल जाये तो अच्छा।
यह हसरते पाबोस निकल जाये तो अच्छा।।
जो चश्म कि बे नम हो वह हो कूर तो बेहतर।
जो दिल कि हो बेदाग़ वह जल जाये तो अच्छा।।
हो तुझ से अयादत जो न बीमार की अपने।
लेने को ख़बर उसकी अजल जाये तो अच्छा।।
फ़ुरकत में तेरी तीरे नफ़स सीने में मेरे।
काँटा सा खटकता है निकल जाये तो अच्छा।।
दिल गिर के नज़र से तेरी उठने का नहीं फिर।
यह गिरने से पहले ही सम्हल जाये तो अच्छा।।

१८

हमने जाना था कि क़ासिद जल्द लायेगा ख़बर।
क्या ख़बर थी जाके वाँ ख़ुद बे ख़बर हो जायगा।।
शक्ल तो देखो मुसव्विर खींचेगा तसवीरे यार।
आपही तसवीर उसको देखकर हो जायगा।।

१९

आना तो ख़फ़ा आना जाना तो रुला जाना।
आना है तो क्या आना जाना है तो क्या जाना।।

क्या तबअ में जौदत है चट दिल का उड़ा जाना।
होटों का यहाँ हिलना वहाँ बात का पा जाना।।

२०

मसजिद में उसने हमको आँखें दिखा के मारा।
काफ़िर की देखो शोख़ी घर में ख़ुदा के मारा।।

२१

कुछ राज़ निहाँ दिल का अयाँ हो नहीं सकता।
गूँगे का सा है ख़्वाब बयाँ हो नहीं सकता।।

२२

मालूम जो होता हमें अञ्जामे मुहब्बत।
लेते न कभी भूल के हम नामे मुहब्बत।।
है दाग़े मुहब्बत दिरमो दामे मुहब्बत।
मुज़दा तुझे ऐ ख़्वाहिशे इनआमे मुहब्बत।।
की जिससे रहो-रस्मे मुहब्बत उसे मारा।
पैग़ामे क़ज़ा है तेरा पैग़ामे मुहब्बत।।
मैराज समझ 'ज़ौक़' तू क़ातिल की सनाँ को।
चढ़ सर के बल इस ज़ीने से ता बामे मुहब्बत।।

२३

दीदये आबलए-पा का यही है रोना।
कि न पहुँचा हो कहीं मुझसे किसी ख़ार को रंज।।
जाबजा कोह के चश्मों से रवाँ है आँसू।
है जो नाकामए फ़रहाद का कुहसार को रंज।।
राहतो रंज ज़माने में हैं दोनों लेकिन।
यों अगर एक को राहत है तो है चार को रंज।।

२४

बीमारे इश्क़ का जो न तुझसे हुआ इलाज।
कह ऐ तबीब तू ही कि फिर तेरा क्या इलाज।।

२५

रीशे-सफ़ेद शेख में हैं ज़ुल्मते फ़रेब।
इस मक्र चाँदनी पै न करना गुमाने सुबह।।

२६

उस बद मुआमले से भला क्या मुआमला।
किस बद सलाह ने तुझे दी यह दिला सलाह।।
ज़ाहिद य' क्या कहा कि न मिल इन बुतों से तू।
देता है ऐसी कोई भी मर्दे-खुदा सलाह।।

२७

फिर आया वह लो निगारे खूनी इधर को सरगर्म जङ्ग होकर।
कि जिसके हाथों से उड़ गये सर हज़ारों मेंहदी का रङ्ग होकर।।
हलावते शरमो पासदारी जहाँ में है 'ज़ौक़! रंजो ख्वारी।
मज़े से गुज़री अगर गुज़ारी किसी ने बे नामो-नंग होकर।।

२८

कहा पतंग ने यह दारे-शमा पर चढ़कर।
अजब मज़ा है जो मर ले किसी के सर चढ़कर।।
दिखा न जोशो-खरोश इतना ज़ोर पर चढ़कर।
गये जहान में दरिया बहुत उतर चढ़कर।।

२९

मुझसा मुश्ताक़े जमाल एक न पाओगे कहीं।
गर्चे ढूँढ़ोगे चिराग़े-रुखे-ज़ेबा लेकर।।
वाँ से याँ आये थे ऐ 'ज़ौक़' तो क्या लाये थे।
याँ से तो जायँगे हम लाख तमन्ना लेकर।।

३०

कल गये तुम जिसे बीमारे हिजराँ छोड़कर।
चल बसा वह आज सब हस्ती का सामाँ छोड़कर।।

तिफ़्ल अश्क ऐसा गिरा दामाने-मिजगाँ छोड़कर।
फिर न उट्ठा कूचये-चाके-गरेबाँ छोड़कर॥
गर्चे है मुल्के दकन में इन दिनों क़दरे सुख़न।
कौन जाये जौक़ पर दिल्ली की गलियाँ छोड़कर॥

३१

इश्क़ का जोश है जब तक कि जवानी के हैं दिन।
यह मरज करता है शिद्दत इन्हीं अय्याम में खास॥

३२

जो खुलकर उनकी जुल्फ़ें बाल आयें सर से पाँवों तक।
बलायें आके लें सौ-सौ बलायें सर से पाँवों तक॥
हम उनकी चाल से पहचान लेंगे उनको बुर्क़े में।
हजार अपने को वह हमसे छिपायें सर से पाँवों तक॥
मेरा दिल एक दूँ उस खुश अदा को किस अदा को मैं।
कि हैं वाँ तो अदायें ही अदायें सर से पाँवों तक॥
सरापा पाक हैं धोये जिन्होंने हाथ दुनिया से।
नहीं हाजत कि वह पानी बहायें सर से पाँवों तक॥
मजा इतना ही जौक़ अफ़जूँ हों जितने जख्म अफ़जूँ हो।
न क्यों हम जख्म तेग़े-इश्क़ खायें सर से पावों तक॥

३३

सफ़हए दहर पै यक दिल न हुआ एक से एक।
दिलके दो हर्फ़ हैं सो भी हैं जुदा एक से एक॥

३४

हजार दुश्मने-जाँ से है एक दोस्त बुरा।
जो पूछा कौन है वह? मैं कहूँ हजार में दिल॥

३५

उस हूरवश का घर मुझे जन्नत से है सिवा।
लेकिन रक़ीब हो तो जहन्नुम से कम नहीं॥

ऐ 'ज़ौक़' किसको चश्मे हिकारत से देखिए।
सब हमसे हैं ज़ियादा कोई हमसे कम नहीं।।

३६

गुल परेशाँ हुआ हँस हँस के चमन में आख़िर।
देख ऐ ग़ुन्चा यहाँ ख़न्दाँज़नी ख़ूब नहीं।।
ताबे-दंदाँ न दिखा बज़्म में तू हँस हँस कर।
कोई खा जाये जो हीरे की कनी ख़ूब नहीं।।
ख़ालिशे ख़ार का खटका है बग़ल में मौजूद।
देख गुल, दावये-नाज़ुकबदनी ख़ूब नहीं।।

३७

ख़ुरशीद वार देखते हैं सब को एक आँख।
रोशन ज़मीर मिलते हरेक नेको बद से हैं।।
दो गालियाँ कि बोसा ख़ुशी पर है आपकी।
रखते फ़क़ीर काम नहीं रद्दो-कद से हैं।।
जितने मज़े हैं याँ रविशे-नश्शये-शराब।
हो जाते बे मज़ा हैं जो बढ़ जाते हद से हैं।।
दिल के वरक़ पै सब्त हैं सद मुहर दागे-इश्क़।
हम करते ज़ौक़ इश्क़ का दावा सनद से हैं।।

३८

इस गुलिस्ताने जहाँ में क्या गुले इशरत नहीं।
सैर के क़ाबिल है यह पर सैर की फ़ुरसत नहीं।।
ख़्वाह गर्दिश है ज़मीं को ख़्वाह फिरता है फ़लक।
पर हमें तेरे फ़लक सर मंजिले-राहत नहीं।।
दिल वो क्या जिसको नहीं तेरे तमन्नाये-विसाल।
चश्म वह क्या जिसको तेरे दीद की हसरत नहीं।।
कहते हैं मर जायँ गर छुट जायँ ग़म के हाथ से।
पर तेरे ग़म में हमें मरने की भी फ़ुरसत नहीं।।

एक दिल और उस पै इतने बारे ग़म अल्ला रे दिल।
और इस ताक़त पै ऐसा कोई बे ताक़त नहीं।।

३९

क्या ताब दिलजलों से जो बर्क़ लाग रक्खे।
दोज़ख़ भी हो तो उनकी चिलमों प आग रक्खे।।

४०

वक्ते पीरी शबाबकी बातें।
ऐसी हैं जैसी ख़्वाबकी बातें।।
फिर मुझे ले चला उधर देखो।
दिल ख़ाना-ख़राब की बातें।।
देख ऐ दिल न छोड़ क़िस्सए जुल्फ।
कि यह हैं पेचो-ताब की बातें।।

४१

रुकाव ख़ूब नहीं तबा की रवानी में।
कि बू फ़िसाद की आती है बन्द पानी में।।
लगाते तोहमते गिरियाँ हैं दिलजलों को तेरे।
यह हैं वही जो लगाते हैं आग पानी में।।
नहीं ख़िज़ाब से मतलब मगर ये मूए सफ़ेद।
सियाहपोश हुए मातमे जवानी में।।

४२

तू कहे गुंचा कि उस लब पै घड़ी ख़ूब नहीं।
चुप! कि मुँह छोटासा और बात बड़ी ख़ूब नहीं।।
ख़ूब रूओं से बहुत आँख लड़ी पर अफ़सोस।
क़िस्मत ऐ ज़ौक़! कहीं अपनी लड़ी ख़ूब नहीं।।

४३

वह देखें बज़्म में पहले किधर को देखते हैं।
मुहब्बत आज तेरे हम असर को देखते हैं।।

ये लोग क्यों मेरे ऐबो हुनर को देखते हैं।
उन्हें तो देखो ज़रा वह किधर को देखते हैं॥
है उनकी चश्म की गर्दिश पै गर्दिशे आलम।
जिधर हो उनकी नज़र सब उधर को देखते हैं॥
अरक़ के क़तरे नहीं देखते हैं उस रुख़ पर।
सितारे धूप में हम दोपहर को देखते हैं॥
जहाँ के आईने से दिल का आईना है जुदा।
उस आईने में हम आईनेगर को देखते हैं॥

४४

मोहबते अहले सफ़ा से तीरह दिल कब साफ़ हों।
जङ्ग से आलूदा हो जाता है आहन आब में॥
'ज़ौक़' तू इस बहर में ऐसे गुले मज़मूं बहा।
जा बजा लग जाये यक फूलों का खिरमन आब में॥
भूल मत इल्में किताबी पर कि आखिर कब तलक।
नाव क़ाग़ज की बहे ऐ तिफ़्ले कोदन आब में॥

४५

वह दिन है कौन सा कि सितम पर सितम नहीं।
गर ये सितम है रोज तो इक रोज हम नहीं॥
मज़मूं के पेचो-ताब से ताबे रक़म नहीं।
हैं ज़ुल्फ़ें यार हाथ में मेरे क़लम नहीं॥
मुश्किल है मेरे अहदे मुहब्बत का टूटना।
ऐ बेवफ़ा! यह तेरी खुदा की क़सम नहीं।
मंसूबा मारने का मेरे करते हैं हरीफ़॥
और मुझमें मिस्ल बाज़िये-शतरंज दम नहीं॥
हाथ आये किस तरह से दिले गुम शुदा का खोज।
है चोर वह कि जिस पै किसी का भरम नहीं॥

जाता है आँखें बन्द किये 'ज़ौक़' तू कहाँ।
यह राह कूचे यार है राहे अदम नहीं॥

४६

हमसे ज़ाहिरो-पिनहाँ जो उस ग़ारतगर के झगड़े हैं।
दिल से दिल के झगड़े हैं नजरों से नज़र के झगड़े हैं॥
जीतेही जी क्या मुल्के फ़ना में साथ बशर के झगड़े हैं।
मर के इधर से जबकि छुटे तो जाके उधर के झगड़े हैं॥
कैसा मोमिन कैसा काफ़िर कौन है सूफ़ी कैसा रिन्द।
सारे बशर हैं बन्दे हक़ के सारे शर के झगड़े हैं॥
यक यक जौरो-सितम प उसके सौ-सौ दाग़े दिल है गवाह।
हम जो उससे झगड़े हैं हक़ साबित करके झगड़े हैं॥
ग़म कहता है दिल में रहूँ मैं जलवये जानाँ कहता है मैं।
किसको निकालूँ किसको रक्खूँ यह तो घर के झगड़े हैं॥
बहर में मोती पानी पानी लाल का दिल खूँ पत्थर में।
देखो! लबो-दन्दाँसे तुम्हारे लालो गुहर के झगड़े हैं॥
हज़रते दिल का देखना आलम हाथ उठाये दुनिया से।
पाँव पसारे बैठे हैं और सर पै सफ़र के झगड़े हैं॥
'ज़ौक़' मुरत्तिब क्योंके हो दीवाँ शिकवये फ़ुर्सत किससे करें।
बाँधे गले में हमने अपने आप ज़फ़र के झगड़े हैं॥

४७

कह दे शबनम से न भर सीमाब गुलके कान में।
बुलबुलें अहवाले दिल कुछ ऐ सबा कहने को हैं॥
देखे आईने बहुत बिन खाक है नासाफ़ सब।
हैं कहाँ अहले सफ़ा अहले सफ़ा कहने को हैं॥
देख तो ले पहुँचे किस आलम से किस आलम में हैं।

नालहाये दिल हमारे नारसा कहने को हैं ।।
मिट गये जौहर वफ़ा के उठ गये सब अहले दिल ।
अब वफ़ा है नामको औ बावफ़ा कहने को हैं ।।
हैं सफ़ाये दिल वही जिसमें अयाँ हो शक्ले यार ।
यूं तो आईनो के दिल भी बा सफ़ा कहने को हैं ।।
क्या तमाशा है कि उनके कान में उट्ठा है दर्द ।
हम जो आये दर्दे दिल अपना ज़रा कहने को हैं ।।

४८

करे वहशत बयाँ चश्मे सखुनगो इसको कहते हैं ।
यह सच कहते हैं सर चढ़ बोले जादू इसको कहते हैं ।।
सवाले बोसे को टाला जवाबे चीने अबरू से ।
बराते आशिकाँ बर शाख़ आहू इसको कहते हैं ।।
अजल सौ बार आई 'ज़ौक़' पर जब तक न वह आये ।
न पाया दम निकलने मेरा क़ाबू इसको कहते हैं ।।

४९

दिल का यह हाल है फट जाय है सौ जाय से और ।
अगर यक जाय से हम उसको रफ़ू करते हैं ।।

५०

याँ लब पै लाख लाख सखुन इज़तराब में ।
वाँ एक ख़ामुशी तेरी सबके जवाब में ।।
ख़त देखकर वह आये बहुत पेचो-ताब में ।
क्या जाने लिख दिया उन्हें क्या इज़तराब में ।।

५१

अबके दिल ले लूँ तो फिर उस बुते क़ातिल को न दूँ ।
जान दूँ माल दूँ ईमान दूँ पर दिल को न दूँ ।।
चार टुकड़े करो दिल के कि नहीं हो सकता ।
लब को दूँ रुख़ को न दूँ ज़ुल्फ़ को दूँ तिल को न दूँ ।।

५२

रिन्दे ख़राब हाल को ज़ाहिद न छेड़ तू ।
तुझको पराई क्या पड़ी अपनी नबेड़ तू ।।
नाख़ून ख़ुदा न दे तुझे ऐ पंजये जनूँ ।
देगा तमाम अक्ल के बखिये उधेड़ तू ।।
जो सोती भीड़ अपने सरो-शोर से जगाये ।
दर्वाज़ा घर का उस सगे दुनिया प भेड़ तू ।।

५३

अगर ज़ख्म सीने से फाहा उठाऊँ ।
तो ख़ुरशेद महशर को मैं तप चढ़ाऊँ।।

५४

अगर दुम्बये दाग़ दिल को दिखाऊँ ।
तो सुबहे क़यामत का मुँह दम में फ़क़ हो ।।
किताबे मुहब्बत में ऐ हज़रते दिल ।
बताओ कि तुम लेते कितना सबक़ हो ।।
कि जब आनकर तुमको देखा तो वह ही ।
लिये दस्त अफ़सोस के दो वरक़ हो ।।

५५

वजा कहे जिसे आलम उसे बजा समझो ।
ज़ुबाने ख़ल्क़को नक़्क़ारए ख़ुदा समझो ।।

५६

कहे एक जब सुन ले इन्सान दो ।
कि हक़ ने ज़ुबाँ एक दी, कान दो ।।

५७

मरते हैं तेरे प्यार से हम और ज़ियादा ।
तू लुत्फ़ में करता है सितम और ज़ियादा ।।

सर कटके सर अफ़राज हैं हम और ज़ियादा।
जूं शाख बढ़े होके क़लम और ज़ियादा ।।
वह दिल को चुराकर लगे जब आँख चुराने।
यारों का गया उन पै भरम और ज़ियादा ।।
है बाग़े जहाँ में तुझे गर हिम्मते आली ।
कर गरदने तसलीम को ख़म और ज़ियादा ।।
लेते हैं समर शाख़े समर वर को झुकाकर।
झुकते हैं सखी वक़्ते करम और ज़ियादा ।।
जो कुंजे क़नाअत में हैं तक़दीर प शाकिर।
है 'ज़ौक़' बराबर उन्हें कम और ज़ियादा ।।

५८

तू जान है हमारी और जान है तो सब कुछ।
ईमान की कहेंगे ईमान है तो सब कुछ ।।

५९

तेरे कूचे को वह बीमारे ग़म दारुस्सफ़ा समझे ।
अजल को तो तबीब औ मर्ग को अपनी दवा समझे ।।
सितम को हम करम समझे जफ़ा को हम वफ़ा समझे ।
औ इस पर भी न समझे वह तो उस बुत से खुदा समझे ।।
तुझे ऐ सङ्ग दिल आरामे जाने मुब्तला समझे ।
पड़े पत्थर समझपर अपनी हम समझे तो क्या समझे ।।
वह अपने खाकसारों को गर अपना खाके-पा समझे ।
हम अपनी खाकसारी अपने हक़ में कीमिया समझे ।।
हिसाब असला न पूछे मुझसे मेरे दिल के ज़ख्मों का ।
हिसाबे दोस्ताँ दर दिल अगर वह दिलरुबा समझे ।।
समझ ही में नहीं आती है कोई बात 'ज़ौक़' उसकी ।
कोई जाने तो क्या जाने कोई समझे तो क्या समझे ।।

६०

कब हक़-परस्त ज़ाहिदे जन्नत-परस्त है ।
हूरों पै मर रहा है य' शहवत-परस्त है ।।
दिल साफ़ हो तो चाहिये मानी-परस्त हो ।
आईना ख़ाक साफ़ है सूरत-परस्त है ।।
दरवेश है वही जो रियाज़त में चुस्त हो ।
तारक नहीं फ़क़ीर भी राहत-परस्त है ।।
यह 'ज़ौक़' मै-परस्त है या है सनम-परस्त ।
कुछ है बला मे लेके मुहब्बत-परस्त है ।।

६१

कभी अफ़सोस है आता कभी रोना आता ।
दिले बीमार के है दो ही अयादत वाले ।।
नाज़ है गुल को नज़ाकत पै चमन में ऐ 'ज़ौक़' ।
उसने देखे ही नहीं नाज़ो-नज़ाकत वाले ।।

६२

मज़े जो मौत के आशिक़ बयाँ कभू करते ।
मसीहो खिज्र भी मरने की आरज़ू करते ।।
अगर यह जानते चुन चुन के हमको तोड़ेंगे ।
तो गुल कभी न तमन्नाये रङ्गो-बू करते ।।

६३

न देना हाथ से तुम रास्ती कि आलम में ।।
असा है पीर को और सैफ़ है जवाँ के लिए ।।
बयाने दर्द मुहब्बत जो हो तो क्योंकर हो ।
ज़ुबाँ न दिल के लिए है न दिल ज़ुबाँ के लिये ।।
बनाया 'ज़ौक़' जो इन्साँ को उसने ज़ुज़वे ज़ईफ़ ।
तो उस ज़ईफ़ से कुल काम दो जहाँ के लिए ।।

६४

जो दिल किमारख़ाने में बुत से लगा चुके ।
वह काबतेन छोड़कर काबे को जा चुके ।।
तुम भूल कर भी याद नहीं करते हो कभी ।
हम तो तुम्हारी याद में सब कुछ भुला चुके ।।

६५

न पूछो कि दिल शाद है या हज़ीं है ।
ख़बर भी नहीं याँ कि है या नहीं है ।।
यही गर तेरी चश्म सेहर आफ़रीं है ।
तो दिल है न जाँ है न ईमाँ न दीं है ।।
वो पहलू में बैठे हैं औ बदगुमानी ।
लिए फिरती मुझको कहीं का कहीं है ।।

६६

फूला नहीं समाता जो गुल पैरहन में है ।
आता य' किस भरोसे पै हँसता चमन में है ।।
दम को नहीं है सीने में आराम एक दम ।
यह वह ग़रीब है कि मुसाफ़िर वतन में है ।।

६७

अब तो घबरा के य' कहते हैं कि मर जायेंगे ।
मर के भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे ।।
तुमने ठहराई अगर ग़ैर के घर जाने की ।
तो इरादे यहाँ फिर और ठहर जायेंगे ।।
'ज़ौक़' जो मदरसे के बिगड़े हुए हैं मुल्ला ।
उनको मैख़ाने में ले आओ सँवर जायेंगे ।।

६८

ज़ुबाँ खोलेंगे मुझ पर बद ज़ुबाँ क्या बद-शआरी से ।
कि मैंने ख़ाक भर दी उनके मुँह में ख़ाकसारी से ।।

गुज़रती है मज़े में ज़िन्दगी ग़फ़लत-शआरी से ।
मेरे नज़दीक बेहोशी है बेहतर होशियारी से ।।

६९

निगह का वार था दिल पर फड़कने जान लगी ।
चली थी बरछी किसी पर किसी के आन लगी ।।
तेरा ज़ुबाँ से मिलाना ज़ुबाँ जो याद आया ।
न हाय हाय में तालू से फिर ज़ुबान लगी ।।
किसी के दिल का सुनो हाल दिल लगाकर तुम ।
जो होवे दिल को तुम्हारे भी मेहरबान लगी ।।

७०

कीड़ा ज़रा-सा और वह पत्थर में घर करे ।
इन्साँ वो क्या जो न दिले दिलवर में घर करे ।।
यूँ मेरे दिल में चुभती है दन्दाँ की उसकी ताब ।
हीरे की जूँ कनी दिले गौहर में घर करे ।।

७१

लाई हयात आये क़ज़ा ले चली चले ।
अपनी ख़ुशी न आये न अपनी ख़ुशी चले ।।
बेहतर तो है यही कि न दुनिया से दिल लगे ।
पर क्या करें जो काम न बे दिल्लगी चले ।।
हो उम्रे-ख़िज्र भी तो कहेंगे ब-वक्ते मर्ग ।
हम क्या रहे यहाँ अभी आये अभी चले ।।
दुनिया ने किसका राहे फ़ना में दिया है साथ ।
तुम भी चले चलो यूँही जब तक चली चले ।।
जाते हवाये शौक़ में हैं इस चमन से 'ज़ौक़' ।
अपनी बला से बादे सबा अब कभी चले ।।

७२

गर रुख़ का बोसा देने नहीं लब का दीजिए।
है मस्ल यह कि फूल नहीं पंखड़ी सही।।

७३

क्या वह दुनिया जिसमें कोशिश हो न दीं के वास्ते।
वास्ते वाँ के भी कुछ या सब यहीं के वास्ते।।
ख़ूँ के दरिया बह गये आलम तहो-बाला हुए।
ऐ सिकन्दर किसलिए? दो गज़ ज़मी के वास्ते।।

७४

बेक़रारी का सबब हर काम की उम्मीद है।
नाउमेदी से मगर आराम की उम्मीद है।।

७५

दिल गिरफ्तार हुआ यार की अय्यारी से।
हम गिरफ्तार हुए दिल की गिरफ्तारी से।।

७६

बाक़ी है दिल में शेख़ के हसरत गुनाह की।
काला करेगा मुँह भी जो दाढ़ी सियाह की।।

७७

दर्द दिल से लोटता हूँ मेरा किसको दर्द है।
मैं हूँ लफ्ज़े दर्द जिस पहलू से देखो दर्द है।।

७८

कितने मुफ़सिल हो गये कितने तबंगर हो गये।
खाक़ में जब मिल गये दोनों बराबर हो गये।।

७९

यह दर्दे सर ऐसा है कि सर जाये तो जाये।
उल्फ़त का नशा जब कोई भर जाये तो जाये।।

८०

डसा हो काले ने जिसको क़ाफ़िर तो वह फ़िसूँ के असर से खेले।
दहानो गेसू का तेरे मारा न मुँह से बोले न सर से खेले।।

८१

बद न बोले ज़ेरे गर्दूं गर कोई मेरी सुने।
है यह गुम्बद की सदा जैसी कहे वैसी सुने।।

८२

फिर बहार आई कफ़े हर शाख पर पैमाना है।
हर रविश पर जलवए बादे सबा मस्ताना है।।

८३

गुल भला कुछ तो बहारें ऐ सबा दिखला गये।
हसरत उन गुचों पै है जो बिन खिले मुरझा गये।।

८४

अश्क के कतरे जो मिज़गाँ पर इकट्ठे हो गये।
खोश-ए अंगूर के भी दाँत खट्टे हो गये।।

८५

होता न अगर दिल तो मुहब्बत भी न होती।
होती न मुहब्बत तो य' आफ़त भी न होती।।

८६

कहीं तुझको न पाया गर्चे हमने यक जहाँ ढूँढ़ा।
फिर आखिर दिलही में देखा बग़ल ही में से तू निकला।।

८७

दरियाये अश्क चश्म से जिस आन बह गया।
सुन लीजिये कि अर्श का ईवान बह गया।।
ज़ाहिद शराब पीने से काफ़िर बना मैं क्यों।
क्या डेढ़ चुल्लू पानी में ईमान बह गया।।

८८

दुनिया के अलम ज़ौक़ उठा जायेंगे ।
हम क्या कहें क्या आये थे क्या जायेंगे ।।
जब आये थे रोते हुए आप आये थे ।
अब जायँगे औरों को रुला जायेंगे ।।

८९

इस ज़हल का ज़ौक़ ठिकाना कुछ भी ।
दानिश ने किया दिल को न दाना कुछ भी ।।
हम जानते थे इल्म से कुछ जानेंगे ।
जाना तो यह जाना कि न जाना कुछ भी ।।

९०

तू भला है तो बुरा हो नहीं सकता ऐ 'ज़ौक़' ।
है बुरा वह ही कि जो तुझको बुरा जानता है ।।
और अगर तू ही बुरा है तो वह सच कहता है ।
क्यों बुरा कहने से तू उसके बुरा मानता है ।।

९१

देख छोटों को है अल्लाह बड़ाई देता ।
आसमाँ आँख के तिल में है दिखाई देता ।।

९२

ऐ 'ज़ौक़' होश गर है तो दुनिया से दूर भाग ।
इस मैक़दे में काम नहीं होशियार का ।।

९३

आदमीयत और शै है इल्म है कुछ और चीज़ ।
कितना तोते को पढ़ाया पर वो हैवाँ ही रहा ।।

९४

दस्ते हिम्मत से है बाला आदमी का मर्तवा ।
पस्त हिम्मत यह न होवे पस्त क़ामत हो तो हो ।।

९५

दिल को रफ़ीक़ इश्क में अपना न समझ 'ज़ौक़' ।
टल जायगा वह अपनी बला तुझ पै डाल के ।।

९६

हम ऐसे साहिबे इस्मत परीपैकर प आशिक हैं ।
नमाज़ें पढ़ती हैं हूरें हमेशा जिसके दामन पर ।।

९७

मज़कूर तेरी बज़्म में किसका नहीं आता ।
पर ज़िक्र हमारा नहीं आता, नहीं आता ।।

ग़ालिब

ग़ालिब उपनाम; नज़मुद्दौला दबीरुल्मुल्क मिर्ज़ा असदुल्ला खाँ नाम; पिता का नाम अब्दुल्ला बेग; स्थान दिल्ली; जन्म-काल १७९७ ई०; मृत्यु-काल १८६९ ई० ।

ग़ालिब के कुल की परम्परा ईरान के बादशाह से मिलती है । ईरानियों का प्रताप सूर्य-अस्त होने पर ग़ालिब के दादा तरसम खाँ घर छोड़कर निकले और दिल्ली आये और शाहआलम के दरबारी बने । बादशाही नाममात्र को थी । राज्य भीतर से खोखला हो चुका था । उन्होंने दरबार में जगह और खर्च के लिये जागीर पाई । पर वह सब जागीर ऐश-आराम में खतम हो गई । तब ग़ालिब के पिता अब्दुल्ला बेग आसफ़ुद्दौला के दरबार में लखनऊ पहुँचे । वहाँ से थोड़े दिनों के बाद वे हैदराबाद चले गये और वहाँ नोकर हो गये । वहाँ भी उनके पैर न टिके और वे अलवर में आकर राजा बख्तावरसिंह के यहाँ नौकर हुए । यहीं किसी लड़ाई में वे मारे गये । उस समय ग़ालिब की अवस्था पाँच वर्ष की थी ।

ग़ालिब को उनके सगे चचा नसरुल्ला बेग खाँ ने पाला-पोसा, जो अंग्रेजी फोज में रिसालदार थे और जागीर पाये हुये थे । पर दुर्भाग्य से थोड़े ही दिनों बाद वे भी क़ब्रवासी हुये । उनको अँग्रेज़ सरकार की ओर से डेढ़ लाख रुपये की जागीर मिली थी । उनके मरते ही वह भी ज़ब्त हो गई । ग़ालिब की उम्र उस वक्त नौ वर्ष की थी । ग़ालिब ने सरकार से बहुत लिखा-पढ़ी की, पर कुछ लाभ न हुआ, और ये दीनता ही में ननिहाल वालों की मदद से दिन काटने लगे । इनका समाचार पाकर एक मित्र ने दक्खिन हैदराबाद जाने की सम्मति दी । इन्होंने उसके पत्र के उत्तर में जो कुछ लिखा, उसका कुछ अंश यह है—

'पाँच बरस का था कि मेरा बाप मरा। नौ बरस का था कि चचा मरा। उसकी जागीर के ऐवज़ में मेरे और मेरे सुरकाये हक़ीक़ी के वास्ते शामिल जागीर नवाब अहमद बख्श खाँ दस हज़ार रुपये साल मुक़र्रर हुए। उन्होंने न दिये। मगर तीन हज़ार रुपये साल उनमें से खास मेरी ज़ात का हिस्सा साढ़े सात सौ रुपया साल फ़क़त मैंने सरकार अँग्रेज़ी में ग़बन ज़ाहिर किया। कोलब्रुक साहब बहादुर रेजीडेंट देहली और अस्टरलंग साहब बहादुर सेक्रेटरी गवर्नमेंट कलकत्ता मुत्तफ़िक़ हुए। मेरा हक़ दिलाने पर रेजीडेंट माज़ूल हो गये। सेक्रेटरी गवर्नमेंट बमर्ग नागाह मर गये। बाद एक ज़माना के बादशाह देहली ने पचास रुपया महीना मुक़र्रर किया। उनके वलीअहद इस तक़र्रुर के दो बरस बाद मर गये। वाजिदअली शाह बादशाह अवध की सरकार बसिला मदहगुस्तरी ५००) साल मुक़र्रर हुये। वह भी दो बरस से ज़ियादा न जिये; यानी अगरचे अबतक जीते हैं मगर सल्तनत जाती रही। और तबाही सल्तनत दो ही बरस में हुई। दिल्ली की सल्तनत कुछ सख्त जान थी। सात बरस मुझको रोटी देकर बिगड़ी। ऐसे वाला मुरब्बी कश और मुहसिन सोज़ कहाँ पैदा होते हैं। अब जो मैं वालिये रकन की तरफ़ रुजूअ करूँ, याद रहे कि बिगड़ जायगा या मर जायगा या हो जायगा और अगरये दोनों अम्र वाक़ा न हुये तो कोशिश माज़ूल इसकी ज़ाया जायगी। बालिये शहर मुझको कुछ न देगा और अहयानन अगर उसने सुलूक किया तो रियासत खाक में मिल जायगी। मुल्क में गधे के हल फिर जायँगे।'

इस प्रकार ग़ालिब का बचपन आगरे में बीता और वे वहाँ उस्ताद शेख मुअज्जम से शिक्षा पाते रहे। कहा जाता है कि सुप्रसिद्ध कवि नज़ीर अकबराबादी से भी उन्होंने कुछ किताबें पढ़ीं थीं। चोदह वर्ष की उम्र में उनका परिचय हुरमुज़ नामके एक पारसी से हुआ, जो बड़ा विद्वान् और पर्यटक था। उसकी संगति से ग़ालिब को पुरानी फारसी भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त हुआ।

ग़ालिब बचपन ही से ज़हीन थे। नौ वर्ष की उम्र में उर्दू में और उसके दो तीन वर्ष बाद फारसी में शेर कहने लगे थे। मिर्ज़ा अब्दुल क़ादिर 'बेदिल'

फ़ारसी के शायर थे। ग़ालिब ने उन्हीं का अनुकरण शुरू किया। पर ग़ालिब को स्वयं यह अनुभव होने लगा कि :—

तर्ज़ बेदिल में रेख़्ता लिखना।
असदुल्लाह खाँ क़यामत है॥

सन् १८२६ ई० में ग़ालिब कलकत्ते गये। वहाँ गवर्नर जनरल के दफ्तर में बहुत कोशिश करके भी ये अपनी जायदाद वापस न पा सके और दिल्ली लौट आये। ठाटबाट तो अमीरों सा था, पर पास में पैसे नहीं थे। हाथ के शाहखर्च भी बड़े थे। इससे जल्दी ही मुसीबत ने आ घेरा। ये दिल्ली से लखनऊ आये। लखनऊ के शायरों ने बड़ी खुशियाँ मनाईं। बड़े-बड़े मुशायरे हुये। ग़ाज़िउद्दीन हैदर का ज़माना था। राज्य में सैयद मीर आग़ा की बहुत चलती थी। उन्होंने ग़ालिब से मिलने की इच्छा प्रकट की। पर मिलने के लिये ग़ालिब ने यह शर्त रक्खी कि उनके पहुँचने पर आग़ा मीर खड़े होकर उनका स्वागत करें और उन्हें किसी प्रकार की नज़र भेंट से मुक्त रक्खा जाय। आग़ा मीर ने शर्तें स्वीकार नहीं कीं, और भेंट न हुई। ये लखनऊ से रामपुर चले गये। नवाब रामपुर इनके पुराने शागिर्द थे। उन्होंने इन्हें बड़े सम्मान से अपने यहाँ रक्खा और २००) मासिक कर दिया। पर ग़ालिब को दिल्ली के बिना चैन कहाँ? थोड़े ही दिन बाद ये वहाँ से दिल्ली चले आये।

ग़ालिब ने अपने एक तरहदार मित्र को पत्र लिखा, जिसमें अपने रूपरंग का भी ज़िक्र किया है। पत्र का कुछ अंश यह है—

'भाई, तुम्हारी तरहदारी का ज़िक्र मैंने मुग़लजान से सुना था। जिस ज़माने में कि वह हामिदअली खाँ की नौकर थी और उसमें मुझमें बेतकल्लुफ़ाना रब्त था तो अक्सर मुग़ल से पहरों इख़लात हुआ करते थे। उसने तुम्हारे शेर अपनी तारीफ़ के भी मुझको दिखाये। बहर हाल तुम्हारे क़शीदा क़ामत होने पर मुझे रश्क न आया, किस वास्ते कि मेरा क़द भी दराज़ी में अंगुश्तनुमा है। तुम्हारे गंदुमी रङ्ग पर रश्क न आया, किस वास्ते

कि जब मैं जीता था तो मेरा रंग चम्पई था और दीदावर लोग उसकी सतायश किया करते थे। अब जो कभी मुझको वह अपना रंग याद आता है तो छाती पर साँप फिर जाता है। हाँ, मुझको रश्क आया और मैंने ख़ूने जिगर खाया तो इस बात पर कि (तुम्हारी) दाढ़ी ख़ूब घुटी हुई है। वे मज़े याद आ गये; क्या कहूँ जी पर क्या गुज़री। मेरी अब दाढ़ी-मूछ में बाल सफेद आ गये, तीसरे दिन च्यूंटी के अंडे गालों पर नज़र आने लगे। इससे बढ़कर यह हुआ कि आगे के दो दांत टूट गये। नाचार मिस्सी भी छोड़ दी और दाढ़ी भी। मगर याद रखिये इस भौंडे शहर दिल्ली में एक वर्दी है आम—भुल्ला, हाफ़िज, बिसाती, नैचाबन्द, धोबी, सक्का, भटियारा, जुलाहा, कुँजड़ा, मुँह पर दाढ़ी सर पर बाल। मैंने जिस दिन दाढ़ी रक्खी उसी दिन सिर मुँड़ाया।'

ग़ालिब क़रीब-क़रीब रोज़ शराब पीते थे। एक दिन अपने एक मित्र से बातें करते समय ये कहने लगे—उम्र भर में एक दिन शराब न पी हो तो क़ाफ़िर, और एक दफ़े नमाज़ पढ़ी हो तो मुसल्मान नहीं। फिर मैं नहीं जानता कि मुझे सरकार ने बाग़ी मुसल्मानों में किस तरह शामिल समझा।

जाड़े का मौसम था। एक दिन नवाब मुस्तफ़ा ख़ाँ इनके घर आये। इन्होंने उनके आगे शराब का गिलास भरकर रख दिया। वे बेचारे इनका मुँह ताकने लगे। इन्होंने कहा—लीजिये। उन्होंने कहा—मैं तो तोबा कर चुका हूँ। इन्होंने आश्चर्य से पूछा—क्या जाड़े में भी?

इसी तरह एक साहब ने इनको सुनाने के लिये कहा कि शराब का पीना सख़्त गुनाह है। इन्होंने हँसकर कहा—भला, जो पिये तो क्या हो? उन्होंने कहा—छोटी-सी बात तो यह है कि दुआ नहीं क़बूल होती। इन्होंने कहा—आप जानते हैं, शराब पीता है कौन? अव्वल तो वह कि एक बोतल ओल्डटाम की ब-सामान सामने हाज़िर हो; दूसरे बेफ़िक्री, तीसरे सेहत। आप फ़रमाइये कि जिसे यह सब कुछ हासिल हो, उसे और चाहिये क्या, जिसके लिये दुआ करे?

ग़ालिब बड़े विनोद-प्रिय भी थे। एक बार रात के समय आँगन में बठे थे। चाँदनी रात थी। तारे छिटके हुये थे। ये आकाश की ओर देखकर कहने लगे—जो काम बेसलाह मशविरा होता है, बेढंगा होता है। ख़ुदा ने सितारे आसमान पर किसी से मशविरा करके नहीं बनाये हैं; न कोई सिल-सिला न ज़ंजीरह, न बेल, न बूटा।

नवाब इलाही बख्शख़ाँ साहब की कन्या से इनका विवाह हुआ था। विवाह के समय इनकी उम्र १३ वर्ष की थी। इनको स्त्री से सुख नहीं प्राप्त हुआ। उसका स्वभाव बहुत कर्कश था; या क्या बात थी कि ये सदा उससे तंग रहते थे। एक बार इनके एक अत्यन्त घनिष्ट शागिर्द ने एक दूसरे शागिर्द उमरावसिंह की स्त्री के मरने का समाचार लिख भेजा और यह भी लिखा कि वह अपनी दूसरी शादी करना चाहता है। इस पर आप उसे लिखते हैं—

'उमरावसिंह के हाल पर उसके वास्ते रहम और अपने वास्ते रश्क आता है। अल्लाह! अल्लाह!! एक वह है कि दो बार उनकी बेड़ियाँ कट चुकी हैं और एक हम है कि एक ऊपर पच्चास बरस से जो फाँसी का फंदा गले में पड़ा है, तो न फन्दा ही टूटता है, न दम ही निकलता है। उसको समझाओ कि भाई तेरे बच्चों को मैं पाल लूँगा। तू क्यों बला में फँसता है?'

मौलवी फ़ज़ल हक़ साहब इनके दिली दोस्तों में से थे। उनकी आदत थी कि जब कोई घनिष्ट मित्र उनसे मिलने आता तो वे ख़ालिक बारी का यह मिसरा—बया बिरादर आवरे भाई—पढ़ा करते थे। एक दिन ये उनसे मिलने गये। उन्होंने वही मिसरा कहकर इन्हें बैठाया। इतने में मौलवी साहब की रंडी भी दूसरे दालान से निकल आई। इन्होंने कहा—हाँ साहब, अब वह दूसरा मिसरा भी फ़रमा दीजिये—

ब—नशीं मादर बैठ री माई

मौलवी साहब ग़ालिब की ओर देखकर मुसकुरा कर रह गये।

ग़ालिब के सात बच्चे हुए। पर वे एक-एक वर्ष के होकर मर गये। स्त्री से पटती न थी। इससे इन्हें जीवन भर अर्थ-कष्ट के साथ कुटुम्ब-कष्ट

भी रहा। एक बरसात के मौसम में इनका पुराना मकान जहाँ-तहाँ से टूट गया। छत से पानी गिरने लगा, तब इन्होंने अपने एक शागिर्द को एक पत्र लिखा। जिसमें ये लिखते हैं—

'मियाँ, बड़ी मुसीबत में हूँ। महल सरा की दीवारें गिर गई हैं। छतें टपक रही हैं। तुम्हारी फूफी कहती हैं कि हाय दबी, हाय मरी। दीवानखाने का हाल महल सरा से बदतर है। मैं मरने से नहीं डरता। फ़क़दानेराहत से घबरा गया हूँ। छत छनती है। अब्र दो घण्टे बरसे तो छत चार घण्टे बरसती है। मालिक अगर चाहे कि मरम्मत करे तो क्योंकर करे; मेह खुले तो सब कुछ हो और फिर असनाये मरम्मत में बैठा किस तरह रहूँ। अगर तुमसे हो सके तो भाई से मुझको वह हवेली, जिसमें मीरहसन रहते थे, अपनी फूफी के रहने को और कोठी में से वह बालाख़ाना मय दालान ज़ेरी जो इलाही ख़ाँ मरहूम का मसकन था, मेरे रहने को दिलवा दो। बरसात गुज़र जायगी। मरम्मत हो जायगी। फिर साहब, मेम और बाबा लोग अपने क़दीम मसकन में आ रहेंगे। तुम्हारे वालिद के ईसार व अताके जहाँ मुझ पर एहसान है एक यह मुरव्वत का एहसान मेरी पायाने उम्र में और भी सही। ग़ालिब।'

उस समय ग़ालिब को साढ़े सात सौ रुपया सालाना पेंशन मिलती थी। इससे उनके जैसे शाहख़र्च आदमी की गुज़र कैसे होती; पर वे आत्माभिमान-वश नौकरी भी तो नहीं करना चाहते थे। पेट के लिये रोटी और तन के लिये कपड़ा चाहिये। कर्ज़ भी मिलना बंद हो गया था; क्योंकि पहले ही ले चुके थे; अदा होता नहीं था। दोस्तों को बड़ी चिन्ता हुई। बादशाह ज़फ़र का दरवाज़ा बंद ही था; क्योंकि वहाँ ज़ौक़ पहले ही से उस्तादेशाह बने हुए थे। अंत में ज़फ़र के धर्मगुरु मौलाना नसीरुद्दीन की सिफ़ारिश से फ़ारसी में तैमूरी वंश का इतिहास लिखने के लिये जुलाई, १८५० ई० से, पचास रुपये मासिक की नौकरी क़िले में मिल गई, जो १८५७ तक कायम रही, और वेतन माहवार मिलता रहा।

सन् १८५४ में उस्ताद ज़ौक़ का देहान्त हुआ। उसी वर्ष बहादुरशाह

ज़फ़र के बड़े पुत्र मिर्ज़ा मुहम्मद सुलतान गुलाम फखरुद्दीन ग़ालिब के शिष्य बने और उनके दरबारसे चार सौ रुपये सालाना मिलने लगे। वाजिदअलीशाह की तरफ़ से भी पाँच सौ रुपये सालाना मिलने लगे। इस तरह आर्थिक चिंता कुछ तो कम हुई; मगर १८५६ ई० में मिर्ज़ा फ़खरुद्दीन का देहान्त हो गया; ११ फरवरी १८५६ ई० को अँग्रेज़ी सरकार ने वाजिदअली शाह को गद्दी से उतारकर कलकत्ते भेज दिया और मटियाबुर्ज में क़ैद कर दिया। १८५८ ई० में बादशाह ज़फर के दूसरे लड़के, जो ग़ालिब के शिष्य हो चुके थे, राजद्रोह के शिकार और हडसन की गोली के शिकार बने। बहादुरशाह अक्तूबर १८५८ ई० में रंगून भेज दिये गये और १८६२ ई० में वहीं मर गये। इस तरह ग़ालिब की आमदनी के सब रास्ते बंद हो गये; तब वे अपने हिन्दू मित्रों और शिष्यों के शरणागत हो गये, जो उनका साधारण खर्च चलाते रहे। ग़ालिब ने स्वयं लिखा है कि मुंशी हरगोपाल तफ्ता, महेशदास, मुंशी हीरासिंह, पंडित शिवजीराम, और उनके पुत्र बालमुकुंद न होते तो उनकी बेकसी का गवाह तक न होता।

विपत्तियाँ यहीं तक समाप्त नहीं हुई। ५ अक्तूबर १८५७ को कुछ गोरे महल्ला बिल्लीमारा में दीवार फाँदकर यकायक घुस आये और ग़ालिब और उनके कुछ साथियों को पकड़ ले गये। वे सब कर्नल ब्राउन के सामने पेश किये गये। कर्नल ब्राउन ने पूछा—वेल, तुम मुसलमान? ग़ालिब ने कहा—हुजूर आधा। ब्राउन ने चकित होकर पूछा—क्या कहता है? ग़ालिब ने कहा—शराब पीता हूँ, सुअर नहीं खाता, इससे आधा कहा। ब्राउन और उसके साथ के सब हँस पड़े और ग़ालिब को छोड़ दिया।

ग़ालिब के छोटे भाई पागल थे और उन्हीं के साथ रहते थे। ग़दर में वे मर गये। स्त्री से पटती ही न थी; संतान सब मर चुकी थी। अंतिम दिनों में ग़ालिब अर्थ-संकट, रोगों और विविध चिंताओं से क्षुब्ध हो गये थे। चिंताओं को हल्का करने के लिये शराब की मात्रा बढ़ा दी थी। वे खुद कहते हैं :—

मै से ग़रज निशात है किस रुसियाह को।
इक गूना बेखुदी मुझे दिनरात चाहिये।।

१९ जनवरी, १८६० ई० में अर्थ-चिन्ता के कारण घबराकर ग़ालिब फिर दिल्ली से निकले और रामपुर पहुंचे। रामपुर दरबार से दो सौ रुपये माहवार मिलने लगे। वहाँ से २४ मार्च, १८६० को फिर दिल्ली वापस आ गये। १८६५ ई० में वे फिर रामपुर गये। पर वहाँ जो उनकी हालत हुई, उसका ज़िक्र उन्होंने हरगोपाल 'तफ्ता' को यह लिखकर भेजा—

'मैं नस्र की दाद और नस्र की सिला माँगने नहीं आया ; रोटी माँगने आया हूँ : × × × लो साहब,

खिचड़ी खाई दिन बहलाये।
कपड़े फाटे घर को आये।।

१८६६ ई० में ग़ालिब का स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया था। पैसे की तंगी थी ही, रोगों ने भी घेर लिया था, बुढ़ापा सवार था ही ; दिनरात वे पलंग पर पड़े रहते थे ; कहीं जाते-आते नहीं थे। आँखों की ज्योति तो बराबर क़ायम रही, पर कान बहरे हो गये थे। बातें लिखकर करते थे। मृत्यु के निकट पहुँचते जाते थे और अक्सर यह शेर गुनगुनाया करते थे :—

दमे वापसी बर सरे राह है।
अज़ीज़ो अब अल्लाही अल्लाह है।।

१५ फरवरी, १८६९ को ग़ालिब इस नश्वर संसार से कूच कर गये।

जितने बड़े वे शायर थे, उतने ही अधिक उन्होंने संकट सहे। उनमें न साम्प्रदायिकता थी, न धर्मान्धता। वे मनुष्य-मात्र को समान समझते थे। सभ्यजनोचित नम्रता के साथ वे आत्मसम्मान और अपनी प्रतिष्ठा का बहुत ध्यान रखते थे। बड़े-बड़े अमीरों के साथ वे बराबरी के साथ मिलना चाहते थे। अपने मित्रों के साथ वे बहुत ही प्रेमपूर्वक बर्ताव करते थे।

ग़ालिब साधारण कवि नहीं थे। विश्व के प्रख्यात प्रथम श्रेणी के कवियों में उनका स्थान है। जीवन में जितने उतार-चढ़ाव उन्होंने देखे, सुख और

दुःख की जितनीं अनुभूतियाँ उन्हें हुई, और अंत में जिस विपदा में उन्होंने शरीर छोड़ा, सब पढ़-पढ़कर हृदय करुणा से भर जाता है। मनुष्य-जीवन की यह लीला शायद ही किसी हिन्दी या उर्दू कवि के बाँटे पड़ी हो। कवि से समाज को जितना सुख और चेतनता मिलती है, समाज उसका शतांश भी उसके जीवित-काल में बदला नहीं देता; बल्कि उसको भूखों मारकर उसका सार निचोड़ लेता है। समाज की यह अद्भुत रचना है।

एक बार ग़ालिब ने दिल्ली के युवराज जवाँबख़्त की शादी के अवसर पर एक सेहरा लिखकर पढ़ा। जिसका अंतिम शेर यह है—

हम सख़ुन फ़हम हैं ग़ालिब के तरफ़दार नहीं।
देखें इस सेहरे से कह दे कोई बेहतर सेहरा॥

इसे सुनकर बादशाह ज़फ़र को यह ख़याल हुआ कि यह मुझ पर कटाक्ष है जो मैंने ज़ौक़ को राजकवि बना लिया। ज़फ़र ने ज़ौक़ से उस सेहरे के उत्तर में एक सेहरा बनाने के लिये कहा। ज़ौक़ ने दरबार ही में एक सेहरा तैयार किया। जिसका अंतिम शेर यह है—

जिसको दावा है सख़ुन का य'सुना दो उसको।
देख इस तरह से कहते हैं सख़ुनवर सेहरा॥

वास्तव में ग़ालिब ने ज़फ़र या ज़ौक़ पर कटाक्ष नहीं किया था। जब इन्हें बादशाह की अप्रसन्नता का समाचार मिला, तब इन्होंने क्षमा-प्रार्थना के रूप में एक कविता बादशाह की सेवा में उपस्थित की, जिसके कुछ शेर ये हैं :—

मंजूर है गुज़ारिशे अहवाल वाक़ई।
अपना बयान हुस्ने तबीअत नहीं मुझे॥
सौ पुश्त से है पेशये आबा सिपहगरी।
कुछ शायरी ज़रीयए इज़्ज़त नहीं मुझे॥
आज़ाद रौ हूँ औ मेरा मुसलिक है सुलहकुन।
हर्गिज़ कभी किसी से अदावत नहीं मझे॥

सेहरा लिखा गया जरहे इन्तसाले अम्र।
देखा कि चारह ग़ैर इताअ़त नहीं मुझे।।
मक़ने में आ पड़ी है सखुन गुस्तराना बात।
मक़सूद इससे क़ता मुहब्बत नहीं मुझे।।
क़िस्मत बुरी सही पै तबीअत बुरी नहीं।
है शुक्र की जगह कि शिकायत नहीं मुझे।।
सादिक़ हूँ अपने क़ौल में ग़ालिब खुदा गवाह।
कहता हूँ सच कि झूठ की आदत नहीं मुझे।।

ग़ालिब वज़ादारी के बहुत पाबन्द थे। १८४२ ई० में देहली कालिज खुला। उसमें फ़ारसी के एक प्रोफ़ेसर की आवश्यकता हुई। टामसन साहब, जो गवर्नमेंट के सेक्रेटरी थे, प्रोफ़ेसर की तलाश करने लगे। बहुत पूछताछ के बाद ग़ालिब ही उनको पसन्द आये। बुलाये जाने पर ये गये और पालकी से उतरकर साहब की प्रतीक्षा करने लगे कि वह इनके स्वागत के लिये आयेंगे। पर न वे आये, न ये उनके पास तक गये। दोनों एक दूसरे की प्रतीक्षा में रहे। साहब ने जमादार को भेजा। इन्होंने कहा—साहब स्वागत के लिये बाहर नहीं आये तो मैं क्यों जाता? इतने में साहब भी बाहर निकल आये। साहब ने कहा—जब आप गवर्नर के दरबार में बहैसियत रियासत तशरीफ़ लायेंगे, तब आपकी वह ताज़ीम होगी। इस समय तो आप नौकरी के लिये आये हैं और उस ताज़ीम के मुस्तहक़ नहीं। ग़ालिब ने कहा—गवर्नमेंट की नौकरी से मैं अपनी प्रतिष्ठा की वृद्धि समझता था। न कि बुजुर्गों की प्रतिष्ठा भी गँवा दूँ। साहब ने कहा— हम कानून से विवश हैं। ग़ालिब वहाँ से लौट आये। साहब ने ८०) मासिक पर मोमिन खाँ को वह पद दे दिया।

पहले इनकी पेंशन राजद्रोह का अपराध लगाकर ज़ब्त कर ली गई थी, पर अन्त में वह फिर जारी हो गई थी। किन्तु मिलती थी छठे महीने। इससे ये बहुत तंग रहा करते थे। एक बार जब बहुत परेशान

हुये, तब इन्होंने बादशाह के पास एक अर्ज़ी लिखकर भेजी, जिसके कुछ शेर ये हैं :—

ऐ शहंशाह आस्माँ ओरंग।
ऐ जहाँदार आफ़ताब आसार॥
था मैं एक बे नवाये गोशा-नशीं।
था मैं एक दर्दमन्द सीना फ़िगार॥
तुमने मुझको जो आबरू बख्शी।
हुई मेरी यह गर्मिये बाज़ार॥

× × ×

न कहूँ आपसे तो किससे कहूँ।
मुद्आये जरूरीउल इज़हार॥
कुछ तो जाड़े में चाहिये आखिर।
ता न दे बादे ज़महरी आज़ार॥
कुछ खरीदा नहीं है अब की साल।
कुछ बनाया नहीं है अब की बार॥
रात को आग और दिन को धूप।
भाड़ में जायँ ऐसे लैलो निहार॥

× × ×

मेरी तनख्वाह जो मुक़र्रिर है।
उसके मिलने का है अजब हंजार॥
रस्म है, मुर्दे की छः माही एक।
खल्क़ का है इसी चलन पै मदार॥
मुझ को देखो तो हूँ बक़ैद हयात।
और छः माही हो साल में दो बार॥
बस कि लेता हूँ हर महीने क़र्ज़।
और रहती है सूद की तकरार॥
मेरी तनख्वाह में तिहाई का।
हो गया है शरीक साहूकार॥

आप का बन्दा और फिरूँ नंगा।
आप का नौकर और खाऊँ उधार।।
मेरी तनख़्वाह कीजै माह ब माह।
तो न हो मुझ को ज़िन्दगी दुश्वार।।
तुम सलामत रहो हज़ार बरस।
हर बरस के हों दिन पचास हज़ार।।

उर्दू के सर्वश्रेष्ठ कवियों में ग़ालिब का नाम सबसे पहला है। अन्य कवियों की रचनाओं में प्रेम और विरह के सुन्दर से सुन्दर वर्णन मिलेंगे; करुण, शृङ्गार, हास्य आदि रसों का सुरुचिकर स्वाद मिलेगा; पर कविता जो चीज़ है वह ग़ालिब ही की रचना में मिलती है।

ग़ालिब पहले अपना उपनाम असद रखते थे; पर एक कोई और महाशय भी असद उपनाम रखते थे। एक दिन ग़ालिब ने उनका यह शेर सुना—

असद तुमने बनाई यह ग़ज़ल खूब।
अरे ओ शेर रहमत है खुदा की।।

इसे सुनते ही ग़ालिब की तबीअत कुढ़ उठी। इन्होंने १८०८ ई० में अपना उपनाम ग़ालिब कर लिया। पर जो ग़ज़लें असद के नाम से थीं, उन्हें ज्यों का त्यों रहने दिया।

ग़ालिब वास्तव में फ़ारसी के महाकवि थे। उर्दू में तो योंही मनोरंजन के लिये लिखना आरम्भ कर दिया था, इससे बहुत थोड़ा लिखा। पर जो कुछ है, वह ला-जवाब है। ग़ालिब के काव्य में अद्भुत आनन्द है।

कहीं-कहीं इनके शेर इतने बारीक भाव वाले हो गये हैं कि लोग उनके विचित्र अर्थ करने लगे थे। यह देखकर इन्होंने कहा —

न सताइश की तमन्ना न सिले की पर्वा।
न सही गर मेरे अशआर में मानी न सही।।

हकीम आग़ाजान ने इनकी बारीकियों से तंग आकर एक मुशायरे में यह क़ता पढ़ा था—

अगर अपना कहा तुम आप ही समझे तो क्या समझे।
मज़ा कहने का जब है यक कहे औ दूसरा समझे।।
कलामे मीर समझे औ ज़ुबाने मीरज़ा समझे।
मगर इनका कहा यह आप समझें या ख़ुदा समझे।।

उस दिन से ये अपनी कविता बहुत सरल और सर्वसाधारण के समझने लायक़ बोलचाल की भाषा में लिखने लगे। फिर भी इनसे और आसान लिखने की प्रार्थना की जाने लगी। तब इन्होंने यह रुबाई कही—

मुश्किल है ज़बस कलाम मेरा ऐ दिल!
सुन सुन के उसे सख़ुनवराने कामिल।।
आसाँ कहने की करते हैं फ़र्मायश।
गोयम मुश्किल वगर न गोयम मुश्किल।।

उर्दू में इनका एक ही दीवान है। पर फ़ारसी में इनकी कई पुस्तकें हैं, जो बड़े गौरव की मानी जाती हैं।

ग़ालिब को चोसर और शतरंज खेलने की आदत बचपन ही से थी। पर उसीकी आड़ में वहाँ चाँदनी चोक के जौहरी जमा होकर जुआ खेलते थे। जुआखाना कायम करने के अपराध में मई १८४७ ई० में ग़ालिब गिरफ्तार कर लिये गये और दो महीने की सज़ा और दो सौ रुपये जुर्माना हुआ, जो डा० रास सिविल सर्जन दिल्ली की सिफ़ारिश से माफ़ कर दिया गया।

ग़ालिब बड़े गुणग्राही और उदार थे। ज़ौक़ से इनकी नहीं पटती थी, तो भी ये उनके इस शेर की बड़ी तारीफ़ किया करते थे—

अब तो घबरा के य' कहते हैं कि मर जायँगे।
मर के भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे।।

इसी तरह मोमिन का यह शेर इनको बहुत पसन्द था—

तुम मेरे पास होते हो गोया।
जब कोई दूसरा नहीं होता।।

मीर के ये अनन्य भक्त थे। सौदा की भी प्रशंसा किया करते थे। इनके शागिर्द बहुत हुये। पर उनमें मुख्य-मुख्य ये हैं—

१—मुंशी हरगोपाल, 'तुफ्ता' सिकन्दराबादी।

२—नवाब ज़ियाउद्दीन खाँ।

३—मिर्ज़ा क़ुर्बान अलीबेग 'सालिग'।

४—मीर मेंहदी हुसेन 'मज़रूह'।

५—ख्वाजा अल्ताफ़ हुसेन 'हाली'।

इनमें सबसे बढ़-चढ़कर हाली हुये। हाली मुसलमानों के जातीय कवि थे। उन्होंने उर्दू-कविता का प्रवाह ही बदल दिया। 'यादगारे ग़ालिब' लिखकर उन्होंने अपनी गुरु-भक्ति का अच्छा परिचय दिया है।

ग़ालिब पद्य तो अच्छा लिखते ही थे, गद्य भी इन्होंने ऐसा लिखा है कि उसके जोड़ का गद्य आजतक उर्दू में कोई लिख नहीं सका। उर्दू-गद्य में इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'उर्दू-ए मुअल्ला' है। इस ग्रन्थ में इनके पत्रों का संग्रह है। इसी तरह का इनका एक दूसरा ग्रन्थ 'औद-ए हिन्दी' है।

ग़ालिब ने उर्दू-कविता में जो दार्शनिक भाव भरा है, वह अद्वितीय है। इन्होंने स्वयं अपना मार्ग निर्दिष्ट किया। किसी का अनुकरण नहीं किया। इनकी कविता में हृदय की महीन से महीन तरंग का ऐसा स्पष्ट वर्णन मिलता है कि पढ़कर तबीअत फड़क उठती है। इनके शेरों की भाषा, उत्प्रेक्षा, शब्द-विन्यास और उपमाएँ एकसे एक निराली हैं।

इन्होंने अपने उर्दू-दीवान में से बहुत-सी ग़ज़लें निकालकर उसे छोटा कर दिया है। इससे भरती का एक भी शेर उसमें नहीं रहने पाया है।

यहाँ इनकी शायरी के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

१

बूये गुल नालये दिल दूदे चिराग़े महफ़िल।
जो तेरी बज़्म से निकला सो परेशाँ निकला॥

२

इश्क़ से तबीअत ने ज़ीस्त का मज़ा पाया।
दर्द की दवा पाई दर्द बे-दवा पाया।।

३

बस कि दुश्वार है हर काम का आसाँ होना।
आदमी को भी मुयस्सर नहीं इन्साँ होना।।
गिरिया चाहै है ख़राबी मेरे काशाने की।
दरो दीवार से टपके है बयाबाँ होना।।
वाय दीवानगीये शौक़ कि हरदम मुझको।
आप जाना उधर और आपही हैराँ होना।।
हैफ़ उस चार गिरह कपड़े की क़िस्मत ग़ालिब।
जिसकी क़िस्मत में हो आशिक़ का गरेबाँ होना।।

४

घर हमारा जो न रोते भी तो वीराँ होता।
बहर गर बहर न होता तो बयाबाँ होता।।

५

दोस्त, ग़मख़्वारी में मेरी सई फरमायेंगे क्या?
ज़ख़्म के भरने तलक नाख़ुन न बढ़ आयेंगे क्या?
बे नियाज़ी हद से गुज़री बन्दापरवर कब तलक।
हम कहेंगे हाले दिल और आप फरमायेंगे 'क्या'?।।
आज वाँ तेग़ों कफ़न बाँधे हुये जाता हूँ मैं।
उज्र मेरे क़तल करने में वो अब लायेंगे क्या?।।
गर किया नासेह ने हमको क़ैद, अच्छा, यों सही।
यह जुनूने इश्क़ के अन्दाज़ छुट जायेंगे क्या?।।
खानाःज़ादे ज़ुल्फ़ हैं ज़ंजीर से भागेंगे क्यों?
हैं गिरफ्तारे वफ़ा ज़िन्दों से घबरायेंगे क्यों?

है अब इस मामूर में कहते ग़में उल्फ़त 'असद'।
हमने यह माना कि दिल्ली में रहें, खायेंगे क्या ?।।

६

य' न थी हमारी क़िस्मत कि विसाले यार होता।
अगर और जीते रहते यही इन्तज़ार होता।।
तेरे वादे पर जिये हम तो यह जान झूट जाना।
कि ख़ुशी से मर न जाते अगर एतबार होता।।
कोई मेरे दिल से पूछे तेरे तीर नीमकश को।
य' खलिश कहाँ से होती जो जिगर से पार होता।।
य' कहाँ कि दोस्ती है कि बने हैं दोस्त नासेह।
कोई चारह-साज़ होता कोई ग़मगुसार होता।।
कहूँ किससे मैं कि क्या है ? शबे-ग़म बुरी बला है।
मुझे क्या बुरा था मरना अगर एक बार होता।।
हुये मरके हम जो रुसवा हुये क्यों न ग़र्के-दरिया।
न कभी जनाज़ा उठता न कहीं मज़ार होता।।
उसे कौन देख सकता कि यगाना है वो यकता।
जो दुई की बू भी होती तो कहीं दो-चार होता।।

७

हविस को है निशाते कार क्या क्या ?
न हो मरना तो जीने का मज़ा क्या ?
बलाये-जाँ है ग़ालिब उसकी हर बात।
इबारत क्या ? इशारत क्या ? अदा क्या ?

८

सीने का दाग़ है वो नाला कि लब तक न गया।
खाक का रिज़्क़ है वह क़तरा जो दरिया न हुआ।।

९

दर्द मिन्नत-कशे दवा न हुआ।
मैं न अच्छा हुआ, बुरा न हुआ॥
है ख़बर गर्म उनके आने की।
आज ही घर में बोरिया न हुआ॥
कितने शीरीं हैं तेरे लब कि रक़ीब।
गालियाँ खाके बेमज़ा न हुआ॥
जमा करते हो क्यों रक़ीबों को।
इक तमाशा हुआ गिला न हुआ॥
जान दी हुई उसी की थी।
हक़ तो यह है कि हक़ अदा न हुआ॥
ज़ख्म गर दब गया लहू न थमा।
काम गर रुक गया रवा न हुआ॥

१०

न था कुछ तो ख़ुदा था कुछ न होता तो ख़ुदा होता।
डुबोया मुझको होने ने न होता मैं तो क्या होता॥
हुआ जब ग़म से यों बे हिस तो ग़म क्या सर के कटने का।
न होता गर जुदा तन से तो ज़ानू पर धरा होता॥
हुई मुद्दत कि ग़ालिब मर गया, पर याद आता है।
वो हरयक बात पर कहना कि यों होता तो क्या होता॥

११

बुलबुल के कारोबार प हैं ख़न्दहाये गुल।
कहते हैं जिसको इश्क़ ख़लल है दिमाग़ का॥
सौ बार बन्दे इश्क़ से आज़ाद हम हुये।
पर क्या करें कि दिल ही उदू है फ़राग़ का॥

१२

कोई वीरानी सी वीरानी है ।
दश्त को देखकर घर याद आया ।।

१३

आये हो कल औ आजही कहते हो कि जाऊँ ।
माना कि हमेशा नहीं अच्छा कोई दिन और ।।
जाते हुये कहते हो क़यामत को मिलेंगे ।
क्या खूब क़यामत का है गोया कोई दिन और ।।

१४

क़ासिद के आते आते ख़त इक और लिख रखूँ ।
मैं जानता हूँ जो व लिखेंगे जवाब में ।।

१५

य' फ़ितना आदमी की ख़ाना वीरानी को क्या कम है ।
हुये तुम दोस्त जिसके दुश्मन उसका आसमाँ क्यों हो ?
यही है आज़माना तो सताना किसको कहते हैं ।
उदू के हो लिये जब तुम तो मेरा इम्तहाँ क्यों हो ?

१६

पूछते हैं वह कि ग़ालिब कौन है ?
कोई बतलाओ कि हम बतलायँ क्या ?

१७

इशरते क़तरा है दरिया में फ़ना हो जाना ।
दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना ।।
दिल से मिटना तेरी अंगुश्त-हिनाई का ख़याल ।
हो गया गोश्त से ना ख़ुन का जुदा हो जाना ।।

१८

इन आबलों से पांवके घबरा गया था मैं ।
जी खुश हुआ है राह को पुर-ख़ार देखकर ।।

१९

आह को चाहिये इक उम्र असर होने तक।
कौन जीता है तेरी ज़ुल्फ़ के सर होने तक॥
दाम हर मौज में है हल्क़ये सद-कामे निहंग।
देखें क्या गुज़रे है क़तरे प गुहर होने तक॥
आशिक़ी सब्र तलब और तमन्ना बेताब।
दिल का क्या रंग करूँ ख़ूने जिगर होने तक॥
हमने माना कि तग़ाफ़ुल न करोगे लेकिन।
ख़ाक हो जायँगे हम तुमको ख़बर होने तक॥
ग़मे हस्ती का 'असद' किससे हो जुज़ मर्ग इलाज।
शमा हर रंग में जलती है सहर होने तक॥

२०

मेहरबाँ हो के बुला लो मुझे चाहो जिस वक्त।
मैं गया वक्त नहीं हूँ कि फिर आ भी न सकूं॥
ज़ोफ़ में तानये-अग़यार का शिकवा क्या है।
बात कुछ सर तो नहीं है कि उठा भी न सकूं॥
ज़हर मिलता ही नही मुझको सितमगर वरना।
क्या क़सम है तेरे मिलने की कि खा भी न सकूं॥

२१

य' हम जो हिज्र में दीवारो दर को देखते हैं।
कभी सबा को कभी नामाबर को देखते हैं॥
वो आये घर में हमारे खुदा की क़ुदरत है।
कभी हम उनको कभी अपने घर को देखते हैं॥
नज़र लगे न कहीं उसके दस्तो बाजू को।
य' लोग क्यों मेरे ज़ख्मे जिगर को देखते हैं॥

२२

हम मबाहिद हैं हमारा केश है तरके रसूम ।
मिल्लतें जब मिट गईं अजज़ाये ईमाँ हो गईं ।।
रंज से ख़ूगर हुआ इन्साँ तो मिट जाता है रंज ।
मुश्किलें मुझ पर पड़ीं इतनी कि आसाँ हो गईं ।।
योंहीं गर रोता रहा ग़ालिब तो ऐ अहले-जहाँ ।
देखना इन बस्तियों को तुम कि वीराँ हो गईं ।।

२३

न लुटता दिनको तो कब रातको यों बेख़बर सोता ।
रहा खटका न चोरी का दुआ देता हूँ रहज़न को ।।

२४

शब को किसी के ख़्वाब में आया न हो कहीं ।
दुखते हैं आज उस बुते-नाज़ुक-बदन के पाँव ।।

२५

रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो ।
हमसख़ुन कोई न हो औ हमज़बाँ कोई न हो ।।
बेदरो-दीवार सा इक घर बनाना चाहिये ।
कोई हमसाया न हो और पासबाँ कोई न हो ।।
पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार ।
औ अगर मर जाइये तो नौहाख़्वाँ कोई न हो ।।

२६

इश्क़ मुझको नहीं वहशत ही सही ।
मेरी वहशत तेरी शोहरत ही सही ।।
क़ता कीजे न तआल्लुक हमसे ।
कुछ नहीं है तो अदावत ही सही ।।
हम कोई तर्के वफ़ा करते हैं ।
न सही इश्क़ मुसीबत ही सही ।।

यार से छेड़ चली जाये "असद" ।
गर नहीं वस्ल तो हसरत ही सही ।।

२७

नक़्श को उसके मुसव्वर पर भी क्या क्या नाज़ है ।
खींचता है जिस क़दर उतना ही खिचता जाय है ।।

२८

उग रहा है दरो दीवार से सब्ज़ा 'ग़ालिब' ।
हम बयाबाँ में हैं और घर में बहार आई है ।।

२९

सादगी पर उसके मर जाने की हसरत दिल में है ।
बस नहीं चलता कि फिर खंजर कफ़े क़ातिल में है ।।
देखना तक़रीर की लज़्ज़त कि जो उसने कहा ।
मैंने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिल में है ।।
गरचे है किस किस बुराई से वले बाई हमा ।
ज़िक्र मेरा मुझसे बेहतर है कि उस महफ़िल में है ।।
बस हुजूमे नाउमेदी ख़ाक में मिल जायगी ।
यह जो इक लज़्ज़त हमारी सइए बे हासिल में है ।।

३०

कोई उम्मीद बर नहीं आती ।
कोई सूरत नज़र नहीं आती ।।
मौत का एक दिन मुऐयन है ।
नींद क्यों रातभर नहीं आती ।।
आगे आती थी हाले दिल प हँसी ।
अब किसी बात पर नहीं आती ।।
जानता हूँ सवाबे ताअतो ज़ुहद ।
पर तबीअत उधर नहीं आती ।।

है कुछ ऐसी ही बात जो चुप हूँ ।
वरना क्या बात कर नहीं आती ।।
हम वहाँ हैं जहाँ से हमको भी ।
कुछ हमारी ख़बर नहीं आती ।।
मरते हैं आरज़ू में मरने की ।
मौत आती है पर नहीं आती ।।
काबे किस मुँह से जाओगे 'ग़ालिब' ।
शर्म तुमको मगर नहीं आती ।।

३१

हरेक बात प कहते हो तुम कि 'तू क्या है ?'
तुम्हीं कहो कि यह अंदाज़े गुफ्तगू क्या है ?
जला है जिस्म जहाँ दिल भी जल गया होगा ।
कुरेदते हो जो अब राख जुस्तजू क्या है ?
रगों में दौड़ते फिरने के हम नहीं क़ायल ।
जब आँखहीं से न टपका तो फिर लहू क्या है ?

३२

क़हर हो या बला हो जो कुछ हो ।
काश कि तुम मेरे लिये होते ।।
मेरी क़िस्मत में ग़म गर इतना था ।
दिल भी या रब ! कई दिये होते ।।

३३

दे मुझको शिकायत की इज़ाजत कि सितमगर ।
कुछ तुझको मज़ा भी मेरे आज़ार में आवे ।।

३४

उनके देखे से जो आजाती है मुँह पर रौनक़ ।
वो समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है ।।

क़तरए दरिया में जो मिल जाय तो दरिया हो जाय।
काम अच्छा है वो जिसका कि मआल अच्छा है ।।
हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन ।
दिल के खुश रखने को ग़ालिब य' ख़याल अच्छा है ।।

३५

ग़ैर लें महफ़िल में बोसे जाम के ।
हम रहें याँ तिश्नालब पैग़ाम के ।।
ख़त लिखेंगे गरचे मतलब कुछ न हो ।
हम तो आशिक़ हैं तुम्हारे नाम के ।।
इश्क़ ने ग़ालिब निकम्मा कर दिया ।
वरना हम भी आदमी थे काम के ।।

३६

है वस्ल हिज्र आलमे तमकीं व ज़ब्त में ।
माशूक शोख़ वो आशिक़े दीवाना चाहिये ।।

३७

चाहिए अच्छों को जितना चाहिये ।
यह अगर चाहें तो फिर क्या चाहिये ।।
चाक मत कर जेब बे-ऐयाम गुल ।
कुछ उधर का भी इशारा चाहिये ।।
दोस्ती का परदा है बेगानगी ।
मुँह छिपाना हमसे छोड़ा चाहिये ।।
मुनहसर मरने प जिसकी हो उमीद ।
नाउमेदी उसकी देखा चाहिये ।।

३७

नुक्ताचीं है ग़मे दिल उसको सुनाये न बने ।
क्या बने बात जहाँ बात बनाये न बने ।।

मैं बुलाता तो हूँ उसको मगर ऐ जज़बये दिल ।
उस प बन जाय कुछ ऐसी कि बिन आये न बने ।।
इस नज़ाकत का बुरा हो वो भले हैं तो क्या ?
हाथ आयें तो उन्हें हाथ लगाये न बने ।।
कह सके कौन कि यह जलवागरी किसकी है ।
परदा छोड़ा है वह उसने कि उठाये न बने ।।
इश्क़ पर ज़ोर नहीं है य' वो आतिश ग़ालिब ।
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने ।।

३८

वादा आने का वफ़ा कीजै, य' क्या अंदाज़ है ।
तुमने क्यों सौंपी है मेरे घर की दरबानी मुझे ।।

३९

रोने से और इश्क़ में बेबाक हो गये ।
धोये गये हम इतने कि बस पाक हो गये ।।
कहता है कौन नालये बुलबुल को बेअसर ।
परदे में गुल के लाख जिगर चाक हो गये ।।

४०

बात पर वाँ ज़बान कटती है ।
वह कहें औ सुना करे कोई ।।
बक रहा हूँ जुनूं में क्या क्या कुछ ।।
कुछ न समझे ख़ुदा करे कोई ।।
न सुनो गर बुरा कहे कोई ।
न कहो गर बुरा करे कोई ।।
रोक लो गर ग़लत चले कोई ।
बख़्श दो गर ख़ता करे कोई ।।
कौन है जो नहीं है हाजतमन्द ।
किसकी हाजत रवा करे कोई ।।

जब तवक्क़ा ही उठ गई 'ग़ालिब'।
क्यों किसी का गिला करे कोई ।।

४१

हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी कि हर ख़्वाहिश प दम निकले।
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले।।
निकलना ख़ुल्द से आदम का सुनते आये हैं लेकिन।
बहुत बे आबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले ।।
मुहब्बत में नहीं है फ़र्क़ जीने और मरने का।
उसी को देखकर जीते हैं जिस काफ़िर प दम निकले ।।
मगर लिखवांये कोई उसको ख़त तो हमसे लिखवाये।
हुई सुबह औ' घर से कान पर रखकर क़लम निकले ।।
कहाँ मैखाने का दरवाज़ा ग़ालिब औ' कहाँ वाइज़ !
पर इतना जानते हैं कल वो जाता था कि हम निकले ।।

४२

ग़ालिब बुरा न मान जो वायज़ बुरा कहे।
ऐसा भी कोई है कि सब अच्छा कहें जिसे ।।

४३

इस सादगी प कौन न मर जाय ऐ ख़ुदा।
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं ।।

४४

मिलना तेरा अगर नहीं आसाँ तो सहल है।
दुशवार तो यही है कि दुशवार भी नहीं ।।

४५

हमसे खुल जाओ ब वक़्ते मैपरस्ती एक दिन !
वर्ना हम छेड़ेंगे रखकर उज़्रे मस्ती एक दिन ।।

ग़ुर्रये औजे विनाये आलमे इमकाँ न हो।
इस बलन्दी के नसीबों में है पस्ती एक दिन ।।
क़र्ज़ की पीते थे मै लेकिन समझते थे कि हाँ ।
रंग लायेगी हमारी फ़ाक़ामस्ती एक दिन ।।
नरमहाये ग़म को भी ऐ दिल ! ग़नीमत जानिये ।
बे सदा हो जायगी यह साज़े-हस्ती एक दिन ।।

४६

बोसा नहीं न दीजिए दुश्नाम ही सही।
आख़िर ज़ुबाँ तो रखते ही हो गर दहाँ नहीं ।।
नुक़साँ नहीं जुनूं में बला से हो घर ख़राब।
सौ गज़ ज़मीं के बदले बयाबाँ गिराँ नहीं ।।

४७

गदा समझ के वो चुप था मेरी जो शामत आई।
उठा औ उठ के क़दम मैंने पासबाँ के लिये ।।
ज़ुबाँ पे बारे ख़ुदाया य' किसका नाम आया।
कि मेरे नुत्क़ ने बोसे मेरी ज़ुबाँ के लिये ।।

४८

छोड़ा न रश्क ने कि तेरे घर का नाम लूं।
हर इक से पूछता है कि जाऊँ किधर को मैं ।।

४९

कहतें है जीते है उम्मीद में लोग।
हमको जीने की भी उम्मीद नहीं ।।

५०

मक़दूर हो तो खाक से पूछूं कि ऐ लईम।
तू ने वो गंजहाय गिराँमाया क्या किये !

५१

युंही दुख किसी को देना नहीं खूब, वर्ना कहता-
मेरे उदू को या रब ! मिले मेरी ज़िन्दगानी।

५२

रही न ताक़ते गुफ्तार और अगर हो भी।
तो किस उम्मीद प कहिये कि आरज़ू क्या है।।

५३

उधर वह बदगुमानी है, इधर यह नातवानी है।
न पूछा जाय है उससे न बोला जाय है मुझसे।
सँभलने से मुझे ए नाउमीदी ! क्या क़यामत है।
कि दामाने खयाले यार छूटा जाय है मुझसे।

५४

मत पूछ कि क्या हाल है मेरा तेरे पीछे।
तू देख कि क्या रंग है तेरा मेरे आगे।।

मोमिन

मोमिन उपनाम; मोमिन खाँ नाम; पिता का नाम हकीम गुलाम नबी खाँ; स्थान दिल्ली; जन्म-काल १८०० ई०; मृत्यु-काल १८५१ ई०।

इनके पूर्वज मुगल-राज्य के अंतिम दिनों में काश्मीर से आकर दरबार के हकीमों में नियत हुए। शाहआलम के समय में नारनौल परगने में इनके पूर्वजों को जागीर मिली थी। जब अँग्रेज़ी सरकार ने झज्जर की रियासत नवाब फ़ैज़ तलब खाँ को दी, तब उसी में नारनौल का इलाक़ा भी चला गया। उसके बदले इनके पितामह के उत्तराधिकारियों को १०००) मासिक पेंशन मिलने लगी। उसमें से मोमिन को भी एक भाग मिलता था। इस आय के सिवा इनके कुटुम्ब के चार हकीमों के नाम सौ-सौ रुपये मासिक पेंशन अंग्रेज़ी सरकार से मिलती थी, उसमें भी मोमिन को भाग मिलता था।

दिल्ली में चीलों के कूचे में इनके पूर्वज रहते आये थे, उसमें ये भी रहे। बचपन में इनको साधारण शिक्षा मिली थी। जब ज़रा कुछ बड़े हुये तो शाह अब्दुल क़ादिर से अरबी पढ़ने लगे। अरबी में कुछ योग्यता हो जाने के बाद अपने पिता और चचा गुलाम हैदर खाँ और गुलाम हसन खाँ से वैद्यक की पुस्तकें पढ़ने लगे; फिर उन्ही के दवाखाने में नुस्खे लिखने लगे।

बहुत दिनों तक इनकी तबीअत एक ही विषय पर नहीं जमी। वैद्यक से उकताकर शायरी और ज्योतिष की ओर झुके। ज्योतिष में इन्होंने इतनी योग्यता प्राप्त की कि इनके उत्तरों को सुनकर बड़े-बड़े ज्योतिषी दाँतों-तले उँगली दबाते थे।

ये शतरंज खेलने के भी बड़े शौक़ीन थे। दिल्ली में दो एक को छोड़कर ये सबसे अच्छा शतरंज खेलना जानते थे।

ये बड़े शौक़ीन और रंगीन तबीअत के आदमी थे। सिर पर घुँघरवाले

बाल थे, जुल्फ भी रखते थे, जिनमें उँगलियों से प्रायः हरवक्त कंघी करते रहते थे। शरबती रंग का मलमल का ढीला-ढाला अँगरखा पहनते थे, जिसमें से बदन का कुछ हिस्सा झलका करता था। डील-डौल बहुत खूबसूरत था।

शायरी का शौक़ सबसे अधिक था। आशिक़ मिज़ाज भी थे, इससे शायरी और भी चमक उठी। पहले ये शाह नसीर को अपना कलाम दिखाते रहे; पर थोड़े दिनों के बाद उनसे भी इसलाह लेनी बंद कर दी और फिर किसी को उस्ताद नहीं बनाया।

मोमिन के पढ़ने का ढंग बड़ा ही करुणोत्पादक था। जब ये ग़ज़ल पढ़ते थे, तब मशायरे में बड़ा ही मर्म-बेधक सन्नाटा छा जाता था।

मोमिन ने किसी राजा-रईस की प्रशंसा में कभी एक भी पद्य नहीं कहा। हाँ, पटियाले के रईस राजा कर्मसिंह के भाई राजा अजीतसिंह की प्रशंसा में एक कसीदा कहा था। राजा अजीतसिंह दिल्ली में रहते थे। एक दिन मोमिन उनकी ओर जा निकले। मुसाहिबों से नाम सुनकर राजा साहब ने इन्हें बुलाया और बहुत सत्कार किया। बातचीत के बाद राजा साहब ने एक सजी-सजाई हथिनी पुरस्कार में दी। मोमिन ने कहा—मैं ग़रीब आदमी हूँ, इसे खिलाऊँगा क्या? राजा साहब ने सौ रुपये और दिलाये। मोमिन हथिनी पर सवार होकर घर आये। पर सौ रुपये खर्च होने के पहले ही हथिनी बेंच-बाँचकर निश्चित हो गये।

कपूरथला-नरेश ने साढ़े तीन सौ रुपये मासिक पर इन्हें बुलाया और १०००) राहखर्च के लिये भी भेजा। पर जब इन्हें मालूम हुआ कि यही वेतन वहाँ एक गवैये का भी है, तब ये स्वाभिमान-वश वहाँ नहीं गये।

मोमिन चार-पाँच बार दिल्ली से बाहर गये। पहली बार रामपुर गये। दूसरी बार सहसवान गये। कई बार जहाँगीराबाद गये। और एक बार सहारनपुर भी गये। १८४२ ई० में जब ग़ालिब ने दिल्ली कालेज की फ़ारसी की प्रोफ़ेसरी करने से इन्कार कर दिया, तब वह जगह टामसन साहब ने मोमिन को अस्सी रुपये महीने पर देनी चाही; लेकिन मोमिन ने

दिल्ली से बाहर जाने से इन्कार कर दिया। बाक़ी सारा जीवन इन्होंने दिल्ली ही में बिताया। १८५१ ई० मे कोठे से गिरकर पाँच महीने के पश्चात् ये क़ब्रवासी हुये।

इनका दीवान मिलता है। उसमें ग़ज़लों, क़सीदों, मसनवियों और पहेलियों आदि का अच्छा संग्रह है। इन्होंने छः मसनवियाँ लिखी हैं।

मोमिन ग़ज़ल के बहुत बड़े उस्ताद हुये हैं। इनके शिष्यों में नवाब शेफ़्ता, नवाब अकबर, नवाब नसीम, मीर तसकीन, क़ैसर, वहशत, आशुफ़्ता, आही, सालिक, फ़ातमा बेगम और यास अच्छे शायर हुये है।

इनकी कविता के नमूने देखिये :—

१

अगर ग़फ़लत मे बाज़ आया जफ़ा की।
तलाफ़ी की भी ज़ालिम ने तो क्या की॥
मुझे उम्मीद थी मेहरो वफ़ा की।
वले ज़ालिम ने जब देखो दग़ा की॥
अभी इस राह मे कोई गया है।
कहे देती है शोख़ी नक्से पा की॥
सबा ने उसके कूचे से उड़ाकर।
ख़ुदा जाने हमारी ख़ाक क्या की।
न कुछ तेज़ी चली बादे सबा की।
बिगड़ने पर भी ज़ुल्फ उसकी बना की॥
विसाले-यार से दूना हुआ इश्क़।
मरज़ बढ़ता गया जों जों दवा की॥
लगी ठोकर जो पाए-दिलरुबा की।
महीनो तक मेरी तुरबत हिला की॥
न आया चैन यकदम वस्ल में भी।
घटा की रात औ हसरत बढ़ा की॥

हवा से ज़ुल्फ़ आरिफ़ पर हिला की ।
कि बदली चाँद के सिदके हुआ की ।।
अदम है या कि यह कूए-सनम है ।
चली आती है यां ख़िलक़त ख़ुदा की ।।
किसी ने गर कहा मरता है 'मोमिन' ।
कहा मैं क्या करूँ मरज़ी ख़ुदा की ।।

२

वो जो हमसे तुमसे क़रार था तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
वो ही याने वादा निबाह का तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
वो जो ज़ुल्फ़ थे मुँह पर पेशतर वो करम कि था मेरे हाल पर ।
वो हरेक बातों में रूठना तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
वो नये गिले व शिकायतें वो मज़े मज़े की हिकायतें ।
मुझे सब हैं याद ज़रा ज़रा तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
कभी हमसे तुमसे भी राह थी कभी हमसे तुमसे भी चाह थी ।
कभी हम भी तुम भी थे आशना तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
वो बिगड़ना वस्ल की रात का वो न मानना किसी बात का ।
वो नहीं नहीं की जो थी सदा तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
जिसे आप कहते थे बेवफ़ा उसे आप कहते हैं आशना ।
मैं वही हूँ मोमिने मुबतिला तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।

३

नावक अन्दाज़ जिधर दीदए-जानाँ होंगे ।
नीम बिसमिल कई होंगे कई बे-जाँ होंगे ।।
ताबे नज़्ज़ारः नहीं आईना क्या देखने दूं ।
और बन जायँगे तसवीर जो हैराँ होंगे ।।
तू कहाँ जायगी कुछ अपना ठिकाना कर ले ।
हम तो कल ख़्वाबे अदम में शबे हिजराँ होंगे ।।

एक हम हैं कि हुये ऐसे पशेमाँ कि बस ।
एक वह है कि जिन्हें चाह के अरमाँ होंगे ।।
दाग़े दिल निकलेंगे तुरबत से मेरी जूं लाला ।
यह वो अख़गर नहीं जो ख़ाक में पिनहाँ होंगे ।।
उम्र सारी तो कटी इश्के-बुताँ में 'मोमिन' ।
आख़िरी वक्त में क्या ख़ाक मुसलमाँ होंगे ।।

४

ख़ुशी न हो मुझे क्योंकर क़ज़ा के आने की ।
ख़बर है लाश प उस बेवफ़ा के आने की ।।
जो बे हिजाब न होगी तो जान जायेगी ।
कि राह देखी है उसने हया के आने की ।।
करूँ मैं वादा ख़िलाफ़ी का शिकवा किस किस से ।
अजल भी रह गई ज़ालिम सुना के आने की ।।
मुझे य' डर है कि 'मोमिन' कहीं न कहता हो ।
मेरी तसल्ली को रोज़े जज़ा के आने की ।।

५

आग अश्के गरम की लगी जी क्या ही जल गया ।
आंसू जो उसने पोंछे शब और हाथ फल गया ।।
फोड़ा था दिल न था य' मूए पुर खलल गया ।
जब ठेस साँस की लगी दम ही निकल गया ।।
उस कूचे की हवा थी कि मेरी ही आह थी ।
कोई तो दिल की आग प पंखा सा झल गया ।।
बुतखाने से न काबे को तकलीफ़ दे मुझे ।
'मोमिन' बस अब मुआफ़ कि याँ जी बहल गया ।।

६

बीमारे अजल चारा को गर हज़रते ईसा ।
अच्छा न करेंगे तो कुछ अच्छा न करेंगे ।।

१४

बेखुद थे, ग़श थे, महू थे, दुनिया का ग़म न था।
जीना विसाल में भी तो मरने से कम न था।।

१५

जूं निकहते-गुल-जुम्बिश है जी का निकल जाना।
ऐ बादे-सबा! मेरी करवट तो बदल जाना।।

१६

होता है आहे-सुबह से यह और शोलःज़न।
कैसा चिराग़ था य' कभी गुल न हो सका।।

१७

कुछ आँख बंद होते ही आँखें-सी खुल गईं।
जो इक बलाए-जान था, अच्छा हुआ, गया।।

१८

चिलमन के बदले मुझको ज़मीं पर गिरा दिया।
उस शोख़ बेहिजाब ने परदा उठा दिया।।

१९

हाले दिल यार को लिखूं क्योंकर?
हाथ दिल से जुदा नहीं होता।।

२०

उस महरवश के जलवे के कुर्बान क्यों न हूँ।
परवाने को भी रात न आया नज़र चिराग़।।

२१

यह नातवाँ हूँ कि हूँ और नज़र नहीं आता।
मेरा भी हाल हुआ तेरी ही कमर का-सा।।

२२

निसबते ऐश से हूँ नज़्अ में गिरयाँ, यानी।
है य' रोना कि दहन गोर का खंदाँ होगा।।

२३

मुए न इश्क़ में जब तक वो मेहर्बां न हुआ।
बलाए-जाँ है वह दिल जो बलाए-जाँ न हुआ।।

२४

माशूक़ से भी हमने निभाई बराबरी।
चाँ लुत्फ़ कम हुआ तो यहाँ प्यार कम हुआ।।

२५

आये ग़ज़ाले चश्म सदा मेरे दाम में।
सैयाद ही रहा मैं गिरफ्तार कम हुआ।।

२६

हूरें नहीं मोमिन के नसीबों में, जो होतीं।
बुतखाने ही से क्यों यह बदनाम निकलता।।

२७

नासह य' गिला क्या है, 'कि मैं कुछ नहीं कहता।
तू कब मेरी सुनता है? कि मैं कुछ नहीं कहता।।
ऐ चारागरो! क़ाबिले दरमां नहीं य' दर्द।
वरना मुझे सौदा है? कि मैं कुछ नहीं कहता।।

२८

या इलाही! मुझको किस परदा-नशीं का ग़म लगा।
सीने में अंदर ही अन्दर कुछ घुला जाता है दिल।।

२९

थी कुछ तो बात मोमिन जो छा गई खमोशी।
किस बुत को दे दिया दिल? क्यों बुत से बन गये हो।।

३०

रोज़े महशर भी होश गर आया।
जायँगे हम शराबखाने को।।

३१

फिर गई आँख मिस्ले क़िब्लानुमा ।
जिस तरफ़ उस सनम ने फेरा मुँह ।।

३२

ऐश में भी तो न जागे कभी, तुम क्या जानो ।
कि शबे-ग़म कोई किस तौर बसर करता है ।।

३३

गली में उसकी न फिर आते हम तो क्या करते ?
नबीअत अपनी न जन्नत के दरमियान लगी ।।

३४

वो आये हैं पशेमाँ लाश पर अब ।
तुझे ऐ ज़िन्दगी लाऊँ कहाँ से ?

३५

इस नक्शे-पा के सिजदे ने क्या क्या किया ज़लील ।
मैं कूचए-रक़ीब में भी सर के बल गया ।।

३६

बर्क़ का आसमान पर है दिमाग़ ।
फूककर मेरे आशियाने को ।।

३७

क्या सुनाते हो कि है हिज्र में जीना मुश्किल ।
तुमसे बेरहम पै मरने से तो आसाँ होगा ।।

३८

ख़ाक होता न मैं तो क्या करता ?
उसके दर का गुबार होना था ।।

३९

नाकामियों से काम रहा उम्रभर हमें।
पीरी में यास थी जो हविस थी शबाब में॥

४०

तुम मेरे पास होते हो गोया।
जब कोई दूसरा नहीं होता॥

अनीस

अनीस उपनाम; मीर बबर अली नाम; पिता का नाम मुस्तहसन खलीक़; दादा का नाम सुप्रसिद्ध मीरहसन; परदादा का नाम मीर ज़ाहक; जन्म-स्थान फ़ैजाबाद (गुलाबबाड़ी); जन्म-काल १८०२ ई०; मृत्यु-काल १८७४ ई०।

अनीस के परदादा मीर ज़ाहक दिल्ली से चले आये थे और फ़ैज़ाबाद में बस गये थे। फ़ैजाबाद मे जन्म लेकर अनीस ने लखनऊ में तालीम पाई। प्रारंभिक शिक्षा इनको मौलवी हैदरअली से मिली।

कविता तो इनकी पैतृक सम्पत्ति ही थी। इनमें कविता बीज-रूप से मौजूद थी। थोड़ी-सी अनुकूलता मिलते ही वह अंकुरित और पल्लवित हो गई।

पहले इनके पिता इनको कविता करने से रोकते थे; पर जब उन्होंने देखा कि आग रोकने से न रुकेगी तो उन्होंने केवल उसका रुख़ मोड़ दिया। उन्होंने एक दिन कहा—बेटा! आशिक़ाना ग़ज़लों को तो सलाम करो और अपनी प्रतिभा को उस मार्ग मे ले जाओ, जिसमें दीन-दुनिया दोनों हासिल हो। उस दिन से अनीस ने अपनी प्रतिभा की बाग मोड़ दी। ये मरसिया लिखने लगे।

जबतक इनके पिता जीवित रहे, ये अपनी रचना उन्हें दिखला लिया करते थे। उनके मर जाने पर ये स्वयं अपनी इसलाह कर लेने लगे। मरसिया कहने में इन्होंने इतना महत्त्व प्राप्त किया कि लखनऊ के अमीर-गरीब सब इनके क़ाबू में आ गये। उनसे केवल वाह-वाह ही नहीं, बल्कि इनाम-अकराम भी खूब मिलने लगे।

इनके मुकाबिले के लिये मिर्ज़ा दबीर ने क़दम बढ़ाया। लखनऊ के चतुर रसिकों नें दोनों उस्तादों को भिड़ा दिया। बस, फिर क्या था? दोनों ने अपनी-अपनी प्रतिभा के वह चमत्कार दिखाये कि मुसलमानों के मनोराज्य पर दोनों का अधिकार हो गया। अपने शब्दों के जोड़-बंद से दोनों ऐसा जादू बाँध देते थे कि चाहें रुला दें, चाहे हँसा दे और चाहें तो श्रोताओं को आश्चर्य की प्रतिमा बना दें। अनीस ने कम से कम दस हज़ार मरसिये कहे होंगे। रुबाइयों और सलामों की तो गिनती ही नहीं।

जबतक लखनऊ में सल्तनत क़ायम रही, ये कहीं न गये। पूछने पर कहते थे कि मेरे कलाम को लखनऊवाले ही समझ सकते हैं। पर १८५६ ई० में लखनऊ की तबाही के बाद अनीस को लखनऊ छोड़ना ही पड़ा। ये अज़ीमाबाद गये। वहाँ से १८७१ ई० में हैदराबाद गये। वहाँ इनकी बड़ी क़दर हुई। इनका रूप-रंग भी प्रभावशाली था और पढ़नेका ढंग तो बड़ा ही आकर्षक था।

इनका और इनके भाइयों—मीर उन्स और मीर मूनिस का क़ायदा था कि एक बड़े आइने को सामने रखकर ये बैठ जाते थे और मरसिया पढ़ने का अभ्यास करते थे। अंगों कि गति और मुँह के चढ़ाव-उतार को देखते थे। कविता के प्रत्येक रस को वर्णन के अनुसार अपने मुखपर झलकाने का प्रयत्न करते थे। हैदराबाद में इनका मरसिया सुनने को इतनी भीड़ आती थी कि बैठने को जगह न मिलती थी और आनेवालों को रोकने के लिये पहरे खड़े करने पड़ते थे।

हैदराबाद से लौटते समय ये इलाहाबाद में भी ठहरे थे। यहाँ भी इनका मरसिया सुना गया और सुना जाता है कि बड़ी भीड़ हुई थी।

अनीस ने कई हज़ार मरसिये लिखे। कहा तो यहाँ तक जाता है कि उन्होंने ढ़ाई लाख पद्य लिखे। अभी कुल प्रकाशित नहीं हुये हैं।

अनीस चरित्रवान् और सन्तोषी व्यक्ति थे। बहुत कम बोलते थे, और जब बोलते तो ऐसे मोहक और तुले हुए शब्द बोलते थे, मानों मुंह से फूल झड़ रहें हैं। उनके पढ़ने का ढ़ंग भी अनोखा था।

मौलाना शिबली ने अनीस और दबीर पर एक पुस्तक लिखी है। उसमें वे अनीस के विषय में यह लिखते हैं—

'मीर अनीस का क़लाम शायरी के तमाम असनाफ़ का बेहतर से बेहतर नमूना है।'

'मीर अनीस के कमाल शायरी का बड़ा जोहर यह है कि बावजूद इसके कि उन्होंने उर्दू शुअरा में सबसे ज़ियादा अल्फ़ाज़ इस्तेमाल किये और सैकड़ों मुख्तलिफ़ वाक़यात बयान करने की वजह से हर क़िस्म और हर दरजे के अल्फ़ाज़ उनको इस्तेमाल करने पड़े, ताहम उनके तमाम कलाम से ग़ैर फ़सीह अल्फ़ाज़ निहायत कम पाये जाते है।'

'मीर अनीस के कलाम में निहायत कसरत से रोज़मर्रा और महावरों का इस्तेमाल पाया जाता है, और उस पर उनको नाज़ भी था।'

सचमुच उर्दू-कविता में मीर अनीस के मरसिये एक खास स्थान रखते हैं, और उनमें कवि-प्रतिभा की किरनें सब ओर छिटकी हुई दिखाई पड़ती हैं।

लखनऊ के नवाब शिया थे, इससे मुहर्रम के दिनों में मरसिया का बड़ा आदर था। दूर-दूर से आकर लोग सुनते थेऔर रोते और छातियाँ पीटते थे।

हिन्दी में भी अनीस के नाम से एक घनाक्षरी छंद बहुत प्रचलित है। पता नहीं, वह भी इन्हीं अनीस का है या किसी दूसरे का। अच्छा होता कि वह इन्हीं का होता। वह छंद यह है—

सुनो हो बिटप हम पहुप तिहारे अहैं,
राखिहौ हमैं तो सोभा रावरी बढ़ावैंगे।
तजिहौ हरषि के तो बिलग न मानैं कछू,
जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनो जस गावैंगे।
सुरन चढ़ैंगे नर सिरन चढ़ैंगे, फेरि
सुकवि 'अनीस' हाथ हाथन बिकावैंगे।

देस में रहेंगे, परदेस में रहेंगे, काहू
भेस में रहेंगे तऊ रावरे कहावैंगे ।।

अनीस यद्यपि आजीवन लखनऊ में रहे, पर अपनी बोलचाल दिल्ली ही की रखते थे। इसका इन्हें गर्व भी था। मौक़ा पड़ने पर ये कहा करते थे—साहबो! यह लखनऊ वालों की बोलचाल नहीं है, यह मेरे घर की ज़बान है। ये 'जगह' को दिल्लीवालों की तरह 'जागह' बोलते थे और कभी-कभी दिखाई को 'दिखाइयाँ' और 'बचाई' को 'बचाइयाँ' लिख भी जाते थे।

अनीस को कसरत का बहुत शौक था। वे अच्छे घुड़सवार भी थे। अदब-कायदे के बहुत पाबंद थे। अमीरों से कम मिलते थे। उनकी वेष-भूषा और पहनावा भी उनकी पसंद का एक विशेष ढंग का था।

अनीस ने बालक, स्त्री-पुरुष, योद्धा, कायर, प्रेमी तथा सेवक आदि सब प्रकार के मनुष्यों के मनोभावों के व्यक्त करने का सफल प्रयत्न किया है। कहीं-कहीं प्रकृति का वर्णन तो बहुत ही उत्तम किया है।

यहाँ हम अनीस की कविता से कुछ चुने हुये छंद उद्धृत करते हैं—

१

क़रीबे क़ब्र हम आये कहाँ कहाँ फिरकर।
तमाम उम्र हुई जब तो अपना घर देखा ।।

२

नमूदो-बूद को आक़िल हुबाब समझे है।
वो जागते हैं जो दुनिया को ख़्वाब समझे है ।।

३

दर प शाहों के नहीं जाते फ़क़ीर अल्लाह के।
सर जहाँ रखते हैं सब हाँ हम क़दम रखते नहीं ।।
जो सख़ी हैं माले दुनिया से हैं खाली उनके हाथ।
अहले दौलत जो हैं वो दस्ते करम रखते नहीं ।।

४

हर वक़्त ज़माने का सितम सहते हैं।
हासिद जो बुरा कहते हैं चुप रहते हैं॥
जो नेक है वो बदों को भी कहते हैं नेक।
जो बद है वो नेकों को बुरा कहते हैं॥

५

क्या हाथ था क्या तेग़ था क्या हिम्मते आली।
दम भर में नमूदार सफ़ें होती थीं खाली॥
जब झूम के ढालों की घटा आती थी काली।
बिजली सी चमक जाती थी शमशीर हिलाली॥
मिलता था निशां रन मे सफ़ों का न परों का।
था शोर कि मेह आज बरसता है सरों का॥
कट कट के हरेक ज़र्ब में सर गिरते थे सर पर।
बर्छी प न फल था न कोई फूल सिपर पर॥
फिर जाता था गर्दन प कभी गाह जिगर पर।
मरक़ज की तरह थी कभी दुश्मन की कमर पर॥
निकली जो कमर से तो चली खानए जी पर।
जी से गई मरकब में तो मरकब से ज़मी पर॥

६

अफ़सोस जहाँ से दोस्त क्या क्या न गये।
इस बाग़ से क्या क्या गुलेराना न गये॥
था कौनसा नख्ल जिसने देखी न ख़िज़ाँ।
वह कौन से गुल खिले जो मुरझा न गये॥

७

अब गर्म ख़बर मौत के आने की है।
नादाँ तुझे फ़िक्र आबो-दाने की है॥

हस्ती के लिये ज़रूर यक दिन है फ़ना।
आना तेरा दलील जाने की है॥

८

गुनह का बोझ जो गरदन प हम उठा के चले।
ख़ुदा के आगे खिजालत से सर झुका के चले॥
तलब से आर है अल्लाह से फ़क़ीरों को।
कहीं जो हो गया फेरा सदा सुना के चले॥
किसी का दिल न किया हमने पायमाल कभी।
चले जो राह तो चिउँटी को भी बचा के चले॥
मिला जिन्हें उन्हें उफ़तादगी से ओज मिला।
उन्होंने खाई है ठोकर जो सर उठा के चले॥
मुक़ाम यों हुआ इस कारगाहे दुनिया मे।
कि जैसे दिन को मुसाफ़िर सरामें आ के चले॥
'अनीस' दम का भरोसा नहीं ठहर जाओ।
चिराग़ ले के कहाँ सामने हवा के चले॥

९

से ताक़त बदन से कस जाता है।
ा नहीं फिर कर जो नफ़स जाता है॥
साल गिरह हुई तो उक़दाय' खुला।
ओर गिरह से यक बरस जाता है॥

१०

इज्ज़त रहे यारो आशना के आगे।
महजूब न हो शाहो-गदा के आगे॥
यह पाँव चले तो राहे-मौला में चले।
यह हाथ उठे जब तो खुदा के आगे॥

११

मर मर के मुसाफ़िर ने बसाया है तुझे ।।
रुख़ सबसे फिरा के मुँह दिखाया है तुझे ।।
क्योंकर न लपट के तुझसे सोऊँ ऐ क़ब्र !
मैंने भी तो जान दे के पाया है तुझे ।।

१२

जो शै है फ़ना उसे बक़ा समझा है ।
जो चीज़ है कम उसे सिवा समझा है ।।
है बहरे-जहां में उम्र मानिन्दे-हुबाब ।
ग़ाफ़िल इस ज़िन्दगी को क्या समझा है ।।

१३

क्या क़द्र ज़मीं की आसमाँ के आगे ।
झुकते हैं क़वी भी नातवाँ के आगे ।।
नर्मी से मुतीअ संगदिल होते है ।
दन्दाँ सफ़बस्तः है ज़बाँ के आगे ।।

१४

गर लाख बरस जीए तो फिर मरना है ।
पैमानए उम्र एक दिन भरना है ।।
हाँ तोशए आख़िरत मुहैया कर ले ।
ग़ाफ़िल तुझे दुनिया से सफ़र करना है ।।

१५

क्या क्या दुनिया मे साहबे माल गये ।
दौलत न गई साथ न अतफाल गये ।।
पहुँचा के लहद तलक फिर आये सब लोग ।
हमराह अगर गये तो आमाल गये ।।

दबीर

दबीर उपनाम; मिर्ज़ा सलामत अली नाम; पिता का नाम मिर्ज़ा गुलाम हुसेन; जन्म-स्थान दिल्ली; जन्म-काल १८०३ ई०; मृत्यु-काल १८७५ ई०।

दबीर के पिता मिर्ज़ा गुलाम हुसेन दिल्ली से लखनऊ आये। लखनऊ में उन्होंने शादी की और मकानात भी बनवाये, जो महल्ला नख़ास में अब-तक मौजूद हैं और वह महल्ला आजकल कूचा दबीर कहलाता है।

मिर्ज़ा गुलाम हुसेन कुछ दिनों के बाद फिर दिल्ली चले गये और वे वहीं सात-आठ बरस लगातार रहे। दबीर की दो बड़ी बहनें, उनके बड़े भाई और स्वयं दबीर भी दिल्ली ही में पैदा हुए। जब ये पाँच-सात बरस के हुए, तब इनके पिता फिर कुटुम्ब-सहित लखनऊ चले आये और फिर वहीं रहे।

दबीर की शिक्षा लखनऊ ही में हुई और अच्छी तरह हुई। बारह वर्ष ही की उम्र से ये पद्य-रचना करने लगे थे। पहले-पहल जब ये मीर ज़मीर के पास शागिर्द होने के लिए गये तो कलाम की फ़रमायश पर इन्होंने यह पद्य पढ़ा था—

किसी का कुन्दः नगीने प नाम होता है।
किसी की उम्र का लबरेज़ जाम होता है॥
अजब सरा है य' दुनिया कि जिसमें शामो-सहर।
किसी का कूच किसी का मुकाम होता है॥

इस पद्य को सुनते ही उस्ताद फड़क उठे। उन्होंने कहा—मैं तुमको ज़रूर बताऊँगा। उन्हींने इनका उपनाम दबीर रक्खा।

इनकी प्रतिभा ऐसी चमकी कि सोलह-सत्रह वर्ष की उम्र ही में ये कवि-मंडल में प्रसिद्ध हो गये। उस्ताद ज़मीर इनकी प्रतिभा के इतने

क़ायल हो गये कि अन्य शागिर्दों की गज़लें वे पहले इन्हीं को इसलाह के लियें देने लगे। इनके देख लेने के बाद वे देखते थे।

दबीर की बड़ी तारीफ़ मरसिया कहने में हुई। इनको लोग प्रसिद्ध मरसिया-गो ज़मीर, खलीक़, फ़सीह और दिलगीर के समकक्ष मानने लगे। इनकी प्रसिद्धि यहाँ तक हुई कि बहुत से शाहज़ादे और शाहज़ादियाँ इनकी शागिर्द हो गईं। अवध के नवाब गाज़िउद्दीन हैदर ओर वाजिदअली शाह ने भी इनको अपने यहाँ बुलाया, मरसिया सुना ओर पुरस्कृत किया।

दबीर की चालीस वर्ष की उम्र में मीर अनीस फैज़ाबाद से लखनऊ आये। अनीस तो सुप्रसिद्ध मरसिया-गो थे। लखनऊ में एक पार्टी ऐसी भी थी जो दो गुणियों को आपस में लड़ाकर उनकी प्रतिभा का चमत्कार देखा करती थी। अनीस के आते ही वह पार्टी फिर बीच में आई और दबीर और अनीस को लड़ाकर तमाशा देखने-दिखाने लगी। दो पार्टियाँ बन गईं; एक पार्टी के लोग 'अनीसिये' और दूसरी पार्टी के लोग 'दबीरिये' कहलाने लगे।

अनीस और दबीर दोनों अपने-अपने फ़न में उस्ताद थे। दोनों में कौन श्रेष्ठ था, यह नहीं कहा जा सकता। यद्यपि दोनों एक दूसरे के प्रतिद्वंद्वी थे; पर उनमें मित्रभाव था, दोनों एक दूसरे का आदर करते थे और कभी उन्होंने सभ्यता की सीमा का उल्लंघन नहीं किया।

दबीर १८७४ ई० में अंधे हो गये। उस समय लखनऊ के इतिहास-प्रसिद्ध नवाब वाजिदअली शाह कलकत्ते के मटिया-बुर्ज में नज़रबन्द थे। आँखों का एक जर्मन डाक्टर उनका नौकर हुआ। तब उन्होंने दबीर को याद किया और बुलाकर आँखें दुरुस्त करा दीं। इस बात से यह पता चलता है कि दबीर की पहुँच कहाँ तक थी।

दबीर को यद्यपि बाहर के अमीर-उमरा बुलाया करते थे, पर ये लखनऊ छोड़कर कहीं जाना पसंद नहीं करते थे। एक बार १८५८ ई० में बहुत आग्रह करने पर ये नवाब इमाम बाँदी बेगम साहबा के बुलाने से पटना गये थे और फिर वहाँ ये हर साल जाया करते थे।

दबीर लखनऊ में अपने मकान ही में क़ब्र-बासी हुये।
इनकी कविता के कुछ नमूने देखिये—

१

जुज़ हैफ़ क्या जहाँ से सुलेमान ले गये।
यूसुफ़ भी ज़ेरे ख़ाक सब अरमान ले गये॥
शाहाने दहर कौन-सा सामान ले गये।
सब कुछ वो ले गये कि जो ईमान ले गये॥
किन क़ाफ़िलों को ख़ाक न इस राह ने किया।
किन यूसुफ़ों को ग़र्क़ न इस चाह ने किया॥

२

अदना से जो सर झुकाये आला वह है।
जो ख़ल्क़ से बहरावर है दरिया वह है॥
क्या ख़ूब दलील है यह ख़ूबी की 'दबीर'।
समझे जो बुरा आपको अच्छा वह है॥

३

गुलशन में सबा को जुस्तजू तेरी है।
बुलबुल की ज़बाँ प गुफ़्तगू तेरी है॥
हर रंग जलवा है तेरी क़ुदरत का।
जिस फूल को सूँघता हूँ बू तेरी है॥

४

दिल को मेरे शग़ल ग़मगुसारी का है।
ग़फ़लत में तौर होशियारी का है॥
गरदूँ को है अगर सरकशी का ग़ुर्रा।
हमको भी ग़ुरूर ख़ाकसारी का है॥

५

याँ शोर, वहाँ ग़ुल, इधर आई, उधर आई।
वह चमकी, वह तड़पी, व छुपी, वह नज़र आई॥

वह तेज़ गई ख़ूद में वह सर में दर आई ।
गर्दन से बढ़ी सीना लिया तो कमर आई ।।
सिन उसका घटा था जो दिलेराना बढ़ा था ।
मुँह का वही खाता था जो मुँह उसके चढ़ा था ।।
चमकी जो ख़ूद सर प तो सर से निकल गई ।
शाने प जो पड़ी तो जिगर से निकल गई ।।
सीने में दम लिया तो कमर से निकल गई ।
हैराँ था ख़ुद बदन कि किधर से निकल गई ।।
ऊँची हुई तो फ़र्क़ अदू को फ़रो किया ।
गिरकर उठी तो राकिबो मरकब को दो किया ।।

६

घर कौन सा बसा कि जो वीराँ न हो गया ।
गुल कौन सा हँसा कि परेशाँ न हो गया ।।

७

चमन की बे सबाती पर जो उसका ध्यान जाता है ।
तो क्या रोती है शबनम मुँह प रख के गुलके दामन को ।।
मैं कुश्ता हूँ किसी गुल के मिसी आलूदः दन्दाँ का ।
चढ़ाना बाँग़बाँ तुरबत प मेरी बर्गे सौसन को ।।
'दबीर' आयेगा कब वह भूलकर गोरे-ग़रीबाँ पर ।
जो अक्सर रौंदता था नाज़ से फूलों के ख़िरमन को ।।

८

दुनिया का अजीब कारख़ाना देखा ।
किस किस का न याँ हमने ज़माना देखा ।।
बरसों रहा जिनके सर प छतरें ज़री ।
तुरबत प न उनकी शामियाना देखा ।।

९

नमरूद को ख़ुदाई के दावे से क्या मिला।
बन्दा जुदा हुआ जो ख़ुदी से ख़ुदा मिला॥

१०

पहुँचा कमाल को जो वतन से निकला।
क़तरा गुहर बना जो अदन से निकला॥
तकमील कमाल की ग़रीबी है दलील।
पुख्ता जो समर हुआ चमन से निकला॥

नसीम

नसीम उपनाम; पंडित दयाशंकर कौल नाम; पिता का नाम पंडित गंगाप्रसाद कौल; स्थान लखनऊ; जन्म-काल १८११ ई०; मृत्यु-काल १८४३ ई०।

नसीम को प्रारम्भ में उर्दू-फ़ारसी की शिक्षा मिली थी। बड़े होने पर ये शाही फ़ौज में वकील हुये। अपनी जीविका का काम करते हुए भी साहित्य की ओर इनकी रुचि कुछ कम न थी। इन्होंने पुराने कवियों की कविताओं का अध्ययन बड़े मनोयोग से किया और बीस वर्ष की उम्र में ये स्वयं भी अच्छी रचना करने लगे। कविता में ये आतिश के शागिर्द थे।

पच्चीस वर्ष की अवस्था मे इन्होंने 'गुलज़ार नसीम' नाम की एक मसनवी लिखी। 'गुलज़ार नसीम' के पहले मीर हसन की मसनवी 'सहरुल्बयान' ही की चर्चा चारोंओर थी। उसी से उत्साहित होकर नसीम ने अपनी मसनवी लिखी, जिसके प्रकाश में 'सहरुल्बयान' के तारे फीके पड़ गये। जब नसीम 'गुलज़ार नसीम' को लेकर आतिश के पास इसलाह के लिये गये, तब उस बड़े पोथे को देखकर आतिश ने कहा--अरे भई, इतनी बड़ी मसनवी कौन पढ़ेगा? या तुम पढ़ोगे, क्योंकि तुमने लिखा है; या इसलाह के ख़याल से मैं एक बार देख जाऊँगा।

उस्ताद की बात से प्रभावित होकर नसीम ने, 'गुलज़ार नसीम' को काट-छाँटकर छोटा किया। जो भाव चार पदों में वर्णित थे, उन्हें एक में कस दिया। आतिश ने अपने शागिर्द के इस प्रयत्न पर हर्ष प्रकट किया और इसलाह के लिये क़लम उठाई। पर आतिश की इसलाह नसीम को पसन्द न आई और इन्होंने जिसे जैसा लिखा था, उसे वैसा ही रहने दिया।

अनुदार हृदय के मुसलमान साहित्यिक 'गुलज़ार नसीम' को आतिश की रचना प्रमाणित करने का जी-जान से प्रयत्न करते हैं। क्योंकि एक हिन्दू की क़लम से उर्दू में ऐसी अद्वितीय मसनवी लिखी जाने पर उन्हे कुछ लज्जा बोध होती है। पर 'गुलज़ार नसीम' की कविता स्वयं इस बात का प्रमाण है कि वह आतिश की नहीं है; क्योंकि आतिश की वर्णन-शैली ही जुदा है।

नसीम की अन्य ग़ज़लों की वर्णन-शैली और महावरों का प्रयोग 'गुलज़ार नसीम' से मिलता-जुलता है। अतएव 'गुलज़ार नसीम' को नसीम की रचना न मानकर आतिश की रचना बतलाना हठधर्मी के सिवा और कुछ नहीं।

'गुलज़ार नसीम' उर्दू-कविता का मुकुट है। और एक हिन्दू के लिये यह गर्व की बात है कि दूसरे के मैदान में जाकर भी उसने अपना सिर ऊँचा रक्खा और सर्वोपरि होकर रहा।

आतिश के देख चुकने के बाद 'गुलज़ार नसीम' एक बड़े मुशायरे में, जिसमें लखनऊ के प्रायः सब प्रसिद्ध-प्रसिद्ध साहित्यिक उपस्थित थे, पढ़ा गया। सब ने मुक्तकंठ से उसकी तारीफ़ की। उसका पहला संस्करण छपते ही हाथों-हाथ बिक गया। कविता के मर्मज्ञ लोगों ने नसीम को मीर हसन के समकक्ष माना और समय ने फ़ैसला कर दिया कि नसीम की मसनवी मीर हसन की मसनवी से कहीं बढ़कर है।

नसीम ने अपने जीवन-काल ही में अपनी प्रसिद्धि का सुखानुभव कर लिया था। पर शोक की बात है कि 'गुलज़ार नसीम' के छपने के एक वर्ष बाद ही हैज़े की बीमारी से नसीम प्रातःकालीन वायु की तरह एक सुरभित झोंका देकर न जाने किधर चले गये। ३२ वर्ष की अवस्था ही में वे अमर-कीर्ति छोड़कर स्वर्गवासी हुये।

नसीम बड़े प्रसन्नचित्त और हाज़िर-जवाब थे। एक बार एक मुशायरे में लखनऊ के सब प्रसिद्ध-प्रसिद्ध शायर उपस्थित थे। ये भी थे। मुशायरा

शुरू होने में ज़रा-सी देर थी। शेख नासिख़ ने नसीम की ओर आकर्षित होकर कहा—

पंडित जी, देखिये एक मिसरा कहा है। दूसरा मिसरा नहीं सूझता।

'शेख़ ने मसजिद बना मिसमार बुतख़ाना किया'।

नासिख़ के मुँह से यह मिसरा निकलना था कि नसीम ने तत्काल दूसरा मिसरा कह दिया—

'तब तो यक सूरत भी थी अब साफ़ वीराना किया'।

यह सुनना था कि सारी मजलिस चहचहा उठी। लोग फ़ड़क उठे। वाह-वाह की झड़ी लग गई। नासिख़ ने कविता की आड़ में मज़हबी चोट की थी; लेकिन नसीम ने उन्हें वहीं ठंडा कर दिया।

एक दिन आतिश के यहाँ शागिर्दों का जमाव था। रिन्द, सबा, ख़लील आदि बैठे हुये थे। नसीम भी थे। सबेरे का सुहावना समय था। बरसात का मौसम था। पानी बरस रहा था। तबीअतें उमड़ी आती थीं। शागिर्दों ने आतिश से निवेदन किया कि, उस्ताद! इस समय एक ग़ज़ल कह डालिये। आतिश ने कहा—अच्छा, मैं बोलता जाता हूँ, लिखते जाओ। आतिश ने एक ग़ज़ल लिखाई, जिसका मतला यह है—

दहन पर है उनके गुमाँ कैसे-कैसे।
कलाम आते हैं दरमियाँ कैसे-कैसे॥

नसीम की तबीअत उमंग पर थी। इन्होंने उन शेरों को पँचपदा बनाना प्रारम्भ कर दिया। जितनी देर में आतिश एक शेर सोचते थे, उतनी देर में नसीम उनके पहले शेर पर तीन मिसरे लगा चुकते थे। कोई-कोई मिसरे तो ऐसे अनूठे बन गये हैं कि कोई बरसों सोचता तो शायद वैसा कह पाता। नमूने के लिये दो पँचपदे यहाँ दिये जाते हैं—

१

न ख़ूनी कफ़न है न घायल हुये हैं।
न ज़ख़्मी बदन है न बिसमिल हुये हैं॥

लहू मल के कुश्तों में दाखिल हुये है।
तुम्हारे शहीदों में शामिल हुये है॥
गुलो-लाला औ अरग़वाँ कैसे कैसे।

२

कोई जानता है किसी को ख़बर है।
कि परदे में कौन ऐ सनम ! जलवागर है॥
कहीं कुछ ख़याल ओ कही कुछ नज़र है।
दिलो दीदए अहले आलम में घर है॥
तुम्हारे लिये हैं मकाँ कैसे कैसे ?

इनमें पहले चार चरण तो है नसीम के और पाँचवाँ आतिश का। आतिश की यह ग़ज़ल १४, १५ शेरों की है। नसीम ने सब पर मिसरे लगा दिये।

आतिश के शागिर्दों में सबा और नसीम में बड़ी मित्रता थी। सबा भी उच्चकोटि के उर्दू-कवियों में से है। नसीम के मरने पर दुःखी होकर सबा ने एक शेर कहा है—

उठ गये है नसीम जिस दिन से।
ऐ सबा ! वह हवाए बाग़ नहीं॥

पर रिन्द से नसीम की नहीं पटती थी। एक दिन नसीम ने एक मुशायरे में रिन्द की एक मशहूर ग़ज़ल पर पँचपदे जोड़कर पढ़े। रिन्द आपे से बाहर हो गये और नसीम को मारने के लिये उन्होंने तलवार खीच ली। नसीम भी जवाँमर्द थे। इन्होंने उठकर कहा—तलवार पर मत भूलियेगा। ऐसी तलवारें यहाँ थप्पड़ मारकर छीन ली जाती हैं। खैर; समझदार लोगों ने उठकर बीच-विचाव कर दिया। इसी तरह के दो- एक और विवादों से रिन्द की तबीअत इनसे विगड़ती ही गई।

नसीम स्वतन्त्र प्रकृति के मनुष्य थे। इन्होंने कभी धन-दौलत की वृद्धि के लिये मुहताजी न ज़ाहिर की। यद्यपि ये चाहते तो शाही दरबार में इनका प्रवेश आसानी से हो जाता, जहाँ इनकी काफ़ी क़दर होती और

मनसब और जागीर भी मिलती। बड़े-बड़े ओहदेदार इन पर कृपा-दृष्टि रखते थे। पर इन्होंने कविता को कभी अपनी जीविका नहीं बनाई।

एक बार अमजद अली शाह के सामने एक वेश्या ने नसीम की वह प्रसिद्ध ग़ज़ल गाई, जिसका मतला यह है:—

जब न जीते जी मेरे काम आयगी।
क्या य' दुनिया आक़बत बख़्शायगी॥

जब उसने उसका मक़ता गाया:—

जाँ निकल जायेगी तन से ऐ 'नसीम'।
गुल को बू ए गुल हवा बतलायगी॥

तब कविता के मर्मज्ञ शाह ने पूछा—क्या यह ग़ज़ल उसी नसीम की है, जो 'गुलज़ार नसीम' का रचयिता है? वेश्या ने कहा—हाँ। इतना सुनना था कि शाह ने हुक्म दिया—उस मख़ुनवर बाकमाल को दरबारे शाही में हाज़िर करो। लोगों ने कहा—वह तो मर गये। शाह पछताने लगे।

नसीम ने मरने के दो-तीन घंटे पहले यह शेर कहा था—

पहुँची न राहत हमसे किसी को बल्कि अज़ीयत कोश हुये।
जान पड़ी तब बारे शिकम थे मर के वबाले-दोश हुये॥

नसीम बड़े प्रतिभाशाली कवि थे। इनके समय में लखनऊ मुसलमानी सभ्यता और साहित्य का केन्द्र हो रहा था। यद्यपि उर्दू-कविता के पतन का समय था, बुझनेवाले दीपक की तरह वह अन्तिम बार ज़ोर से बल रही थी। नासिख़ और आतिश का जादू चल रहा था। अनीस और दबीर के मरसिये अलग अपना रंग जमा रहे थे। वज़ीर, सबा, रिन्द और ख़लील आदि नौजवान शायरों की शोख़ तबीअतें अलग क़यामत बरपा कर रही थीं। भला, ऐसे समय में एक हिन्दू कवि का कवियों की प्रथम श्रेणी में जाकर बैठना कोई सहज काम था? पर यह नसीम ही का काम था कि इन्होंने अपनी प्रतिभा से सब को मुग्ध कर लिया और ऐसे-ऐसे साहित्यिक चमत्कार दिखलाये कि इनकी धाक जम गई।

अब आइये, 'गुलज़ार नसीम' की भी ज़रा-सी सैर करते चलें।' 'गुलज़ार नसीम' में' गुल बकावली का क़िस्सा लिखा गया है। इसके प्रारम्भ के चार शेर ये हैं—

हर शाख़ में है शिगूफ़ाकारी।
समरा है क़लम का हम्दे बारी॥
करता है य' दो ज़बाँ से यकसर।
हम्दे हक़ व मदहते पयम्बर॥
पाँच उँगलियों में य' हर्फ़े-ज़न है।
यानी कि मुतीय पंजतन है॥
ख़त्म इस पर हुई सुख़नपरस्ती।
करता है ज़बाँ की पेश दस्ती॥

सारा क़िस्सा इस एक ही छंद में लिखा गया है। कवि ने जिस-जिस दृश्य पर क़लम चलाई है, उसे सजीव कर दिया है। मनोभावों का वर्णन, महावरों का सुन्दर प्रयोग, प्रकृति-वर्णन एक से एक मनोहर हैं। बस,

'कागज़ प रख दिया है कलेजा निकालकर'

गुल के गायब हो जाने पर बकावली की बेचैनी का वर्णन नसीम इस प्रकार करते हैं—

देखा तो वह गुल हवा हुआ है।
कुछ और ही गुल खिला हुआ है॥
घबराई कि हैं! किधर गया गुल।
झुंझलाई कि कौन दे गया जुल॥
है! है!! मेरा फूल ले गया कौन।
है! है!! मुझे ख़ार दे गया कौन॥
हाथ इस प अगर पड़ा नहीं है।
बू हो के तो गुल उड़ा नहीं है॥
नरगिस तू दिखा किधर गया गुल।
सौसन तू बता किधर गया गुल॥

सम्बुल मेरा ताज़ियाना लाना।
शमशाद उन्हें सूली पर चढ़ाना।।
थर्राई ख़बासें सूरते-बेद।
एक-एक से पूछने लगी भेद।।

मीर हसन की मसनवी में एक-एक विषय का वर्णन आवश्यकता से अधिक लम्बा कर दिया गया है; पर नसीम के 'गुलज़ार नसीम' में थोड़े शब्दों में बहुत अधिक भाव भर दिये गये है। देखिये—

१

ऐ आइनादारे ख़ुदनुमाई।
दे सुरमए चश्म आशनाई।।

२

यक शब थी कि ख़ाल रूए शामत।
या मरदुमे दीदए-क़यामत।।

३

इंसाँ से झुकी परी की गरदन।
काँटे से रुका हवा का दामन।।

४

आने लगे बैठे बैठे चक्कर।
फ़ानूसे ख़याल बन गया घर।।

५

मरहम जो हटी थी उस क़मर की।
बुरजों प से चांदनी थी सरकी।।

६

क्या लुत्फ़ जो ग़ैर परदा खोले।
जादू वह जो सर प चढ़के बोले।।

७

ग़म राह नहीं कि साथ दीजै।
दुख बोझ नहीं कि बाँट लीजै।।

८

पानी तहे-ख़ाक गो रवाँ है।
लौ शोले की सूए आसमाँ है।।

९

इन्साँ व परी का सामना क्या?
मुट्ठी मे हवा का थामना क्या?

१०

आता हो तो हाथ से न दीजै।
जाता हो तो उसका ग़म न कीजै।।

११

दरवेश रवाँ रहे तो बेहतर।
आबे दरिया बहे तो बेहतर।।

१२

क्यों मुँह प शफ़क़ खुशी मे फूली।
क्या शामे विसाल राह भूली।।

१३

क्या रंग जमाने ने दिखाये।
गुल लेने गये थे दाग़ लाये।।

१४

रातों को जो गिनती थी सितारे।
दिन गिनने लगी खुशी के मारे।।

१५

करती थी जो भूक प्यास बस में।
आँसू पीती थी खाके क़समें।।

जामा से जो ज़िन्दगी के थी तंग।
कपड़ों के यवज़ बदलनी थी रंग॥
सूरत मे खयाल रह गई वह।
हैयत में मिसाल रह गई वह॥

मौलाना हाली ने 'गुलज़ार नसीम' की कविता पर कुछ एतराज़ात भी किये है, पर वह माक़ूल नहीं जान पड़ते। अत्युक्तियों से भी कविता में रस उत्पन्न होता है। मौलाना हाली को अत्युक्तियों के लिए कुछ छूट देनी चाहिये थी।

हिन्दी-कवियों से हमारा अनुरोध है कि वे एक बार 'गुलज़ार नसीम' को अवश्य पढ़ें।

नसीम का एक छोटा-सा दीवान भी मिलता है। जिसमें थोड़ी-सी ग़ज़लें हैं। इनकी मृत्यु के बहुत दिन बाद ये ग़ज़लें संग्रह की गई थीं। कुछ लोगों का कहना है कि इनमें कुछ अन्य कवियों की ग़ज़लें भी शामिल हो गई है।

यहाँ नसीम की कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं:—

१

रूहे रवाँ व जिस्म की सूरत मैं क्या कहूँ।
झोंका हवा का था इधर आया उधर गया॥
समझा है हक़ को अपनी ही जानिब हरेक शख्स।
यह चांद उसके साथ चला जो जिधर गया॥
तूफ़ाने नूह इसमें हो या शोरे हश्र हो।
होना जो कुछ है होगा जो गुज़रा गुज़र गया॥
गुज़रा जहाँ से मैं तो कहा सुनके यार ने।
क़िस्सा गया फ़साद गया दर्दे सर गया॥
काग़ज़ सियाह करते हो किसके लिये 'नसीम'।
आया जवाब ख़त तुम्हें औ नामावर गया॥

७

ग़म राह नहीं कि साथ दीजै।
दुख बोझ नहीं कि बाँट लीजै॥

८

पानी तहे-ख़ाक गो रवाँ है।
लौ शोले की सूए आसमाँ है॥

९

इन्साँ व परी का सामना क्या?
मुट्ठी में हवा का थामना क्या?

१०

आता हो तो हाथ से न दीजै।
जाता हो तो उसका ग़म न कीजै॥

११

दरवेश रवाँ रहे तो बेहतर।
आबे दरिया बहे तो बेहतर॥

१२

क्यों मुँह प शफ़क़ खुशी से फूलो।
क्या शामे विसाल राह भूली॥

१३

क्या रंग ज़माने ने दिखाये।
गुल लेने गये थे दाग़ लाये॥

१४

रातों को जो गिनती थी सितारे।
दिन गिनने लगी खुशी के मारे॥

१५

करती थी जो भूक प्यास बस में।
आँसू पीती थी खाके क़समें॥

जामा से जो ज़िन्दगी के थी तंग।
कपड़ों के यवज़ बदलती थी रंग॥
सूरत में ख़याल रह गई वह।
हैयत में मिसाल रह गई वह॥

मौलाना हाली ने 'गुलज़ार नसीम' की कविता पर कुछ एतराज़ात भी किये हैं, पर वह माक़ूल नहीं जान पड़ते। अन्युक्तियों से भी कविता में रस उत्पन्न होता है। मौलाना हाली को अत्युक्तियों के लिए कुछ छूट देनी चाहिये थी।

हिन्दी-कवियों से हमारा अनुरोध है कि वे एक बार 'गुलज़ार नसीम' को अवश्य पढ़ें।

नसीम का एक छोटा-सा दीवान भी मिलता है। जिसमें थोड़ी-सी ग़ज़लें हैं। इनकी मृत्यु के बहुत दिन बाद ये ग़ज़लें संग्रह की गई थीं। कुछ लोगों का कहना है कि इनमें कुछ अन्य कवियों की ग़ज़लें भी शामिल हो गई हैं।

यहाँ नसीम की कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं:—

१

रूहे रवाँ व जिस्म की सूरत मैं क्या कहूँ।
झोंका हवा का था इधर आया उधर गया॥
समझा है हक़ को अपनी ही जानिब हरेक शख्स।
यह चाँद उसके साथ चला जो जिधर गया॥
तूफ़ाने नूह इसमें हो या शोरे हश्र हो।
होना जो कुछ है होगा जो गुज़रा गुज़र गया॥
गुज़रा जहाँ से मैं तो कहा सुनके यार ने।
क़िस्सा गया फ़साद गया दर्दे सर गया॥
काग़ज़ सियाह करते हो किसके लिये 'नसीम'।
आया जवाब ख़त तुम्हें औ नामाबर गया॥

२

इश्क़ में दिल बन के दीवाना चला।
आशना से हो के बेगाना चला।।
बे ज़बानों को भी आई है ज़बान।
बेड़ी गुल करती है दीवाना चला।।
इश्क़बाज़ी बाज़िए शतरंज है।
चाल नादाँ रह गया दाना चला।।
शब जो आया बज़्म में वह शोला रू।
शमा गुल करने को परवाना चला।।
बूये गुल गुंचा से कहती है 'नसीम'।
बात निकली मुँह से अफ़साना चला।।

३

कहानी कहके सुलाते थे यार को सो अब।
फ़िसाना उम्र हुई ख्वाब वह ख़याल हुआ।।
जुनूँ की चाकज़नी ने असर किया वाँ भी।
जो खत में हाल लिखा था वह खत का हाल हुआ।।

४

शरीक़ बज्म हुये हो तो दूर कीजे हिजाब।
जो निकले नाचने फिर क्या लिहाज़ घूँघट का।।

५

बजुज़ गोरे ग़रीबाँ नक़्शे पा थे फिर नहीं आगे।
यहीं तक हर मुसाफ़िर ने पता पाया है मंज़िल का।।
ज़माने मौज ने तूफ़ान जोड़ा आशनाओं पर।
हुबाबे बहर तू भी तोड़ अपना आबला दिल का।।
'नसीम' अपने ही आमालों से गर्दिश है ज़माने की।
रवाँ किश्ती प आता है नज़र हर नख्ल साहिल का।।

६

कूचए जाना की मिलती थी न राह।
बन्द की आँखें तो रस्ता खुल गया।।

७

बुतों को जो देखा गुनह क्या हमारा।
खुदाई खुदा की तमाशा हमारा।।
बुतों को गली छोड़कर कौन जाये।
यही से है काबे को सिजदा हमारा।।

८

य' तसवीरे चेहरा उतर क्यों गया है?
खिचे किससे हो क्या है नक़्शा तुम्हारा?
नसीम इस चमन में गुलेतर की सूरत।
फटे कपड़े रखते हैं परदा तुम्हारा।।

९

कल तक जो शमए-महफ़िले ऐशो-निशात थे।
जलता नहीं चिराग़ भी आज उनकी गोर पर।।

१०

दिल बदिल आईना है दैरो हरम।
हक़ जो पूछो एक दर है दो तरफ़।।
ख्वाह काबा ख्वाह बुतखाने को जा।
दश्ते दिलका रह गुजर है दो तरफ़।।
कुफ्रो-ईमाँ दोनों जानिब की सुने।
इसलिये गोशे बशर है दो तरफ़।।

११

जब न जीते जी मेरे काम आयगी।
क्या य' दुनिया आक़बत बरुशायगी।।

जब मिले दो दिल मुख़िल फिर कौन है।
बैठ जाओ ख़ुद हया उठ जायगी।।
जाँ निकल जायेगी तन से ऐ 'नसीम'।
गुल को बूए गुल हवा बतलायगी।।

१२

ख़ुम न बनकर ख़ुद ग़रज़ हो जाइये।
मिस्ले साग़र और के काम आइये।।
सब्र रुख़सत हो तो जाने दीजिये।
बेक़रारी आये तो ठहराइये।।
दिल ही में दिखलाइये तासीरे इश्क़।
ठंडी साँसों से उन्हें गरमाइये।।
सर्द आहें भरते है हम जब 'नसीम।'
कहते हैं वोह ठंडे ठंडे जाइये।।

१३

दिल से हरदम हमें आवाज़े बका आती है।
बन्द कानों को भी गिरिया की सदा आती है।।
दिल से है आँख तक आई असर गरमीए शौक़।
अश्क हसरत से निगह आबला पा आती है।।
गुल हुआ कोई चिराग़े सहरी ओ बुलबुल।
हाथ मलती हुई पत्तों से सबा आती है।।
छू लिया धोखे से दामाने सबा तू ने तो क्या।
गुचए गुल कहीं मुट्ठी में हवा आती है।।
जिस क़दर वस्ले बुताँ का तुम्हें रहता है फ़िराक़।
'नसीम' ऐ उतनी कभी यादे ख़ुदा आती है।।

१४

कान में सब के अपनी बात न डाल।
आबरू मिस्ले आबे गौहर है।।

१५

मैं बोसा लूंगा बहाने बताइये न मुझे।
जो दिल लिया है तो क़ीमत दिलाइये मुझे।।
तुम्हें रक़ीब की ख़ातिर है लो मैं जाता हूँ।
उठाइये न हया को बिठाइये न मुझे।।

१६

हम तुम हैं जो एक फिर जुदाई कैसी?
दिल ही न मिला तो आशनाई कैसी?
काफ़िर न घमंड रख खुदआराई का।
सब कुछ हो जो बुत तो ख़ुदाई कैसी?

१७

अहदे पीरी मे रवाना हुए यों होश-हवास।
सुबह को जैसे मुसाफ़िर से हो मंज़िल खाली।।

१८

आन में फ़र्क न आने दीजे।
जान अगर जाय तो जाने दीजे।।

१९

चला दुख़्तरे-रिज़ को लेकर जो साक़ी।
फरिश्ते हुये साथ घर देखने को।।

२०

दुनिया में ऐशो ग़म से हैं यकसर भरे हुये।
शीशों के दिल हैं ख़ाली तो साग़र भरे हुये।।

२१

दोज़ख़ो-जन्नत है अब मेरी नज़र के सामने।
घर रक़ीबों ने बनाया उसके घर के सामने।।

अमीर मीनाई

अमीर उपनाम ; मुंशी अमीर महम्मद 'अमीर' मीनाई नाम ; पिता का नाम मौलवी करम मुहम्मद ; जन्मस्थान लखनऊ ; जन्म-काल १८२८ ई० ; मृत्यु-काल १९०० ई० ।

इनका वंश हज़रत मख़दूम शाह मीना से संबंध रखता था; इसलिये ये अमीर मीनाई के नाम से प्रसिद्ध हुये । नवाब नसीरुद्दीन हैदर के समय में ये पैदा हुये । इनकी शिक्षा सुप्रसिद्ध शिक्षा-केन्द्र फ़िरंगी महल लखनऊ में हुई थी । ये अरबी, फ़ारसी के अच्छे विद्वान् थे और शायरी तो मानो ईश्वर की दी हुई चीज़ थी ।

ये सूफ़ी मज़हब के थे । बड़े सच्चरित्र, ईश्वर-भक्त, साधु-प्रकृति और संतोषी मनुष्य थे । वैद्यक, ज्योतिष आदि अन्य कई विषयों के भी अच्छे ज्ञाता थे । बोलने की अच्छी शक्ति रखते थे । कहा जाता है कि इन्होंने कभी किसी पर क्रोध नहीं किया ।

इनके कविता-गुरू मुंशी सैयद मुज़फ्फर अली खाँ बहादुर 'असीर' थे । ये १८५२ ई० में वाजिदअलीशाह के दरबार में पहुँचे और वाजिद-अली शाह के इच्छानुसार इन्होंने दो पुस्तकें इंशादिल सुलतान और हिदायतुल सुलतान लिखीं, जिनके बदले में इन्हे मुँहमाँगा इनाम और खिलअत मिली । जबतक लखनऊ की नवाबी क़ायम रही, तबतक ये वहीं रहे । ये चार भाग्य-वान् पुत्रों के पिता और सैकड़ों प्रसिद्ध शागिर्दों के उस्ताद थे ।

इनके बचपन में नासिख और आतिश जीवित थे । युवावस्था में सबा, वजीर और सहर आदि की संगति का इनको सौभाग्य प्राप्त हुआ था । अनीस और दबीर के मारके भी इन्होंने देखे थे । इन सबकी देखादेखी इन्हें भी शायरी का चस्का लगा और इनकी स्वाभाविक प्रतिभा जाग उठी ।

पर इसी बीच में सन् १८५७ का ग़दर प्रारंभ हो गया। लोग अपने अपने प्राण और धन बचाने में लगे। मुशायरे बन्द हो गये, और चहकने वाले बुलबुल अपने-अपने घोंसलों में पर समेटकर बैठ गये। जब ग़दर समाप्त हुआ, तब फिर अमीर की तूती बोली।

इनकी प्रसिद्धि सुनकर, रामपुर के नवाब मुहम्मद यूसुफ अली खाँ 'नाज़िम' ने इन्हे बुला भेजा। ये रामपुर पहुँचे, और वहाँ बहुत दिनों तक अदालत दीवानी के हाकिम रहे। नवाब साहब अपना उर्दू कलाम इन्हीं को दिखाया करते थे। १८६३ ई० में नवाब यूसुफ़ अली खाँ मर गये, और नवाब कलबे अली खाँ गद्दी पर बैठे। इनके समय में कविता की खूब चर्चा बढ़ी। दिल्ली, लखनऊ आदि स्थानों से प्रसिद्ध-प्रसिद्ध शायर वहाँ पहुँचने लगे और मुशायरों की धूम मच गई। असीर, मुनीर, बहर, ज़की, दाग़, कलक़, उरूज़, जलाल, हया, जान साहब आदि सबने अपनी-अपनी बोलियाँ बोलीं; पर नवाब को अमीर ही का रंग पसंद आया और उन्होंने इन्हीं को अपना उस्ताद चुना। इनको वहाँ सौ रुपया मासिक मिलता था। उन्ही दिनों कभी-कभी ग़ालिब भी रामपुर जाया करते थे, और खूब चहल-पहल रहा करती थी।

अमीर सचमुच कवियों के अमीर थे। ये मीर की तरह ग़ज़लें, सौदा की तरह क़सीदे, अनीस और दबीर की तरह करुणरस की कवितायें लिखने में सिद्धहस्त थे।

नवाब कलबे अली खाँ के मर जाने पर भी ये रामपुर ही में रोक लिये गये। वहाँ रियासत के सब लोग इनको चाहते थे और अदब करते थे, अस्तु, ये वहीं बस गये।

बहुत दिनों से हैदराबाद जाने का इनका इरादा था। उन दिनों दाग़ हैदराबाद में थे। इनको बुलाने के लिये वहाँ से बड़ी कोशिशें चल रही थीं। अंत में ये १९०० ई० मे हैदराबाद गये और दाग़ ही के मकान पर ठहरे। वहाँ पहुँचने के बाद दो दिन भी न बीतने पाये थे कि ये बीमार हो गये।

बहुत दवा-दरमत करने पर भी अच्छे नहीं हुये और एक महीने तक बीमार रहकर वहीं कब्र-वासी हुये ।

इनके शिष्यों की संख्या दो-तीन सौ से कम नहीं थी। उनमें कई तो बहुत प्रसिद्ध हुये ; जैसे--रियाज़, जलील, मुज़तर, कौसर, नवाब सफ़दर, पंडित रतननाथ 'सरशार', हफ़ीज़, आह, जाह, अख्तर, क़मर आदि।

अमीर की रचनायें प्रायः छप गई हैं । सुना जाता है कि इनका एक दीवान ग़ैरते बहारिस्तान ग़दर में लापता हो गया। ग़दर के बाद दूसरा दीवान 'मरातुल्ग़ैब', जो पहला दीवान समझा जाता है, छपा। १८८१ ई० में दूसरा आशिकाना दीवान 'सनमखानए इश्क' के नाम से छपा। इनका अधिक उपादेय काम 'अमीरुल्लुग़ात' है, जिसमें उर्दू-भाषा के महावरे, लखनऊ और दिल्ली की बोलचाल के फ़र्क आदि और भी बहुत-सी काम की बातें हैं। पर खेद है कि वह पूरा छप नहीं पाया था कि ये संसार से चल बसे।

दाग़ से इनको भिड़ा देने के लिए लोगों ने बहुत हाथ-पैर मारे ; पर ये ऐसे न्यायप्रिय थे कि सदा दाग़ के अच्छे कलाम की तारीफ़ करते रहे। वैसे ही दाग़ भी इनको दिल से चाहते थे। ये और दाग़ दोनों अपने समय के उर्दू-कवियों में चन्द्र और सूर्य थे ।

यहाँ इनकी कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

१

दिल मुझसे लिया है तो ज़रा बोलिये हँसिये ।
चुटकी में मसलने के लिये दिल नहीं होता ।।

२

ज़ाहिर में हम फ़रेफ्ता हुस्ने-बुताँ के हैं।
पर क्या कहें निगाह में जलवे कहाँ के हैं ।।

३

ख़त उस आरिज़ का जब से छुप गया है मेरी नज़रों में।
निगह यों आँख में चुभती है काँटा जैसे छाले में ।।

४

मज़े जितने थे बाग़े दहर में सब चुन लिए दिल ने।
न ऐसा ज़ख़्म है गुल में न ऐसा दाग़ लाले में।।

५

पाक दामन हो तो अरमाने-विसाल अच्छा है।
अच्छी नीयत हो तो अच्छो का ख़याल अच्छा है।।

६

ऐ सबा सम्बुल ने क्यों गुलशन में फैलाया है जाल।
मौजे-बूए-गुल भी मुझको बढ़के है ज़ंजीर से।।

७

ख़ुदी से बेख़ुदी में आ जो शौक़े हक़परस्ती है।
जिसे तू नेस्ती समझा है ऐ ग़ाफ़िल वो हस्ती है।।
ख़बरदार ऐ मुसाफ़िर ख़ौफ़ की जा राहे हस्ती है।
ठगों का बैठका है जाबजा चोरों की बस्ती है।।
'अमीर' उस रास्ते से जो गुज़रते हैं वो लुटते हैं।
महल्ला है हसीनों का कि क़ज़्ज़ाकों की बस्ती है।।

८

वस्ल जागे हुये हैं आलमे हुशियारी है।
ख़्वाब में देख रहा हूँ कि यह बेदारी है।।

९

कैसी घड़ी थी घर से जो निकला था मैं ग़रीब।
फिर देखना नसीब न मुझको वतन हुआ।।
अबका सफ़र वो है कि न देखूँगा फिर वतन।
यों तो मैं लाख बार ग़रीबुल्वतन हुआ।।

१०

पहलू बचाऊँ उससे जो दिल को सँभाल के।
मारे छुरी वो बात में पहलू निकाल के।।

मुश्किल बहुत पड़ेगी बराबर की चोट से।
आईना देखियेगा ज़रा देखभाल के॥
मेरे तुम्हारे बीच में आता है बार बार।
कम्बख़्त पाँव भी नहीं थकते मलाल के॥
आई सहर इधर कि उधर शाम हो गई।
दो दो घड़ी के होने लगे दिन विसाल के॥
मिट्टी जो देने आये हो तो दो हँसी-खुशी।
फेंको भी अब ग़ुबार को दिल से निकाल के॥
यह नातवान होके सुबुक हो गये 'अमीर'।
हम साथ साथ फिरते हैं अपने ख़याल के॥

११

उसको आता है प्यार पर ग़ुस्सा।
मुझको ग़ुस्से प प्यार आता है॥

१२

हर जगह जोशे मुहब्बत का नया आलम हुआ।
आँख में आंसू, जिगर मे दाग़, दिल में ग़म हुआ॥

१३

बहार आई चमन होता है मालामाल दौलत से।
निकाला चाहते हैं ज़र गिरह ग़ुन्चों ने खोली है॥
वो कहते हैं कि हम आँखों में सब को ताड़ लेते हैं।
मुहब्बत सारी दुनिया की इसी काँटे में तोली है॥
नज़रबाज़ी से जो मिलती है लज़्ज़त दिल में रखते हैं।
तेरे दीदार के भूखे फ़क़ीरों की य' झोली है॥
जगाती है य' कहकर सुबहे पीरी चश्मे ग़ाफ़िल को।
बस उठ ओ नींद का माता कि शब भर खूब सो ली है॥

१४

मैं जाग रहा हूँ हिज्र की शब।
पर मेरे नसीब सो रहे हैं।।

१५

मैं मिट गया तो वो भी मेरे साथ मिट गया।
साये से खूब हक्के रिफ़ाक़त अदा हुआ।।

१६

मसजिद में बुलाता है हमें ज़ाहिदे नाफ़हूम।
होता अगर कुछ होश तो मैख़ाने न जाते।।

१७

यह तो मैं क्योंकर कहूँ तेरे खरीदारो में हूँ।
तू सरापा नाज़ है मैं नाज़ बरदारों में हूँ।।
किस तरह फ़रियाद करते हैं बता दो क़ायदा।
ऐ असीराने क़फ़स मैं नौ गिरफ़्तारो में हूँ।।
फूल मैं फूलों में हूँ काटा हूँ काटों में 'अमीर'।
यार मैं यारों में हूँ ऐयार ऐयारों में हूँ।।

१८

झूठे वादा से वो राहत का मज़ा जाता रहा।
वाये क़िस्मत यास का भी आसरा जाता रहा।।
बेतकल्लुफ़ नश्शए मै ने तो उनको कर दिया।
पर वो शर्मीली निगाहों का मज़ा जाता रहा।।
आनेवाला जानेवाला बेकसी में कौन था।
हाँ मगर इक दम ग़रीब आता रहा जाता रहा।।
घूरते देखा जो हमचश्मों ने झुंझला कर कहा।
क्या लिहाज़ आँखों का भी ओ बेहया जाता रहा!।
खो गया दिल खो गया रहता तो क्या होता 'अमीर'।
जाने दो यक बेवफ़ा जाता रहा जाता रहा।।

१९

मौक़ूफ़ जुर्म ही प करम का ज़हूर था।
बन्दे अगर क़ुसूर न करते क़ुसूर था॥
मेरे अमल तो क़ाबिले दोज़ख़ ही थे मगर।
करता जो वह न रहम तो रहमत से दूर था॥
उसकी कड़ी नज़र की उठाई गई न चोट।
लगते ही ठेस शीशए दिल चूर चूर था॥
इक नीम जाँ का काम न पूरा हुआ 'अमीर'।
क़ातिल को तेग़े नाज़ प नाहक़ ग़ुरूर था॥

२०

दिल में ख़याल उन आँखों का लाया न जायगा।
मैख़ाना घर ख़ुदा का बनाया न जायगा॥
आहों से सोज़े इश्क़ मिटाया न जायगा।
आँधी से यह चिराग़ बुझाया न जायगा॥
दीदारे यार का न उठेगा मज़ा 'अमीर'।
जब तक दुई का परदा उठाया न जायगा॥

२१

मैं कभी वक़्त प मक़तल से न टल जाऊँगा।
कुछ ज़माना नहीं करवट जो बदल जाऊँगा॥
लाख दुनिया में फँसूँ चाल वह चल जाऊँगा।
कि मैं इस भूलभुलैयाँ से निकल जाऊँगा॥
इस सरा में मैं मुसाफ़िर नहीं रहने आया।
रह गया थक के अगर आज तो कल जाऊँगा॥
सोचता है मेरी तप देख के फ़ुरकत में तबीब।
नब्ज़ को हाथ लगाऊँगा तो जल जाऊँगा॥
हूँ सुबुकरूह करेगा मुझे क्या क़ैद कोई।
मिस्ल आवाज़ सलासल से निकल जाऊँगा॥

मस्ती उन आँखों में आती है तो कहता है हिजाब।
देख तू आई तो मैं घर से निकल जाऊँगा॥
क़द्रदाँ मसहफ़ी वो हज़रते सौदा थे 'अमीर'।
लेके तुरबत प उन्हीं की ये ग़ज़ल जाऊँगा॥

२२

दो आलम के सरताज अल्लाह वाले।
मुझे अब तो क़दमों में अपने बुला ले॥
जफ़ाकार दुनिया जफ़ाजू ज़माना।
पड़ा हूँ मैं दो बेवफ़ाओं के पाले॥
कहीं मुझको ठण्डा न करदें जला कर।
मेरी सर्द आहें मेरे गर्म नाले॥
लहद की अँधेरी ने घेरा है मुझको।
सिवा तेरे कौन इस मुसीबत को टाले॥
जुदाई के सदमे ज़ईफ़ी का आलम।
कहाँ तक अमीर अपने दिल को सँभाले॥

२३

तुंद मै औ ऐसे कमसिन के लिये।
साक़िया हलकी सी ला इनके लिये॥
है जवानी ख़ुद जवानी का सिंगार।
सादगी गहना है इस सिन के लिये॥
कौन वीराने में देखेगा बहार।
फूल जंगल में खिले किनके लिये॥
दिल का ज़ामिन तू तेरा क्या ऐतबार।
पहले यक ज़ामिन हो ज़ामिन के लिये॥
झाड़नी है कौन से गुल की नज़र।
बुलबुलें फिरती हैं क्यों तिनके लिये॥

बाग़बाँ कलियाँ हों हलके रंग की।
भेजनी है एक कमसिन के लिये।।
लाश पर इबरत य' कहती है 'अमीर'।
आये थे दुनिया में इस दिन के लिये।।

२४

ज़ोफ़े दिल ने असर य' दिखलाया।
दर्द से भी उठा नहीं जाता।।

२५

न होगा बन्द जबतक नक़्द जाँ बाक़ी है क़ालिब में।
सखी के घर का दरवाज़ा है चाक अपने गरेबाँ का।।
जिगर को दूँ कि दिल को दूँ बता ऐ नावके क़ातिल।
कि दो प्यासों में है यह एक क़तरा आबे पैकाँ का।।
मज़ा आशिक़ के दिल से पूछ हुस्ने शोला-रू याँ का।
तमाशा देख परवानों की आँखों से चिराग़ाँ का।।

२६

जब कहा उससे शबे ग़म कोई ग़मख़्वार न था।
दर्द ने उठ के कहा क्या य' गुनहगार न था।।

२७

क़रीब है यार रोज़े महशर छुपेगा कुश्तों का ख़ून कबतक।
जो चुप रहेगी ज़बाने ख़ंजर लहू पुकारेगा आस्ती का।।

२८

मुरग़ाने बाग़ तुमको मुबारक हो सैरे गुल।
काँटा था एक मैं सो चमन से निकल गया।।

२९

हिलालो बद्र हैं दोनों तेरी तसवीर के ख़ाके।
य' सूरत है लड़कपन की वो नक़शा है जवानी का।।

३०

उठाऊँ सख्तियां लाखों कड़ी बात उठ नही सकती।
मे दिल रखता हूँ शीशे का जिगर रखता हूँ आहन का।।

३१

चश्मे नरगिस न मिली दीदए आहू न मिला।
ऐ हया! तुझको इन्ही आँखों मे क्या रहना था?

३२

राज़े खिलक़त मे वहीं हैं बाहर आ सकते नहीं।
कहते हैं जिन्नत जिसे है क़ैदखाना हूर का।।
आदमी का मुंह है जो दावा खुदाई का करे?
बोलते है आप हज़रत नाम है मंसूर का।।

३३

फ़ितना था कहर था जलवा तेरा ऐ यार न था।
जब तलक दिल का सँभालूँ मैं दिलेज़ार न था।।

३४

करता मै दर्द मंद तबीबों से क्या रुजू।
जिसने दिया है दर्द बड़ा वह हकीम था।।

३५

तड़पा रही है हिज्र में लज़्ज़त विसाल की।
कल पी थी जो शराब है उसकी खुमार आज।।

३६

आँखों में नूर तेरा दिल में सरूर तेरा।
दरवाज़े मे है घर तक सारा ज़हूर तेरा।।
जन्नत में भी है चर्चा ऐ रश्के हूर! तेरा।
शुहरा है अल्ला अल्ला अब दूर दूर तेरा।।
ऐ चश्मे शौक़ वह तो हर रंग में है ज़ाहिर।
अब भी जो तू न देखे तो है क़ुसूर तेरा।।

मैं आईना हूँ तेरा तू आईना है मेरा !।
तुझमें ज़हूर मेरा मुझमें ज़हूर तेरा।
मदहोशे-इश्क़ होकर जा बज़्मे-मार्फ़त में।
परदा न बीच में हो ग़ाफ़िल शऊर तेरा।।
है बेख़ुदा ही जिससे होता है कुफ़्र हासिल।
ग़ायब जो आपसे हो पाये हुज़ूर तेरा।।
नादाँ अमीर नाहक़ उम्मीदवार है तू।
दिल लेके फेर देगा वह अब ज़रूर तेरा।।

३७

कह रही है हश्र में वह आँख शर्माई हुई।
हाय ! कैसी इस भरी महफ़िल में रुसवाई हुई।।
ठोकरें खिलवाएगी यह चाल इठलाई हुई।
क्या जवानी फिरती है जोबन प इतराई हुई।।
कैफ़े मस्ती में भी रहता है य' जोबन का लिहाज़।
उनको अँगड़ाई भी आती है तो शरमाई हुई।।
वस्ल में खाली हुई अग़यारों से महफ़िल तो क्या।
शर्म भी जाए तो मैं जानूं कि तनहाई हुई।।
गर्द उड़ी आशिक़ की तुरबत से तो झुँझलाकर कहा।
वाह ! सर चढ़ने लगी पावों की ठुकराई हुई।।
वस्ल की शब वाह री बेताबिए-शौक़े-विसाल।
शर्म भी नीची निगाहों में तमाशाई हुई।।
जाँ-बलब हसरत में पाती है जो मुझ नाशाद को।
क्या हँसी फिरती है उन होठों प इतराई हुई।।
मैं तो राज़े दिल छुपाऊँ पर छुपा रहने भी दे।
जान की दुश्मन य' ज़ालिम आँख ललचाई हुई।।
शेरे गुलदस्ते में मुझ अफ़सुर्दा दिल के क्या 'अमीर'।
दामने गुलचीं में कुछ कलियाँ हैं मुरझाई हुई।।

३८

इश्क़ में जाँ से गुज़रते हैं गुज़रनेवाले।
मौतकी राह नहीं देखते मरनेवाले॥
दागे दिल से मेरे कहता है य' उसका जोबन।
देख इस तरह गुज़रते हैं गुज़रनेवाले॥
आखिरी वक्त भी पूरा न दिया वादए-वस्ल।
आप आतेही रहे मर गये मरनेवाले॥
उठे औ कूचए-महबूब में पहुँचे आशिक़।
यह मुसाफ़िर नहीं रस्ते में ठहरनेवाले॥
जान देने को कहा मैंने तो हँसकर बोले।
तुम सलामत रहो हर रोज के मरनेवाले॥
तेग़े खंजर से न झगड़ा सरो गर्दन का चुका।
चल दिये मोड़ के मुँह फ़ैसला करनेवाले॥
आसमाँ पर जो सितारे नज़र आये 'अमीर'।
याद आये मुझे दाग़ अपने उभरनेवाले॥

३९

जफ़ाए झेलकर तासीरे-उल्फ़त हम दिखाते हैं।
हिना की तरह से पिस लेते हैं तब रंग लाते हैं॥
शबाबो शर्म दोनों का असर दिल में जो पाते हैं।
सवाले वस्ल पर अँगड़ाई लेकर मुस्कराते हैं॥
निगाहों की तरह वह शोख़ फिरता है जो महफ़िल में॥
कफ़े-पा के तले मह्वे-जमाल आँखें बिछाते हैं॥
मज़ा उनकी तबीअत में है गुस्सा आ नहीं सक्ता।
सवाले वस्ल पर त्योरी चढ़ाकर मुस्कराते हैं॥
सहर को दर पै जाता हूँ तो फ़र्माते हैं अन्दर से।
अभी सोकर उठे हैं हाथ मुँह धोते हैं आते हैं॥

४०

किया क़स्द जब कुछ कहूँ उनको जल कर।
दबी बात होठों में मुँह से निकल कर।।
यही सोज़े दिल है तो महशर में जल कर।
जहन्नुम उगल देगा मुझको निगल कर।।
इधर की न हो जाय दुनिया उधर की।
ज़माने को बदलो न आँखें बदल कर।।
ग़ज़ब औज पर है मेरी बेक़रारी।
ज़मी आसमाँ बन गई है उछल कर।।
पड़ा तीर दिल पर जो मुँह तूने फेरा।
निशाना उड़ाया है क्या रुख़ बदल कर।।
जो शामे शबे हिज्र देखी तो समझे।
क़ज़ा सर पै आई है सूरत बदल कर।।
य' मेरी तरफ़ पाँव महफ़िल में कैसे।
ज़रा आदमीयत से बैठो सँभल कर।।

४१

बाइसे वहशत हुई बेएतनाई आपकी।
तिनके चुनवाने लगी हम से जुदाई आपकी।।
आपकी जाने बला क्यों कर कटी फ़ुर्क़त की रात।
दिल तड़प कर रह गया जब याद आई आपकी।।
बात करना हमसे औ आँखें लड़ाना ग़ैर से।
देख ली बस वाह मुश्फ़िक़ पारसाई आपकी।।
आशिक़ों के दिल पर गिरती है हज़ारों बिजलियाँ।
देखकर सीने प ज़ंजीरे तिलाई आपकी।।
आपकी बातों का रहता है मुझे हरदम ख़याल।
जब कोई बोला सदा कानों में आई आपकी।।

ख़ुद गला काटूं मुझे ख़ंजर इनायत कीजिये।
देखिये दुख जायगी नाज़ुक कलाई आपकी।।
जान दे दो या पसे दीवार सर पटको 'अमीर'।
उनके कूचे तक न होवेगी रसाई आपकी।।

४२

तोड़ता है जो कोई फूल तो कहती है सबा।
क्या खबर तुझको कि यह दिल य' जिगर किसका है।।

४३

फ़ना कैसी बक़ा कैसी जब उसके आशना ठहरे।
कभी इस घर में आ निकले कभी उस घर मे जा ठहरे।।
जो चश्मे ग़ौर से आईनए तौहीद को देखा।
तो सब कुछ तू ही ठहरा हम न कुछ ऐ ख़ुदनुमा ठहरे।।
हक़ीक़त खोल दी आईनए वहदत ने दोनों की।
न तुम हमसे जुदा ठहरे न हम तुमसे जुदा ठहरे।।
'अमीर' आया जो वक्ते बद तो सबने राह ली अपनी।
हज़ारों सैकड़ों में दर्दो ग़म दो आशना ठहरे।।

४४

नक़द जाँ दिल की तरह देके अभी लेता हूँ।
लज़्ज़ते दर्द जो हाथ आये कहीं थोड़ी सी।।

४५

उन्हीं से ग़म्ज़ करती है जो तुझ पर जान देते हैं।
अजल तुझको भी कितना नाज़े माशूकाना आता है।।

४६

न चूक वक्त को पाकर कि है यह वह माशूक।
कभी उम्मीद नहीं जिससे जाके आने की।।

४७

न शाखे गुल ही ऊँची है न दीवारे चमन बुलबुल।
तेरी हिम्मत की कोताही तेरी किस्मत की पस्ती है॥

४८

उल्फ़त में बराबर है वफ़ा हो कि जफ़ा हो।
हरबात में लज्ज़त है अगर दिल में मज़ा हो॥

४९

जो निगाह की थी ज़ालिम! तो फिर आँख क्यों चुराई।
वही तीर क्यों न मारा जो जिगर के पार होता॥

५०

मौकूफ़ जुर्म ही प करम का ज़हूर था।
बंदे अगर कुसूर न करते, कुसूर था॥
सूरत तेरी दिखाके कहूँगा ये रोज़े हश्र।
आँखों का कुछ गुनाह न दिल का क़ुसूर था॥

५१

हम चले दैर से काबा को तो वह बुत बोला।
जाके ले लीजिये काबा में ख़ुदा रक्खा है।

५२

तुमसे माँगूं मैं तुम्हीं को कि सभी कुछ मिल जाय।
सौ सवालों से यही एक सवाल अच्छा है॥

दाग़

दाग़ उपनाम; नवाब मिर्ज़ा ख़ाँ नाम; जन्म-स्थान दिल्ली; जन्म-काल १८३१ ई०; मृत्यु-काल १९०५ ई०।

सुल्तानुश्शुअरा, बुलबुले-हिन्दुस्तान, जहाँ-उस्ताद, नाज़िमे-यारजंग, दबीरुद्दौला, फ़सीहुल्मुल्क आदि उपाधियों से विभूषित दाग़ दिल्ली में एक प्रतिष्ठित घराने में नवाब लोहारू के भाई नवाब शम्सुद्दीन की पत्नी से पैदा हुए। छः वर्ष के हुये तभी इनके पिता मर गये। इन की माता ने बहादुरशाह के पुत्र मिर्ज़ा फ़खरु से पुनर्विवाह कर लिया। सात वर्ष की अवस्था में इनकी शिक्षा प्रारंभ हुई। ग़यासुल्लोग़ात के कर्ता मौलवी ग़यासुद्दीन से इन्होंने पहले-पहल फ़ारसी की कुछ पुस्तकें पढ़ीं। इसके बाद मीर के शागिर्द मौलवी सैयद अहमद हुसैन इनके शिक्षक नियत हुये।

१८४४ ई० से इनको शाही क़िले में आने-जाने का मौक़ा मिला। वहाँ शिक्षा के बहुत-से साधन मिले। वहीं इन्होंने घोड़े पर चढ़ना, बन्दूक़ और तीर चलाना सीखा। क़िले में जहाँ और बातें थीं, वहाँ शायरी का भी बाज़ार गर्म था। ज़ौक़ राज-गुरु थे, क़िले में उनका आना-जाना रोज़ लगा रहता था। वहीं दाग़ को भी शायरी का शौक़ हुआ। ग्यारह-बारह वर्ष की उम्र में ये ज़ौक़ के शागिर्द हुये। इन्होंने डरते-डरते जो ग़ज़ल उस्ताद के पास इसलाह के लिए भेजी, उसके दो शेर ये हैं —

रुख़े रोशन के आगे वह शमा रखकर य' कहते हैं।
उधर जाता है देखो या इधर परवाना आता है॥
जो तुम हँसने में हो मश्शाक़ मैं रोने में कामिल हूँ।
तुम्हें बिजली गिराना मुझको मेंह बरसाना आता है॥

ज़ौक़ इस ग़ज़ल को देखकर फड़क उठे। उनको आशा हो गई कि यह शागिर्द किसी दिन शायरी की दुनिया में रंग लायेगा। वे बड़े प्रेम से दाग़ की कविता सुधारने लगे।

होते-होते इनकी पहुँच बादशाह तक हो गई। बादशाह की कवि-सभा में स्थान पाना बड़े गौरव की बात थी। दाग़ की प्रतिभा देखकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुये। पहली ग़ज़ल, जो दाग़ ने बादशाह की कवि-सभा में सुनाई थी, वह यह थी—

निकाल अब तीर सीने से कि जाने पुर अलम निकले।
जो यह निकले तो दिल निकले जो दिल निकले तो दम निकले॥
मेरे दिल से कोई पूछे शबे फ़ुरक़त की बेताबी।
यही फरियाद थी लब पर कि या रब जल्द दम निकले॥
हुये मग़रूर जो वह आह मेरी बेअसर देखी।
किसी का इस तरह या रब न दुनिया में भरम निकले॥
मुबारक हो य' घर ग़ैरों को तुमको पासबानों को।
हमारा क्या इज़ारा है निकाला तुमने हम निकले॥
समझ कर रहम दिल तुमको दिया था हमने दिल अपना।
मगर तुम तो बला निकले ग़ज़ब निकले सितम निकले॥
गये हैं रंजो ग़म ऐ दाग़ बादे-मर्ग साथ अपने।
अगर निकले तो यह अपने रफ़ीक़ाने अदम निकले॥

दाग़ को इस ग़ज़ल के प्रत्येक शेर पर खूब दाद मिली। ग़ज़ल समाप्त होने पर बादशाह ने मुग्ध होकर फ़रमाया कि क्या अच्छी तबीयत पाई है।

बस, उसी दिन से दाग़ कवि-सभा के चिराग़ हो गये। शहर भर में इनका नाम हो गया। बादशाह की प्रसन्नता का समाचार बात की बात में चारोंओर फैल गया और दाग़ सब लोगों की नज़रों में चढ़ गये।

क़िले का कवि-सम्मेलन उमंग पर था कि १८५६ ई० में मिर्ज़ा फ़ख़रू मर गये और अगले साल सन् ५७ का ग़दर शुरू हो गया। सब लोग अपनी-

अपनी जान बचाने की फ़िक्र में लगे। दाग़ सकुटुम्ब रामपुर चले गये, और नवाब यूसुफ़ अलीख़ाँ की शरण में सुख से रहने लगे। नवाब यूसुफ़ अली ख़ाँ के मर जाने के बाद उनके बेटे नवाब क़लबे अली ख़ाँ भी इन पर कृपा-दृष्टि रखते रहे। उन्होंने इन्हें अस्तबल, गाड़ी ख़ाने, फ़राश-ख़ाने और शुतुर-ख़ाने का अफ़सर नियत किया। चौबीस बरस तक इन्होंने वहाँ बड़ी तत्परता और प्रतिष्ठा के साथ मुसाहबत की। वहाँ इनको इतना आराम था कि रामपुर को आरामपुर कहते थे।

रामपुर में कवियों का अच्छा जमाव रहता था। हया, बहर, क़लक़, उरूज, असीर, मुनीर, तसलीम, जलाल और अमीर मीनाई आदि तो वहाँ थे ही, कभी-कभी ग़ालिब भी वहाँ चहक आते थे। पर दाग़ का रंग सब से निराला था।

नवाब के साथ दाग़ हज-यात्रा में भी गये। वहाँ से वापस आकर दाग़ ने अपनी एक कविता में नवाब के इस उपकार के लिये बड़ी कृतज्ञता प्रकट की। उन्हीं दिनों दाग़ ने कलकत्ते और पटने की यात्रा भी की थी।

१८८६ ई० में नवाब कलबे अली ख़ाँ के मरते ही रामपुर की कवि-सभा उजड़ गई और उस चमन के सब बुलबुल उड़ गये। दाग़ सन् १८८६ ई० में फिर दिल्ली पहुँचे। कुछ दिनों तक लाहौर, अमृतसर, कृष्णकोट, बंगलौर, आगरा, अलीगढ़, मथुरा, जैपुर और अजमेर आदि नगरों की सैर भी करते रहे। जहाँ-जहाँ ये जाते थे, वहाँ-वहाँ के साहित्य रसिक लोग जी खोलकर इनका स्वागत करते थे; क्योंकि इनकी ग़ज़लें वहाँ पहले ही पहुँचकर इनको प्रसिद्ध कर चुकी होती थीं।

१८८८ ई० में घूमते-फिरते ये हैदराबाद पहुँचे। वहाँ इनके आने की धूम मच गई। इनकी कविताएँ वहाँ पहले ही पहुँच चुकी थीं। पर पहली बार निज़ाम से इनकी मुलाकात न हो पाई। ये निज़ाम के लिये एक क़सीदा लिखकर दिल्ली चले आये। थोड़े दिनों के बाद निज़ाम ने इनको आदर-पूर्वक बुलाया। ये फिर हैदराबाद पहुँचे और निज़ाम के

उस्ताद हो गये। इनको वहाँ 'मुक़र्रबुल सुलतान जहाँ-उस्ताद, नाज़िम यारजंग, दबीरुद्दौला फसीहुल्मुल्क' की उपाधि मिली।

वहाँ इनकी जो प्रतिष्ठा हुई, वह उर्दू के किसी कवि को आजतक कहीं नसीब न हुई। इनको १५००) मासिक वेतन मिलता था। सवारी, मकान, नौकर-चाकर अलग। इन्हें मौक़े-मौक़े पर जो पुरस्कार मिलता था, वह सब ख़जाने में जमा होता जाता था। कहा जाता है कि छब्बीस हज़ार रुपये के लगभग इनका वहाँ जमा था, पर इनको रुपये की कमी थी ही नहीं। वे रुपये ख़ज़ाने में जमा के जमा ही रह गये। हैदराबाद में इन्हें ऊँची से ऊँची उपाधियाँ दी गईं। वहाँ कवि-सभाओं में एक ज़ोरदार लहर आगई। अनेक नवयुवक कविता की ओर झुक पड़े।

दाग़ के समय ही में अमीर मीनाई भी हैदराबाद पहुँचे थे। दाग़ ने बड़े प्रेम से उनकी अभ्यर्थना की थी। यद्यपि रामपुर में दोनों एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी रह चुके थे; पर दोनों एक दूसरे को हृदय से चाहते थे। यकायक अमीर के देहावसान से दाग़ को बड़ा खेद हुआ। एक ही समय में दाग़ दिल्ली के और अमीर लखनऊ के सबसे बड़े कवि थे। अमीर की मृत्यु के पाँच ही वर्ष बाद दाग़ भी पक्षाघात रोग से दुनिया से चल बसे। हैदराबाद में इन्होंने जीवन के अंतिम अठारह वर्ष बड़े सुख से काटे।

दाग़ हैदराबाद में शरीफ़ साहब की दरगाह में दफ़न किये गये। वहीं अमीर मीनाई भी दफ़नाये गये थे।

दाग़ का रूप-रंग बहुत प्रभावशाली था। ये बड़े मधुर-भाषी, मिलनसार और विनोद-प्रिय थे। कविता पढ़ने का ढंग बड़ा ही हृदय-स्पर्शी और स्वर चित्ताकर्षक था।

दाग़ की ग़ज़लों के कई दीवान छप चुके हैं। एक मसनवी भी है। उसका नाम है 'फ़रियादे दाग़'। मसनवी का क़िस्सा इनका निज का है। वह यह है कि मनीबाई नामकी एक वेश्या एक मेले में कलकत्ते से रामपुर आई। दाग़ उस पर फ़िदा हो गये। वह इनके नज़र की गई। बस,उसी के

प्रेम और विरह का वर्णन उस मसनवी में है। दाग़ की अपनी बीती होने के कारण उसमें अनुभव की सरसता भी ख़ूब है।

दाग़ की कविता का सबसे बड़ा महत्व भाषा की स्वच्छता है। उस समय तक ऐसी सादी, साफ और चटकीली भाषा उर्दू के किसी कवि ने नहीं लिखी थी। भावों के विषय में यह कहा जा सकता है कि कहीं-कहीं उसमें इश्क़ का बहुत ही खुला हुआ वर्णन है, जो लोगों की दृष्टि में अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गया है। इसीसे कुछ लोग दाग़ की कविता को चूमा-चाटी की कविता कहते हैं। पर अश्लीलता उर्दू के किस कवि में नहीं है? दाग़ में कुछ अधिक परिमाण मे है। समय भी तो उसी के अनुकूल था। समय ने दाग को पैदा किया, दाग़ ने समय को सहायता दी। आज तो दाग़ की ग़ज़लें सर्वत्र शौक़ से गाई और सुनी जाती है।

दाग़ ने कभी किसी की निन्दा नहीं लिखी, न किसी से लड़े-झगड़े। समकालीन साहित्यिकों के साथ इनका व्यवहार बड़ा प्रेमपूर्ण रहता था। विरोधियों के साथ भी ये शिष्टाचार का ध्यान रखते थे। यह बड़ी दिल-चस्प बात है कि शराबख़ोरी के समर्थन में नासह और ज़ाहिद की चुटकियाँ लेते हुये भी दाग़ ख़ुद शराब नहीं पीते थे।

दाग़ के शिष्यों की संख्या डेढ़ हज़ार के लगभग कही जाती है। दाग़ ने उर्दू-साहित्य को बहुत अच्छे-अच्छे कवि दिये। जिनमे से कुछ के नाम ये है—

इक़बाल, बेख़ुद, सायल, आग़ा, हसन, बेबाक, हैरत, आज़ाद, रसा, फ़ीरोज़, अश्क, अहसन, नूह नारवी, सीमाब आदि।

दाग की कविता के कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं—

१

आख़िर को इश्क़ कुफ़्र से ईमान हो गया।
मैं बुत-परस्तियों मे मुसलमान हो गया॥
रिन्दाने बेरया की है सुहबत किसे नसीब।
ज़ाहिद भी हम में बैठ के इन्सान हो गया॥

२

लोग कहते हैं बना दिल्ली बिगड़कर लखनऊ।
पर कहाँ ऐ दाग़ उस उजड़े हुये गुल का जवाब।।

३

चश्मे जानाँ से अलग हो ऐ हया!
यों झुके पड़ते नहीं बीमार पर।।

४

लुत्फ़-मै तुझसे क्या कहूँ ज़ाहिद।
हाय! कम्बख़्त तूने पी ही नहीं।।
उड़ गई यों वफ़ा ज़माने से।
कभी गोया किसी में थी ही नहीं।।
दिल्लगी दिल्लगी नहीं नासेह।
तेरे दिल को अभी लगी ही नही।।

५

जिसमें लाखों बरस की हूरे हों।
ऐसी जन्नत को क्या करे कोई।।

६

रंज वह रंज है जिसमें न बुतों को भूलें।
ऐश वह ऐश है जिसमे न ख़ुदा याद रहे।।

७

य' हूरों प मरता है बे देखे-भाले।
नहीं कोई आशिक़ मुसलमाँ से बढ़कर।।

८

वो दिल लेके चुपके से चलते हुये।
यहाँ रह गये हाथ मलते हुये।।
न इतराइये देर लगती है क्या।
ज़माने को करवट बदलते हुये।।

मुहब्बत में नाकामियों से अख़ीर।
बहुत काम देखे निकलते हुये॥
करे वादा पर वादा वो हमको क्या।
ये चकमे ये फिकरे हैं चलते हुये॥
ज़रा दाग़ के दिल प रक्खो तो हाथ।
बहुत तुमने देखे हैं जलते हुये॥

९

कहने देती नहीं कुछ मुँह से मुहब्बत तेरी।
लब प रह जाती है आ आ के शिकायत तेरी॥
अब तेरा ऐ दिले बेताब ख़ुदा हाफ़िज है।
कर चुके हम तो मुहब्बत में हिफ़ाज़त तेरी॥
देखिये करती है रुसवाये ज़माना क्या क्या।
मुझको यह चाह मेरी तुझको य' सूरत तेरी॥
याद सब कुछ है मुझे हिज्र के सदमे ज़ालिम।
भूल जाता हूँ मगर देख के सूरत तेरी॥
अदम आबाद को जाते हैं बशर ख़ाली हाथ।
मुझको है नाज़ कि ले जाऊँगा हसरत तेरी॥
है रकीबों की ज़बाँ पर भी सितम का शिकवा।
तू भी मजबूर है जालिम नहीं आदत तेरी॥
कूचाए यार में भी जी नहीं लगता ऐ दाग़!
देखिये जायगी किस रोज़ य' वहशत तेरी॥

१०

अहले उल्फ़त के लिये चाहिये शोहरत ऐ दिल!
नाम बिकता है मुहब्बत के ख़रीदारों का॥

११

गर मेरे बुते होशरुबा को नहीं देखा।
उस देखनेवाले ने ख़ुदा को नहीं देखा॥

इतना तो बता दे मुझे ऐ नासहे मुशफ़िक़ ।
देखा है कि उस माहेलका को नहीं देखा ।।
ऐसी नज़रे शोख़ में तमकीं नहीं देखी ।
इस तरह तग़ाफ़ुल में हया को नहीं देखा ।।
अग़यार के नाले तो बहुत तुमने सुने हैं ।
मज़लूम की तासीरे दुआ को नहीं देखा ।।
जब दाग़ को ढूँढ़ा किसी बुतख़ाने में पाया ।
घर में कभी उस मर्दे ख़ुदा को नहीं देखा ।।

१२

दिल लेके उसकी बज़्म में जाया न जायगा ।
यह मुद्दई बग़ल में छिपाया न जायगा ।।
जो दिल दिखा रहा है मज़ा हर घड़ी मुझे ।
आँखों से सौ बरस भी दिखाया न जायगा ।।
दुश्मन के आगे सर न झुकेगा किसी तरह ।
यह आसमाँ ज़मीं से मिलाया न जायगा ।।
ऐ 'दाग़' तुझको रिज़्क़ की ख़ाहिश है चर्ख़ से ।
इतना य' ग़म खिलायेगा खाया न जायगा ।।

१३

मज़ा हरएक को ताज़ा मिला है इश्क़े-जानाँ का ।
निगह को दीद का लब को फ़ुगाँ का दिल को अरमाँ का ।।
फ़लक पर्दा बना अहले ज़मीं की पर्दापोशी को ।
मगर इस दुश्मने-जाँ ने किसी का ऐब कब ढाँका ।।
किसी की शर्म आलूदह निगाहों में य' शोख़ी है ।
इसे देखा उसे देखा इधर ताका उधर झाँका ।।
तेरी आतश बयानी 'दाग़' रोशन है ज़माने पर ।
पिघल जाता है मिस्ले-शमा दिल हर इक सख़ुनदाँ का ।।

१४

ग़म को मैं इश्क़ में ग़मख्वारे दिलो-जाँ समझा।
रंज को राहत और आज़ार को दरमाँ समझा।।
और भी आग सिवा इश्क की भड़की तहे-खाक।
मैं सबा को जो तेरी जुम्बिशे दामाँ समझा।।
चाहता हूं कि निकल जाये कहीं सीने से।
दिल को मैं हिज्र में तेरे कोई अरमाँ समझा।।
कुछ तो थी बात कि नासेह की न मानी कुछ बात।
कुछ तो समझा जो न कुछ यह दिले-नादाँ समझा।।
सहल होना मेरी मुश्किल का बहुत मुश्किल है।
काम दुश्वार यह निकला जिसे आसाँ समझा।।
जान कर चाक किये मैंने वह दीवाना हूँ।
जेब को जेब गरेबाँ को गरेबाँ समझा।।

१५

खा गया मग्ज़ नासहे नादाँ।
मुझको इस ख़ैरख्वाह ने मारा।।

१६

बाक़ी जहाँ मे क़ैस न फ़रहाद रह गया।
अफ़साना आशिक़ों का फ़क़त याद रह गया।।
पाबन्दियों ने इश्क़ की बेकस रखा मुझे।
मैं सौ असीरियों में भी आज़ाद रह गया।।
यूँ आँख उनकी करके इशारा पलट गई।
गोया कि लब मे होके कुछ इर्शाद रह गया।।
ऐ 'दाग़' दिल ही दिल में घुले जब्ते इश्क़ से।
अफ़सोस शौक़े नालओ फ़रियाद रह गया।।

१७

सीने में अब कहाँ वह जोश, वह भी था इक वबाल सा।
बैठ गया कुछ उठते ही, छोड़ गया ख़याल सा।।
अर्ज़े वफ़ा पै देखना उसकी अदाए दिल फ़रेब।
दिल में कुछ ऐतबार सा आँख में कुछ मलाल सा।।
तारे ही गिनके काटते रात फ़िराक़ की मगर।
निकला सितारा भी कहीं कोई तो ख़ाल ख़ाल सा।।

१८

न पूछिए मेरे रोज़े सियह की ज़ुल्मत।
चिराग़ लेके भी ढूँढ़ा तो आफ़ताब न था।।

१९

दिल लेके मुफ्त कहते हैं कुछ काम का नहीं।
उल्टा शिकायतें हुई एहसान तो गया।।
होशो-हवासो-ताबो-तवाँ 'दाग़' जा चुके।
अब हम भी जाने वाले हैं सामान तो गया।।

२०

कभी मस्जिद में जो वह शोख़ परीज़ाद आया।
फिर अल्लाह के बन्दों को ख़ुदा याद आया।।
दी मुअज्ज़न ने शबे वस्ल अजाँ पिछली रात।
हाय कम्बख़्त को किस वक़्त ख़ुदा याद आया।।

२१

रहती थी उसकी याद वह रातें किधर गईं।
अब मुझको इन्तज़ार है उस इन्तज़ार का।।
तोबा जो मैंने की निकल आया ज़रा सा मुँह।
वह रंग रूप ही नहीं सुबहे बहार का।।
ऐ चश्मे यार देख तग़ाफ़ुल से बाज़ आ।
दिल टूट जायगा किसी उम्मीदवार का।।

आशिक़ की मुश्ते ख़ाक परेशाँ न हो कभी ।
उसमें जो मेल हो तेरे दिल के ग़ुबार का ।।
ग़श खाके दाग़ यार के क़दमों पै गिर पड़ा ।
बेहोश ने भी काम किया होशियार का ।।

२२

न देखो देखो तुम आईने को कि मुझको रहता है हौल हरदम ।
कहीं न जम जाये अक्स उसका रुखे मुसफ्फा पै जंग होकर ।।
वह हम है मजनूने दश्तो पै मजनूं को होता है हममे सौदा ।
कि चश्मे-आहू में बैठी वहशत हमारी वहशत से तंग होकर ।।
भरे हुए है हज़ार अर्मा फिर उस पै है हसरतों की हसरत ।
कहाँ निकल जाऊँ या इलाही मै दिल की वसअत से तंग होकर ।।
झुका ज़रा चश्में जंग-जू भी निकल गई दिल की आर्जू भी ।
बड़ा मजा उस मिलाप का है जो सुलह हो जाय जंग होकर ।।

२३

कोई गिला करेगा न गुस्से की बात का ।
कहना हो जो किसी को वो कह लो अताब में ।।
ऐ शेख जो बताये मये इश्क़ को हराम ।
ऐसे के दो लगाये भिगो कर शराब में ।।

२४

न पूछो कुछ मुसीबत दर्दमन्दाने मुहब्बत की ।
खुदा पर खूब रोशन है गुज़र जिस तरह करते हैं ।।
कभी यह दिल तमाशागाह था ऐशो-मसर्रत का ।
अब इसमें हसरतो शौक़ो तमन्ना सैर करते हैं ।।
कभी गिरता हूँ शीशे पर कभी गिरता हूँ साग़र पर ।
मेरी बेहोशियों से होश साक़ी के बिखरते हैं ।।

२५

मैं तो हर अन्दाज़े माशूकाना का दीवाना हूँ।
गुल पै बुलबुल हूँ अगर तो शमा पर परवाना हूँ।।
जिस प आशिक़ है सबा उस ख़ाक का ज़र्रा हूँ मैं।
बर्क़ जिस पर लोट है उस खेत का दाना हूँ मैं।।

२६

आँखे बिछाये हम तो उर्दू की भी राह में।
पर क्या करें कि तू है हमारी निगाह में।।
दिल में समा गई हैं क़यामत की शोख़ियाँ।
दो चार दिन रहा था किसी की निगाह में।।
उस तोबा पै है नाज़ तुझे ज़ाहिद इस क़दर।
जो टूट कर शरीक़ हो मेरे गुनाह में।।
आती है बात बात मुझे याद बार बार।
कहता हूँ दौड़ दौड़ के क़ासिद से राह में।।

२७

उससे पूछो तुम मेरी आशुफ्तगी।
ज़ुल्फ़ कह देगी तुम्हारे कान में।।
गर फ़रिस्तावश हुआ कोई तो क्या।
आदमीयत चाहिये इन्सान में।।
जिसने दिल खोया उसी को कुछ मिला।
फ़ायदा देखा इसी नुक़सान में।।

२८

दिल ही तो है न आये क्यों दम ही तो है न जाये क्यों।
हमको ख़ुदा जो सब्र दे तुझसा हसीं बनाये क्यों।।
लाग हो या लगाव हो कुछ भी नहीं तो कुछ नहीं।
बन के फरिश्ता आदमी बज़्मे-जहाँ में आये क्यों।।

फ़िक्र में हम तो रह गये और वह आज कह गये।
ऐब नहीं तो राज़े-दिल हमसे कोई छिपाये क्यों।।

२९

आँख पड़ती है कहीं पाँव कहीं पड़ता है।
सबकी है तुमको ख़बर अपनी ख़बर कुछ भी नहीं।।
काबे जाना भी तो बुतख़ाने से होकर ज़ाहिद।
दूर इस राह से अल्लाह का घर कुछ भी नहीं।।
नामकों में भी तो कुछ जलवा नज़र आता है।
बेकसी में तो उधर हूँ कि जिधर कुछ भी नहीं।।
इक जफ़ा तेरी जो कुछ भी नहीं तो सब कुछ है।
इक वफ़ा मेरी कि सब कुछ है मगर कुछ भी नहीं।।

३०

जलवे मेरी निगाह में कोनो-मकाँ के हैं।
मुझमें कहाँ छिपेंगे वो ऐसे कहाँ के हैं।।
खुलते नहीं हैं राज़ जो सोज़े निहाँ के हैं।
क्या फूटने के वास्ते छाले ज़ुबाँ के हैं।।
क़ासिद यहाँ से बर्क़ था पर निस्फ़ राह से।
बीमार की है चाल क़दम नातवाँ के हैं।।

३१

कभी फ़लक को पड़ा दिलजलों से काम नहीं।
अगर न आग लगा दूँ तो दाग़ नाम नहीं।।
वफ़ूरे यास ने याँ काम ही तमाम किया।
ज़ुबाने यार से निकली थी नातमाम 'नहीं'।।

३२

मिले मुझसे तो फ़रमाया तुम्हीं को दाग़ कहते हैं।
तुम्हीं हो माहे कामिल में तुम्हीं रहते हो लाले में।।

३३

हाथ निकले अपने दोनों काम के।
दिल को थामा उनका दामन थाम के।।
घूंट पीकर बादये-गुलफ़ाम के।
बोसे ले लेता हूँ ख़ाली जाम के।।
दाव-ए इश्क़ वफ़ा पर यह कहा।
सब बजा लेकिन मेरे किस काम के।।
अब उतर आये हैं वो तारीफ़ पर।
हम जो आदी हो गये दुश्नाम के।।
नालओ-फ़रियाद की ताक़त कहाँ।
बात करता हूँ कलेजा थाम के।।
दाग़ के सब हर्फ़ लिखते हैं जुदा।
टुकड़े कर डाले हमारे नाम के।।

३४

ऐ फ़लक दे हमको पूरा ग़म तो खाने के लिए।
वह भी हिस्सा कर दिया सारे ज़माने के लिये।।
ज़ाहिदे सद साला आया मैकदे में भूलकर।
ला शराबे कोहना साक़ी इस पुराने के लिये।।
तुमसे बचकर इक वफ़ा हिस्से में अपने लग गई।
तुमने ख़ूबी कौनसी छोड़ी ज़माने के लिये।।
आगया कुछ याद दिल भर आया आँसू गिर पड़े।
हम न रोये थे तुम्हारे मुस्कराने के लिये।।
मर गये तो मर गये हम इश्क़ में नासेह को क्या।
मौत आने के लिये है जान जाने के लिये।।

३५

जहाँ लग गई कारगर हो गई।
मेरी आह तेरी नज़र हो गई।।

फ़रिश्ते हों मुख़बिर तो क्या कीजिये।
यहाँ बात की वाँ ख़बर हो गई।।
शबे-वस्ल ऐसी खिली चाँदनी।
वो घबरा के बोले सहर हो गई।।
ग़मे-हिज्र से दाग़ मुझको नजात।।
यक़ीं था न होगी मगर हो गई।।
यहाँ सुबहे पीरी मे पहले ही दाग़।
जवानी चिराग़े सहर हो गई।

३६

हज़रते दाग़ जहाँ बैठ गये बैठ गये।
और होंगे तेरी महफ़िल से उभरने वाले।।

३७

ख़ूब तक़दीर की ख़ूबी ने किया है बर्बाद।
जाबजा मुझको लिये फिरती है शोहरत तेरी।।
कहीं दुनिया में नहीं इसका ठिकाना ऐ दाग़!
छोड़कर मुझको कहाँ जाय मुसीबत मेरी।।

३८

ज़ाहिद शराबे नाब की तासीर कुछ न पूछ।
अक्सीर है जो हल्क़ के नीचे उतर गई।।
रहती है कब बहारे जवानी तमाम उम्र।
मानिन्द बूये गुल इधर आई उधर गई।।

३९

आगे तो नहीं 'नहीं' सुनी थी।
अब तकिया कलाम होगई है।।
जागीर जुनूं की क़ैस के बाद।
अब दाग़ के नाम होगई है।।

४०

बशर ने ख़ाक पाया लाल पाया या गुहर पाया।
मिज़ाज अच्छा अगर पाया तो सब कुछ उसने भर पाया।।

४१

खोया गया हूँ दे के पता नामावर को मैं।
अपनी ख़बर को जाऊँ इलाही किधर को मैं।।
मुझको तबाह चश्मे मुरव्वत ने कर दिया।
मिल जाय तो चुराऊँ किसी की नज़र को मैं।।

४२

इस चमन में गो वरंगे सब्ज़ये बेगाना हूँ।
गुल है रंगीं हो मैं अपने रंग का दीवाना हूँ।।
मुझसे ऐ गब्रो मुसल्माँ किसलिए इतना तपाक।
क़ाबिले मस्जिद न हरगिज़ लायक़े बुतख़ाना हूँ।।

४३

याँ दिल में ख़याल और है वाँ मद्दे नज़र और।
है हाल तबीअत का इधर और उधर और।।
ठहरा है वहाँ मशवर-ए क़त्ल हमारा।
लो हज़रते दिल और सुनो ताज़ा ख़बर और।।

४४

कोई नामो-निशाँ पूछे तो ऐ क़ासिद बता देना।
तख़ल्लुस दाग़ है वह आशिक़ों के दिल में रहते हैं।।

४५

दाग़ वह बेहतर है जो मरहम बना।
दर्द वह अच्छा जो दवा हो गया।।

४६

तुम्हारे शेर में गर्मी है किस क़यामत की।
जले हुए हो मगर दाग़ इन्तहा के तुम।।

४७

दाग़ को देख के बोले, यह शख़्स।
आप ही आप जला जाता है।।

४८

वह हँस कर देखते हैं दाग़ के दाग़।
किसी की सैर हो गुलशन किसी का।।

४९

नाम को दाग़ हूँ मगर ज़ालिम।
तू जलाये तो जल नहीं सकता।।

५०

हज़रते दाग़ यह है कूचए क़ातिल उठिये।
जिस जगह बैठते हैं आप तो जम जाते हैं।।

५१

दिल को इस आजिज़ी से देता हूँ।
कोई जाने सवाल करता है।।

५२

लब से दुश्नाम तो वह दिल से दुआ देते हैं।
घोल कर ज़हर मुझे आबे-बक़ा देते हैं।।
आके बाज़ारे मुहब्बत में ज़रा सैर करो।
लोग क्या कहते हैं क्या लेते हैं क्या देते हैं।।

५३

ग़म से कहीं नजात मिले चैन पायें हम।
दिल ख़ून में नहाये तो गंगा नहायें हम।।

५४

देखते ही मुझे महफिल में उन्हें ताब कहाँ।
ख़ुद खड़े हो गये कहते हुये बाहर बाहर।।

५५

हिज्र की यह रात कैसी रात है।
एक मैं हूँ या ख़ुदा की ज़ात है।।

५६

यह क्या कहा कि दाग़ को पहचानते नहीं।
वह एक ही तो शख़्स है तुम जानते नहीं।।

५७

यह तौर दिल चुरा के हुआ उस निगाह का।
जैसे क़सम के वक़्त हो झूठे गवाह का।।

५८

यह क्या कहा कि मेरी बला भी न आयेगी।
क्या तुम न आओगे तो क़ज़ा भी न आयेगी।।

५९

अजब अपना हाल होता जो बिसाले यार होता।
कभी जान सिदक़े होती कभी दिल निसार होता।।
जो तुम्हारी तरह तुमसे कोई झूठे वादे करता।
तुम्हीं मुंसिफ़ी से कहदो तुम्हें ऐतबार होता।।
तेरे वादे पर सितमगर अभी और सब्र करते।
अगर अपनी ज़िन्दगी का हमें ऐतबार होता।।
तुम्हें नाज़ हो न क्योंकर कि लिया है दाग़ का दिल।
यह रक़म न हाथ लगती न यह इफ़्तख़ार होता।।

६०

तुमने बदले हमसे गिन गिन के लिये।
हमने क्या चाहा था इस दिन के लिये।।
फ़ैसला हो आज मेरा आप का।
यह उठा रक्खा है किस दिन के लिये।।

दिल के लेने को ज़मानत चाहिए।
और इतमीनान ज़ामिन के लिये।।
मै-कशो अब आई शायद फ़स्ले गुल।
बुलबुलों ने चोंच में तिनके लिये।।

६१

भवे तनती है खंजर हाथ मे है तन के बैठे है।
किसी से आज बिगड़ी है कि वह यूँ बन के बैठे है।।
य 'गुस्ताखी य' छेड़ अच्छी नही है ऐ दिले नादां!
अभी वह रूठ जायेंगे अभी वह मन के बैठे है।।
तलाशे मंज़िले मक़सद की गर्दिश उठ नहीं सकती।
कमर खोले हुये रस्ते में हम रहज़न के बैठे हैं।।
निगाहे शोख चश्मे शौक़ में दर पर्दा छनती है।
कि वह चिलमन में है नज़दीक हम चिलमन के बैठे है।।

६२

उर्दू है जिसका नाम हमीं जानते हैं दाग़।
हिन्दोस्तां में धूम हमारी ज़ुबां की है।।

६३

नहीं खेल, ऐ दाग़, यारों से कह दो—
कि आती है उर्दू ज़बां आते-आते।।

६४

मरीज़े इश्क़ की क्या पूछते हो? यह पूछो—
कि ज़िंदा कोई भी तीमार-दार बाक़ी है।।

६५

रहती है कब बहारे जवानी तमाम उम्र।
मानिन्द बूये गुल इधर आई उधर गई।।

आसी

आसी उपनाम; मौलाना शाह अब्दुल अलीम नाम; स्थान सिकन्दरपुर, ज़ि० बलिया; जन्म-काल १८३३ ई०; मृत्यु-काल १९१६ ई०।

आसी ग़ाजीपुर में प्रायः अधिक रहते थे। इसीलिए ये 'आसी ग़ाजीपुरी' के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। अपने समय में ये अरबी और फारसी के अद्वितीय पंडित माने जाते थे। अरबी-फ़ारसी पर इनका मातृभाषा के समान अधिकार था। इनके सैकड़ों शिष्य हैं। शायरी का शौक़ इनको लड़कपन ही से था। कविता की कला इन्होंने नासिख़ के खान्दान से सीखी थी।

किसी समय इनकी कविता कठिन शब्दों और दुरूह भावों से भरी हुई होती थी; पर जब से इन्होंने इश्क़ मज़ाज़ी छोड़कर इश्क़ हक़ीक़ी की राह पकड़ी, तब से इनकी कविता में भाषा और भाव दोनों परिमार्जित और सुबोध हो गये।

आसी सूफ़ी मज़हब के थे। इससे इनकी कविता में आत्म-रहस्य ही का कवित्वमय वर्णन अधिक है। ये बड़े सात्विक विचार के मनुष्य थे। मुसलमानों और हिन्दुओं के साथ इनका एक-सा प्रेम और व्यवहार था। इनके आचारण का प्रभाव इनके महल्ले के लोगों पर बहुत अच्छा पड़ता था।

आसी की कविता में भक्ति, वैराग्य, विरह और प्रेम का अद्भुत वर्णन है। ऐसा सरस और सुन्दर वर्णन उर्दू की पुरानी कविता में बहुत कम देखने को मिलता है।

आसी को अपनी कविताओं का जमा करना और छपाना पसन्द नहीं था। इनकी कविताओं के क़ाग़ज़ रद्दी हालत में इधर-उधर बिखरे

पड़े रहते थे। शिष्यों ने उन्हें जमा कर लिया था। अब वही पुस्तकाकार मिलते हैं। जौनपुर, गोरखपुर और काशी में इनका दीवान छपा था।

यहाँ आसी की कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

१

इतना तो जानते हैं कि आशिक़ फ़ना हुआ।
और इससे आगे बढ़ के ख़ुदा जाने क्या हुआ।।
पहचानता वो अब नहीं दुश्मन को दोस्त से।
किस क़ैद से असीरे-मुहब्बत रिहा हुआ।।

२

जीने ने यहाँ के मार डाला 'आसी'।
सुनते हैं कि फिर हश्र में जीना होगा।।

३

या मुझको तेरा हुस्न न भाया होता।
या हर रगो-पै में तू समाया होता।।
या दिल ही में जलवागर अगर होना था।
हर जुज़ वो बदन को दिल बनाया होता।।

४

नावक हसरते बस्लो ग़में फ़ुरकत मुझको।
अपनी हस्ती से किसी तरह हो गफ़लत मुझको।।
हूँ गुनहगार मगर हसरते दीदार भी है।
जलवा तेरा हो तो दोजख भी है जन्नत मुझको।।
मैं भी बातिल मेरी हस्ती भी सरासर बातिल।
यह सुझाई है अनलहक़ की हक़ीक़त मुझको।।
नूरे ख़ुरशेद सितारों को मिटा देता है।
तुम हो पहलू में तो महफ़िल भी हो ख़िलवत मुझको।।
बेहिजाबी कभी मुमकिन नहीं जब तक मैं हूँ।
ख़लल अन्दाज़ हूँ कर दीजिये रुख़सत मुझको।।

५

'आसी' जो गुल से गाल किसी के हुये तो क्या।
माशूक वह कि सबसे निराला कहें जिसे।।

६

अहदे शबाब अहदे वफ़ाए निगार है।
कितना ही पायदार हो नापायदार है।।
हस्ती है ऐन मौजए दरियाय नेस्ती।
दरकार क़ूवते निगहे ऐतबार है।।
बुनियादे रोज़गार की न महकमी न पूछ।
गुम्बद हुबाब का तो बहुत इस्तवार है।।
वायज़ मेरा मुआमला मेरे ख़ुदा को सौंप।
मैं हूँ गुनाहगार वो आमर्ज़गार है।।
मस्ती में कोई राज़ जो आसी से फ़ाश हो।
माज़ूर है अभी कि नया बादःख़्वार है।।

७

बेहिजाबी यह कि हर सूरत में जलवा आशकार।
घूँघट उस पर वह कि सूरत आजतक नादीदः है।।

८

पड़े हैं सूरते नक़्शे क़दम न छेड़ो हमें।
हम और ख़ाक में मिल जायँगे उठाने से।।

९

बरबाद किया जिससे जहाँ आँख लड़ाई।
ख़ाक उड़ती है आलम में तेरे मौजे नज़र से।।

१०

लाल वो गुल का य' दीवाना तमाशाई न था।
बाग़ में हर फूल तेरे हुस्न का आईनः था।।

११

कुछ न कुछ वादे मुख़ालिफ़ बज़्मे हस्ती में चला।
पीरी आई है तो मिसले शमा थर्राता हूँ क्यों?

१२

उदू क्या मौत है आने में उसके हम जो डरते हैं।
तू क्या उम्रे रवाँ है जो तेरे जाने से मरते हैं।।

१३

रहे मुलके अदम का नाम सुनकर दम निकलता है।
य' वो रस्ता है जिसमें हर मुसाफ़िर मर के चलता है।।

१४

इश्क़ कहता है कि आलम से जुदा हो जाओ।
हुस्न कहता है जिधर जाओ नया आलम है।।

१५

वहाँ पहुँच के य' कहना सबा सलाम के बाद।
कि तेरे नाम की रट है ख़ुदा के नाम के बाद।।

१६

समझो हमारे इश्क़ की हद अपने हुस्न से।
आईनादार हालते बुलबुल है रूए गुल।।

१६

हाय! इक चाँद के टुकड़े ने सितारों की तरह।
मुद्दतों शाम से ता सुबह जगाया हमको।।

१८

घट गई वस्ल में फ़ुरकत में बढ़ी थी जितनी।
रात आशिक़ की कभी दिन के बराबर न हुई।।

१६

बेखुदी ले गई कहाँ हमको।
देर से इन्तज़ार है अपना।।

२०

ताब दीदार जो लाये मुझे वह दिल देना।
मुँह क़यामत में दिखा सकने के क़ाबिल देना।।

२१

आशिक़ी में है महवियत दरकार।
राहते वस्ल व रंजे फ़ुरक़त क्या?
जिनमें चर्चा न कुछ तुम्हारा हो।
ऐसे अहबाब ऐसी सोहबत क्या?
उससे मिल जो हमेशा साथ रहे।
बेवफ़ाओं से लुत्फ़े सोहबत क्या?
और हिम्मत बलन्द कर ऐ शेख़!
तमअ व ख़ौफ़ की इबादत क्या?
'आसी' ए मश्त का कलाम सुनो।
वाज़ क्या पन्द क्या नसीहत क्या?

२२

बुरा क्यों मानें हम जो भेस चाहो शौक़ से बदलो।
हमारी ही नुमाइश है तुम्हारी ख़ुदनुमाई में।।
अभी ख़त भी नहीं आया कि होते हो जुदा हमसे।
तुम अपने हुस्न से भी बढ़ के निकले बेवफ़ाई में।।

२३

बनूँ बगूला वो ख़ाक हूँ मैं बहूँ लहू बन के हूँ वो पानी।
जलाऊँ क़िस्मत वो आग हूँ मैं उड़ाऊँ खाक अपनी वह हवा हूँ।।

२४

हुबाबे बहर यह कहते हुये ऊपर उभरते हैं।
फना दम भर में है दम आशनाई का जो भरते हैं।।
कटे यह रात क्योंकर हाय क्या सदमे गुज़रते हैं।
न वह आते न सब्र आता न नींद आती न मरते हैं।।

नतीजा ज़िन्दगी का इश्क़बाज़ी के सिवा क्या है ?
हक़ीक़त में वही जीते हैं बस तुम पर जो मरते हैं ।।
तुम्हें कसरत से नफरत और मुझे जौक़ वहदत हो ।
कुछ इससे और बढ़ जाओ तो वहदत हो न कसरत हो ।।

२५

मेरी नज़रों में तो हो डर तेरा तेरी मुहब्बत हो ।
न दुनिया हो न उक़बा हो न दोज़ख़ हो न जन्नत हो ।।
सिवा तेरे न मायल हो किसी पर वह तबीअत दे ।
तेरी उल्फ़त हो तेरा इश्क हो तेरी मुहब्बत हो ।।
मुझे हर तरह की ख़ुद-बीनियों से कर दे बेगाना ।
जो आईना भी मैं देखूँ नुमायाँ तेरी सूरत हो ।।

२६

जान दो दिन की है मेहमान सताते क्यों हो ?
आप रोते हुये आये हैं रुलाते क्यों हो ?
तुम नहीं कोई तो सब में नज़र आते क्यों हो ?
सब तुम्हीं तुम हो तो फिर मुँह को छिपाते क्यों हो ?
हमने माना कि वो आँखें नहीं जादू 'आसी' ।
रात भर वस्ल में फिर उनको जगाते क्यों हो ?

२७

मुँह तेरा चश्मे सख़ुन-संज की तस्वीर न हो ।
जो ख़मोशी में भरी शोखिये तक़रीर न हो ।।
जिसको देखा उसे छाती से लगाये देखा ।
दिल जिसे कहती है ख़िलकत तेरी तस्वीर न हो ।।
वह भी कुछ इश्क़ है जो दर्द की लज़्ज़त न चखे ।
यह भी नाला है जो हसरत-कशे तासीर न हो ।।
हाय उस शख़्स की क़िस्मत जिसे वह राग मिले ।
जुज़ तेरे मिलने के जिसकी कोई तदबीर न हो ।।

२८

कहाँ दिल और कहाँ उसके हुस्न का जलवा ।
किया है इश्क़ ने कूज़े में बन्द दरिया को ।।
हमारे ख़ानए-दिल को अगर किया बर्बाद ।
कहीं जगह न मिलेगी तेरी तमन्ना को ।।
कहीं किनारा है उसके मुहीते हिम्मत का ।
जो ऐन प्यास में समझे सुराब दरिया को ।।
कमी न जोशे-जुनूं में न पाउँ मैं ताक़त ।
कोई नहीं जो उठा लाये घर में सहरा को ।।

२९

जो यह ज़िद है कोई बुलबुल की सूरत नाज़ुक-बदन क्यों हो ?
कोई गुलफ़ाम क्यों हो गुलबदन गुल पैरहन क्यों हो ?
हमारे बाद तू बदनाम ऐ रश्के-चमन क्यों हो ?
हमें जब डूब ही मरना तेरा चाहे-ज़क़न क्यों हो ?
तुम्हीं सच सच बताओ कौन था शीरीं की सूरत में ।
कि मुश्ते ख़ाक की हसरत में कोई कोहकन क्यों हो ?
किसी परवाने के जल बुझने का ग़म हो जो ऐ आसी !
निकलकर कोई ख़िलक़त से चिराग़े-अंजुमन क्यों हो ?

३०

हाय ! इक चाँद के टुकड़े ने सितारों की तरह ।
मुद्दतों शाम से ता-सुबह जगाया हमको ।।
हम न कहते थे कि ऐ दिल न किसी पर जी दे ।
ज़िन्दगी रोग है अब तुझको बता या हमको ।।
देखिए ख़ाक में हम मिल गये मानिन्द सरश्क ।
आपने किसलिए आँखों से गिराया हमको ।।
जान हम समझे थे जिसको वो हमें दिल समझा ।
हाय किस प्यार से पहलू में बिठाया हमको ।।

वस्ल की रात भी उस रश्के चमन ने 'आसी'।
सूरते शबनम गुल खूब रुलाया हमको ।।

३१

कहते हो कि और को न चाहो ।
मालूम हुआ कि तुम खुदा हो ।।
हाँ वायज़ो और को न चाहो ।
अपने दिल के तो आशना हो ।।

३२

मुफ़लिसी पज़मुर्दगी है गुञ्चए गुलशन से पूछ ।
आये क्या मुँह पर हँसी मुट्ठी मे जब तक ज़र न हो ।।
बुलबुले की तरह ऐ दीवानए नाज़ुक दिमाग़ ।
सर वो पैदा कर कि जिसको हाजते अफसर न हो ।।
आख़िर इक दिन ऐ गुलेतर देख मुरझाना पड़ा ।
इस क़दर भी अपने जामे से कोई बाहर न हो ।।
आँसू आँखों में भर आये सुन के 'आसी' का कलाम ।
दर्द हो दिल मे तो बातों में असर क्योंकर न हो ।।

३३

है इश्क़ वह शोला कि फुका जाता है तन मन ।
इस आग को भड़का के खुदी मेरा जला दो ।।

३४

हाय ! मुँह फेर के ज़ालिम ने किया काम तमाम ।
वस्ल तो वस्ल जुदाई भी मुयस्सर न हुई ।।
घट गई वस्ल में फ़र्कत में बढ़ी थी जितनी ।
रात आशिक़ की कभी दिन के बराबर न हुई ।।
बेकसी में शबे-ग़म मौत तो सोई थी कहीं ।
साँस आई भी जो कम्बख्त तो खंजर न हुई ।।

३५

अदावत इन्तहाए दोस्ती है ।
उदूए-जाँ है मेरा यार जानी ।।
अनलहक़ और मुश्ते-ख़ाके मंसूर ।
ज़रूर अपनी हक़ीक़त उसने जानी ।।
हज़ारों हसरतें उसमें भरी थीं ।
ग़ुबार उस काफ़िले की है निशानी ।।
जो बालों में सियाही रह गई है ।
बुढ़ापे में है यह दाग़े जवानी ।।
भला 'आसी' के शिकवों का गिला क्या ?
मुहब्बत को है लाज़िम बदगुमानी ।।

३६

दर्दे दिल कितना पसन्द आया उसे ।
मैंने जब की आह उसने वाह की ।।
राहे-हक़ की है अगर 'आसी' तलाश ।
ख़ाके-रह हो मर्दे-हक़-आगाह की ।।

३७

वस्ल की शब दरो-दीवार से आई आवाज़ ।
ख़्वाहिशों को जो पछाड़े वो बड़ा रुस्तम है ।।
क्यों न दी जान किसी पर कि न फिर मौत आती ।
ज़िन्दगी मुफ्त गँवाई य' बड़ा मातम है ।।
हाय ! क्या बोझ बुढ़ापे में भरा था अल्लाह ।
सर तो सीने में घुसा पीठ कमर तक ख़म है ।।
इश्क कहता है कि आलम से जुदा हो जाओ ।
हुस्न कहता है जिधर जाओ नया आलम है ।।

३८

पसे मर्ग तो उसको मैं देखूँ भला कहीं ऐसे भी बख़्त ख़ुदा दे मुझे।
सरे-गोर जो आये वो महेलका कोई ख़्वा-ब्रे-लहद से जगा दे मुझे।।
तेरे बारे फ़िराक़ से पिस मैं गया दिल ग़मज़दा सीने में ख़ून हुआ।
मगर अब भी तो कोई बरंगे हिना तेरे क़दमों से लेके लगा दे मुझे।।
तेरे कूचे में आके मरा हूँ सनम न है आँखों में जान न सीने में दम।
य' पड़ा जो हूँ सूरते नक्शे क़दम कोई ख़ाक में आके छिपा दे मुझे।।

३९

अयाँ ऐसे कि हर शै मे निहाँ थे।
निहाँ ऐसे कि हर शै से अयाँ थे।।
किसी ने भी न देखा हम जहाँ थे।
बदन थी ख़ल्क़ हम मानिन्दे जाँ थे।।
जब उस कूचे की हासिल थी गदाई।
ख़ुदाबन्दा ज़मीनो-आसमाँ थे।।
कुछ ऐसे नश्शए हस्ती से बहके।
नहीं जाना कहाँ आये कहाँ थे।।
सरापा दर्द थे मानिन्द दिल हम।
मरज़ थे पर नसीबे दोस्ताँ थे।।
अयाँ ऐसे कि थे सबमें निहाँ हम।
निहाँ ऐसे कि हर शै में अयाँ थे।।
उठे हम उठ गया पर्दा दुई का।
हमारे उसके बस हम दर्मियाँ थे।।
न रहते थे ठिकाने एक साइत।
कभी हम भी हवासे आशिकाँ थे।।

४०

कहाँ वो आये किधर से आये कहाँ वो ठहरे किधर सिधारे।
उन्हीं में हम मह्व थे कुछ ऐसे कि उनकी भी कुछ ख़बर नहीं है।

४१

इन्हीं कानों से अनलहक़ के सुने हैं नारे।
आदमी इश्क़ में क्या जानिए क्या होता है।।
हुस्न की चारागरी का है बड़ा शोर मगर।
दर्दे-उल्फत कहीं मुहताजे-दवा होता है।।
इश्क़ कामिल हो तो मुर्शिद नहीं ऐसा कोई।
खुद वही क़िबला वही क़िब्लानुमा होता है।।
दिल जो था ख़ास घर उसका न बनाया अफ़सोस!
मसजिदो-दैर बनाया करो क्या होता है।।

४२

लाई अदम में किश्तिए उम्रे-रवाँ मुझे।
पहुँचा दिया है बैठे-बिठाये कहाँ मुझे।।
क्योंकर कहूँ कि चार निगाहें उदू से कीं।
आधी निगाह ने तो किया नीमजाँ मुझे।।
लाई अदम से ले वही चल जानिबे अदम।
कैसी रफ़ीके-रह मिली उम्रे-रवाँ मुझे।।
वह आह कर कि फूँक दे दोनो जहान को।
भड़का रहा है शोलए-सोज़े-निहाँ मुझे।।
'आसी' शहीदे इश्क हूँ मुर्दा न जानना।
मरकर मिली है ज़िन्दगीए-जावदाँ मुझे।।

४३

फिर मिज़ाज उस रिन्द का क्योंकर मिले।
जिसको उसके हाथ से साग़र मिले।।
काबा बुतख़ाना कलीसा सौमेआ।
फिरते हैं दर दर कि तेरा घर मिले।।
कुछ न पूछो कैसी नफ़रत हमसे है।
हम हैं जब तक वह हमें क्योंकर मिले।।

४४

मिलने की यही राह न मिलने की यही राह।
दुनिया जिसे कहते हैं अजब राह-गुज़र है।।
वह दौर चला जामे-मये-बेखबरी का।
हम वह हैं कि वह हम नहीं इतनी भी खबर है।।
उम्र अपनी रवाँ है तो अक़ामत से सरोकार।
समझे अगर इन्सान तो दिन रात सफ़र है।।
शर्म आती है कहते हुए आशिक़ हूँ किसी का।
नालों मे न तासीर न आहों में असर है।।
अंजाम की मंजिल है कड़ी देखिए क्या हो।
दुनिया में जो आये हो य' आगाज़े सफ़र है।।
जुज़ नाम निशाँ और पता कुछ नही उसका।
उश्शाक़ की हस्ती भी हसीनों की कमर है।।

४५

हाँ, यह माना कि जो निकले भी तो मर कर निकले।
पर यह हैरत है कि उस कूचे से क्योंकर निकले।।
दिल ही खो बैठे जो सीने से लगाया उनको।
दिल जिन्हे समझे हम अफ़सोस वो दिलवर निकले।।

४६

नज़ारा तेरा बरमला चाहता हूँ।
कि पर्दे की सूरत उठा चाहता हूँ।।
खुदा से तेरा चाहना चाहता हूँ।
मेरा चाहना देख क्या चाहता हूँ।।

४७

जर्रे से जो देखने में कमतर होंगे।
तेरे लिये वह भी मेहरो-अनवर होंगे।।

ऐ दिल! न बराबरी किसी की करना।
हाँ ख़ाक के इक रोज़ बराबर होंगे॥

४८

भुज फरकत तोरे मिलन को, स्रवनन सुनन को बैन।
मन माला तोहि नाम का, जपत रहत दिन रैन॥
कर कम्पे लिखनी डिगे, अंग अंग थहराय।
सुधि आवत छाती फटै, पाती लिखी न जाय॥
मन माँ राखूँ मन जरे, कहूँ तो मुख जरि जाय।
गूँगे का सपना भयो, समझ समझ पछताय॥
हम तुम सामी एक हैं, कहन सुनन को दोय।
मन को मन से तौलिए, दो मन कभी न होय॥
काजर दूँ तो किरकिराय, सुरमा दिया न जाय।
जिन नैनन माँ पिउ बसै, दूजा कौन समाय॥
मैं चाहूँ कि उड़ चलूँ, पर बिन उड़ा न जाय।
काह कहौं करतार को, जो पर ना दिया लगाय॥
ओस ओस सब कोई कहे, आँसू कहे न कोय।
मोहि बिरहिन के सोग में, रैन रही है रोय॥

शेफ़्ता

शेफ़्ता उपनाम; पिता का नाम नवाब मुर्तज़ा खाँ बहादुर; जन्म-स्थान दिल्ली; जन्म-काल १८०६ ई; मृत्यु-काल १८६९ ई०।

शेफ़्ता के बाबा वलीदाद खाँ कोहाट से जीविका की खोज में इधर आये थे और फर्रुखाबाद में बस गये थे। जब दिल्ली में मुग़ल खान्दान पर जवाल आया, तब शेफ़्ता के पिता इन्दौर चले गये और वहां होलकर की फ़ौज में एक अफ़सर नियुक्त हो गये। उन दिनों लार्ड लेक से होलकर का झगड़ा चल रहा था। नवाब मुर्तज़ा ने बीच-बिचाव करा दिया; पर वास्तव में वे भीतर ही भीतर लार्ड लेक से मिल गये थे और उन्होंने होलकर के साथ विश्वास-घात किया। इसके बदले में इनको दिल्ली के समीप गुड़गाँव जिले में तीन लाख सालाना आमदनी के दो गाँव जागीर में मिले। इसके एकही वर्ष बाद उत्तर प्रदेश के बुलदंशहर ज़िले में जहाँगीराबाद को उन्होंने स्वयं खरीद लिया, जो कि उनके वारिसों के पास अबतक मौजूद है। जब नवाब मुर्तज़ा मर गये, तब अंग्रेज़ी सरकार ने गुड़गाँव वाली जागीर वापस लेली और उनके वारिसों के लिये बीस हज़ार रुपये सालाना की पेंशन मुक़र्रर कर दी।

शेफ़्ता को अरबी-फ़ारसी और मुसलमानी मज़हब की अच्छी शिक्षा दी गई थी। १८३८ ई० में वे हज को गये तो आबे-ज़मजम में अपना कफ़न भिगोकर ले आये थे।

ग़ालिब शेफ़्ता का बड़ा आदर करते थे। दोनों में प्रेम-भाव भी बहुत था। शेफ़्ता उर्दू में मोमिन से और फ़ारसी में ग़ालिब से इसलाह लेते थे।

शेफ़्ता ऊँचे दरज़े के शायर थे। उनकी एकही पुस्तक 'गुलशने बेख़ार'

प्रकाशित हो चुकी है, जिससे उनकी काव्य-शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। वे अच्छे समालोचक भी थे।

यहाँ शेफ़्ता के कुछ शेर दिये जाते हैं:—

१

तूफ़ाने-नूह लाने से ए चश्म ! फ़ायदा ?
दो अश्क भी बहुत है अगर कुछ असर करें ।।

२

शायद इसी का नाम मुहब्बत है 'शेफ़्ता'।
इक आग-सी है सीने के अंदर लगी हुई ।।

३

न पूछो शेफ़्ता का हाल साहब।
य' हालत है कि अपने में नहीं है ।।

४

गह हमसे ख़फ़ा वो हैं गह उनसे ख़फ़ा हम।
मुद्दत से इसी तरह निभी जाती है बाहम ।।

५

हसरत से उसके कूचे को क्यों कर न देखिये।
अपना भी इस चमन में कभी आशियाना था ।।

६

न दिया हाय मुझे लज़्जते-आज़ार ने चैन।
दिल हुआ रंज से गर खाली तो जी भर आया ।।

७

हम तालिबे शुहरत हैं, हमें नंग से क्या काम ?
बदनाम अगर होंगे तो क्या नाम न होगा ?

८

हमसे पूछें कि इसी खेल मे खोई है उम्र।
खेल जो लोग समझते हैं लगाना दिलका ।।

उर्दू-शायरी में नई कलम

उर्दु-शायरी के विशाल वृक्ष मे आजाद और हाली ने जो नई कलम बाँधी, वह सरसब्ज़ होकर असली वृक्ष को भी अपने साये में ले लेना चाहती है। उसमें बराबर टहनियाँ फूट रही है; और उनके फूलने-फलने के दिन नजदीक दिखाई पड़ने लगे है। पर अभी तक उर्दू-शायरों के जो नये गीत सामने आये है, वे ज़्यादातर फिल्मी गाने है और उनमें सिनेमा के पैसे की बू आती है। उनमे कही शायर नहीं दिखाई पड़ता। उनसे कही अच्छे गाने गाँवों की हवा मे बहते हुए मिलते है, जो अपढ़ ग्रामीणों के रचे हुए होते है। पर हमें उर्दू-शायरों के इस प्रयास का स्वागत ही करना चाहिए।

यहाँ उर्दू की इस नई कलम के मशहूर शायरों के परिचय और उनकी शायरी के नमूने दिये जाते है:—

आज़ाद

आज़ाद उपनाम; शम्सुलउल्मा मौलवी मुहम्मद हुसैन नाम; जन्म-स्थान दिल्ली; जन्म-काल १८२९ ई०; मृत्यु-काल १९१० ई०।

आज़ाद बचपन ही मे बड़े प्रतिभाशाली थे। उनके पिता ज़ौक़ के मिलने वालों में थे; और जब ज़ौक़ के पास जाते थे तो बेटे को भी साथ ले जाते थे। आते-जाते और मुशायरों में बड़े-बड़े उस्तादों की रचनाये सुनते-सुनते आज़ाद पर भी शायरी का रंग चढ़ने लगा। ये ज़ौक़ के शागिर्द हो गये। ज़ौक़ भी इनको बहुत चाहते थे।

१८५७ ई० के गदर में दिल्ली में जब उथल-पुथल मच गई, साहित्यिक लोग भागकर लाहौर में जा टिके। जिनमें आज़ाद भी थे। पंजाब में उन दिनों कर्नल हालराइड शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर थे। वे फ़ारसी और उर्दू अच्छी जानते थे। उनके सुझाव पर आज़ाद ने 'अंजुमने-

पंजाब' के नाम से एक साहित्य-सभा खोली, जिसमें उर्दू-कविता के सुधार के लिये समालोचनात्मक भाषण होते थे। आज़ाद ने भाषण के अतिरिक्त नमूने के कुछ पद्य भी तैयार किये, और अपने विचारों के समर्थकों का एक दल भी संगठित किया। सन् १८७४ में उस सभा के उद्घाटन के अवसर पर उन्होंने उर्दू-शायरी के दुर्गुणो को खुले-आम वर्णन किया और उन्हें दूर करने के लिये शायरों को प्रोत्साहित किया। आज़ाद और हाली ने उर्दू शायरी का कायाकल्प कर दिया।

आज़ाद ने भी पहले-पहल इश्क़ी शायरी शुरू की थी। वह ज़माना ही इश्क़ के हल्ले का था। पर कहा जाता है कि उस समय की उनकी रचनायें ग़दर के दिनों में, जब आदमी को जीने के लाले पड़ रहे थे, नष्ट हो गईं।

१८७४ ई० के उक्त मुशायरे में आज़ाद ने नये ढंग की ग़ज़ल पढ़ी, जो उस समय पसंद तो न की गई; पुराने ढर्रे के शायरों ने उसका बड़ा बिरोध किया; पर बीज के लिये ज़मीन तैयार थी, उसके उगने में पाले-पत्थर की कुछ न चली। आज़ाद ने उर्दू-कविता को इश्क के छोटे-से क़ैदख़ाने से निकालकर दुनिया के लंबे-चौड़े बाग़ में लाकर खड़ा कर दिया।

आज़ाद ने कई मसनवियाँ लिखीं; उनमें शबे-क़द्र उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। मुख्य मसनवियों के नाम ये हैं :—

१—शबे-कद्र
२—मसनवी हुब्बे-वतन
३—मसनवी अब्रे-करम
४—मसनवी सुबहे-उम्मीद
५—मसनवी ख्वाबे-अमन

आज़ाद ने पद्य से अधिक गद्य लिखा है। वे प्रसिद्ध समालोचक, शिक्षा-शास्त्र के गंभीर विद्वान्, गद्य की नवीन शैली के निर्माता और उर्दू-शायरी के नवीन विषयों के मार्ग-प्रदर्शक थे।

गद्य में उनकी कई पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हैं, जो साहित्य के विद्वानों में आदर पाती हैं। कुछ के नाम ये हैं :—

१. आबे-हयात
२. नैरंगे-ख़याल
३. सख़ुनदाने फारस
४. दरबारे अकबरी
५. निगारस्तान

जीवन के अंतिम दिनों में उनका मस्तिष्क कुछ विकृत हो गया था, और उसी रोग से १९१० ई० में उनका देहान्त हो गया।

यहाँ आज़ाद की कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं :—

शायर

इस तरह शब में शायरे रोशन दिमाग़ है।
बैठा अँधेरे घर में जलाये चिराग़ है॥
डूबा है अपने सर को गरीबाँ में डालके।
उड़ता मगर है खोले हुये पर ख़याल के॥
लाता फ़लक से है कभी तारे उतार कर।
जाता उसी के तह में है फिर सोता मार कर॥
पढ़ता है ज़र्रा ज़र्रा में अफ़सूँ नये नये।
हो जाते हैं वहाँ दुरे-मजमूँ नये नये॥
मज़मून ताजा गर कोई इस आन मिल गया।
यों खुश है, जैसे नक़्शे सुलेमान मिल गया॥
इस तरह शब के पर्दे में शायर जो चोर है।
फिरता टटोलता हुआ मानिन्द कोर है॥
मतलब उड़ाता शेर से मजमूँ ग़ज़ल के है।
लाता फिर ऐसे ढब से लिफाफा बदल के है॥
तारीफ़ उसकी करते हैं जो शेर सुनते हैं।
मजमूँ लिया है जिनका वे सिर बैठे धुनते हैं॥

हुब्बे-वतन

यानी यूरप के मुल्क में दो ताजदार थे।
दोनों के अहले मुल्क मगर जाँ-निसार थे॥
सरहद पै कुछ फ़िसाद था, पर ऐसा पड़ गया।
दोनों के इत्तफ़ाक का नक़शा बिगड़ गया॥

आखिर को थे जो वाक़िफ़े असरारे सल्तनत।
समझे बहम यह मसलहते कारे सल्तनत॥
दो जाँनिसारे मुल्क रवाना इधर करें।
और अपने दो इधर को वह गरमे सफ़र करें॥
ता चारों जिस जगह कि वहम एक बार हों।
सरहदे मुल्क के वही कायम मिनार हों॥
जांबाज़ इस तरफ के मगर जान तोड़कर।
ऐसे उड़े कि पीछे हवा को भी छोड़कर॥
इक हिस्सा तय न रस्ता हरीफों ने था किया।
यह तीन हिस्से बढ़ गये औ उनको जा लिया।
लेकिन हरीफ शर्त के मैदाँ को छोड़के।
बोले य' अहदो क़ौलो-करार अपना तोड़ के।
दो अपने अपने मुल्क के जो जाँ-निसार हों।
फिर अबकी दो तरफ से रवाँ एकबार हों॥
पर, इतनी बात पहले हर एक शख्स जान ले।
और यह इरादा खूब तरह दिल में ठान ले॥
यानी जो शर्त जीतके खुरसन्द होयगा।
सरहद पै वह जमीन का पैवन्द होयगा॥
जाँ बाज आये थे जो अभी राह मार के।
हुब्बुलवतन से जोश में बोले पुकार के॥
जो शर्त अब लगाई है तुमने यही सही।
और बात जो कि होनी है फिर वह अभी सही॥
पर बीच में न हील-हवाले की आड़ दो।
सरहद हमारी हो चुकी बस हम को गाड़ दो।
हासिल य' है कि दोनों उसी जा पे अड़ गये।
जीते के जीते मुल्क की सरहद पै गड़ गये॥

हाली

हाली उपनाम ; शम्मुलउलमा मौलाना अल्ताफ़ हुसैन 'हाली' पानीपती नाम ; पिता का नाम ख्वाजा ईज़दबख्श ; स्थान पानीपत (करनाल) ; जन्म-काल १८३७ ई० ; मृत्यु-काल १९१८ ई०

हाली के पिता इनकी नौ ही वर्ष की अवस्था मे मर गये थे, और माता का दिमाग ठीक नही रहता था, इससे इनको प्रारभिक शिक्षा उचित रीति से नही मिली। पहले इन्हे क़ुरआन कंठस्थ कराया गया। फिर इन्हे फ़ारसी और अरबी की शिक्षा दिलाई गई।

विद्या की ओर इनकी स्वाभाविक रुचि थी। ये आगे पढ़ना चाहते थे; पर कुटुंबियों और मित्रों ने आग्रह करके १७ वर्ष की अवस्था मे इनका विवाह कर दिया। इन्होंने विवाह को विद्या-प्राप्ति में बड़ा बाधक समझा। इनकी ससुराल में धन-दौलत की कमी न नथी। स्त्री को उसके नैहर भेजकर ये चुपके से दिल्ली भाग आये और वहाँ दो वर्ष तक अरबी-फ़ारसी के उच्च-कोटि के साहित्य और छन्दशास्त्र तथा तर्क का अध्ययन करते रहे।

इनकी शिक्षा समाप्त भी न होने पाई थी कि घरवाले आकर इन्हें वापस ले गये। घर पर भी ये वर्ष-डेढ़ वर्ष तक स्वयं पुस्तकावलोकन करते रहे। फिर कुछ धन-संग्रह के लिये ये १८५६ ई० में हिसार के कलक्टर के दफ्तर में एक छोटे पद पर नौकर हुए; पर कई कठिनाइयाँ उपस्थित होने पर ये नौकरी छोड़कर फिर घर चले आये।

इतने में १८५७ का गदर हुआ। इससे कई वर्ष तक ये घर पर और बेकार बैठे रहे। इस अवकाश के समय में भी पानीपत के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वानों से ये न्याय और दर्शन-शास्त्र की शिक्षा लेते रहे। फिर ये पंजाब गवर्नमेंट के बुकडिपो में नौकर हुये। वहाँ ये अंग्रेजी के उर्दू अनुवाद की भाषा शुद्ध

किया करते थे। इस काम पर ये चार वर्ष तक रहे। फिर लाहौर के ऐंग्लो अरेबिक स्कूल में मुदर्रिस हो गये और वहाँ १८८१ ई० तक काम करते रहे।

दिल्ली में ये उर्दू के महाकवि ग़ालिब से भी मिला करते थे और अरबी-फ़ारसी के कठिन शेरों का अर्थ पूछा करते थे। इन्हें भी कविता का कुछ शौक़ पैदा हुआ। इन्होंने कुछ ग़ज़लें फ़ारसी में लिखकर ग़ालिब को दिखलाईं। ग़ालिब की यह आदत थी कि अपने मिलनेवालों को वे कविता करने से रोकते थे। पर हाली की ग़ज़ल देखकर उन्होंने कहा—यद्यपि मैं किसी को शेर कहने की सम्मति नहीं दिया करता; पर तुम्हारे सम्बन्ध में मेरा यह विचार है कि यदि तुम शेर न कहोगे तो अपनी तबीयत पर घोर अत्याचार करोगे। उस समय से ग़ालिब इनके काव्य-गुरु हुये।

उस समय तक उर्दू के कवि रदीफ और क़ाफ़िये ही के चक्कर में पड़े हुये थे। हिन्दी-कवियों की तरह किसी ख़ास विषय पर क्रम-बद्ध कविता वे करते ही न थे। १८७६ ई० में कर्नल हालराइड ने लाहौर में एक कवि-सभा स्थापित की। उसमें समस्या-पूर्ति के बदले किसी निर्द्धारित विषय पर कविता पढ़ी जाती थी। इस कवि-सभा में हाली और प्रो० आज़ाद ऐसे दो प्रतिभाशाली कवि सम्मिलित हुये। इन्होंने उस दिन से उर्दू-कविता की काया ही पलट कर दी। कर्नल हालराइड शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष और उस कवि-सभा के संरक्षक थे। हाली ने उस कवि-सभा में चार मसनवियाँ लिखकर पढ़ी थीं—१—बरखा रुत; २—निशाते-उम्मीद; ३—मुनाज़रा रहमो इन्साफ़; ४—हुब्बे-वतन। उर्दू-संसार में ये चारों मसनवियाँ एक नई चीज़ थीं। इससे इनका बड़ा आदर और प्रचार हुआ।

चार वर्ष बाद हाली ऐंग्लो अरेबिक स्कूल, दिल्ली में शिक्षक हुये। कुछ दिनों तक ये लाहौर के चीफ़्स कालेज में भी शिक्षक रहे थे; पर वह काम इन्हें पसन्द नहीं था। जब ये अरेबिक स्कूल में अध्यापक थे, उन्हीं दिनों हैदराबाद के प्रधान मंत्री उसे देखने आये थे। उन्होंने अरबी, फ़ारसी और उर्दू के विद्वानों, कवियों और सुलेखकों के लिये कुछ वृत्तियाँ प्रदान की थीं। उन्हीं में से हाली को ७५) मासिक की एक वृत्ति मिली। यही

वृत्ति, जब ये अलीगढ़ कालेज के डेपुटेशन में हैदराबाद गये थे, बढ़ाकर सौ रुपये मासिक कर दी गई थी, जो इनको अंत समय तक मिलती रही।

मौलाना हाली सर सैयद अहमद के बड़े समर्थकों में थे। सर सैयद ने इन्हें अलीगढ़ कालेज का ट्रस्टी बनाया। वे प्रत्येक काम में इनकी सम्मति लेते रहते थे। हाली ने शुद्ध भाव और सच्ची लगन से जाति-हित का काम अपनाया। सर सैयद की सम्मति से हाली ने अपना सुप्रसिद्ध मुसद्दस लिखा। इस मुसद्दस के लिखने में हाली ने अद्भुत प्रतिभा-शक्ति का परिचय दिया है। मुसद्दस को पढ़कर सर सैयद ने जो पत्र हाली को लिखा, उसका कुछ अंश यह है—

पाँच जिल्द मुसद्दस पहुँचे। जिस वक्त हाथ में आई, जबतक ख़त्म न हुई, हाथ से न छूटी और जब ख़त्म हुई तब अफ़सोस हुआ कि क्यों ख़त्म हो गई। × ×किस सफ़ाई और ख़ूबी से यह नज़्म तहरीर हुई है, बयान से बाहर है। × ×मेरी निस्बत जो इशारा उस नज़्म में है, उसका शुक्र करता हूँ और आप की मुहब्बत का असर समझता हूँ। जब ख़ुदा पूछेगा कि तू क्या लाया, मैं कहूँगा कि हाली से मुसद्दस लिखवा लाया हूँ और कुछ नहीं। ख़ुदा आपको जज़ाये ख़ैर दे और क़ौम को इससे फ़ायदा बख़्शे। × ×

पार्क होटल, शिमला — आपका अहसानमन्द ताबेदार

१०-६-१८७६ — सैयद अहमद

इससे पाठक समझेंगे कि मुसद्दस कितनी क़ीमती चीज़ है। इसका अनुवाद पश्तो और सिन्धी बोलियों में भी हो गया है। हिन्दी में भी भारत-भारती की कविता इसी ढंग की है। उर्दू-कविता के सुधार के लिए हाली ने 'शेर और शायरी' नाम की एक पुस्तक गद्य में भी लिखी।

सर सैयद की जीवनी भी इन्होंने लिखी, जिसका नाम 'हयाते जावेद' है और जो इनके मृत्यु के बाद छपी। यह हाली का सबसे बड़ा गद्य-ग्रन्थ है।

अपने उस्ताद ग़ालिब की यादगार में गुरु-भक्त शिष्य हाली ने 'यादगारे ग़ालिब' लिखा है, जो अपने ढंग की एक ही पुस्तक है। ग़ालिब के मरने पर हाली ने जो शोक-सूचक कविता लिखी है, वह बड़ी ही करुणोत्पादक है। उसके कुछ शेर ये हैं—

बुलबुले हिन्द मर गया हैहात।
जिसकी थी बात बात मे इक बात॥
नुक्तादाँ नुक्ता संज नुक्ता शनास।
पाकदिल पाकज़ात पाक-सिफ़ात॥
लाख मज़मून और उसका एक ठठोल।
सौ तकल्लुफ़ और उसकी सीधी बात॥
एक रोशन दिमाग़ था न रहा।
शहर में एक चिराग़ था न रहा॥
नक़्दे मानी का गंजदाँ न रहा।
खाने मज़मूं का मेज़बाँ न रहा॥
कोई वैसा नज़र नहीं आता।
वह ज़मीं और वह आस्माँ न रहा॥
साथ उसके गई बहारे सख़ुन।
अब कुछ अन्देश-ए ख़िज़ाँ न रहा॥
क्या है जिसमें वह मर्दे कार न था।
इक ज़माना कि साज़गार न था॥
शाइरी का किया हक़ उसने अदा।
पर कोई उसका हक़ गुज़ार न था॥
ख़ाकसारों से ख़ाकसारी थी।
सरबुलन्दों से इन्किसार न था॥
बे रियाई थी ज़ुहद के बदले।
ज़ुहद उसका अगर शआर न था॥

ऐसे पैदा कहाँ है मस्तो खराब।
हमने माना कि होशियार न था।।

× × ×

हिन्द में नाम पायगा अब कौन।
सिक्का अपना बिठायगा अब कौन।।
उसने सबको भुला दिया दिल से।
उसको दिल से भुलायगा अब कौन।।
उससे मिलने को यों हम आते थे।
जाके दिल्ली से आयगा अब कौन।।
था बिसाते सुख़न में शातिर एक।
हमको चालें बतायगा अब कौन।।
शेर ये नातमाम हैं हाली।
ग़ज़ल उसकी बनायगा अब कौन।।

× × ×

किसको जाकर सुनायें शेरो ग़ज़ल।
किससे दादे सख़नवरी पायें।।
पस्त मज़मूँ है नोह्-पे उस्ताद।
किस तरह आस्माँ पै पहुँचायें।।

× × ×

अब न दुनिया में आयँगे यह लोग।
कहीं ढूंढ़े न पायँगे यह लोग।।
उठ गया था जो मायेदारे सख़ुन।
किसको ठहरायें अब मदारे सख़ुन।।
मज़हरे शान हुस्ने फ़ितरत था।
मानिये लफ़्ज़ आदमीयत था।।

इन ग्रंथों के सिवा इन्होंने शेख़ सादी और हकीम नासिर ख़ुसरो का भी जीवन-चरित्र लिखा है।

हाली की कविता में सबसे बड़ी विशेषता भाषा की सरलता और भावों की सुबोधता है। भाषा और भाव का निकट सम्बन्ध ग़ालिब की कविता का ख़ास गुण था, वही गुण हाली की कविता में भी वर्तमान है। पहले लोग इनकी कविता को नीरस और कोरी तुकबंदी कहते थे; पर जनता की कसौटी पर वह सबसे खरी उतरी और थोड़े ही समय में उसका सर्वत्र प्रचार हो गया। उसकी उपयोगिता ने उसे सबसे अधिक सरस बना दिया।

हाली के कई ग्रन्थों के अनुवाद भिन्न-भिन्न भाषाओं में हो गये हैं। 'मनाजाते बेवा' का अनुवाद कोई दस भाषाओं में हुआ है। इससे बढ़कर उसकी लोकप्रियता और क्या होगी कि उसका अनुवाद संस्कृत में भी होगया है। हाली की रुबाइयों का अनुवाद अंग्रेज़ी में भी हुआ। इनकी कवितायें और निबंध सिन्ध, पंजाब और युक्तप्रदेश के विश्वविद्यालयों-द्वारा स्वीकृत पाठ्य-पुस्तकों में स्थान पाये हुये हैं।

हाली ने उर्दू की सुप्रसिद्ध मसनवी 'गुलज़ार नसीम' पर आक्षेप किया है और उसमें दोष दिखलाये हैं। उससे कुछ लोग उन पर यह दोष लगाते हैं कि उर्दू में सर्वश्रेष्ठ मसनवी लिखने का गौरव एक हिन्दू-कवि को मिला हुआ देखकर हाली ने बुरी नीयत से उसकी समालोचना की है। पर हाली का स्वभाव ऐसा नहीं था। ये बड़े न्यायप्रिय, साधु प्रकृति, गुण-ग्राहक और मज़हबी कट्टरता से पाक मुसलमान थे। इनसे मिलनेवाले लोग कहते हैं कि ये कभी किसी की बुराई न करते थे।

'गुलज़ार नसीम' की जो कड़ी समालोचना इन्होंने की है, संभव है, उसमें इनकी भ्रांति रही हो; पर वह बुरी नियत से की गई है, ऐसा मानने का कोई कारण नहीं देख पड़ता। बल्कि इसके विरुद्ध हाली की साहित्यिक निष्पक्षता का एक प्रमाण हिन्दी-वालों के पास भी है। कई वर्ष हुये, हिन्दी के सुप्रसिद्ध समालोचक पंडित पद्मसिंह शर्मा ने 'सतसई-संहार' नामक एक लेख सरस्वती में लिखा। जिसमें प्रसंग-वश उन्होंने बिहारी के एक दोहे को उर्दू के शेर से बढ़कर बता दिया। इस पर विवाद उठ खड़ा हुआ। शर्माजी ने हाली के सामने यह मामला पेश किया। अस्वस्थ होने पर भी हाली ने

जो उत्तर दिया, वह इनकी योग्यता के साथ-साथ इनकी निष्पक्षता का भी द्योतक है। यहाँ हम उस पत्र की प्रतिलिपि उद्धृत करते हैं—

पानीपत

६ दिसम्बर, सन् १९१०

जनाब मन, इनायत नामे का जवाब भेजने मे इस सबब से देर हुई कि मै आँखों की शिकायत के सबब लिखता-पढ़ता बहुत कम हूँ। अक्सर तहरीरों में दूसरे का मोहताज रहता हूँ और बग़ैर सख्त ज़रूरत के जवाब नहीं लिखता।

बिहारी-सतसई के दोहे और एक उर्दू शेर के मुताल्लिक़ जो आपने मेरी राय दरयाफ़्त की है सो मेरे नज़दीक शेर को दोहे के मज़मून से कुछ निसबत नहीं। शायर कैसा ही नामुमकिनउल्वक़ूअ मज़मून बाँधे, जब उसके साथ गोया क़ैद लगा दी, फिर नामुमकिन नाम मुमकिन नहीं रहता।

मसलन्—ज़ैद बे ऐब होने में गोया फ़रिश्ता है; यह घोड़ा क्या है हवा है; या उसके दाँतों की बत्तीसी गोया मोतियों की लड़ी है; या उसका चेहरा चौदहवीं रात का चाँद है। पस जबकि दोहे के मज़मून में 'मानो' 'यानी' 'गोया' का लफ़्ज़ मौजूद है तो उसमें कोई इस्तिहाल यानी अदम-इमकान बाक़ी नहीं रहता। बरख़िलाफ़ इसके शेर का मज़मून बिलकुल दायरे इमकान से ख़ारिज और नामुमकिनउल्वक़ूअ है। मोतरिज़ जिस दलील से मज़मून शेर से मुतल्लिक़ हद्द दरजे की नज़ाकत साबित करता है उससे नज़ाकत का सबूत नहीं बल्कि उसकी नफ़ी होती है।

लखनऊ के एक नामवर शाइर ने अपनी मसनवी में बाज़ार की रौनक़ और चहल-पहल इस तरह बयान की है कि 'बाज़ार में आबे-गौहर का छिड़काव होता है। ज़ाहिर है इस बयान से बजाय इसके कि बाज़ार की रौनक़ साबित हो, यह ख़याल होता है कि वहाँ ख़ाक उड़ती होगी; क्योंकि आबे-गौहर का छिड़काव ख़ाक को दबा नहीं सकता। इसी तरह शेर मज़कूर का हाल है। क्योंकि—

ख़्वाब में तसवीर का बोसा लेने से साहबे तसवीर के होठों का नीला

पड़ जाना बजाय इसके कि साहबे तसवीर की नज़ाकत साबित करे, बोसा लेने वालेका जादूगर होना साबित करता है।

मोतरिज़ का यह ऐतराज़ भी सही नहीं है कि ज़ेवर चूंकि मसनूयी चीज है, इसलिये ब्रह्मा या क़ुदरत के उसका बनानेवाला क़रार देना ग़लत है। क्योंकि इन्सान के तमाम मसनूयात दरहक़ीक़त खुदा के मसनूयात हैं क्योंकि इन्सान खुद उसका मसनूअ है। इस पर दलील लाने की कुछ ज़रूरत नहीं है। क्योंकि हर ज़बान में ऐसी हज़ारों मिसालें मौजूद हैं कि इन्सान के कामों को मजाज़न् खुदा की तरफ़ मन्सूब किया गया है, और तसव्वुफ़ और वेदान्तवाले तो इन्सान के हर काम को मजाज़न् नही बल्कि हक़ीक़तन् खुदा ही का काम बताते हैं।

ख़ाकसार दुआगो—
अलताफ़ हुसैन हाली।

हाली ने उर्दू-कविता को भाषा और भाव दोनों में युगान्तर उपस्थित कर दिया। गुल और बुलबुल, आशिक़ और माशूक़, सैयाद और घोंसले से उर्दू-कविता का पिंड़ छुड़ा दिया। नीति-कविता लिखने में ये शेख सादी के जोड़ के थे। सन् १८९३ ई० में इनका उर्दू दीवान पहले-पहल छपा। फ़ारसी और अरबी में भी इनका कुछ कलाम है। इन्होंने अरबी की एक किताब का उर्दू-अनुवाद भी लाहौर में किया था, जिसे पंजाब युनिवर्सिटी ने छपवाया था।

इनकी योग्यता पर मुग्ध होकर अंग्रेज़ी गवर्नमेंट ने इन्हें १९०४ ई० में शम्सुलउल्मा की उपाधि से विभूषित किया था।

जीवन के अंतिम दिनों में ये प्रायः पानीपत में अपने घर पर ही रहा करते थे। स्वास्थ्य भी बहुत ख़राब हो चला था। कुछ दिनों से इनका प्रायः कुल समय ईश्वर-चिन्तन में बीतता था। पानीपत में इनका बहुत सम्मान था। इनके मरने के बाद इनका स्मारक बनाने की चिन्ता पानीपत के अनेक गण्यमान्य मुसलमान सज्जन कर रहे थे।

हाली की लिखी किताबों के नाम ये हैं :—

१—मजालिसुन्निसा । २—हयाते-सादी । ३—मुकदमए शेरो-शायरी । ४—यादगारे ग़ालिब । ५—हयाते जावेद । ६—मनाजाते बेवा । ७—चुप की दाद । ८—शिकवए-हिन्द । ९—मुसद्दसे-हाली । १०—दीवाने-हाली । ११—रुबाइयात ।

यहाँ इनकी कविता के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

१

काटने वाली ग़मे अय्याम की ।
थामने वाली दिले नाकाम की ।।
तुझसे है मोहताज का दिल बेहिरास ।
तुझसे है बीमार को जीने की आस ।।
राम के हमराह चढ़ी रन में तू ।
पांडवों के साथ फिरी बन में तू ।।
ज़र्रे को खुरशेद में दे तू खपा ।
बन्दे को अल्लाह से दे तू मिला ।।
एक तमन्ना में है औलाद की ।
एक को दिलदार की है लौ लगी ।।
एक को है धुन कि जो कुछ हाथ आये ।
धूम से औलाद की शादी रचाये ।।
एक को कुछ आज अगर मिल गया ।
कल की है यह फ़िक्र कि खायँगे क्या ।।
जो है ग़रज़ उसको नई जुस्तजू ।
लाख अगर दिल है तो लाख आर्ज़ू ।।
तुझसे हैं दिल सब के बाग़ बाग़ ।
गुल कोई होने नहीं पाता चिराग़ ।।
तुझ में छुपा राहते जाँ का है भेद ।
छोड़ियो हाली का न साथ ऐ उमेद ।।

२

ऐ सपहरे बरीं के सय्यारो!
ऐ फ़िज़ाये ज़मीं के गुलज़ारो!
ऐ पहाड़ों की दिलफ़रेब फ़िज़ा!
ऐ लबे जू की ठंडी ठंडी हवा!
ऐ अनादिल के नग़मये सहरी!
ऐ शबे माहताब तारों भरी!
ऐ नसीमे बहार के झोंको!
दहरे ना पायदार के धोको!
तुम हर इक हाल में हो यूं तो अज़ीज़।
थे वतन में मगर कुछ और ही चीज़॥
जब वतन में हमारा था रहना।
तुमसे दिल बाग़ बाग़ था अपना॥
तुम मेरी दिल्लगी के सामाँ थे।
तुम मेरे दर्दे दिल के दरमाँ थे॥
तुम से कटता था रंजे तनहाई।
तुम से पाता था दिल शिकेबाई॥
आन इक इक तुम्हारी भाती थी।
जो अदा थी वह जी लुभाती थी॥

३

है कोई अपनी क़ौम का हमदर्द।
नूअ इन्साँ का जिनको समझें फ़र्द॥
जिस पै इतलाक़ आदमी हो सहीह।
जिसको हैवाँ पै दे सकें तर्जीह॥
क़ौम पै कोई ज़द न देख सके।
क़ौम का हाले बद न देख सके॥

क़ौम से जान तक अज़ीज़ न हो।
क़ौम से बढ़ के कोई चीज़ न हो।।
समझे उनकी ख़ुशी को राहते-जाँ।
वहाँ जो नौरोज़ हो तो ईद हो याँ।।
रंज को उनके समझे मायये-ग़म।
वाँ अगर सोग हो तो याँ मातम।।
भूल जायें सब अपनी क़दरे जलील।
देखकर भाइयों को ख़्वारो-ज़लील।।
जब पड़े उन पै गर्दिशे-अफ़लाक।
अपनी आसायशों पै डाल दे ख़ाक।।
बैठे बेफ़िक्र क्या हो हमवतनो!
उठो अहले-वतन के दोस्त बनो!
मर्द हो तो किसी के काम आओ।
वर्ना खाओ पिओ चले जाओ।।

४

जागनेवालो ग़ाफ़िलों को जगाओ।
तैरनेवालो डूबतों को तिराओ।।
तुम अगर हाथ पाँव रखते हो।
लँगड़े लूलों को कुछ सहारा दो।।
तन्दुरुस्ती का शुक्र क्या है बताओ।
रञ्ज बीमार भाइयों का बटाओ।।
तुम अगर चाहते हो मुल्क की ख़ैर।
न किसी हमवतन को समझो ग़ैर।।
हो मुसलमान इसमें या हिन्दू।
बौध मज़हब हो या कि हो ब्रह्मू।।
सब को मीठी निगाह से देखो।
समझो आँखों की पुतलियाँ सबको।।

५

वो शेर औ क़सायद का नापाक दफ्तर।
अफ़ूनत में संडास से जो है बदतर।।
ज़मा जिससे है ज़लजले के बराबर।
मलक जिससे शर्माते हैं आस्माँ पर।।
हुआ इल्मो-दीं जिससे ताराज सारा।
वह इल्मों में इल्में अदब है हमारा।।
बुरा शेर कहने की गर कुछ सज़ा है।
अबस झूठ बकना अगर ना रवा है।।
तो वह महकमा जिसका क़ाज़ी ख़ुदा है।
मुक़र्रिर जहाँ नेकी-बद की ज़जा है।।
गुनहगार वाँ छूट जायेंगे सारे।
जहन्नुम को भर देंगे शायर हमारे।।
ज़माने में जितने कुली औ नफ़र हैं।
कमाई से अपनी वो सब बहरेवर हैं।।
गवैये अमीरों के नूरे नज़र हैं।
डफ़ाली भी ले आते कुछ माँगकर हैं।।
मगर इस तपेदिक़ में जो मुब्तला हैं।
ख़ुदा जाने वह किस मरज़ की दवा हैं।।
जो सक्के न हों जी से जायें गुज़र सब।
हो मैला जहाँ गुम हों धोबी अगर सब।।
बनें दम पै गर शहर छोड़ें नफ़र सब।
जो ठुर जायँ मेहतर तो गन्दे हों घर सब।।
पै कर जायँ हिजरत जो शायर हमारे।
कहें मिलके 'ख़सकम जहाँ पाक' सारे।।

६

बस ऐ ना उमीदी न यूं दिल बुझा तू।
झलक ऐ उमीद अपनी आखिर दिखा तू।।
ज़रा ना-उमीदों को ढारस बँधा तू।
फ़सुर्दा दिलों के दिल आख़िर बढ़ा तू।।
तेरे दम से मुर्दों मे जानें पड़ी हैं।
जलीं खेतियाँ तू ने सरसब्ज़ कीं हैं।।

बहुत है अभी जिनमें गैरत है बाक़ी।
दिलेरी नहीं पर हमैयत है बाक़ी।।
फ़क़ीरी में भी बू-ए सरवत है बाक़ी।
तिहीदस्त है पर मुरब्बत है बाक़ी।।
मिटे पर भी पिन्दारे-हस्ती यही है।
मकाँ गर्म है आग गो बुझ गई है।।

समझते हैं इज्जत को दौलत से बेहतर।
फ़क़ीरी को ज़िल्लत की शोहरत से बेहतर।।
गलीमे क़नाअत को सरवत से बेहतर।
उन्हें मौत है बारे-मिन्नत से बेहतर।।
सर उनका नहीं दर-बदर झुकने वाला।
वह खुद पस्त हैं पर निगाहें हैं बाला।।

पिघलते हैं साँचे में ढलने की ख़ातिर।
लगाते हैं गोता उछलने की ख़ातिर।।
ठहरते हैं दम लेके चलने की ख़ातिर।
वह खाते हैं ठोकर सम्हलने की ख़ातिर।।
सबब को मरज़ से समझते हैं पहले।
उलझते हैं पीछे सुलझते हैं पहले।।

न राहत तलब है न मोहलत तलब वह।
लगे रहते हैं काम में रोज़ो-शब वह।।
नहीं लेते दम एकदम बेसबब वह।
बहुत जाग लेते है सोते हैं तब वह।।
वह थकते है और चैन पाती है दुनिया।
कमाते है वह और खाती है दुनिया।।

खपाते है कोशिश में ताबो-तवाँ को।
घुलाते है मेहनत में जिस्मे-रवाँ को।।
समझते नही इसमें जाँ अपनी जाँ को।
वह मर-मर के रखते है ज़िन्दा जहाँ को।।
बस इस तरह जीना इबादत है उन की।
और इस धुन में मरना शहादत है उनकी।।

बशर को है लाज़िम कि हिम्मत न हारे।
जहाँ तक हो काम आप अपने सँवारे।।
ख़ुदा के सिवा छोड़ दे सब सहारे।
कि है आरज़ी ज़ोर, कमज़ोर सारे।।
अड़े वक्त तुम दायें बायें न झाँको।
सदा अपनी गाड़ी को गर आप हाँको।।

७

जहाँ में हाली किसी प अपने सिवा भरोसा न कीजिएगा।
य' भेद है अपनी ज़िन्दगी का बस इसका चर्चा न कीजिएगा।।
हो लाख ग़ैरों का ग़ैर कोई न जानना उसको ग़ैर हरगिज़।
जो अपना साया भी हो तो उसको तसव्वुर अपना न कीजिएगा।।
लगाव तुममें न लाग ज़ाहिद न दर्दे उल्फ़त की आग ज़ाहिद।
फिर और क्या कीजिएगा आखिर जो तर्के दुनिया न कीजिएगा।।

कहे अगर कोई तुमसे वाइज ! कि कहते कुछ और करते कुछ हो।
ज़माने की है ख़ू नुकताचीनी कुछ इसकी परवा न कीजियेगा ।।

८

उनके ग़ुस्से मे है दिलसोज़ी मलामत में है प्यार।
मेहरबानी करते हैं नामेहरबानों की तरह ।।
काम से काम अपने उनको गो हो आलम नुक्ताचीं।
रहते है बत्तीस दाँतों में ज़ुबानों की तरह ।।
ताने सुन सुन अहमकों के हँसते है दीवानावार।
दिन बसर करते है दीवानों में स्यानों की तरह ।।
कीजे क्या हाली न कीजे सादगी गर अख्तियार।
बोलना आये न जब रंगीं बयानों की तरह ।।

९

होगी न कद्र जान की क़ुर्बा किये बग़ैर।
दाम उट्ठेंगे न जिन्स के अर्ज़ां किये बग़ैर ।।
गो हो शफ़ा से यास पै जब तक है दम में दम।
बन आयेगी न दर्द का दरमाँ किये बग़ैर ।।
बिगड़ी हुई बहुत है कुछ इस बाग़ की हवा ।।
यह बाग़ को रहेगी न वीराँ किये बग़ैर ।।
गो मै है तुन्दो सख्त पै साक़ी है दिलरुबा।
ऐ शेख़ बन पड़ेगी न कुछ हाँ हाँ किये बग़ैर ।।

१०

तज़करा दहिल-ए मरहूम का ऐ दोस्त न छेड़।
न सुना जायगा हमसे यह फ़िसाना हरगिज़ ।।
जिसको ज़ख्मों से हवादस के अछूता समझें।
नज़र आता नहीं एक ऐसा घराना हरगिज़ ।।
हमको गर तूने रुलाया तो रुलाया ऐ चर्ख़।
हम पै ग़ैरों को तो ज़ालिम न हँसाना हरगिज़ ।।

शाइरी मर चुकी अब ज़िन्दा न होगी यारो !
याद कर करके उसे जी न कुढ़ाना हरगिज़ ।।
ग़ालिबो शेफ्तओ नय्यरो आज़ुरदओ ज़ौक़ ।
अब दिखायेगा यह शकलें न ज़माना हरगिज़ ।।
मोमिनो उलबियो अहबाबओ ममनूं के बाद ।
शेर का नाम न लेगा कोई दाना हरगिज़ ।।
दागो मजरूह को सुनलो कि फिर इस गुलशनमें ।
न सुनेगा कोई बुलबुल का तराना हरगिज़ ।।
बज़्मे मातम तो नहीं बज़्मे सख़ुन है हाली ।
याँ मुनासिब नहीं रो रो के रुलाना हरगिज़ ।।

११

यारों को तुझसे हाली अब सरगरानियाँ हैं ।
नींदें उचाट देती तेरी कहानियाँ हैं ।।
याद उसकी दिल से धो दे ऐ चश्मेतर तो मानूं ।
अब देखनी मुझे भी तेरी रवानियाँ हैं ।।
गैबत हो या हज़ूरी दोनों बुरी हैं तेरी ।
जब बदगुमानियाँ थीं अब बदज़ुबानियाँ हैं ।।
कहते हैं जिसको जन्नत वह इक झलक है तेरी ।।
सब वाइज़ों की बाक़ी रंगीं बयानियाँ हैं ।।
अपनी नज़र में भी यों अब तो हक़ीर है हम ।
बेग़ैरती की यारो अब ज़िन्दगानियाँ हैं ।।
खेतों को दे लो पानी अब बह रही है गंगा ।
कुछ कर लो नौजवानों उठती जवानियाँ हैं ।।
फ़ज़लो हुनर बड़ों के गर तुम में हों तो जानें ।
गर यह नहीं तो बाबा वह सब कहानियाँ हैं ।।

१२

कम से कम वाज़ में इतना तो असर हो वाइज़ ।
बोल क़व्वाल के जो दिल पै असर करते हैं ।।
ऐब यह है कि करो ऐब हुनर दिखलाओ ।
वर्ना याँ ऐब तो सब फ़र्दे-बशर करते हैं ।।

१३

बादे सबा गई फूँक क्या जाने कान में क्या ।
फूले नहीं समाते गुंचे जो पैरहन में ।।
गो रो चुके हैं दुखड़ा सौ बार क़ौम का हम ।
पर ताज़गी वही है इस क़िस्से-ए कुहन में ।।

१४

बढ़ाओ न आपस में मिल्लत ज़ियादा ।
मुबादा कि होजाय नफ़रत ज़ियादा ।।
तकल्लुफ़ अलामत है बेगानगी की ।
न डालो तकल्लुफ़ की आदत ज़ियादा ।।
करो दोस्तो पहले आप अपनी इज्ज़त ।
जो चाहो करें लोग इज्ज़त ज़ियादा ।।
निकालो न रखने नसब में किसी के ।
नहीं इससे कोई रज़ालत ज़ियादा ।।
करो इल्म से इकत्साबे शराफ़त ।
नजाबत से है यह शराफ़त ज़ियादा ।।
फ़राग़त से दुनिया में दम भर न बैठो ।।
अगर चाहते हो फ़राग़त ज़ियादा ।।
जहाँ राम होता है मीठी ज़बां से ।
नहीं लगती कुछ इसमें दौलत ज़ियादा ।।
मुसीबत का इक इक से अहवाल कहना ।
मुसीबत से है यह मुसीबत ज़ियादा ।।

करो ज़िक्र कम अपनी दादो-दहिश का ।
मुबादा कि साबित हो ख़िस्सत ज़ियादा ।।
फिर औरों की तकते फिरोग सख़ावत ।
बढ़ाओ न हद से सख़ावत ज़ियादा ।।
कहीं दोस्त तुमसे न हो जायँ बदज़न ।
जताओ न अपनी मुहब्बत ज़ियादा ।।
जो चाहो फ़क़ीरी में इज्ज़त से रहना ।
न रक्खो अमीरों से मिल्लत ज़ियादा ।।
वह इफ़लास अपना छिपाते हैं गोया ।
जो दौलत से करते हैं नफ़रत ज़ियादा ।।
है उल्फ़त भी वहशत भी दुनिया से लाज़िम ।
पै उल्फ़त ज़ियादा न वहशत ज़ियादा ।।
फ़रिश्ते से बेहतर है इन्सान बनना ।
मगर इसमें पड़ती है मेहनत ज़ियादा ।।
बिके मुफ्त याँ हम ज़माने के हाथों ।
पै देखा तो थी यह भी क़ीमत ज़ियादा ।।
हुई उम्र दुनिया के धन्दों में आख़िर ।
नहीं बस अब ऐ अक्ल ! मोहलत ज़ियादा ।।
ग़ज़ल में वह रंगत नहीं तेरी 'हाली' ।
अलापें न बस आप धुरपत ज़ियादा ।।

१५

जब यह कहता हूँ कि बस दुनिया पै अब तुफ़ कीजिये ।
नफ़्स कहती है अभी चन्दे तवक्कुफ़ कीजिये ।।
ज़ब्ते कीजे दर्दे दिल तो ज़ब्त की ताक़त नहीं ।
औ खुला जाता है राज़े-दिल अगर उफ़ कीजिये ।।
वक़्त था जो काम का हाली गँवा बैठे उसे ।
जाइये अब उम्र भर बैठे तआस्सुफ़ कीजिये ।।

तोबा हज़रत की यूँ ही इक दूध का सा है उबाल ।
हम दिखा देंगे ज़रा दम भर तवक्कुफ़ कीजिये ।।

१६

है इश्क़ तबीब दिल के बीमारों का ।
या घर है वह खुद हज़ार आज़ारों का ।।
हम कुछ नहीं जानते पै इतनी है ख़बर ।
इक मशग़ला दिलचस्प है बेकारों का ।।

१७

मुमकिन य' नहीं कि हो बशर ऐब से दूर ।
पर ऐब से बचिये ता ब-मकदूर ज़रूर ।।
ऐब अपने घटाओ पै ख़बरदार रहो ।
घटने से कहीं उनके न बढ़ जाये ग़ुरूर ।।

१८

है जुहल में सब आलिमो-जाहिल हमसर ।
आता नहीं फ़र्क़ इसके सिवा उनमें नज़र ।।
आलिम को है इल्म अपनी नादानी का ।
जाहिल को नहीं जुहल की कुछ अपने ख़बर ।।

१९

है नफ़्स में इन्साँ के जिबिल्ली मर्ज़ ।
हर सई पै होता है तलबगार एवज़ ।।
जो खास खुदा के लिये थे काम किये ।
देखा तो निहाँ उनमें भी थी कोई ग़रज़ ।।

२०

दुनियाए दुनी को नक़्शे फानी समझो ।
रूदादे जहाँ को इक कहानी समझो ।।

पर जब करो आग़ाज़ कोई काम बड़ा ।
हर साँस को उम्रे जाविदानी समझो ।।

२१

देखो जिस सलतनत की हालत दर दम ।
समझो कि वहाँ है कोई बरकत का क़दम ।।
या तो कोई बेगम है मुशीरे-दौलत ।
या है कोई मौलवी वज़ीरे आज़म ।।

२२

मूसा ने यही की अर्ज़ कि ऐ वारे खुदा !
मक़बूल तेरा कौन है बन्दों में सिवा ।।
इरशाद हुआ बन्दा हमारा वह है ।
जो ले सके और न ले बदी का बदला ।।

२३

कुछ क़ौम की हमसे सोगवारी सुन लो ।
कुछ चश्मे-जहाँ मे अपनी ख़्वारी सुन लो ।।
अफ़सानए क़ैसो कोहकन याद नही ।
चाहो तो कथा हम से हमारी सुन लो ।।

२४

है जान के साथ काम इन्साँ के लिए ।
बनती नहीं ज़िन्दगी में बे काम किये ।।
जीते हो तो कुछ कीजिए ज़िन्दों की तरह ।
मुर्दों की तरह जिये तो क्या ख़ाक जिये ।।

२५

मौजूद हुनर हो ज़ात में जिसकी हज़ार ।
बदज़न न हो ऐब उसमें गर हों दो चार ।।

ताऊस के पाये-ज़िश्त पर करके नज़र ।
कर हुस्नो जमाल का न उसके इन्कार ।।

२६

मसरूफ़ जो यूं वज़ीफ़ा ख्वानी में है आप ।
खैर अपनी समझते बेज़बानी में हैं आप ।।
बोले कुछ मुह से या न बोले हज़रत ।
मालूम है हमको जितने पानी मे है आप ।।

२७

यह सच है कि मांगना खता है न सवाब ।
जेबा नही सायल पै मगर क़हरो-इताब ।।
बदतर हैं हज़ार बार ऐ दूने हिम्मत !
सायल के सवाल से तेरा तलख़ जवाब ।।

२८

मरने पै मेरे वह रोज़ो-शब रोयेंगे ।
जब याद करेंगे मुझे तब रोयेंगे ।।
उल्फ़त पै वफ़ा पै जौ-निसारी पै मेरी ।
आगे नही रोये थे तो अब रोयेंगे ।।

२९

मशक्कत को मेहनत को जो आर समझे ।
हुनर और पेशे को जो ख़्वार समझें ।।
तिजारत को खेती को दुश्वार समझें ।
फिरंगी के पैसे को मुरदार समझे ।।
तब आसानियाँ चाहे औ आबरू भी ।
वह क़ौम आज डूबेगी, गर कल न डूबी ।।

३०

ऐ माओ ! बहनों ! बेटियो ! दुनिया की ज़ीनत तुमसे है ।
मुल्कों की बस्ती हो तुम्हीं क़ौमों की इज्जत तुमसे है ।।

तुम घरकी हो शहज़ादियाँ शहरों की हो आबादियाँ ।
ग़मगीं दिलों की शादियाँ दुख सुख में राहत तुमसे है ।।
नेकी की तुम तसवीर हो, इफ्फत की तुम तदबीर हो ।
हो दीन की तुम पासवाँ ईमाँ सलामत तुमसे है ।।
मर्दों मे सतवाले थे जो, सत अपना बैठे कबके खो ।
दुनिया में ऐ सतवन्तियो ! ले-दे के अब सत तुमसे है ।।
मूनिस हो ख़ाविन्दों की तुम, ग़मख़्वार फर्ज़न्दों की तुम ।
तुम बिन है घर वीरान सब घरभर में बरकत तुमसे है ।।
तुम आस हो बीमार की, ढारस हो तुम बेकार की ।
दौलत हो तुम नादार की, उसरत में इशरत तुम से है ।।

३१

अफ़सोस कि गफ़लत मे कटा अहदे जवानी ।
था आबे-बक़ा घर में मगर हमने न जाना ।।
ली होश में आने की जो साक़ी ने इजाज़त ।
फ़र्माया 'खबरदार कि नाज़ुक है ज़माना' ।।

३२

नसीहत बेअसर है गर न हो दर्द ।
य' गुर नासह को बतलाना पड़ेगा ।।
बशर पहलू में दिल रखता है जबतक ।
उसे दुनिया का ग़म खाना पड़ेगा ।।

३३

जो करेंगे भरेंगे खुद वाइज़ !
तुमको मेरी ख़ता से क्या मतलब ?
जिनके माबूद हूरो-गिलमाँ हैं ।
उनको जाहिद ! खुदा से क्या मतलब ?

३४

दें ग़ैर दुश्मनी का हमारी ख़याल छोड़ ।
याँ दुश्मनी के वास्ते काफ़ी हैं यार, बस ।।

३५

हाजियो ! है हमको घरवाले से काम ।
घर के महराबों-सुतूँ से क्या मतलब ?

३६

हो फरिश्ता भी तो, नहीं इन्साँ ।
दर्द थोड़ा-बहुत न हो जिसमें ।।
जानवर, आदमी, फरिश्ता, खुदा ।
आदमी की हैं सैकड़ों किस्में ।।

३७

रहेंगे न मल्लाह ये दिन सदा ।
कोई दिन में गंगा उतर जायगी ।।

३८

चींटियों में इत्तहाद औ मक्खियों में इत्तफ़ाक़ ।
आदमी का आदमी दुश्मन, खुदा की शान है ।।

३९

शेख ! जब दिल ही दैर में न लगा ।
आके मस्जिद में क्या लिया तूने ।
दूर हो ऐ दिले-मआल-अन्देश !
खो दिया उम्र का मज़ा तू ने ।।

इस्माइल मेरठी

इस्माइल उपनाम; मौलवी मुहम्मद इस्माइल नाम; जन्म-स्थान मेरठ; जन्म-काल १८४४ ई०; मृत्यु-काल १९१७ ई०।

खाँ साहब मौलवी मुहम्मद इस्माइल फ़ारसी के विद्वान् थे और पहले फ़ारसी में शायरी भी करते थे। पीछे सादी बोलचाल की भाषा में उन्होंने नज्में लिखीं और अपने समय के उर्दू-शायरों के मार्ग-प्रदर्शक हुये। उन्होंने उर्दू-शायरी का विषय ही नहीं बदला, भाषा भी सरल और सबके समझने योग्य कर दी। उन्होंने पुराने रास्ते के शायरों की चुटकियाँ भी खूब ली हैं।

इनकी शायरी के कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं :—

१

सख़ुन-वराने ज़माँ की भी है यही हालत।
कि इस कदीम डगर को न छोड़िये ज़िनहार।।
सिवाय इश्क नही सूझता उन्हें मज़मून।
सो वह भी महज़ ख्याली घड़त का इक तूमार।।
न लिखते हैं कभी नैरंगे हिकमत व कुदरत।
न वाक़यात के वे खींचते हैं नक़शे निगार।।
है शायरी में यह पहला वसूल मौजूआ।
कि झूठमूठ बन जाते हैं इक आशिक़े-ज़ार।।
तमाम अगले ज़माने का है यह पस खुरदह।
कि कर रहे हैं जुगाली वह जिसकी सौ बार।।

२

होने को आई सुबह तो ठंडी हवा चली।
क्या धीमी धीमी चाल से यह खुश अदा चली।।

लहरा दिया है खेत को हिलती हैं बालियाँ।
पौदे भी झूमते हैं लचकती हैं डालियाँ।।
फुलवारियों में ताज़ा शिगूफ़े खिला चली।
सोया हुआ था सब्ज़ा उसे भी जगा चली।।
बन्दों को चाहिये कि करें बन्दगी अदा।
उसकी कि जिसके हुक्म से चलती है यह सदा।।

३

उठो सोने वालो कि मैं आ रही हूँ।
ख़बर दिन के आने की मैं ला रही हूँ।
उजाला ज़माने में फैला रही हूँ।
बहार अपनी मशरिक से दिखला रही हूँ।
पुकारे गले साफ़ चिल्ला रही हूँ।
उठो सोने वालो कि मैं आ रही हूँ।।
अज़ाँ पर अज़ाँ मुर्ग देने लगा है।
ख़ुशी से हर इक जानवर बोलता है।।
दरख़्तों के ऊपर अजब चहचहा है।
सुहाना है वक्त और ठंडी हवा है।।
उठो सोने वालो कि मैं आ रही हूँ।
य' चिड़ियाँ जो पेड़ों प है गुल मचातीं।
इधर से उधर उड़के हैं आतीं जातीं।।
दुमों को हिलाती परों को फुलाती।
मेरी आमद आमद के हैं गीत गाती।।
उठो सोने वालो कि मैं आ रही हूँ।।
जो इस वक्त जंगल में बूटी जड़ी है।
सो वह नौलखा हार पहने खड़ी है।।
कि पिछले की ठंडक से शबनम पड़ी है।

अजब यह समाँ है, अजब यह घड़ी है।
उठो सोने वालो कि मैं आ रही हूँ॥
हिरन चौंक उठे चौकड़ी भर रहे हैं।
कलोलें हरे खेत में कर रहे हैं॥
नदी के किनारे खड़े चर रहे हैं।
ग़रज़ मेरे जलवा प' सब मर रहे हैं॥
उठो सोने वालो कि मैं आ रही हूँ॥
बड़ी धूम से आई मेरी सवारी।
जहाँ में हुआ अब मेरा हुक्म जारी॥
सितारे छुपे रात अँधेरी सिधारी।
दिखाई दिये बाग़ औ खेत क्यारी॥
उठो सोने वालो कि मैं आ रही हूँ॥

अकबर

अकबर उपनाम ; सैयद अकबर हुसेन रिज़वी नाम; पिता का नाम सैयद तफ़ज्जुल हुसेन ; जन्म-स्थान बारा, जि० इलाहाबाद ; जन्म-काल १६ नवंबर, १८४६ ई०; मृत्यु-काल १९२१ ई० ।

अकबर के पिता बड़े ही धार्मिक पुरुष थे। इससे इनके जीवन पर भी पिता की धार्मिकता का बड़ा प्रभाव पड़ा। । प्रारंभ में इनको अरबी, फ़ारसी और हिसाब की शिक्षा दी गई थी। चौदह वर्ष की अवस्था में इन्हें अंग्रेजी का शौक हुआ। घर पर ही अभ्यास करके इन्होंने अँग्रेजी का खासा ज्ञान प्राप्त कर लिया। १८६६ ई० में इन्होंने मुख्तारी की परीक्षा पास की और नायब तहसीलदारी के पद पर ये नियुक्त हुए। वहाँ से उन्नति करके १८७० ई० में हाइकोर्ट में पेशकार हो गये। फिर वकालत पास करके १८८० ई० तक वकालत की । फिर वह मुंसिफ हुए और उन्नति करते-करते १८८८ ई० में सब-जज और १८९४ ई० में स्माल काज कोर्ट के प्रथम श्रेणी के जज और सेशन जज नियुक्त हुए । उस समय इन्हें हज़ार बारह सौ रुपये मासिक वेतन मिलता था ।

१८९८ ई० में इन्हें खान बहादुर की उपाधि मिली। ये प्रयाग विश्व विद्यालय के फ़ेलो भी थे। ये हाइकोर्ट के जज भी होने वाले थे ; पर काम करते-करते थककर इन्होंने १९०३ ई० में पेंशन ले ली। पेंशन लेने के बाद ये प्रयाग में अपनी 'इशरत मंज़िल' नामक कोठी में रहने लगे और अंत समय तक उसी में रहे। रिटायर्ड होने के बाद इनका सारा समय या तो ईश्वर-चिंतन में जाता था या, साहित्य-चर्चा में ।

अकबर ख्वाजा आतिश के शागिर्द मुंशी गुलाम हुसेन 'वहीद' के शागिर्द थे। बचपन ही से साहित्य की ओर इनकी रुचि थी । शिक्षा समाप्त

कर चुकने पर पहले ये भी पुराने ढंग की ग़ज़लें लिखा करते थे। पर जब १८७९ ई० में लखनऊ से 'अवध पंच' निकला, तब इन्होंने अपना रंग ही बदल दिया। ये उसमें प्रहसनात्मक गद्य और पद्य लेख लिखने लगे। पद्य की एक नई शैली इन्होने निकाली, जिसमें इन्हें पूरी सफलता मिली। यद्यपि उर्दू में एक से एक बढ़कर कवि हो गये हैं, पर अकबर अपने ढंग के एक ही कवि थे। इन्होंने उर्दू को गुलो-बुलबुल की महफिल से निकालकर एक ऐसे मैदान में लाकर खड़ा कर दिया है, जहाँ से संसार के प्रत्येक हिस्से का रूप-रंग दिखाई पड़ता है। अकबर हास्यरस के अवतार थे। इन्होंने प्रेम, विरह, धर्म, राजनीति, समाज-सुधार, शिक्षा आदि विषयों पर ऐसा विनोद किया है, कि उसे पढ़कर हँसी आये बिना नहीं रहती। अकबर अंग्रेजी रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा, वेष-भूषा के कट्टर विरोधी थे। एक-एक शेर में इन्होंने अंग्रेज़ियत की दिल्लगी उड़ाई है। ये ईश्वर-निष्ठ, देश-भक्त, हिन्दू-मुस्लिम एकता के पूरे पक्षपाती, समाज-सुधारक, हृदय से महात्मा 'गांधी' के अनुयायी और सहृदय व्यक्ति थे।

इनका जीवन विनोद-पूर्ण था। इनके प्रत्येक शेर के साथ कोई न कोई लतीफ़ा अवश्य लगा हुआ है। एक बार एक व्यक्ति इनसे मिलने आये। ये ज़नान-खाने में थे। उन्होंने विज़िटिंग कार्ड भेजा। उस पर उनका नाम तो छपा था, पर शायद कार्ड छपाने के बाद वे बी० ए० हुए थे, इससे कार्ड पर बी० ए० शब्द उन्होंने पेंसिल से लिख दिया था। अकबर को उनकी इस हरकत से कुछ विरक्ति-सी हुई। इन्होंने उसी कार्ड की पीठ पर यह शेर लिखकर उसे वापस भेजा और मिलने से इन्कार कर दिया :—

शेख़जी घर से न निकले और ऐसा लिख दिया।
आप बी० ए० पास हैं तो मैं भी बीबी पास हूँ॥

इनके पुत्र सैयद इशरत हुसेन साहब, जो युक्तप्रान्त में डिप्टी कलक्टर थे, पढ़ने के लिए विलायत भेजे गये थे। वहाँ से वे पूरे अंग्रेज़ बनकर घर लौटे। अंग्रेज़ीपन से अकबर को स्वाभाविक घृणा थी; फिर अपने पुत्र

ही में उसका पूर्ण विकास देखकर तो ये बड़े ही मर्माहत हुए। कितने ही शेरों में इन्होंने अपनी यह मर्म-व्यथा प्रकट की है।

एक बार ये इशरत हुसेन साहब से मिलने गये। वे सीतापुर में डिप्टी कलक्टर थे। अकबर सदा सादी पोशाक पहना करते थे। शाम का वक्त था; डिप्टी साहब के कई मित्र जमा थे। अकबर को एक साधारण आदमी समझकर सबने इनकी ओर उदासीनता प्रकट की। उनमें अकबर के एक पहचाननेवाले भी थे। उन्होंने चुपके से अपने साथियों के कान में कहा कि ये डिप्टी साहब के बाप हैं। यह मालूम होते ही डिप्टी साहब के मित्र इनसे बड़े सम्मान और तकल्लुफ़ के साथ बातें करने लगे। अकबर ताड़ गये। पहले तो ये चुप रहे, फिर थोड़ी देर बाद बातों ही बातों में कहने लगे—'मियाँ और भी कुछ सुना है? सुना है, योरप में अल्लाह मियाँ आये थे।' सब चकित होकर इनका मुँह ताकने लगे। इन्होंने फिर गंभीर भाव से कहना प्रारंभ किया—'हाँ, मुझे बहुत ही मातबर तरीक़े से मालूम हुआ है। और एक बात तो बड़े ही मज़े की हुई। योरप में किसीने अल्लाह मियाँ की बात तक न पूछी। इतने में किसी ने बतलाया कि अल्लाह मियाँ खुदावद ईसू मसीह के बाप हैं। यह बात मालूम होते ही अल्लाह मियाँ की बड़ी आवभगत हुई।'

अकबर ने ये बातें इस ढंग से कहीं, मानों वे किसी समाचार-पत्र में उसे पढ़ रहे हैं। पर डिप्टी साहब के मित्र समझ गये कि यह उन्हीं पर कटाक्ष है। वे लज्जित हो गये। इस तरह के उनके बहुत से लतीफ़े हैं, जिन्हें उनसे परिचित लोग प्रायः कहा करते हैं।

कालेजों की नास्तिकता-पूर्ण शिक्षा से ये बहुत चिढ़ते थे। मौक़ा पड़ने पर अलीगढ़ के मुसलिम कालेज और सर सैयद अहमद खाँ की कड़ी से कड़ी आलोचना करने में भी नहीं हिचकते थे। अलीगढ़ के एक मुसलमान अब्दुल ग़फ़ूर खाँ ने पहले-पहल मोंछ-दाढ़ी मुँड़ाकर करज़न फ़ेशन रक्खा। अकबर को यह बात धार्मिक रीति-रवाज के विरुद्ध जान पड़ी। इन्होंने एक दिन, अब्दुल ग़फ़ूर खाँ जब अपने मित्रों में बैठे थे, यह कह ही डाला—

देख अब्दुल ग़फ़ूर खाँ की तरफ़ ।
मर्द खुशहाल इसको कहते हैं ।।
चार अब्र का याँ सफ़ाया है ।
फ़ारिग़-उल्-बाल इसको कहते हैं ।।

सारा मज़ा फ़ारिग़-उल्-बाल शब्द में है । इसके दो मानी हैं, बेफ़िक्र और बाल-रहित ।

ये स्त्री-शिक्षा के विरोधी तो न थे; पर अँग्रेज़ी ढंग की शिक्षा को स्त्रियों के लिए विष से भी अधिक भयानक समझते थे । पर कहने का ढंग कुछ ऐसा था कि स्त्री-शिक्षा के पूरे पक्षपाती भी इनकी बातें सुनकर हास्य के साथ कुछ नसीहत भी प्राप्त कर लेते थे । देखिये—

तालीम लड़कियों की ज़रूरी तो है मगर ।
खातूने-खाना हों वो सभा की परी न हों ।।
ज़ीइल्म मुत्तक़ी हों जो हों उनके मुन्तज़िम ।
उस्ताद अच्छे हों मगर उस्तादजी न हों ।।

कविता का रस 'उस्तादजी' में है । उस्तादजी वेश्याओं के उस्ताद को कहते हैं ।

अँग्रेज़ी तिजारत, कालेज की तालीम, कौंसिल की मेम्बरी, शासन-सुधार, वोट-भिक्षा, अख़बार, विलायती पोशाक और रहन-सहन आदि प्रायः सब वर्तमान विषयों पर इन्होंने चुभते हुये मार्मिक शेर ऐसे विनोद-पूर्ण ढंग से कहे हैं कि इनके विचारों का कट्टर से कट्टर विरोधी भी उन्हें सुनकर प्रसन्न हो जाता है । यही कवि की सफलता है ।

अकबर की स्त्री का नाम अकबरी बेगम था । अकबर की इशरत मंज़िल के साथ जो बाग़ था, उसका नाम इशरत बाग़ था । उसकी देखभाल बेगम साहबा ही करती थीं । १९१० में उनकी मृत्यु हो गई । उनकी मृत्यु के बाद अकबर कई महीनों तक उस बाग़ की तरफ नहीं गये और वह सूख-साख गया । एक दिन संयोग से बाग़ की तरफ़ निकल गये । उसकी हालत देखकर इनके मुँह से यह पद्य निकला था:—

बाग़े-इशरत में अब तरी न रही ।
हाय ! अकबर की अकबरी न रही ।।

अकबर महात्मा गाँधी के असहयोग-आन्दोलन का हृदय से समर्थन करते थे। यद्यपि ये खुल्लमखुल्ला उसमें भाग न ले सके, पर 'गाँधी नामा' लिखकर इन्होंने असहयोग की उपयोगिता और आवश्यकता का समर्थन किया है। एक पेंशनर जज का यह काम कम साहस का नहीं कहा जा सकता।

योरप की लड़ाई के दिनों में अकबर ने कुछ ऐसी ग़ज़लें लिखीं, जिनसे अँग्रेजी सरकार भयभीत हुई थी। सरकार ने अपना भय क्रोध के रूप में प्रकट भी किया। अकबर ने ग़ज़लें लिखनी बन्द कर दीं। पर भला, नशेबाज़ का नशा कहीं छूट सकता है ? बक़ौले ग़ालिब 'छुटती नहीं है मुँह से य' काफ़िर लगी हुई', अकबर चुपके-चुपके ग़ज़लें लिखते रहे और अपने मित्रों को सुनाते रहे। एक ग़ज़ल का एक शेर यह है—

प्रेस ब्यूरों के तारों से नतीजा यह निकलता है ।
फ़तह सरकार की होती है क़ब्ज़ा उसका होता है ।।

उन्हीं दिनों के दो शेर ये हैं—

१

हुक्म अकबर को मिला है कि न लिखो अशआर ।
ख्वाजा हाफ़िज़ भी निकाले गये मैखाने से ।।

२

सीने इधर ऐसे कि सहें जौरे रफ़ल भी ।
कान उनके वो नाज़ुक कि गरीं मेरी ग़ज़ल भी ।।

अकबर की कविता भारत के तत्कालीन अँग्रेजी शासन का सूत्र-रूप में एक संक्षिप्त इतिहास है। आगे आनेवाले लोग जब अकबर की कविता पढ़ेंगे तो उसमें वे भारत के अँग्रेजी ज़माने का नाटक ध्यान में देख सकेंगे। अबतक के हिन्दी या उर्दू के किसी कवि की कविता में उसके समय का संसार नहीं दिखाई पड़ता, यह खूबी अकबर ही की कविता में है। अकबर के पहले और किसी कवि ने अँग्रेजी शब्दों को अपनी भाषा में मिलाने का

प्रयत्न नहीं किया था। हाली ने कुछ किया था, पर उस मज़ाक़ के साथ नहीं। अकबर ने अँग्रेज़ी शब्दों को इस ख़ूबी से अपनी कविता में जड़ दिया है कि बस, समझते ही बनता है।

जो प्रभाव बड़े-बड़े उपदेशकों के लम्बे-चौड़े व्याख्यानों से नहीं हो सकता, वह अकबर के एक शेर से हो सकता है। जिस तरह मुग़ल बादशाहों में अकबर अद्वितीय था, उसी तरह हिन्दी और उर्दू कवियों में अकबर के जोड़ का कोई नहीं है। अकबर व्यंग्यात्मक कविता लिखने में अपना सानी नहीं रखते।

अकबर के चार दीवान छप चुके हैं। इनके दीवानों की माँग भी बहुत है। एक-एक दीवान के कई संस्करण हो चुके हैं। हिन्दी में भी अकबर पर तीन-चार पुस्तकें निकल चुकी हैं। पर आवश्यकता इस बात की है कि अकबर के पूरे दीवान हिन्दी अक्षरों में छपें।

पद्य के सिवा अकबर गद्य भी बहुत अच्छा लिखते थे। इनके पत्र साहित्यिक दृष्टि से बड़े महत्व-पूर्ण हैं। उर्दू में ग़ालिब और आज़ाद के बाद अकबर ही के पत्र सर्वसाधारण के पढ़ने योग्य हैं।

यहाँ हम अकबर की कविता के कुछ चुने हुये नमूने उद्धृत करते हैं—

१

ख़ुदा का नाम रोशन है ख़ुदा का नाम प्यारा है।
दिलों को इससे क़ुव्वत है ज़ुबानों को सहारा है॥
उसी के हुक्म से हैं रातदिन की ये कमी बेशी।
उसी के हुक्म का ताबे फ़लक पर हर सितारा है॥
उसी के इन्तज़ामो हुक्म से मौसम बदलते हैं।
वही है वक़्त पर जिसने हवाओं को उभारा है॥
उसी के हुक्म से फल और ग़ल्ले की है पैदायश।
ज़मीं पर बदलियों से उसने पानी को उतारा है॥
य' जब तक साँस चलती है समझते हो हमी हम हैं।
अजल जब सरपै आ पहुँची तो फिर क्या बस हमारा है॥

अगर आमाल अच्छे हैं तो पावोगे बड़े दर्जे ।
समझ लो इम्तहाँ इस दारे-फ़ानी में तुम्हारा है ।।
बुजुर्गों का अदब अल्लाह का डर शर्म आँखों में ।
इन्हीं औसाफ़ की निस्बत मज़ाहब में इशारा है ।।

२

जो मिल गया वो खाना दाता का नाम जपना ।
इसके सिवा बताऊँ क्या तुमको काम अपना ।।
रोना है तो इसी का कोई नहीं किसी का ।
दुनिया है और मतलब मतलब है और अपना ।।
अय बिरहमन हमारा तेरा है एक आलम ।
हम ख़्वाब देखते हैं तू देखता है सपना ।।

३

अजल से वो डरें जीने को जो अच्छा समझते हैं ।
यहाँ हम चार दिन की जिन्दगी को क्या समझते हैं ।।

४

न हो मज़हब में जब ज़ोरे हुकूमत ।
तो वो क्या है फ़क़त इक फ़िलसफ़ा है ।।

५

दिल मेरा जिससे बहलता कोई ऐसा न मिला ।
बुत के बन्दे मिले अल्लाह का बन्दा न मिला ।।
सय्यद उट्ठे जो ग़जट लेके तो लाखों लाये ।
शेख क़ुरआन दिखाते फिरे पैसा न मिला ।।

६

कहा बुक़रात से दुनिया में क्यूँ आया तू अय दाना।
कहा उसने कि मैं लाया गया मुझको पड़ा आना ।।
कहा क्यूँकर बसर की उम्र ? बोला—साथ हैरत के।
कहा क्या जाना ? बोला—कुछ नहीं जाना, यही जाना ।।

७

अकबर से मैंने पूछा अय वाइज़े तरीक़त ।
दुनियाये-दूँ से रक्खूँ मैं किस क़दर तआल्लुक़ ।।
उसने दिया बलाग़त से ये जवाब मुझको ।
अँगरेज को है नेटिव से जिस क़दर तआल्लुक ।।

८

ग़फ़लत की हँसी से आह भरना अच्छा ।
अफ़आले मुज़िर से कुछ न करना अच्छा ।।
अकबर ने सुना है अहले ग़ैरत से यही ।
जीना ज़िल्लत से हो तो मरना अच्छा ।।

९

क्या तुमसे कहें जहाँ को कैसा पाया ।
ग़फ़लत ही में आदमी को डूबा पाया ।।
आँखें तो बेशुमार देखीं लेकिन ।
कम थी बख़ुदा कि जिन को बीना पाया ।।

१०

ऊँचा नीयत का अपनी ज़ीना रखना ।
अहबाब से साफ़ अपना सीना रखना ।।
गुस्सा आना तो नेचुरल है ऐ अकबर ।
लेकिन है शदीद ऐब कीना रखना ।।

११

मर्द को चाहिये क़ायम रहे ईमान के साथ ।
ता दमे मर्ग रहे यादे खुदा जान के साथ ।।
मैंने माना कि तुम्हारी नहीं सुनता कोई ।
सुर मिलाना तुम्हें क्या फ़र्ज़ है शैतान के साथ ।।

१२

हमारे ज़हन को इस मिसरये अकबर पै मस्ती है।
खुश अख़लाक़ी इबादत है खुशामद बुतपरस्ती है।।

१३

न किताबों से न कालिज के है दर से पैदा।
दीन होता है बुजुर्गों की नज़र से पैदा।।

१४

जुदाई ने 'मैं' बनाया मुझको जुदा न होता तो मैं न होता।
खुदा की हस्ती है मुझसे साबित खुदा न होता तो मैं न होता।।

१५

नज़र उनकी रही कालिज में बस इल्मी फ़वायद पर।
गिरा की चुपके-चुपके बिजलियाँ दीनी अक़ायद पर।।

१६

तमाशा देखिये बिजली का मग़रिब और मशरिक़ में।
कलों में है वहाँ दाखिल यहाँ मजहब पै गिरती है।।

१७

जुबान खोली है महफ़िल में वाह-वा के लिये।
कभी तो बन्द कर आँखों को भी खुदा के लिये।।

१८

बरसों का छोड़ती है दम भर में साथ ज़ालिम।
कहते हैं उम्र जिसको माशूक़े बेवफ़ा है।।

१९

सेठजी को फ़िक्र थी यक एक के दस कीजिये।
मौत आ पहुँची कि हज़रत जान वापस कीजिये।।

२०

हुस्न है बेवफ़ा भी फ़ानी भी।
काश समझे इसे जवानी भी।।

२१

ख़ुदा का घर बनाना है तो नक़्शा ले किसी दिलका।
य' दीवारों की क्या तजवीज़ है ज़ाहिद य' छत कैसी ।।

२२

जो देखी हिस्ट्री इस बात पर कामिल यक़ीं आया।
उसे जीना नहीं आया जिसे मरना नहीं आया ।।

२३

जलवये साक़ी वो मै जान लिये लेते हैं।
शेख़जी ज़ब्त करें हम तो पिये लेते हैं ।।
दिल में याद उनकी जो आते हुवे शरमाती है।
दर्द उठता है कि हम आड़ किये लेते हैं ।।
दौरे तहज़ीब में परियों का हुआ दूर नक़ाब ।
हम भी अब चाके गरेबाँ को सिये लेते हैं ।।
ख़ुदकुशी मना ख़ुशी गम ये क़यामत है गर ।
जीना हो कितना है अब ख़ैर जिये लेते हैं ।।
लज्ज़ते वस्ल को परवाने से पूछें उश्शाक़ ।
वो मज़ा क्या है जो वे जान दिये लेते हैं ।।

२४

उन्हें भी जोशे उल्फ़त हो तो लुत्फ़ उट्ठे मुहब्बत का।
हमीं दिनरात अगर तड़पें तो फिर इसमें मज़ा क्या है ।।
मुसीबत ऐन राहत है अगर हो आशिक़े सादिक ।
कोई परवाने से पूछें कि जलने में मज़ा क्या है ।।
तबीबों से में क्या पूछूँ इलाजे दर्द दिल अपना ।
मरज़ जब ज़िन्दगी ख़ुद हो तो फिर उसकी दवा क्या है ।।

(२५)

जख़्मी किया सीने-को नज़र है कि ग़ज़ब है ।
ख़ूँ होके भी क़ायम है ज़िगर है कि ग़ज़ब है ।।

यों कहते हैं मै पीने को तू पी नहीं सकता।
अय शेख़ ये अल्लाह का डर है के ग़ज़ब है ।।
गुजरी है शबे वस्ल कि आई मेरी मौत।
वो होते हैं रुख़सत य' सहर है कि ग़ज़ब है ।।
लिपटा के मुझे सीने से वो आज ये बोले।
अकबर तेरी आहों का असर है कि ग़ज़ब है ।।

२६

कहाँ से लाऊँगा खूने जिगर उनके खिलाने को।
हज़ारों तरह के ग़म दिल के मेहमाँ होते जाते हैं ।।

२७

जो महफ़िल में अकबर ने खोली ज़बान।
गुलिस्ताँ में बुलबुल चहकने लगा ।।

२८

लगावट की अदा से उनका कहना पान हाज़िर है।
क़यामत है सितम है दिल फ़िदा है जान हाज़िर है ।।
कहो जो चाहो सुन लेंगे मगर मुतलक़ न समझेंगे।
तबीयत तो खुदा जाने कहाँ है कान हाज़िर है ।।
निगाहें ढूंढती हैं जिन को उनका दो निशाँ यारो।
इसे मैं क्या करूँगा ये जो सब सामान हाज़िर हैं ।।
बिठा कर ग़ैर की महफिल में मुझको उसने फ़रमाया।
सुनो अकबर की ग़ज़लें देखो ये मस्ताना हाज़िर है ।।

२९

ग़रीब खाने में लिल्लाह दो घड़ी बैठो ।।
बहुत दिनों में तुम आये हो इस गली की तरफ ।।
ज़रा सी देर ही हो जायगी तो क्या होगा।
घड़ी घड़ी न उठाओ नज़र घड़ी की तरफ़ ।।

जो घर मे पूछे कोई ख़ौफ़ क्या है कह देना।
चले गये थे टहलते हुये किसी की तरफ़ ।।

२०

पोशीदा आँखों में कभी दिल में निहाँ रहा।
बरसों ख़याले यार मेरा मेहमाँ रहा ।।
फ़रियाद किसकी थी पसे दीवार रात भर।
क्या मुझसे पूछते हो तू कल शब कहाँ रहा ।।
बेजा मेरे सफ़र पै हैं ये बदगुमानियाँ।
पेशे नज़र तुम्हीं तो रहे मैं जहाँ रहा ।।

२१

रंगे शराब से मेरी नीयत बदल गई।
वाइज़ की बात रह गई साक़ी की चल गई ।।
तैयार थे नमाज़ पै हम सुन के ज़िक्रे हूर।
जलवा बुतों का देख के नीयत बदल गई ।।
चमका तेरा जमाल जो महफ़िल मे वक़्ते शाम।
परवाना बेक़रार हुआ शमअ जल गई ।।

२२

मैं नज़अ में हूँ आयें तो अहसान है उनका।
लेकिन य' समझ लें कि तमाशा नही होता ।।
हम आह भी करतें हैं तो हो जाते हैं बदनाम।
वो कत्ल भी करते हैं तो चरचा नहीं होता ।।

२३

हया सर से झुका लेना अदा से मुस्करा देना।
हसीनों का भी कितना सहल है बिजली गिरा देना ।।
य' तर्ज़ एहसान करने का तुम्हीं को ज़ेब देता है।
मरज़ में मुब्तला करके मरीज़ों को दवा देना ।।

३४

हूर मिस को मये गुलगूँ को परी कहते हैं।
शेख खुश हों कि खफ़ा हम तो खरी कहते हैं॥
हुस्न के बाब में 'अकबर' की सनद ठीक नहीं।
ये तो हरयक बुते कमसिन को परी कहते हैं॥

३५

क्या वस्ल का हौसला करे पेशे रक़ीब।
जिनको इस वक़्त तक कमर ही न मिली॥

३६

तुम्हारे हुस्न में साइन्स का भी दिल उलझता है।
कमर को देखकर वो खते-उक़लैदस समझता है॥

३७

हम रीश दिखाते हैं कि इसलाम को देखो।
मिस ज़ुल्फ दिखाती है कि इस लाम को देखो॥

३८

दिला क्यूँकर मैं उस रुख सारे-रोशन के मुक़ाबिल हूं।
जिसे खुरशीदे महशर देखकर कहता है मैं तिल हूँ।

३९

बुतों से मेल खुदा पै नज़र य' खूब कही।
शबे गुनह वो नमाज़े सहर य' खूब कही॥
फ़िटन नफ़ीस सड़क खुशनुमा डिनर हर शब।
य' लुत्फ छोड़के हज का सफ़र य' खूब कही॥

४०

मज़हब का हो क्यूकर इल्मो अमल दिल ही नहीं भाई एक तरफ़।
किरकिट की खेलाई एक तरफ़ कालिज की पढ़ाई एक तरफ़॥
क्या ज़ौक़े इबादत हो उनको जो मिस के लबों के शैदा हों।
हलवाय बहिश्ती एक तरफ़ होटल की मिठाई एक तरफ़॥

ताऊनो तपो खटमल मच्छर सब कुछ हैं य' पैदा कीचड़ से।
बम्बे की रवानी एक तरफ़ और सारी सफ़ाई एक तरफ़।।
क्या काम चले क्या रंग जमे क्या बात बने कौन उसकी सुने।
है अकबर बेकस एक तरफ़ औ सारी ख़ुदाई एक तरफ़।।
फ़रियाद किये जा अय अकबर कुछ हो ही रहेगा आख़िरकार।।
अल्लाह से तोबा एक तरफ़ साहब की दुहाई एक तरफ़।।

४१

उन्हें शौक़े इबादत भी है औ गाने की आदत भी।
निकलती हैं दुआयें उनके मूंह से ठुमरियाँ होकर।।
न थी मुतलक़ तवक्क़े बिल बनाकर पेश कर दोगे।
मेरी जाँ लुट गया मैं तो तुम्हारा मेहमाँ होकर।।
निकाला करती है घर से य' कहकर तू तो मजनूँ है।
सता रक्खा है मुझको सास ने लैला की माँ होकर।।
रक़ीबे सिफ़ला ख़ू ठहरे न मेरी आह के आगे।
भगाया मच्छरों को उनके कमरे से धुँआ होकर।।

४२

जब मैं कहता हूँ कि या अल्लाह मेरा हाल देख।
हुक्म होता है कि अपना नामये आमाल देख।।
सोच तुझको है अगर आइन्दा पालीटिक्स की।
ले नतायज से मदद औ हिस्टरी में फ़ाल देख।।
शौक़े तूलो-पेच इस ज़ुल्मतक़दे में है अगर।
बात बंगाली की सुन बंगालिनों के बाल देख।।
हुस्ने-मिस पर कर नज़र मज़हब अगर जाता है जाय।
क़द्रदाँ को निर्ख़ की क्या बहस अकबर माल देख।।

४३

बाप माँ से शेख़ से अल्लाह से क्या उनको काम।
डाक्टर जनवा गये तालीम दी सरकार ने।।

४४

उश्शाक़ को भी माले तिजारत समझ लिया।
इस कद्र को मुलाहिज़ा लिल्लाह कीजिये ।।
भरते हैं मेरी आह को फ़ोनोगिराफ़ में।
कहते हैं फ़ीस लीजिये औ आह कीजिये ।।

४५

स्माल नहीं ग्रेट होना अच्छा।
दिल होना बुरा है पेट होना अच्छा ।।
पंडित हो कि मौलवी हो दोनों बेकार।
इन्सान को ग्रेजुएट होना अच्छा ।।

४६

थे केक की फ़िक्र मे सो रोटी भी गई।
चाहते थे बड़ी शै सो छोटी भी गई।
वाइज़ की नसीहत क्यूँ न मानें आख़िर।
पतलून की ताक में लँगोटी भी गई ।।

४७

कर दिया करज़न ने ज़न मरदों की सूरत देखिये।
आबरू चेहरे की सब फ़ैशन बनाकर पूंछ ली ।।
सच य' है इन्सान को यूरुप ने हल्का कर दिया।
इब्तदा डाढ़ी से की औ इन्तहा में मूंछ ली ।।

४८

क़िस्सये 'मन्सूर' सुनकर बोल उठी वो शोख मिस।
कैसा अहमक़ लोग था पागल को फाँसी क्यों दिया ।।
काश ऐ अकबर वही हालत मुझे भी पेश आय।
और ये काफ़िर पुकारें 'दर पनाहे मन बिया' ।।

४९

उनकी तहरीकों से यूँ रहती है दुनिया बेचैन।
जिस तरह पेट में बीमार के बाई दौड़े॥
मेम्बरी के लिये लपका मेरी जानिब वो गोल।
गाय मोटी नज़र आयी तो क़साई दौड़े॥

५०

ख़्वाह साहब को तुम सलाम करो।
ख़्वाह मन्दिर में राम राम करो॥
भाई जी का फ़कत ये मतलब है।
जिसमें रुपया मिले वो काम करो॥

५१

मेरी रसोई है दैर में भी हरम में भी मेरी मनज़िलत है।
बुतों से बोसे की है तवक्क़े ख़ुदा से उम्मीदे मग़फ़रत है॥
झुका है सर अपना पाये बुत पर ज़बान पर है गिला ज़फ़ा का।
मेरे अमल में है तरज़े सय्यद ग़ज़ल में अन्दाज़े लाजपत है॥

५२

नफ़्स के ताबा हुये ईमान रुख़सत हो गया।
वो ज़नाने में घुसे मेहमान रुख़सत हो गया॥
इस क़दर था खटमलों का चारपाई में हुजूम।
वस्ल का दिल से मेरे अरमान रुख़सत हो गया॥
मै उन्होंने पी अब उनके पास क्योंकर दिल लगे।
जानवर इक रह गया इन्सान रुख़सत हो गया॥
ात दुनियाँ ने जो मारी बन गया दींदार वो।
थी बुरी ठोकर मगर शैतान रुख़सत हो गया॥

५३

इस से तो इस सदी में नहीं हमको कुछ ग़रज़।
सुक़रात बोले क्या वो अरस्तू ने क्या कहा॥

बहरे खुदा जनाब दें हमको ये इत्तिला।
साहब का क्या जवाब था बाबू ने क्या कहा ।।

५४

मोहताजे दरे वकीलो मुख्तार हैं आप।
सारे अमलों के नाज़-बरदार हैं आप ।।
आवारवो मुन्तशिर हैं मानिन्दे गुबार।
मालूम हुआ मुझे ज़मीदार हैं आप ।।

५५

वो मिस बोली मैं करती आपका ज़िक्र अपने फ़ादर से।
मगर आप अल्ला अल्ला करता है पागल का माफ़िक है ।।
न माना शेखजी ने चख गये दस पांच ये कहकर।
अगर क़ाबिज़ है ये बिसकुट तो हों अल्लाह मालिक है ।।

५६

नुक़्ता ये सुना है एक बंगाली से।
करना हो बसर जो तुमको खुशहाली से ।।
खाली हो जगह तो अपने भाई को दिलावो।
गुस्सा आय तो काम लो गाली से ।।

५७

छोड़ लिट्रेचर को अपनी हिस्ट्री को भूल जा।
शेखो मसजिद से तअल्लुक तर्क कर इस्कूल जा ।।
चार दिन की जिन्दगी है कोफ़्त में क्या फ़ायदा।
खा डबल रोटी कलरकी कर खुशी से फूल जा ।।

५८

दरबारे सल्तनत में है किब्रो खुद पसन्दी।
मज़हब में देखता हूँ जंग औ गिरोह बन्दी ।।
रिन्दी वो आशिक़ी का है शग़ल सबसे बेहतर।
लेमनेड है औ ह्विस्की बन्दा है और बन्दी ।।

५९

न लैसन्स हथियार का है न ज़ोर।
कि टरकी के दुश्मन से जाकर लड़ें॥
तहे दिल से हम कोसते हैं मगर।
कि इटली की तोपों में कीड़े पड़ें॥

६०

मग़रबी जौक है और वज़ा की पाबन्दी भी।
ऊँट पर चढ़ के थियेटर को चले हैं हज़रत॥

६१

जो जिसके मुनासिब था गर्दूं ने किया पैदा।
यारों के लिये ओहदे चिड़ियों के लिये फन्दे॥

६२

मगरिब ने ख़ुर्दबी से कमर उनकी देख ली।
मशरिक़ की शाइरी का मज़ा किरकिरा हुवा॥

६३

पाकर खिताब नाच का भी जौक़ हो गया।
सर हो गये तो बाल का भी शौक़ हो गया॥

६४

बन्दूक का नहीं है जो लैसन्स ग़म नहीं।
मैंने तो इस ख़याल ही को गोली मार दी॥

६५

आदत जो पड़ी हो हमेशा से वो दूर भला कब होती है।
रक्खी है चुनौटी पाकट में पतलून के नीचे धोती है॥

६६

खींचो न कमानों को न तलवार निकालो।
जब तोप मुक़ाबिल है तो अख़बार निकालो॥

६७

बिरगिड के मौलवी को क्या पूछते हो क्या है।
मग़रिब की पालिसी का अरबी में तरजुमा है।।

६८

फ़रमा गये हैं य' ख़ूब भाई घूरन।
दुनिया रोटी है और मज़हब चूरन।।

६९

बोले चपरासी जो मैं पहुँचा ब-उम्मीदे सलाम।
फाँकिये ख़ाक आप भी साहब हवा खाने गये।।

७०

उनको बिस्कुट के लिये सूजी की थैली मिल गई।
कैम्प में ग़ुल मच गया मजनूँ को लैली मिल गई।।

७१

इन से बोसा माँगता हूँ उन से वोट।
बुत भी मुझसे तङ्ग हैं औ शेख़ भी।।

७२

ऐसा शौक़ न करना अकबर गोरे को न बनाना साला।
भाई रंग यही है अच्छा हम भी काले यार भी काला।।

७३

पका लें पीसकर दो रोटियाँ थोड़े से जौ लाना।
हमारी क्या है अब भाई न मिस्टर हैं न मौलाना।।

७४

इस्लाम को जो कहते हैं फैला बज़ोरे तेग़।
यह भी कहेंगे फैली ख़ुदाई बज़ोरे मौत।।

७५

जो सुन चुके मेरी ग़ज़लें तो बोले ला चन्दा।
जो हिनहिनाया है आज इतना तो लीद भी कर।।

७६

रक़ीबों ने रपट लिखवाई है जा जा के थाने में।
कि अकबर ज़िक्र करता है ख़ुदा का इस ज़माने में॥

७७

मज़हब ने पुकारा अय अकबर अल्लाह नहीं तो कुछ भी नहीं।
यारों ने कहा ये क़ौल ग़लत तनख़्वाह नहीं तो कुछ भी नहीं॥

७८

धमका के बोसा लूँगा रुख़े रश्के माह का।
चन्दा वसूल होता है साहब दबाव से॥

७९

हम क्या कहें अहबाब क्या कारे-नुमायाँ कर गये।
बी० ए० हुये, नौकर हुये, पेन्शन मिली, फिर मर गये॥

८०

शेख़जी के दोनों बेटे बा हुनर पैदा हुये।
एक है ख़ुफ़िया पुलिस में एक फाँसी पा गये॥

८१

सिधारें शेख़ काबे को हम इङ्गलिस्तान देखेंगे।
वो देखें घर ख़ुदा का हम ख़ुदा की शान देखेंगे॥

८२

तुम नाक चढ़ाते हो मेरी बात पै अय शेख़।
खींचूँगा किसी रोज़ मैं अब कान तुम्हारे॥

८३

एवज़ क़ुरआँ के अब है डारविन का ज़िक्र यारों में।
जहाँ थे हज़रते आदम वहाँ बन्दर उछलते हैं॥

८४

फ़र्क़ क्या वाइज़ो आशिक़ में है बतायें तुम से।
उसकी हुज्जत में कटी इसकी मुहब्बत में कटी ।।

८५

थी शबे तारीक चोर आये जो कुछ था ले गये।
कर ही क्या सकता था बन्दा सांस लेने के सिवा ।।

८६

क़ाबिले रश्क है ज़माने में।
दिन वकीलों का रात रंडी की ।।

८७

लिपट भी जा, न रुक अकबर, ग़ज़ब की ब्यूटी है।
नहीं नहीं पै न जा, ये हया की ड्यूटी है ।।

८८

शायराना दाद अच्छी दी य' मुझको चर्ख़ ने।
तेग़े अबरू का था आशिक़ खाँ बहादुर कर दिया ।।

८९

हरम वालों से क्या निसबत हम अहले होटल को।
वहाँ क़ुरआन उतरा है यहाँ अँग्रेज़ उतरे हैं ।।

९०

ख़ुदा की राह में अब रेल चल गई अकबर।
जो जान देना हो अञ्जन से कट मरो एक दिन ।।

९१

गुज़र उनका हुआ कब आलमें अल्लाहो अकबर में।
पले कालिज के चक्कर में मरे साहब के दफ्तर में ।।

९२

हुवे इस क़दर मुहज्ज़िब कभी घर का मुँह न देखा।
कटी उम्र होटलों में मरे अस्पाताल जाकर ।।

९३

अफ़ईए ज़ुल्फ़े मिस का तो सौदा बुरा नहीं।
पेचीदगी जो कुछ है फ़क़त उसके बिल में है।।

९४

क्या पूछते हो अकबरे शोरीदा सर का हाल।
ख़ुफ़िया पुलिस से पूछ रहा है कमर का हाल।।

९५

मुमकिन नहीं अय मिस तेरा नोटिस न लिया जाय।
गाल ऐसे परीज़ाद हों औ किस न लिया जाय।।

९६

हमें क्या बोल्शेविक फिर गया या रूस आता है।
यहाँ तो फिक्रे सरमाई है माहे पूस आता है।।

९७

जो अस्लो नक्ल से वाक़िफ़ है उसने दिल को है रोका।
मुबारिक हो तुम्हीं को चाटना लड्डू के फोटो का।।

९८

क्या ग़नीमत नहीं य' आज़ादी।
साँस लेते हैं बात करते हैं।।

९९

मेहरबानी से मुझे गोदाम की कुञ्जी तो दो।
लेकिन अब बाक़ी नहीं गेहूँ फ़क़त घुन क्या करें।।

१००

तोप खिसकी प्रोफ़ेसर पहुँचे।
जब बसूला हटा तो रंदा है।।

१०१

पेट मसरूफ़ है कलर्की में।
दिल है ईरान और टर्की में।।

१०२

इशरती घर की मुहब्बत का मज़ा भूल गये।
खा के लन्दन की हवा अहदे वफ़ा भूल गये।।
पहुँचे होटल में तो फिर ईद की परवा न रही।
केक को चख के सवँइयों का मजा भूल गये।।
भूले माँ बाप को अग़यार के चरचों में वहाँ।
सायये-कुफ़्र पड़ा नूरे-खुदा भूल गये।।
मोम की पुतलियों पर ऐसी तबीयत पिघली।
चमने-हिन्द की परियों की अदा भूल गये।।
बख़्ल है अहले-वतन से जो वफ़ा में तुमको।
क्या बुजुर्गों की वो सब जूदो-अता भूल गये।।
नक्ले मग़रिब की तरङ्ग आई तुम्हारे दिल में।
और य' नुक़ता कि मेरी अक्ल है क्या भूल गये।।
क्या ताज्जुब है जो लड़कों ने भुलाया घर को।
जब कि बूढे भी रविशे दीने-ख़ुदा भूल गये।।

१०३

लन्दन को छोड़ लड़के अब हिन्द की ख़बर ले।
बनती रहेंगी बातें आबाद घर तो कर ले।।
राह अपनी अब बदल दे बस 'पास' करके चल दे।
अपने वतन का रुख कर औ रुख़सते सफ़र ले।।
इङ्गलिश की कर के कापी दुनिया की राह नापी।
दीनी तरीक़ में भी अपने क़दम को धर ले।।
वापस नहीं जो आता क्या मुन्तज़िर है इसका।
माँ ख़स्ता हाल हो ले बेचारा बाप मर ले।।
मग़रिब के मुरशिदों से तू पढ़ चुका बहुत कुछ।
पीराने मशरिक़ी से अब फ़ैज़ की नज़र ले।।

मैं भी हूँ एक सख़ुनवर आ सुन कलामे 'अकबर'।
इन मोतियों से आकर दामन को अपने भर ले।।

१०४

ले ले के क़लम के लोग भाले निकले।
हर सिम्त से बीसियों रिसाले निकले।।
अफ़सोस कि मुफ़लिसी ने छापा मारा।
आख़िर अहबाब के दिवाले निकले।।

१०५

उन्हीं के मतलब की कह रहा हूँ ज़बान मेरी है बात उनकी।
उन्हीं की महफ़िल सँवारता हूँ चिराग़ मेरा है रात उनकी।।
फ़क़त मेरा हाथ चल रहा है उन्हीं का मतलब निकल रहा है।
उन्हीं का मजमूं उन्हीं का क़ाग़ज़ कलम उन्हीं का दवात उनकी।।

१०६

देखता एक उम्र से है बन्दा।
होता है कुछ काम न धन्दा।।
बस यहीं बातें औ यही फन्दा।
लाओ चन्दा लाओ चन्दा।।

१०७

तकल्लुफ़ उन्हीं के लिये कीजिये।
फ़क़ीरों का क्या है? जहाँ पड़ रहे।।
बुतों से भी लड़ती नहीं यों तो आँख।
बिरहमन है लन्दन तलक लड़ रहे।।

१०८

जो सच्ची बात है कह दूँगा बे ख़ौफ़े ख़तर उसको।
नहीं रुकने का मैं हरगिज़ परी टोके कि जिन टोके।।
अनार आते जो क़ाबुल के तो पड़ते सब के हिस्से में।
अमीर आये तो हम को क्या मज़े हैं लार्ड मिन्टो के।।

१०९

करज़नो-किचनर की हालत पर जो कल।
वो सनम तशरीह का तालिब हुआ।।
कह दिया मैंने कि है ये साफ़ बात।
देख लो तुम ज़न पै नर ग़ालिब हुआ।।

११०

ये बात ग़लत दारे-इसलाम है हिन्द।
ये झूठ कि मुल्के लछमनो-राम है हिन्द।।
हम सब हैं मुती वो ख़ैरख़्वाहे-इङ्गलिश।
यूरप के लिये बस एक गोदाम है हिन्द।।

१११

क़ौम के ग़म में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ।
रंज लीडर को बहुत है मगर आराम के साथ।।

११२

सरविस में मैं दाख़िल नहीं हूँ क़ौम का ख़ादिम।
चन्दों की फ़क़त आस है तनख़्वाह कहाँ है।।

११३

वो रोये बहुत इस्पीचों में हिकमत इसको कहते हैं।
मैं समझा ख़ैरख़्वाह उनको हिमाक़त इसको कहते हैं।।

११४

कोई साहब न हों लिल्लाह ना ख़ुश सुन के ये मिसरा।
ख़याले हुब्बे क़ौमी पीछे औ फ़िकरे-शिकम पहिले।।

११५

हम से छिनकर हो गई बज़्मे तरक़्क़ी के सुपुर्द।
सच कहा मिरज़ा ने अब उर्दू भी कोरट हो गई।।

११६

ताऊन की बदौलत उनको भी इरतफ़ा है।
जो मारते थे मक्खी अब मारते हैं चूहे।।

११७

अब मिसेज़ बेसेन्ट नज़मों में कहानी बन गई।
राज हम पायें न पायें वो तो रानी बन गई।।

११८

तङ्ग दुनिया से दिल इस दौरे फ़लक में आ गया।
जिस जगह मैंने बनाया घर सड़क में आ गया।।

११९

एक पीर ने तहज़ीब से लड़के को उभारा।
एक पीर ने तालीम से लड़की को सँवारा।।
पतलून में वो तन गया ये साये में फैली।
पाजामा ग़रज़ ये है कि दोनों ने उतारा।।
बहरा वो बना कैम्प में ये बन गई आया।
बीबी न रही जब तो मियाँपन भी सिधारा।।
दोनों जो कभी मिलते हैं गाते हैं ये मिसरा।
आग़ाज़ से बदतर है य' अञ्जाम हमारा।।

१२०

मेरे अमल से न शेख़ खुश हैं न भाई खुश हैं न बाप खुश हैं।
मगर मैं समझा हूँ इसको अच्छा दलील ये है कि आप खुश हैं।।
जो देखा साइन्स का य' चक्कर धरम पुकारा कि अय बिरादर!
हमारे दौरे में पुन मगन थे तुम्हारे दौरे में पाप खुश हैं।।

१२१

ये बात तो खरी है हरगिज़ नहीं है खोटी।
अरबी में नज़्में मिल्लत बी० ए० में सिर्फ़ रोटी।।

लेकिन जनाबे लीडर सुन कर ये शेर बोले।
बँधवायेंगे ये हज़रत इस क़ौम को लँगोटी ।।

१२२

मशरिक़ी को है जौक़े रूहानी।
मग़रिबी में है मेले-जिस्मानी ।।
कहा मन्सूर ने ख़ुदा हूँ मैं।
डारविन बोले बूज़ना हूँ मैं ।।

१२३

नई तहज़ीब में दिक्क़त ज़ियादा तो नहीं होती।
मज़ाहब रहते हैं क़ायम फ़क़त ईमान जाता है ।।
थियेटर रात को दिन को हैं यारों की ये इस्पीचें।
दुहाई लाट साहब की मेरा ईमान जाता है ।।

१२४

पड़े गुनगुनाते थे लाला निरञ्जन।
न आँखों में अञ्जन न दाँतों में मञ्जन ।।
छुटे हम से बिल्कुल वो अगले तरीक़े।
कहाँ खींच ले जायगा हमको अञ्जन ।।

१२५

तरक़्क़ी की नई राहें जो ज़ेरे-आस्माँ निकलीं।
मियाँ मस्जिद से निकले औ हरम से बीबियाँ निकलीं।
मुसीबत में भी अब यादे ख़ुदा आती नहीं उनको।
दुआ निकली न मुँह से पाकटों से अर्ज़ियाँ निकलीं ।।

१२६

मेरे मनसूबे तरक़्क़ी के हुये सब पायमाल।
बीज मग़रिब ने जो बोया वो उगा औ फल गया ।।
बूट डासन ने बनाया मैंने यक मज़मूँ लिखा।
मुल्क में मज़मूँ न फैला और जूता चल गया ।।

१२७

पुरानी रोशनी में औ नई में फ़र्क़ इतना है।
उसे किश्ती नहीं मिलती इसे साहिल नहीं मिलता ।।

१२८

दिल में अब नूरे ख़ुदा के दिन गये।
हड्डियों में फास्फ़ोरस देखिये ।।

१२९

कुछ देखता नहीं मैं दिले-ज़ार के लिये।
जो कुछ य' हो रहा है सब अख़बार के लिये ।।

१३०

मेरी नसीहतों को सुनकर वो शोख़ बोला।
नेटिव की क्या सनद है साहब कहें तो मानूँ ।।

१३१

शेख़ साहब का तास्सुब है जो फ़रमाते हैं।
ऊँट मौजूद है फिर रेल पै क्यों चढ़ते हो ?

१३२

बिठाई जायेंगी परदे में बीबियाँ कबतक।
बने रहोगे तुम इस मुल्क में मियाँ कब तक ।।

१३३

नूरे इस्लाम ने समझा था मुनासिब परदा।
शमए ख़ामोश को फ़ानूस की हाजत क्या है ।।

१३४

जब पेशवा ने अपना काबा जुदा बनाया।
अपने मज़े को सब ने अपना ख़ुदा बनाया ।।

१३५

तिफ्ल में बू आये क्या माँ बाप के अवतार की।
दूध तो डिब्बे का है तालीम है सरकार की ।।

१३६

मेरे सय्याद की तालीम की है धूम गुलशन में।
यहाँ जो आज फँसता है वो कल सय्याद होता है।।

१३७

बे परदा नज़र आईं कल जो चन्द बीबियाँ।
'अकबर' ज़मी में ग़ैरते क़ौमी से गड़ गया।।
पूछा जो उन से आपका परदा कहाँ गया।
कहने लगीं कि अक्ल पै मरदों की पड़ गया।।

१३८

तालीम लड़कियों की ज़रूरी तो है मगर।
ख़ातूने ख़ाना हों वो सभा की परी न हों।।
ज़ीइल्मों मुत्तक़ी हों जो हों उनके मुन्तज़िम।
उस्ताद अच्छे हों मगर उस्तादजी न हों।।

१३९

कौन कहता है कि तालीमे-ज़नाँ खूब नहीं।
एक ही बात फ़क़त कहना है याँ हिकमत को।।
दो उसे शौहरो अतफ़ाल की ख़ातिर तालीम।
क़ौम के वास्ते तालीम न दो औरत को।।

१४०

तालीमे दुख्तराँ से ये उम्मीद है ज़रूर।
नाचे दुल्हन खुशी से खुद अपनी बरात में।।

१४१

उन से बीबी ने फ़क़त इस्कूल ही की बात की।
ये न बतलाया कहाँ रक्खी है रोटी रात की।।

१४२

अग़राज़ बढ़ गया है आराम घट गया है।
ख़िदमत में है वो लेज़ी औ नाचने में रेडी।।

तालीम की ख़राबी से हो गई बिल आख़िर।
शौहर पसन्द बीबी पब्लिक पसन्द लेडी।।

१४३

क्यों अपने सर प ज़हमते बेसूद लीजिये।
कौन्सिल के बदले घर में उछल कूद कीजिये।।
खा पी के घर में बैठिये औ गाइये भजन।
काशी से जल प्रयाग से अमरूद लीजिये।।

१४४

हमदर्द हों सब ये लुत्फ़े आबादी है।
हमसाया भी हो शरीक तब शादी है।।
तसकीन है जब कि ख़ुदा पर हो तकिया।
क़ानून बना सकें तब आज़ादी है।।

१४५

ज़ोरे बाज़ू न हो तो क्या इस्पीच।
हाथ भी दे ख़ुदा ज़बाँ के साथ।।

१४६

हमें तो चाहते हैं खींचना ख़ुद हमसे खिचते हैं।
ये उनकी पालिसी के बाग़ किस पानी से सिंचते हैं।।

१४७

हम उर्दू को अरबी क्यों न करें उर्दू को वो भाषा क्यों न करें।
झगड़े के लिये अख़बारों में मज़मून तराशा क्यों न करें।।
आपस में अदावत कुछ भी नहीं लेकिन एक अखाड़ा क़ायम है।
जब इससे फ़लक का दिल बहले हम लोग तमाशा क्यों न करें।।

१४८

हिन्दू मुस्लिम एक हैं दोनों।
यानी ये दोनों एशियाई हैं।।

हमवतन हमज़ुबाँ वो हमक़िस्मत।
क्यों न कह दूँ कि भाई भाई हैं।।

१४९

बाज़ मुसलिम तो ऐसे हैं मौजूद।
मुँह जो लहमे बकर से मोड़ते हैं।।
फ़ौजी गोरे मगर रुकें क्यों कर।
जान बुल कब गऊ को छोड़ते हैं।।

१५०

झगड़ा कभी गाय का ज़ुबाँ की कभी बहस।
है सख़्त मुज़िर ये नुस्ख़ये गावज़ुबाँ।।

१५१

ख़ुदा ही की इबादत जिन को हो मक़सूद ऐ अकबर।
वो क्यों बाहम लड़ें गो फ़र्क़ हो तरज़े इबादत में।।

१५२

चला जाता था एक नन्हा सा कीड़ा रात काग़ज़ पर।
बिना क़स्दे ज़रर उसको हटाया मैंने उँगली से।।
मगर वह ऐसा नाज़ुक था कि फ़ौरन् पिस गया बिल्कुल।
निहायत ही ख़फ़ीफ़ यक दाग़ काग़ज़ पर रहा उसका।।
अभी वो रोशनी में शमअ की काग़ज़ पै फिरता था।
अभी यू मिट गया वो जुम्बिशे अंगुश्ते-इन्साँ से।।
लिया मेरे सिवा नोटिस ही किसने उसका दुनिया में।
न थी फ़ितरत को क्या कारीगरी उसके बनाने में।।
नसबनामा भी उसका आलमे ज़र्रात में होगा।
यही थी उसकी हस्ती और इसी में उसकी मस्ती थी।।
न मातम करने वाला है न लाइफ़ लिखने वाला है।
वो धब्बा दर्से इबरत दे रहा है मुझको ऐ अकबर।।

मआज़ अल्लाह क्या समझा है तूने अपनी वक़अत को ।
तुझे भी सफ़हए रूये-ज़मीं से एक दिन आख़िर ।।
मिटा देगी कोई तहरीके फ़ितरत हुक्मे बारी से ।
अजब हैरत से मैं हूँ देखता इस दागे काग़ज़ को ।।
मेरी नज़रों में तो नक़्शा ये है दुनियाये फ़ानी का ।
सरीहन जिस्म था एक जान थी अहसास थी उसमें ।।
औ अब धब्बा सा है क्या जाने कोई कैसा धब्बा है ।
अजब क्या है जो समझे कोई पेन्सिल की लकीर इस को ।।
मआज़ अल्ला मआज़ अल्लाह सन्नाटे का आलम है ।
बहुत जी चाहता है रोऊँ इस हस्ती के धब्बे पर ।।
ये हैं बरसात के दिन तीसरी भादों गुज़रती है ।
मैं अपना ग़म ग़लत करता हूँ कुछ अशआर लिखने से ।।

१५३

अकबर न थमा बुतख़ाने में ज़हमत भी हुई औ ज़र भी गया ।
कुछ नामे ख़ुदा से उन्स भी था कुछ ज़ुल्मे बुताँ से डर भी गया ।।
परवाने का हाल इस महफ़िल में है काबिले रश्क अय अहले नज़र ।
यक शब ही में य'पैदा भी हुआ आशिक़ भी हुआ औ मर भी गया ।।
काबे से जो बुत निकले तो क्या काबा ही गया जब दिल से निकल ।
अफ़सोस कि बुत भी हम से छुटे क़ब्ज़े से ख़ुदा का घर भी गया ।।
क्या गुज़री जो एक परदे के उदू रो रो के पुलिस से कहते थे ।
इज्ज़त भी गई दौलत भी गई बीबी भी गई ज़ेवर भी गया ।।
अकबर के जो मर जाने की ख़बर साक़ी ने सुनी तो ख़ूब कहा ।
मरना तो ज़रूरी था ही उसे रिन्दों के लिये कुछ कर भी गया ।।

१५४

गुल फेंके है यूरोप की तरफ़ बल्कि समर भी ।
अय नेचरो-साइन्स भला कुछ तो इधर भी ।।

अग़यार तो दुनिया हैं उठाये हुवे सर पर।
हम बैठे हैं इस तरह कि उठता नहीं सर भी।।
अग़यार तो रग-रग से हमारी हुवे वाक़िफ़।
हम वो हैं कि पाते नहीं उस बुत की कमर भी।।

१५५

सोचो कि आगे चलकर क़िस्मत में क्या लिखा है।
देखो घरों में क्या था और आज क्या रहा है।।
हुशियार रहके पढ़ना इस जाल में न पड़ना।
यूरोप ने ये किया है यूरप ने वो किया है।।

१५६

या इमीटेशन के सदक़े चाय दूध और खाँड ले।
या इजीटेशन के बदले तू चला जा माँडले।।
या क़नाअ़त और नाअ़त में बसर कर ज़िन्दगी।
रिज़्क़ की किश्ती को खे पतवार ले और डाँड़ ले।।

१५७

बुते सितमगर की कुछ न पूछो हसीन भी है जहीन भी है।
नहीं है दिल ही पै सिर्फ़ आफ़त यहाँ तो खतरे में दीन भी है।।
हमारे झगड़ों की कुछ न पूछो तमाम दुनिया है और हम हैं।
कि जेब में ज़र है घर में ज़न है खिराज पर कुछ ज़मीन भी है।।

१५८

ज़िन्दगी को ज़रूर है एक शग़्ल।
ख़ैर बिलफ़ेल लीडरी ही सही।।
अब तो अकबर बसा है गङ्गा तीर।
न हो अस्नान दिल्लगी ही सही।।

१५९

लुत्फ़ चाहो एक बुते नौख़ेज़ को राज़ी करो।
नौकरी चाहो किसी अंग्रेज़ को राज़ी करो।।

लीडरी चाहो तो लफ्ज़ें क़ौम है महमाँ नवाज़ ।
गप नवीसों को औ अहले मेज़ को राज़ी करो ।।

१६०

वाज़ कालिज में जो कह आते हैं अक्सर अकबर ।
क्या ये गिरती हुई दीवार को थाम आते हैं ।।

१६१

फिरंगी से कहा पेन्शन भी लेकर बस यहीं रहिये ।
कहा जीने को आये हैं यहाँ मरने नहीं आये ।।

१६२

जहाँ सूई घड़ी की होती थी वक़्त उसको कहते थे ।
गई चोरी तो हम समझे ज़माना इसको कहते हैं ।।

१६३

हम ऐसी कुल किताबें क़ाबिले जब्ती समझते हैं ।
कि जिनको पढ़के लड़के बाप को ख़ब्ती समझते हैं ।।

१६४

तुम से उस्तादों में मेरी शायरी बेकार है ।
साथ सारङ्गी का बुलबुल के लिये दुश्वार है ।।

१६५

ग़रीब अकबर के गिर्द क्यों है जनाबे वाइज़ से कोई कह दे ।
उसे डराते हो मौत से क्या वो ज़िन्दगी ही से डर चुका है ।।

१६६

ये परचा जिसमें चन्द अशआर हैं इरसाले ख़िदमत है ।
हमारे लख़्ते दिल हैं आपका माले तिजारत है ।।

१६७

ये न पूछो मुझसे ये क्यों है और ऐसा क्यों नहीं ।
शेख़ यह सोचो तुम्हारे पास पैसा क्यों नहीं ।।

१६८

काफ़ी अगरचे लेटने को एक पलंग है।
अँगडाइयों को अरज़ए दुनिया भी तंग है ।।

१६९

क्यूंकर न शेरे अकबर आये पसन्द सब को।
ये रंग ही नया है कूचा ही दूसरा है ।।

१७०

बुतों की मदह से कुल शायरी उर्दू की ममलू है।
शिकस्त उर्दू जो पायेगी तो मैं समझूंगा बुत टूटा ।।

१७१

इश्क़ नाज़ुक मिज़ाज है बेहद।
अक्ल का बोझ उठा नहीं सकता ।।

१७२

एक दिन और क़यामत खिसक आयेगी इधर।
और क्या अर्ज़ करूँ आपसे कल क्या होगा ।।

१७३

कहाँ है हम में अब ऐसे सालिक कि राह ढूंढी क़दम उठाया।
जो हैं तो ऐसे ही रह गये हैं किताब देखी क़लम उठाया ।।

१७४

बाग़े उमीद के फल होते हैं रोज़ ज़ाया।
हमको ख़ुदा बचाये औलादे-डारविन से ।।

१७५

डारविन साहब हक़ीक़त से निहायत दूर थे।
मैं न मानूंगा कि मूरिस आप के लंगूर थे ।।

१७६

दुनिया में हूँ दुनिया का तलबगार नहीं हूँ।
बाज़ार से गुज़रा हूँ खरीदार नहीं हूँ ।।

ज़िन्दा हूँ मगर ज़ीस्त की लज्ज़त नहीं बाक़ी।
हरचंद कि हूँ होश में हुशियार नहीं हूँ ।।
वह गुल हूँ ख़िज़ाँ ने जिसे बरबाद किया है।
उलझूं किसी दामन से मैं वो ख़ार नहीं हूँ ।।

१७७

चर्ख़ ने पेशे कमीशन कह दिया इज़हार में ।
क़ौम कालिज में औ उसकी ज़िन्दगी अख़बार में ।।

१७८

मुद्दत से होश में हूँ नज़रे दिले ज़बाँ हूँ ।
लेकिन खुला न अबतक मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ ।।

१७९

जैसा मौसिम हो मुताबिक उसके मैं दीवाना हूँ ।
मार्च में बुलबुल हूँ औ जौलाई में परवाना हूँ ।।

१८०

खिलवते नाज़ में क्या शान खुद आराई है ।
हुस्न खुद आलमे हैरत में तमाशाई है ।।

१८१

क़द्रदानों की अदीअत का अजब रंग है आज ।
बुलबुलों को है य' हसरत कि वो उल्लू न हुये ।।

१८२

मेरा टट्टू ज़ियादा मशरक़ी है शेख साहब से ।
कि वो मोटर में चढ़ते हैं य' मोटर से भड़कता है ।।

१८३

काफ़ी है अमीरों को क़वानीन गवर्मेंट ।
मज़हब की ज़रूरत तो ग़रीबों के लिये है ।।

१८४

मेम ने शेख को डाँटा तो पुकारा वो ग़रीब ।
देखिये तोप ने लाठी को दबा रक्खा है ।।

१८५

ख़ुदा की राह में पहले बसर करते थे सख़्ती से ।
महल में बैठकर अब इश्क़े क़ौमी में तड़पते हैं ।।

१८६

भूलता जाता है यूरप आसमानी बाप को ।
बस ख़ुदा समझा है उसने बर्क़ को औ भाप को ।।
बर्क़ गिर जायेगी एक दिन और उड़ जायेगी भाप ।
देखना अकबर बचाये रखना अपने आप को ।।

१८७

सवाब कहता है मिल जाऊँगा कर उनकी मदद ।
छिपा हुआ मैं ग़रीबों की भूख प्यास में हूँ ।।

१८८

हमको नई रविश के हलके जकड़ रहे हैं ।
बातें तो बन रही हैं औ घर बिगड़ रहे हैं ।।

१८९

शागिर्दे डार्विन तो ख़ुदा ही ने कर दिया ।
अकबर मगर नहीं है मदारी के हाथ में ।।

१९०

मुवक्किल छुटे उनके पंजे से जब ।
तो वे क़ौमे मरहूम के सर हुये ।।
पपीहे पुकारा किये पी कहाँ ।
मगर वो तो प्लीडर से लीडर हुये ।।

१९१

यक दिल्लगी है वक़्त गुज़रने के वास्ते ।
देखो तो मेम्बरों के ज़रा हेर-फेर को ।।
ऐसी कमेटियों से है फल का उमेदवार ।
अकबर दरख़्त समझा है पत्तों के ढेर को ।।

१९२

क़ौम के दिल में खोट है पैदा ।
अच्छे अच्छे हैं वोट पै शैदा ।।
भाई भाई में हाथा-पाई है ।
सेल्फ़ गवर्नमेंट आगे आई है ।।

१९३

पाँव का होश अब न फ़िक्र है सिर की ।
वोट की धुन में बन गये फिरकी ।।

१९४

गांधी में सब भलाई लेकिन वो महज़ बेबस ।
साहब में सब बुराई लेकिन वो ख़ूब चौकस ।।

१९५

बुद्धू मियाँ भी हज़रते गाँधी के साथ हैं ।
गो गर्द राह हैं मगर आँधी के साथ हैं ।।

१९६

कहता हूँ हिन्दू वो मुसलमाँ से यही ।
अपनी अपनी रविश प तुम नेक रहो ।।
लाठी है हवाये दहर पानी बन जाओ ।
मौजों की तरह लड़ो मगर एक रहो ।।

१९७

मुहर्रम औ दशहरा साथ होगा ।
निबाह उसका हमारे हाथ होगा ।।

ख़ुदा ही की तरफ़ से है यह संजोग ।
तो बाहम क्यों न रक्खें सुलह हम लोग ।।

१९८

अपने ऐबों की न कुछ फ़िक्र है न परवा है ।
ग़लत इलजाम बस औरों प लगा रक्खा है ।।
यही फ़रमाते रहे तेग़ से फैला इसलाम ।
यह न इरशाद हुआ तोप से क्या फैला है ।।

१९९

मदखूलए गवर्मेंट अकबर अगर न होता ।
उसको भी आप पाते गाँधी की गोपियों में ।।

२००

क़सीदे से न चलता है न ये दोहे से चलता है ।
समझ लो ख़ूब कारे सल्तनत लोहे से चलता है ।।

२०१

उधर है जेल की ज़हमत इधर है क़ौम की लानत ।
उधर आराम जाता है इधर ईमान जाता है ।।
ब मजबूरी वो माज़ूरी शरीके कैम्प है अकबर ।
मगर जिसकी बसीरत है उसे पहचान जाता है ।।

२०२

बहारे उम्र गुज़री सालहाऐ-इम्तहानी में ।
हमें तो पास ही की फ़िक्र ने पीसा जवानी में ।।

२०३

हसरत बहुत तरक्क़िए दुख्तर की थी उन्हें ।
पर्दा जो उठ गया तो वो आख़िर निकल गई ।।

२०४

वाह क्या धज है मेरे भोले की ।
शक़ कोले की हैट सोले की ।।

२०५

जिधर साहब उधर दौलत जिधर दौलत उधर चंदा ।
जिधर चंदा उधर आनर जिधर आनर उधर बंदा ।।

२०६

बेहतर यही है फेर लें आँखों को गाय से ।
क्या फ़ायदा है रोज़ की इस हाय-हाय से ।।
मुँह बन्द हो सकेगा मुसलमाँ शरीफ़ का ।
चस्का मगर न जायगा साहब से बीफ़ का ।।

२०७

पानी पीना पड़ा है पाइप का ।
हर्फ़ पढ़ना पड़ा है टाइप का ।।
पेट चलता है आँख आई है ।
शाह एडवर्ड की दुहाई है ।।

२०८

चिपकूं दुनिया से किस तरह मैं ?
औरत ने कहा कि गोंद मैं हूँ ।।
क़ौमी चन्दे कहाँ समायेंगे ?
कालिज ने कहा कि तोंद मैं हूँ ।।

२०९

बड़े शौक़ से सुन रहा था ज़माना ।
तुम्हीं सो गये दास्ताँ कहते कहते ।।

२१०

दाँत का दर्द बदस्तूर चला जाता है ।
वही माजू वही काफ़ूर चला जाता है ।।
डारविन के उसी लेक्चर का सबक़ है अबतक ।
वही बन्दर वही लंगूर चला जाता है ।।

बर्क़ के लम्प से आँखों को बचाये अल्लाह।
रोशनी आती है और नूर चला जाता है।।

२११

कहा किसी ने य' सैयद से आप ऐ हज़रत !
न पीर को न किसी पेशवा को मानते हैं।।
नज़र तो कीजिये इस बात पर जो हैं हिन्दू।
बसद ख़लूस हरेक देवता को मानते हैं।।
बहुत वो हैं जो अनासिर परस्त हैं दिल से।
वो आग पूजते हैं या हवा को मानते हैं।।
मुरादें माँगते हैं लोग पाक रूहों से।
किसी बुज़ुर्ग को या मुक़तदा को मानते हैं।।
फिर आप में ये हवा क्या समा गई है कि आप।
न दस्तगीर न मुश्किल कुशा को मानते हैं।।
जवाब उन्होंने दिया हम हैं पीर बे कुरआँ।
अदब हरएक का है लेकिन ख़ुदा को मानते हैं।।
जवाब हज़रते सय्यद का ख़ूब है अकबर।
हम उनके क़ौले दुरुस्तो बजा को मानते हैं।।
व लेकिन इस नई तहज़ीब के बुज़ुर्ग अक्सर।
ख़ुदा को और न तरीके दुआ को मानते हैं।।
ज़बानी कहते हैं सब कुछ मगर हक़ीक़त में।
वो सिर्फ़ क़ूवते-फरमाँरवाँ को मानते हैं।।

२१२

नई-नई लग रही हैं आँचें ये क़ौम बेकस पिघल रही है।
न मशरिक़ी है न मग़रिबी है अजीब साँचे में ढल रही है।।

२१३

जिस रोशनी में लूट ही की आपको सूझे।
तहज़ीब की मैं उसको तजल्ली न कहूँगा।।

लाखों को मिटाकर जो हज़ारों को उभारे ।
इसको तो मैं दुनिया की तरक्की न कहूँगा ।।

२१४

कौन्सिल में सवाल होने लगे ।
क़ौमी ताक़त ने जब जवाब दिया ।।

२१५

रोशन दिले आरिफ़ से फ़िज़ूँ है बदन उनका ।
रंगी है तबीयत कि तरह पैरहन उनका ।।
महरूम ही रह जाती है आग़ोशे तमन्ना ।
शर्म आके चुरा लेती है सारा बदन उनका ।।
है साफ़ निगाहों से अयाँ जोशे-जवानी ।
आँखों से सम्हलता नहीं मस्तानापन उनका ।।
यह शर्म के मानी हैं हया कहते हैं इसको ।
आगोशे-तसव्वुर में न आया बदन उनका ।।
इस ज़ुल्फ़ो-रुख़ो लब प उन्हें क्यों न हो नख़वत ।
तातार है उनका हलब उनका यमन उनका ।।
गुज़री हुई बातें न मुझे याद दिलाओ ।
अब ज़िक्र ही जाने दो बस ऐ जानेमन उनका ।।
दिलचस्प है आफ़त है क़यामत है ग़ज़ब है ।
बात उनकी अदा उनकी क़द उनका चलन उनका ।।

२१६

तआल्लुक़ आशिको माशूक का तो लुत्फ़ रखता था ।
मज़े अब वह कहाँ बाक़ी रहे बीबी-मियाँ होकर ।।
न थी मुतलक़ तवक्को बिल बनाकर पेश कर दोगे ।
मेरी जाँ लुट गया मैं तो तुम्हारा मेहमाँ होकर ।।
हक़ीकत में मैं बुलबुल हूँ मगर चारे की ख़्वाहिश है ।
बना हूँ मेम्बरे-कौंसिल यहाँ मिट्ठू मियाँ होकर ।।

रक़ीबे सिफ़्ला-ख़ू ठहरे न मेरी आह के आगे ।
भगाया मच्छरों को उनके कमरे से धुआँ होकर ।।

२१७

मुंह देखते हैं हज़रत अहबाब पी रहे हैं ।
क्या शेख़ इसलिये अब दुनिया मे जी रहे हैं ।।
मैंने कहा जो उससे ठुकरा के चल न ज़ालिम ।
हैरत में आके बोला—क्या आप जी रहे हे ।।
अहबाब उठ गये सब अब कौन हमनशीं हो ।
वाक़िफ़ नहीं हैं जिनसे बाक़ी वही रहे हैं ।।
परियों के आशिकों को सौदा हुआ मिसों का ।
जो फाड़ते थे जामा अब कोट सी रहे है ।।

२१८

साँस लेते हुये भी डरता हूँ ।
यह न समझे कि आह करता हूँ ।।
बहरे-हस्ती में हूँ मिसाले-हुबाब ।
मिट ही जाता हूँ जब उभरता हूँ ।।
इतनी आज़ादी भी ग़नीमत है ।
साँस लेता हूँ बात करता हूँ ।।
शेख़ साहब ख़ुदा से डरते हैं ।
मैं तो अँग्रेज़ों ही से डरता हूँ ।।
आप क्या पूछते हैं मेरा मिज़ाज ।
शुक्र अल्लाह का मैं मरता हूँ ।।
यह बड़ा ऐब मुझमें है अकबर ।
दिल में जो आये कह गुज़रता हूँ ।।

२१९

हस्ती के शजर में जो ये चाहो कि चमक जाव ।
कच्चे न रहो बल्कि हरेक रंग में पक जाव ।।

मैंने कहा—क़ायल मैं तसव्वुफ़ का नहीं हूँ ।
कहने लगे—इस वज़्म में आओ तो थिरक जाव ।।
मैंने कहा—कुछ ख़ौफ़ कलक्टर का नहीं है ।
कहने लगे—आ जाँय अभी वह तो दबक जाव ।।
मैंने कहा—वर्ज़िश की कोई हद भी है आख़िर ।
कहने लगे—बस इसकी यही हद है कि थक जाव ।।
मैंने कहा—अफ़कार से पीछा नहीं छूटता ।
कहने लगे—तुम जानिबे-मैखाना लपक जाव ।।
मैंने कहा—अकबर में कोई रंग नहीं है ।
कहने लगे—शेर उसके जो सुन लो तो फड़क जाव ।।

२२०

हासिल हो कुछ मआश यह मेहनत की बात है ।
लेकिन सुरूरे-क़ल्ब यह क़िस्मत की बात है ।।
आपस की वाह वाह लियाक़त की बात है ।
सरकार की क़ुबूल य' हिकमत की बात है ।।
बी० ए० भी पास हों मिले बीबी भी दिलपसन्द ।
मेहनत की बात वह है य' क़िस्मत की बात है ।।
तहज़ीबे मग़रबी में है बोसा तलक मुआफ़ ।
इससे अगर बढ़ो तो शरारत की बात है ।।

२२१

हंगामा है क्या बरपा थोड़ी सी जो पी ली है ।
डाका तो नहीं डाला चोरी तो नहीं की है ।।
ना-तजुर्बाकारी से वाइज़ की हैं य' बातें ।
इस रंग को क्या जाने पूछो तो कभी पी है ।।

२२२

तहम्मुल बरकते-तालीम से ऐसा हुआ पैदा ।
कि हिस तहक़ीर का होता है औ गुस्सा नहीं आता ।।

ख़ुदा के फ़ज़ल से बीबी मियाँ दोनों मुहज्ज़ब हैं।
हिजाब उनको नहीं आता उन्हें ग़ुस्सा नहीं आता।।

२२३

वाहम शबे-विसाल ग़लत-फ़हमियाँ हुई।
मुझको परी का सुबह हुआ उनको भूत का।।

२२४

मज़हब छोड़ो मिल्लत छोड़ो सूरत बदलो उम्र गँवाओ।
सिर्फ़ कलर्की की उम्मीद और इतनी मुसीबत तोबा तोबा।।

२२५

कहा मजनूँ से यह लैला की माँ ने।
कि बेटा तू अगर करले एम० ए० पास।।
तो फ़ौरन ब्याह दूँ लैला को तुझसे।
बिना दिक़्क़त मैं बन जाऊँ तेरी सास।।
कहा मजनूँ ने यह अच्छी सुनाई।
कुजा आशिक़ कुजा कालिज की बकवास।।
बड़ी बी! आपको क्या हो गया है।
हिरन पर लादी जाती है कहीं घास।।
यह अच्छी क़द्रदानी आपने की।
मुझे समझा है कोई हरचरनदास।।
दिल अपना ख़ून करने को हूँ मौजूद।
नहीं मंजूर मग़ज़े-सर का आमास।।
यही ठहरी जो शर्ते-वस्ले-लैला।
तो इस्तीफ़ा मेरा बा-हसरतो यास।।

२२६

गोलियों के ज़ोर से करते हैं वह दुनिया को हज़्म।
इससे बेहतर इस ग़िज़ा के वास्ते चूरन नहीं।।

२२७

नौकर को सिखाते हैं मियाँ अपनी ज़बाँ।
मतलब यह है कि समझे उनके फ़र्मान।।
मक़सूद नहीं मियाँ की सी अक्ल तमीज़।
इस नुक्ते को क्या समझें वो जो हैं नादान।।

२२८

मिटाते हैं जो वह हमको तो अपना काम करते हैं।
मुझे हैरत तो उन पर है जो इस मिटने प मरते हैं।।

२२९

अभी इंजन गया है इस तरफ़ से।
कहे देती है तारीकी हवा की।।
रही रात एशिया ग़फ़लत में सोई।
नज़र यूरप की काम अपना किया की।।

२३०

मज़हब को शायरों के न पूछें जनाब शेख़।
जिस वक़्त जो ख़याल है मज़हब भी है वही।।

२३१

तालीम है लड़कों की कि इक दामे-बला है।
ऐ काश कि इस अहद में हम बाप न होते।।

२३२

अज़ीज़ाने-वतन को देता हूँ पहिले ही से नोटिस।
चुरट और चाय की आमद है हुक्क़ा पान जाता है।।
य' इतनी गोशमाली तिफ्ले-मकतब की नहीं अच्छी।
ज़बाँ आती है उसकी सच है लेकिन कान जाता है।।
मेरी दाढ़ी से रहता है वो बुत इन्कार पर क़ायम।
मगर जब दिल दिखाता हूँ तो फ़ौरन मान जाता है।।

ज़वाले-जाहो-दौलत में सब इतनी बात अच्छी है।
कि दुनिया को बख़ूबी आदमी पहचान जाता है।।

२३३

तआज्जुब से कहने लगे बाबू साहब।
गवर्मेंट सैयद प क्यों मेहरबाँ है।।
उसे क्यों हुई इस क़दर कामयाबी।
हि हर बज़्म में बस यही दास्ताँ है।।
कभी लाट साहब हैं मेहमान उसके।
कभी लाट साहब का वह मेहमाँ है।।
नहीं है हमारे बराबर वो हरगिज़।
दिया हमने हर सीग़े का इम्तिहाँ है।।
वह अँगरेज़ी से कुछ भी वाकिफ़ नहीं है।
यहाँ जितनी इंगलिश है सब बरज़बाँ है।।
कहा हँसके अकबर ने ऐ बाबू साहब!
सुनो मुझसे जो रम्ज़ इसमें निहाँ है।।
नहीं है तुम्हें कुछ भी सैयद से निस्बत।
तुम अँगरेज़ीदाँ हो वो अँगरेज़-दाँ है।।

२३४

इनको क्या काम है मुरव्वत से,
अपने रुख़ से य' मुँह न मोड़ेंगे।।
जान शायद फ़रिश्ते छोड़ भी दें।
डाक्टर फीस को न छोड़ेंगे।

२३५

बेपास को तो सास की भी अब नहीं है आस।
मौकूफ़ शादियाँ भी हैं अब इम्तहान पर।।

२३६

सकूने क़ल्ब की दौलत कहाँ दुनियाए फानी में।
बस इक गफलत सी आ जाती है और वह भी जवानी में ॥

२३७

जो कुछ देखा अच्छा देखा,
क्या बतलायें क्या क्या देखा।
जमुनाजी के पात को देखा,
अच्छे सुथरे घाट को देखा।
सबसे ऊँचे लाट को देखा,
हज़रत डचूक कनाट को देखा।
पलटन और रिसाले देखे,
गोरे देखे काले देखे।
संगीनें और भाले देखे,
बैन्ड बजाने वाले देखे।
कुछ चेहरों पर मर्दी देखी,
कुछ चेहरों पर ज़र्दी देखी।
अच्छी खासी सर्दी देखी,
दिल में जो हालत कर दी देखी।
अच्छे अच्छों को भटका देखा,
भीड़ में खाते झटका देखा।
मुँह को अगरचे लटका देखा,
दिल दरबार से अटका देखा।
रंगे ज़माना आज का देखा,
रुख कर्ज़न महाराज का देखा।
पहुँचे फाँद के सात समुन्दर,
तहत में इनके बीसियों बन्दर।

हिकमतो-दानिश उनके अन्दर,
अपनी जगह हरएक सिकन्दर।
महफिल उनकी साक़ी उनका,
आँखे मेरी बाक़ी उनका।*

२३८

इक मिसे-सीमी-बदन से कर लिया लन्दन में अक़्द।
इस ख़ता पर सुन रहा हूँ तानहाये-दिलख़राश॥
कोई कहता है कि बस इसने बिगाड़ी नस्ले क़ौम।
कोई कहता है कि यह है बदख़िसालो बदमआश॥
दिल में कुछ इंसाफ़ करता ही नहीं कोई बुज़र्ग।
होके अब मजबूर ख़ुद इस राज़ को करता हूँ फ़ाश॥
होती थी ताक़ीद लन्दन जाओ अँगरेज़ी पढ़ो।
क़ौम-इँगलिश से मिलो सीखो वही वज़वो तराश॥
जगमगाते होटलों का जाके नज़्ज़ारा करो।
सूपो-कारी के मज़े लो छोड़ दो यख़नी व आश॥
लेडियों से मिल के सीखो उनके अन्दाज़ो-तरीक़।
बाल में नाचो कलब में जाके खेलो उनसे ताश॥
बादये-तहज़ीबे-यूरुप के चढाओ खुम के खुम।
एशिया के शीशये-तक़वा को कर दो पाश पाश॥
जब अमल इस पर किया परियों का साया हो गया।
जिससे था दिल की हरारत को सरासर इन्तेआश॥
सामने थीं लेडियाने-ज़ाहेरश ज़ादू नज़र।
थी जवानी की उमँग और उनको आशिक़ की तलाश॥
उसकी चितवन सहरे-आगी उसकी बातें दिलरुबा।
चाल उसकी फ़ितने-खेज़ उसकी निगाहें बर्क़-पाश॥

---

*दिल्ली दरबार से

वह फ़रोग़े-आतिशे-रुख़ जिसके आगे आफ़ताब।
इस तरह जैसे कि पेशे शमा परवाने की लाश।।
जब य' सूरत थी तो मुमकिन था कि इक बरक़े बला।
दस्ते-सोमीं को बढ़ाती औ मैं कहता दूर बाश।।
दोनों जानिब था रगों में जोशे-ख़ूने-फ़ितनज़ा।
दिल ही था आख़िर नहीं थी बर्फ़ की कोई य' काश।।
बारबार आता है अकबर मेरे दिल में यह ख़याल।
हज़रते सय्यद से जाकर अर्ज़ करता कोई काश।
दर्मियाने-कारे-दरिया तख़्त बन्दुम करदई।
बाज़ मी गोई कि दामन तर मकुन हुशियारबाश।।

२३९

दिल लिया है जिसने हमसे दिल्लगी के वास्ते।
क्या तआज्जुब है जो तफरीहन् हमारी जान ले।।

२४०

गुले तस्वीर किस ख़ूबी से गुलशन में लगाया है।
मेरे सैयाद ने बुलबुल को भी उल्लू बनाया है।।

२४१

तुम बीबियों को मेम बनाते हो आजकल।
क्या ग़म जो हमने मेम को बीबी बना लिया।।

२४२

इस्लाम की रौनक़ का क्या हाल कहें तुम से।
कौंसिल में बहुत 'सैयद' मस्जिद में बहुत 'जुम्मन'।।

२४३

ये बोले रोके 'पीरू' और 'गयादीन'।
धरम दुनिया से उट्ठा और गया दीन।।

२४४

मुरीद उनके तो शहरों में उड़े फिरते हैं मोटर पर।
नज़र आते हैं लेकिन शेखजी अब तक मियाने में।।

२४५

बिरटिश की रिआया हैं लठ लेके जब उठेंगे।
जर्मन तेरी तोपो में हम बाँस चला देंगे।।

२४६

यही कहती फिरती है लड़के की नानी।
हरेक शाख में पास यह ऐ! बुआ है।
मेरा लाल कालेज का काकातुआ है।।

२४७

मेम्बर अलीमुराद हैं या सुख निधान हैं।
लेकिन मुआइने को यही नाबदान हैं।।

२४८

शेख जी को जो आया ग़ुस्सा। लगे कहने ये फेंककर धुस्सा।।
तुम हो शैतान के मुतीओ मुरीद। तुम को हर एक जानना है पलीद।।
है तुम्हारी नमूद बस इतनी। जिस तरह हो पड़ी परेड पे लीद।।

२४९

कल बिरगिड था जिनका बराती। उनके क़ब्र पे फूल न पाती।।
इबरत है यह दोहा गाती। सत्तर पूत बहत्तर नाती।
जिन रावन के दिया न बाती।।

२५०

मालवी का माल कुछ और मौलवी का मोल कुछ।
कहते हैं बाज़ार में अकबर से तू भी तोल कुछ॥
बोला वह दुनिया का सौदा तो फ़क़त इक खेल है।
उम्दगी है माल में और मोल में जब मेल है॥

साकिब

साकिब उपनाम; मिर्ज़ा ज़ाकिर हुसेन नाम; जन्म-स्थान आगरा; जन्मकाल १८६६ ई०; मृत्यु-काल १६४६ ई०।

साकिब छः महीने के थे, तभी इनके पिता आगरे से लखनऊ आ गये और वहीं बस गये। साकिब ने ज़िन्दगी के अन्तिम दिन लखनऊ ही में बिताये और वहीं वे क़ब्रबासी हुये।

साकिब को शायरी का शौक बचपन ही से था; पर आपके पिता को शायरी से बहुत चिढ़ थी। इससे ये छिपे-छिपे मुशायरों में अपनी ग़ज़लें पढ़वाते और दाद पाते रहे।

१८८७ से १८६१ तक आपको अँग्रेज़ी की शिक्षा प्राप्त करने के लिये आगरे में रहने का मौक़ा मिला। वहाँ आप अरबी, फ़ारसी और उर्दू के सुयोग्य उस्ताद मोमिन हुसेन ख़ाँ 'सफ़ी' के शागिर्द हो गये।

१६०६ में जीविका के लिये कलकत्ते गये। वहाँ से १६०८ में राजा साहब महमूदाबाद ने बुला लिया और पचास रुपये महीने की पेंशन नियत कर दी थी।

साकिब भी आशिक़ाना शायरी के फ़न में उस्ताद थे। यहाँ मिसाल के लिये उनकी कुछ शेर दिये जाते हैं:—

१

बाग़बाँ ने आग दी जब आशियाने को मेरे।
जिन पै तकिया था, वही पत्ते हवा देने लगे।।

२

मौत वह अच्छी कि जिसके बाद मिल जाये हयात।
जो सबब हो मौत का वह ज़िंदगी बेकार है।।

३

हम उनसे मिल के भी फुरक़त का हाल कह न सके।
मज़ा विसाल का खोते अगर गिला करते।।

४

कोई छूटा तो असीरी से मेरी, शुक्रे खुदा।
मैं क़फ़स में हूँ, मगर नींद उड़ गई सैयाद की।।

५

उम्र भर जलता रहा दिल और खामोशी के साथ।
शमा को इक रात की सोज़े दिली पर नाज़ था।।

६

एवज़ ले लिया हिज्र का मैंने मर के।
वो तुरबत प रोते थे, मैं सो रहा था।।

७

दिलने रग रग में छिपा रक्खा है राज़े-इश्क़े दोस्त।
जिसको कह दे नब्ज़ ऐसी मेरी बीमारी नहीं।।

८

ज़माना बड़े शौक से सुन रहा था।
हमीं सो गये दास्ताँ कहते-कहते।।

९

शादी में भी कुछ ग़म के पहलू निकल आते हैं।
बेसाख्ता हँसने में आँसू निकल आते हैं।।

१०

ज़माने वालों को पहचानने दिया न कभी।
बदल-बदल के लिबास अपने इन्क़लाब आया।।
सिवाय यास न कुछ गुम्बदे-फ़लक से मिला।
सदा भी दी तो पलटकर वही जवाब आया।।

११

सदायें देके हमने एक दुनिया आज़मा देखी।
यहाँ सुनते चले आये—बढ़ो आगे, यहाँ क्या है?

१२

दिल के होते भी कहीं दर्द जुदा होता है?
इक फ़क़त मौत के आजाने से क्या होता है।।

१३

जल्वए-हुस्न इक इशारे में बहुत कुछ कह गया।
मैं नहीं समझा, मगर हाँ दिल तड़प कर रह गया।।

१४

नादाँ भी हो गये मेरे नालों से होशियार।
अब आपके सिवा कोई ग़ाफ़िल नहीं रहा।।

१५

न समझा मानिए-गोरो-कफ़न समझा तो यह समझा।
थका था मैं लिपटकर सो रहा दामाने मंजिल से।।

१६

दुआयें दें मेरे बाद आनेवाले मेरी वहशत को।
बहुत काँटे निकल आये मेरे हमराह मंज़िल से।।

१७

होता नहीं है कोई बुरे वक्त का शरीक।
पत्ते भी भागते हैं ख़िज़ाँ में शज़र से दूर।।

१८

ख़ाली है जामे-ज़ीश्त मगर कह रही है मौत।
लबरेज़ तेरी उम्र का पैमाना हो गया।।

१९

एक दम था जो किसी सूरत निकलता ही न था।
इश्क़ के हाथों से यह मुश्किल भी आसाँ हो गई।।

इक़बाल

इक़बाल उपनाम ; सर मुहम्मद इक़बाल पूरा नाम ; जन्म-स्थान स्यालकोट (पंजाब) ; जन्म-काल १८७५ ई० ; मृत्यु-काल १९३७ ई० ।

इक़बाल जब छोटी उम्र के थे, तभी से इन्हें शायरी का चस्का लगा था । लाहौर के एक मुशायरे में इन्होंने पहले-पहल जो ग़ज़ल पढ़ी, उसका एक शेर सुनकर श्रोता दंग रह गये और एक स्वर से वाह-वाह कहकर चीख़ उठे थे ।

सन् १८९९ में मित्रों के आग्रह से इन्होंने अंजुमन इस्लाम के सालाना जलसे में 'नालये यतीम' नाम से बहुत मीठे सुरों में एक ऐसी कविता पढ़ी जो बड़ी ही पुरदर्द थी और उपस्थित जनता ने उसे इतना पसंद किया कि इनको बार-बार पढ़ना पड़ा । इतना ही नहीं, उसके प्रभाव से यतीम-ख़ाने के लिये चन्दे की वृष्टि होने लगी । इस कविता ने इनकी ख्याति दूर-दूर तक फैला दी ।

सन् १९०१ के एप्रिल से लाहौर से मख़जन नामी उर्दू मासिक शेख़ (अब सर) अब्दुल क़ादिर के सम्पादकत्व में बड़ी आनबान से निकलने लगा । उसमें इक़बाल की हिमाला नाम की कविता पहले-पहल प्रकाशित हुई थी । उसकी भी बड़ी तारीफ हुई । इसके बाद तो इक़बाल की सुन्दर रचनायें क़रीब-क़रीब सब उर्दू-पत्रों में निकलने लगीं ।

लाहौर कालेज से एम० ए० होने के बाद ये सन् १९०५ से १९०८ तक यूरोप में रहें । इँगलैंड में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में शिक्षा समाप्त कर और बैरिस्टर होकर ये जर्मनी गये और वहाँ इन्होंने 'डाक्टर आफ़ फ़िलासफी' की डिग्री प्राप्त की ।

ये उर्दू और अँग्रेजी के सिवा अरबी, फारसी और संस्कृत भी जानते थ। इनकी फ़ारसी कविता 'असरारे खुदी' नाम से प्रकाशित हुई है। जिसका अँग्रेजी अनुवाद प्रो० निकलसन ने किया है। योरप और अमेरिका में इस पुस्तक का बहुत आदर हुआ। 'बाँगे दरा' नाम से इनकी गज़लों का एक संग्रह और भी प्रकाशित हुआ है।

संस्कृत जानने का इनके विचारों पर यह प्रभाव पड़ा कि ये वेदान्त के रंग में रँग उठे। इनकी कविता में सर्वत्र वेदान्त की पुट मिलती है। इसके सिवा इक़बाल की कविता में स्वदेश-प्रेम की झलक़ भी क़ाफ़ी है। 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' इनकी यह गज़ल हिन्दुस्तान भर में मशहूर हो चुकी है।

इन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र और स्व० स्वामी रामतीर्थ के सम्बन्ध में भी दो कविताएँ लिखी हैं। पर आश्चर्य है कि इक़बाल के हृदय की यह विशालता यकायक संकुचित होने लगी और अन्त में इनकी रचना में केवल 'इस्लामियत' ही का रंग दिखाई पड़ता है। वेदान्त और साम्प्रदायिकता में तो बड़ा अन्तर है।

कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि इक़बाल अपने समय के सर्वश्रेष्ठ उर्दू-शायर थे, जिनकी रचना में भाषा और भाव दोनों का सौन्दर्य विद्यमान है।

ये दाग़ के शागिर्दों में थे। सन् १९३७ में लाहौर में इनका देहान्त हो गया।

यहाँ इक़बाल की कुछ कवितायें दी जा रही हैं—

१

कभी जो आवारये जुनूं थे वह बस्तियों में फिर आ बसेंगे।
बरहना-पाई वही रहेगी, मगर नया ख़ार ज़ार होगा॥
किया मेरा तज़किरा जो साक़ी ने बादख्वारों की अंजुमन में।
तो पीर मैख़ाना सुनके कहने लगा कि मुँहफट से ख्वार होगा॥

दयारे मग़रिब के रहने वालो ख़ुदा की बस्ती दुकाँ नहीं है।
खरा जिसे तुम समझ रहे हो वह अब ज़रे कम अयार होगा।।
तुम्हारी तहज़ीब अपने ख़ंजर से आप ही ख़ुदकुशी करेगी।
जो शाख़ नाज़ुक पै आशियाना बनेगा नापायदार होगा।।
जो एक था एक निगाह तूने हज़ार करके हमें दिखाया।
यही अगर कैफ़ियत है तेरी तो फिर किसे एतबार होगा ।।
ख़ुदा के आशिक तो हैं हज़ारों बनों में फिरते हैं मारे मारे।
मैं उसका बन्दा बनूँगा जिसको ख़ुदा के बन्दों से प्यार होगा।।
मैं ज़ुल्मते शब में लेके निकलूँगा अपने दरमाँदा कारवाँ को।
शरर-फ़िशाँ होगी आह मेरी नफ़स मेरा शोला बार होगा।।

२

कोई दिल ऐसा नज़र न आया न जिसमें ख़्वाबीदा हो तमन्ना।
इलाही तेरा जहान क्या है निगारख़ाना है आरज़ू का।।
रियाज़े हस्ती के ज़र्रे ज़र्रे से है मुहब्बत का जलवा पैदा।
हक़ीक़ते गुल को तो जो देखे तो यह भी पैमाना है रंग बू का।।
तमाम मजमूँ मेरे पुराने कलाम मेरा ख़ता सरापा।
हुनर कोई देखता है मुझमें तो ऐब से मेरे ऐब-जू का।।

३

वो चीज़ नाम है जिसका जहाँ में आज़ादी।
सुनी ज़रूर है देखी कहीं नहीं मैंने।।
ख़ुदा तो मिलता है इन्सान ही नहीं मिलता।
य' चीज़ वह है कि देखी कहीं कहीं मैंने।।

४

कहता है ख़िज़्र दश्ते जुनूँ में मुझे कि चल।
आता हूँ मैं भी पाँव से काँटे निकाल के।।

५

ऐ हुबाबे बहर ऐ परवरदए दामाने मौज।
कुछ पता मिलता है तुझसे अपनी हस्ती का मुझे ।।

६

यों तो ऐ सैयाद आज़ादी मे लाखों हैं मज़े।
दाम के नीचे फड़कने का तमाशा और है ।।

७

जुगनू की रोशनी है काशानये चमन में।
या शमअ जल रही है फूलों की अँजुमन में ।।
आया है आसमाँ मे उड़कर कोई सितारा।
या जान पड गई है महताब की किरन मे ।।
छोटे से चाँद में है ज़ुल्मत की रोशनी भी।
निकला कभी गहन से आया कभी गहन में ।।
पर्वाना इक पतंगा, जुगनू भी इक पतंगा।
वह रोशनी का जोया यह रोशनी सरापा ।।

८

हुस्ने-अज़ल की पैदा हर चीज़ में झलक है।
इन्साँ में वह सखुन है गुंचे में वह चटक है ।।
यह चाँद आसमाँ का शायर का दिल है गोया।
वाँ चाँदनी है जो कुछ याँ दर्द की कसक है ।।
कसरत में हो गया है वहदत का राज़ मख़फ़ी।
जुगनू में जो चमक है वह फूल में महक है ।।

९

यह इख़्तलाफ़ फिर क्यों हंगामों का महल हो।
हर शै में जब कि पिनहाँ ख़ामोशिये-अजल हो ।।

१०

रुलाता है तेरा नज़्ज़ारा ऐ हिन्दोस्ताँ मुझको।
कि इबरत खेज़ है तेरा फ़िसाना सब फ़िसानों में।।
दिया रोना मुझे ऐसा कि सब कुछ दे दिया गोया।
लिखा किल्के अज़ल ने मुझको तेरे नौहा-ख्वानो में।।
निशाने बर्गे गुल तक भी न छोड़ इस बाग में गुलचीं।
तेरी किस्मत के रज़्म आराइयाँ है बागबानों में।।
वतन की फिक्र कर नादाँ! मुसीबत आनेवाली है।
तेरी बर्बादियों के मश्विरे हैं आसमानों में।।
न समझोगे तो मिट जाओगे ऐ हिन्दोस्ताँ वालो!
तुम्हारी दास्ताँ तक भी न होगी दास्तानों में।।

११

फ़िदा करता रहा दिल को हसीनों की अदाओं पर।
मगर देखी न इस आईने में अपनी अदा तूने।।
तअस्सुब छोड़ नादाँ! दहर के आईना-खाने में।
ये तसवीरे हैं तेरी जिनको समझा है बुरा तूने।।

१२

चमक तेरी अयाँ बिजली में आतिश में शरारे म।
झलक तेरी हुवैदा चाँद में सूरज में तारे में।।
जो है बेदार इन्साँ में वो गहरी नींद सोता है।
शजर में फूल में हैवाँ में पत्थर में सितारे में।।
मुझे फूंका है सोज़े क़तरए अश्के मुहब्बत ने।।
ग़ज़ब की आग थी पानी के छोटे से शरारे में।।

१३

है आशिकी में रस्म अलग सब से बैठना।
बुतखाना भी, हरम भी, कलीसा भी छोड़ दे।।

सौदागरी नहीं, यह इबादत ख़ुदा की है।
ऐ बेख़बर ! जज़ा की तमन्ना भी छोड़ दे॥
अच्छा है दिल के साथ रहे पासबाने अक्ल।
लेकिन कभी कभी उसे तनहा भी छोड़ दे॥

१४

दस्ते-दौलत आफ़रीं की मुज्द यों मिलती रही।
अह्ले सर्वत जैसे देते हैं ग़रीबों को ज़कात॥
नस्ल, क़ौमीयत, कलीसा, सल्तनत, तहज़ीब, रंग।
ख़्वाबगी ने ख़ूब चुन-चुनकर बनाये मुसकरात॥
मक्रकी चालों से बाज़ी ले गया सर्मायादार।
इन्तहाये-सादगी से खा गया मज़दूर मात॥

१५

उठ कि अब बज्मे जहाँ का और ही अंदाज़ है।
मशरिक़ो मग़रिब में तेरे दौर का आग़ाज़ है॥

१६

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी यह गुलसिताँ हमारा॥
ग़ुरबत में हों अगर हम रहता है दिल वतन में।
समझो वहीं हमें भी दिल हो जहाँ हमारा॥
पर्वत वो सब से ऊँचा हमसाया आसमाँ का।
वह सन्तरी हमारा वह पासबाँ हमारा॥
गोदी में खेलती हैं इसकी हज़ारों नदियाँ।
गुलशन है जिनके दम से रश्के जिनाँ हमारा॥
ऐ आबे रौदे गंगा वह दिन है याद तुझको।
उतरा तेरे किनारे जब कारवाँ हमारा॥
मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।
हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा॥

यूनानो मिस्रो रोमा सब मिट गये जहाँ से।
अब तक मगर है बाक़ी नामो-निशाँ हमारा।।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुश्मन दौरे-जहाँ हमारा।।
'इक़बाल' कोई मरहम अपना नहीं जहाँ में।
मालूम क्या किसी को दर्दे-निहाँ हमारा।।

१७

दुनिया की महफ़िलों से उकता गया हूँ या रब।
क्या लुत्फ़ अंजुमन में जब दिल ही बुझ गया हो।।
शोरिश से भागता हूँ दिल ढूँढ़ता है मेरा।
ऐसा सकून जिस पर तक़दीर भी फ़िदा हो।।
मरता हूँ ख़ामुशी पर यह आरज़ू है मेरी।
दामन में कोह के इक छोटा सा झोंपड़ा हो।।
आज़ाद फ़िक्र से हूँ उजलत में दिन गुज़ारूँ।
दुनिया के ग़म का दिल से काँटा निकल गया हो।।
लज्ज़त सरोद की हो चिड़ियों के चहचहों में।
चश्मे की शोरिशों में बाजा सा बज रहा हो।।
पत्तों का हो नज़ारा मेरी किताब ख़ानी।
दफ्तर हो मार्फ़त का जो गुल खिला हुआ हो।।
गुल की कली चटक कर पैग़ाम दे किसी का।
साग़र ज़रा सा गोया मुझको जहाँनुमा हो।।
हो हाथ का सरहाना सब्ज़े का हो बिछौना।
शर्माये जिससे जिलवत खिलवत में वह अदा हो।।
मानूस इस क़दर हो सूरत से मेरी बुलबुल।
नन्हें से दिल में उसके खटका न कुछ मेरा हो।।
सफ़ बाँधे दोनों जानिब बूटे हरे हरे हों।
नद्दी का साफ़ पानी तस्वीर ले रहा हो।।

हो दिल फ़रेब ऐसा कुहसार का नज़ारा।
पानी भी मौज बनकर उठ उठ के देखता हो।।
आग़ोश में ज़मीं के सोया हुआ हो सब्ज़ा।
पड़ पड़ के झाड़ियों में पानी चमक रहा हो।।
पानी को छू रही हो झुक झुक के गुल की टहनी।
जैसे हसीन कोई आईना देखता हो।।
मेंहदी लगाये सूरज जब शाम की दुल्हन को।
सुरखी लिए सुनहरी हर फूल की क़बा हो।।
यों वादियों में ठहरे आकर शफ़क़ की सुरखी।
जैसे किसी गली में कोई शकिस्ता-पा हो।।
पच्छिम को जा रहा हो कुछ इस अदा से सूरज।
जैसे कोई किसी के दामन को खींचता हो।।
रातों को चलनेवाले रह जायँ थक के जिस दम।
उम्मीद उनकी मेरा टूटा हुआ दिया हो।।
बिजली चमक के दिन को कुटिया मेरी दिखा दे।
जब आस्माँ पै हरसू बादल घिरा हुआ हो।।
पिछले पहर की कोयल वह सुबह की मोअज़्ज़न।
मैं उसका हमनवा हूँ वह मेरी हमनवा हो।।
कानों पै हो न मेरे दहरो हरम का अहसाँ।
रोज़न ही झोंपड़ी का मुझको सहरनुमा हो।।
ज़ुल्मत झलक रही हो इस तरह चाँदनी में।
जूँ आँख में सहर की सुर्मा लगा हुआ हो।।
फूलों को आये जिस दम शबनम वज़ू कराने।
रोना मेरा वज़ू हो नाला मेरी दुआ हो।।
दिल खोलकर बहाऊँ अपने वतन पै आँसू।
सरसब्ज़ जिसके नम से बूटा उमीद का हो।।

इस ख़ामुशी में जायें इतने बुलन्द नाले।
तारों के काफ़ले को मेरी सदा दरा हो।।
हर दर्दमन्द दिल को रोना मेरा रुला दे।
बेहोश जो पड़े हैं शायद उन्हें जगा दे।।

१८

उठाये कुछ बरक़ लाले ने, कुछ नरगिस ने, कुछ गुल ने।
चमन में हर तरफ़ बिखरी हुई है दास्ताँ मेरी।।

१९

उमीदे हूर ने सब कुछ सिखा रक्खा है वायज़ को।
ये हज़रत देखने में सीधे-सादे भोले-भाले हैं।।

२०

ढूँढ़ता फिरता हूँ ऐ इक़बाल! अपने आपको।
आप ही गोया मुसाफ़िर आप ही मंज़िल हूँ मैं।।

२१

क़ैद में आया तो हासिल मुझको आज़ादी हुई।
दिल के लुट जाने से मेरे घर की आबादी हुई।।

२२

आह दुनिया दिल समझती है जिसे वह दिल नहीं।
पहलुए इन्साँ में इक हङ्गामये ख़ामोश है।।

२३

यूनानियों को जिसने हैरान कर दिया था।
सारे जहाँ को जिसने इल्मो हुनर दिया था।।
मिट्टी को जिसकी हक़ ने ज़र का असर दिया था।
तुर्कों का जिसने दामन हीरा से भर दिया था।।
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है।।

२४

सच कह दूँ ऐ बिरहमन ! गर तू बुरा न माने।
तेरे सनमकदों के बुत हो गए पुराने।।
अपनों से बैर रखना तूने बुतों से सीखा।
जंगो-जदल सिखाया वाइज़ को भी खुदा ने।।
तंग आ के मैंने आखिर दैरो-हरम को छोड़ा।
वाइज़ का वाज़ छोड़ा, छोड़े तेरे फ़िसाने।।
पत्थर की मूरतों में समझा है तू खुदा है।
खाके वतन का मुझको हर ज़र्रा देवता है।।
आ, गैरियत के परदे इकबार फिर उठा दें।
बिछुड़ों को फिर मिला दें, नक्शे दुई मिटा दे।।
सूनी पड़ी हुई है मुद्दत से दिल की बस्ती।
आ इक नया शिवाला इस देश में बना दें।।
दुनिया के तीरथों से ऊँचा हो अपना तीरथ।
दामाने-आसमां से उसका कलस मिला दें।।
हर सुबह उठके गायें मन्तर वह मीठे-मीठे।
सारे पुजारियों को मै प्रीत की पिला दें।।
शक्ती भी, शान्ती भी भक्तों के गीत में है।
धरती के वासियों की मुक्ती पिरीत में है।।

२५

वा न करना फ़िर्क़ाबन्दी के लिए अपनी ज़बां :
छिपके है बैठा हुआ हंगामए मशहर यहाँ।।
वस्ल के सामान पैदा हों तेरी तहरीर से।
देख कोई दिल न दुख जाए तेरी तक़रीर से।।
महफ़िले-नौ में पुरानी दास्तानों को न छेड़।
रंग पर जो अब न आयें उन फिसानों को न छेड़।।

२६

किया रफअत की लज़्ज़त से न दिल को आश्ना तूने ।
गुजारी उम्र पस्ती में मिसाले नक्शे-पा तू ने ।।

२७

दिखा वह हुस्ने आलम, सोज़, अपनी चश्मे पुरनम को ।
जो तड़पाता है परवाने को, रुलवाता है शबनम को ।।

२८

बनायें क्या समझकर शाख़े गुल पर आशियाँ अपना ।
चमन में आह ! क्या रहना, जो हो बे आबरू रहना ।।
न रह अपनों से बेपरवाह इसी में खैर है अपनी ।
अगर मंज़ूर है दुनिया में ओ बेगानाख़ूं ! रहना ।।

२९

हुस्न हो क्या ख़ुदनुमा जब कोई माइल ही न हो ।
शमअ को जलने से क्या मतलब, जो महफ़िल ही न हो ।।

३०

मैं उनकी महफ़िले इशरत से काँप जाता हूँ ।
जो घर को फूंक के दुनिया में नाम करते हैं ।।

३१

शिक़वा न बेश-कम का, तकदीर का गिला है ।
राज़ी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रज़ा है ।।

३१

आश्ना अपनी हक़ीक़त से हो ऐ दहक़ाँ ज़रा ।
दाना तू, खेती भी तू, बाराँ भी तू, हासिल भी तू ।।
आह किसकी जुस्तजू आवारा रखती है तुझे ।
राह तू, रहरव भी तू, रहबर भी तू, मंजिल भी तू ।।
काँपता है दिल तेरा अन्देशए तूफाँ से क्या ?
नाख़ुदा तू, बहर तू, कश्ती भी तू, साहिल भी तू ।।

वाए नादानी ! कि तू मोहताजे साक़ी हो गया ।
मय भी तू, मीना भी तू, साक़ी भी तू, महफिल भी तू ।।

३३

बेखबर ! तू जौहरे आईनए अय्याम है।
तू जमाने में खुदा का आखिरी पैगाम है ।।

३४

तमन्ना आबरू की हो, अगर गुलजारे हस्ती में।
तो काँटों मे उलझकर जिन्दगी करने की खूँ कर ले ।।

३५

उक़ाबी शान से झपटे थे जो बे बालो-पर निकले।
सितारेशाम को खूने शफ़क़ में डूबकर निकले ।।
हुए मदफ़ूने दरिया जेरे दरिया तैरने वाले।
तमाचे मौज के खाते थे जो बनकर गुहर निकले ।।
हमारा नर्म-रौ क़ासिद पयामे जिन्दगी लाया।
खबर देती थीं जिनकोबिजलियाँ वोह बेखबर निकले ।।
जहाँ में अहले ईमाँ सूरते खुरशीद जीते हैं।
इधर डूबे उधर निकले, उधर डूबे इधर निकले ।।

हसरत मोहानी

हसरत मोहानी उपनाम; सैयद फ़ज़लुल्हसन नाम; जन्म-स्थान क़स्बा मोहान (जि० उन्नाव); जन्म-काल १८७५ ई०; मृत्यु-काल—

हसरत मोहानी अपने समय के लोकप्रिय शायर थे। वे बड़े ज़िन्दादिल आदमी थे। १९०३ ई० में उन्होने अलीगढ़ से बी० ए० पास किया और १९०४ ई० में वे कांग्रेस में शामिल हो गये। मुल्क को अंग्रेजों के चंगुल से छुड़ाने की तड़प उनमें युवावस्था ही से थी। १९०८ ई० और १९१६ ई० में अपने स्वतंत्र विचारों के ही कारण उनको दो वर्षों की सजायें भुगतनी पड़ीं। १९१५ ई० में महात्मा गांधी इस देश में आये, तब उनके विचारों में सचाई पाकर हसरत १९२० ई० के बाद असहयोग आन्दोलन के एक उपनेता बन गये और कई बार जेल गये। अंत में इकबाल की तरह आप भी साम्प्रदायिक दलदल में जा फँसे। फिर भी मुल्क और उर्दू-साहित्य की उन्नति में हसरत का सम्माननीय स्थान है।

हसरत मोहानी कानपुर में रहते थे। वहीं से वे 'उर्दू-ए-मुअल्ला' नामके मासिक पत्र का सम्पादन भी करते थे। कानपुर ही में उनका शरीरांत हुआ।

यहाँ हसरत के कुछ शेर दिये जाते हैं :—

१

रूह आज़ाद है, ख़याल आज़ाद।
जिस्म हसरत की क़ैद है बेकार।।

२

न छोड़ी तुमने 'हसरत' पीर-बाज़ी।
तमन्ना पीर होकर भी जवाँ है।।

३

न पा सकते जिसे पाबंद रहकर क़ैदे हस्ती में।
सो हमने बेनिशां होकर तुझे वो बेनिशाँ पाया।।

४

देखे जिसे है राहे-फ़ना की तरफ़ खाँ।
तेरी महलसरा का यही रास्ता है क्या ?

५

शब वही शब है दिन वही दिन है।
जो तेरी याद में गुज़र जाये।।
शेर दर अस्ल वही है 'हसरत'।
सुनते ही जो दिल में उतर जाये।।

६

है इन्तहाये यास भी इक इब्तदाये शौक।
फिर आ गये वहीं प चले थे जहाँ से हम।।

७

मस्ती के फिर आ गये ज़माने।
आबाद हुये शराबखाने।।
हर फूल चमन में ज़र बकफ़ है।
बाँटे हैं बहार ने खजाने।।

८

क़ौमों की तरक्की के हैं कुछ और ही असबाब।
जो डाक प मौकूफ़ न हैं तार प मौकूफ़।।

९

लुत्फ़ की उनसे इल्तिजा न करें।
हमने ऐसा कभी किया न करें।।

मिल रहेगा जो उनसे मिलना है।
लब को शर्मिंदये दुआ न करें॥
सब्र मुश्किल है आरजू बेकार॥
क्या करें आशिकी में क्या न करें॥

१०

हालाँ कि इब्तिदा भी नहीं है शबाब की।
उनको कमाले हुस्न का दावा अभी से है॥

११

वो जब यह कहते हैं 'तुझसे ख़ता जरूर हुई'।
मैं बेक़सूर भी कह दूँ कि 'हाँ, ज़रूर हुई'॥

१२

मालूम है दुनिया को यह 'हसरत' की हक़ीक़त।
ख़िलवत में वह मै ख़्वार है, जिल्वत में नमाज़ी॥

१३

पढ़िये इसके सिवा न कोई सबक़।
ख़िदमते-ख़ल्क औ इश्के हज़रते हक़॥

१४

उम्र ही क्या है! वह कमसिन हैं अभी नामे-ख़ुदा।
उन पै मरना हो तो कुछ दिन हमें ज़ीना है ज़रूर॥

फ़ानी

फ़ानी उपनाम; शौकत अली ख़ाँ नाम; जन्म-स्थान इस्लामनगर (जि० बदायूं); जन्म-काल १८७९ ई०; मृत्यु-काल १९४१ ई०।

फ़ानी बी० ए०, एल० एल० बी० थे। शायरी का चस्का ग्यारह वर्ष की उम्र ही से लग गया था। बीस वर्ष की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते उनका एक दीवान तैयार हो गया। वह गुम हो गया तो दूसरा दीवान तैयार किया; वह भी गुम हो गया; तब उनका दिल टूट गया और उन्होंने कई वर्षों तक कुछ नहीं कहा। १९१७ ई० के बाद से फिर कलम उठाई और जो कुछ लिखा, वह 'वाक़यात फ़ानी' और 'वजदानियात फ़ानी' में संग्रहीत हैं।

फ़ानी की मृत्यु हैदराबाद (दक्षिण) में हुई।

फ़ानी की भाषा नमूने की साफ़-सुथरी, सरल और प्रभावोत्पादक है। विषय पुराना ही है। कहने का ढंग भी ग़ालिब और मीर की तरह है।

यहाँ नमूने के कुछ शेर दिये जाते हैं :—

१

'फ़ानी' दकन में आके यह उकदा खुला कि हम।
हिन्दोस्ताँ मे रहते हैं, हिन्दोस्ताँ से दूर॥

२

कलतक यही गुलशन था, सैयाद भी, बिजली भी।
दुनिया ही बदल दी है, तामीरे-नशेमन ने॥

३

हमें तेरी मुहब्बत में फ़क़त दो काम आते हैं।
जो रोने से कभी फुरसत मिली ख़ामोश हो जाना॥

४

नामुरादी हद से गुज़री हाले फ़ानी कुछ न पुछ।
हर नफ़स है इक जनाज़ा आहे-बेतासीर का।।

५

इसीको तुम मगर ऐ अहले दुनिया! जान कहते हो।
वो काँटा जो मेरी रग-रग में रह-रहकर खटकता है।।

६

फिक्रे राहत छोड़ बैठे हम तो राहत मिल गई।
हमने किस्मत से लिया था काम जो तद्बीर का।।

७

हमको मरना भी मयस्सर नहीं जीने के बग़ैर।
मौत ने उम्र दो-रोजा का बहाना चाहा।।

८

'फ़ानी' हम तो जीते-जी वह मैयत है बे गोरो-क़फन।
गुरबत जिसको रास न आई, और वतन भी छूट गया।।

९

गम के ठहोके कुछ हों बला से, आके जगा तो जाते हैं।
हम है मगर वह नींद के माते जागते ही सो जाते है।।

१०

यों सबको भुला दे कि तुझे कोई न भूले।
दुनिया ही में रहना है तो दुनिया से गुज़र जा।।

११

तिनकों से खेलते ही रहे आशियाँ में हम।
आया भी औ' गया भी ज़माना बहार का।।

१२

ज़िन्दगी खुद क्या है 'फ़ानी', यह तो क्या कहिये मगर।
मौत कहते हैं जिसे वह ज़िन्दगी का होश है।।

१३

हर राह से गुज़रकर दिलकी तरफ़ चला हूँ।
क्या हो जो उनके घर की यह राह भी न निकले ।।

१४

दुनिया में हाले-आमदो-रफ्ते-बशर न पूछ।
बे अख्तियार आके रहा, बेख़बर गया ।।

१५

मैं ही अपना हिजाब हूँ वरना।
तेरे मुँह पर कोई नक़ाब नहीं ।।

१६

निगाहें ढूँढ़ती हैं दोस्तों को औ' नहीं पाती।
नज़र उठती है, अब जिस दोस्त पर पड़ती है दुश्मन पर ।।

सीमाब अकबराबादी

सीमाब उपनाम; शेख आशिक हुसेन नाम; जन्म-स्थान आगर जन्म-काल १८८० ई० ।

ये मिर्ज़ा दाग़ के शागिर्द हैं। इन्होंने उर्दू शायरी का जामा ही बदल दिय इनकी शायरी में मानव-समाज में गिरे हुओं को उठाने की चिंता है। एक क्रांतिकारी शायर है। ये ग़ज़लें लिखने में भी माहिर हैं और नज्में ग़ज़ब ढानेवाली लिखते हैं।

आपकी दोनों प्रकार की शायरी के नमूने यहाँ दिये जाते हैं :—

१

शोरे हस्ती अभी ज़रा ठहरे।
सुन रहा हूँ ज़मीर की आवाज़ ।।

२

सच है कि खुदा तक है मुहब्बत की रसाई।
और तुमको यकीं हो तो मुहब्बत ही खुदा है।।

३

वो कोई और है जो तुझको तूफाँ से बचायेगा।
खिरद को ऐतबारे-नाखुदा से खेल लेने दो।।

४

अगर है जौक़े तमाशा तो बन्द कर आँखें।
जहाँ निगाह नहीं है वहाँ हिजाब नहीं ।।

५

उम्रे दो-रोज़ा वाक़ई ख्वाबो-खयाल थी।
कुछ ख्वाब में गुज़र गई बाक़ी खयाल में ।।

६

हाय ! सीमाब ! उसकी मजबूरी ।
जिसने की हो शबाब में तोबा ।।

७

दिलावराने तेज़ दम, बढ़े चलो, बढ़े चलो ।
बहादुराने मोहतरिम, बढ़े चलो, बढ़े चलो ।।
यह दुश्मनों के मोरचे, फ़क़त है ढेर खाक के ।
तुम्हारे सामने जमे कहाँ किसी में हौसल ।।
नहीं हो तुम किसी से कम, बढ़े चलो, बढ़े चलो ।
सितम के तमतराक को बढ़ा के हाथ छीन लो ।
है फ़तह सामने चलो, उठो, उठो, बढ़ो, बढ़ो ।।
यह जामे जम वोह तख्त जम, बढ़े चलो, बढ़े चलो ।।

८

वतन में मुझको जीना है, वतन में मुझको मरना है ।
वतन पर ज़िन्दगी को एक दिन कुरबान करना है ।।

९

सच कहा था किसी दोस्तने मुझसे 'सीमाब' ।
अमन हो जाय, अगर मुल्क में अखबार न हों ।।

१०

वोह खुद अता करे तो जहन्नुम भी है बहिश्त ।
माँगी हुई निजात मेरे काम की नहीं ।।

११

जवानाने-वतन में इक तड़प इक जोश पैदा है ।
गुलिस्ताने-वतन का पत्ता-पत्ता चौंक उट्ठा है ।।
बयाबाने-वतन का ज़र्रा-ज़र्रा शोला बरपा है ।
मगर अबतक ज़मूदो-वस्ल में ही मुब्तिला तू है ।
अरे क्या सो रहा है तू !

मज़दूर

१२

गर्द चेहरे पर पसीने में जबीं डूबी हुई।
आँसुओं में कुहनियों तक आस्ती डूबी हुई।

× × ×

पाँव मिट्टी की तहों में मैल से चिकटे हुये।
एक बदबूदार मैला चीथड़ा बाँधे हुये।
जा रहा है जानवर की तरह घबराता हुआ।
हाँपता, गिरता, लरज़ता, ठोकरें खाता हुआ।

× × ×

इसके दिल तक ज़िंदगी की रोशनी जाती नहीं।
भूलकर भी इसके होंठों तक हँसी आती नहीं॥

१३

सुन कि इस दुनिया में मिलता है उसी को इक़्तदार।
जिसको अपनी क़ूबते-तामीर पर हो इख़्तियार॥

१४

कहानी कहने वाले हाय! क्यों ज़िकरे जवानी है।
जवानी की कहानी क्या? जवानी खुद कहानी है॥

१५

अगर तू चाहता है आरज़ू तेरी करे दुनिया।
तो दिलपर जब्र करके बेनियाज़े-आरज़ू हो जा॥

चकबस्त

चकबस्त उपनाम; पंडित ब्रजनारायण चकबस्त नाम; जन्म-स्थान फ़ैजाबाद; जन्म-काल १८८२ ई०; मृत्यु-काल १९२६ ई० ।

लड़कपन ही में चकबस्त फैजाबाद से लखनऊ आ गये थे। वहाँ १९०८ ई० में कानून पास करके वकालत करने थे। ये उच्चकोटि के वकीलों मे थे और समाज में आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। लखनऊ के मशहूर वकीलों में थे। इनको लड़कपन ही से शायरी का शौक़ था। उर्दू-कविता के प्रेमी इनको बड़े चाव से सुनते थे। उर्दू के समकालीन शायरों में इनकी बड़ी धाक भी थी।

उर्दू-कविता में चकबस्त ने नई जान फूँक दी। आशिक़-माशूक़ के चोचलों से उर्दू को निकालकर इन्होंने उसे देशभक्ति और जातीयता के तरानों से भर दिया। इनकी ज़बान भी बहुत साफ़, बामहावरे और तत्काल प्रभाव डालनेवाली थी। इन्होंने प्रकृति का भी सुन्दर वर्णन किया है और अनीस और दबीर के जोड़ के मरसिये भी लिखे हैं। ये बड़े देशभक्त, सज्जन, मिलनसार और सुहृदों के स्नेह-भाजन थे। ये समय पड़ने पर अपने मित्रों की सहायता भी करते रहते थे।

चकबस्त का कोई पूरा दीवान मेरे देखने में नहीं आया। कई वर्ष हुये, 'सुबहे वतन' नाम से एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी, जिसमें चकबस्त की कुछ ग़ज़लें और फुटकर शेर दिये हुये हैं।

चकबस्त ता० २४ फरवरी, १९२६ को किसी मुकदमें के सिलसिले में रायबरेली गये थे। वहाँ उन्होंने दो बजे तक काम किया। फिर लखनऊ आने के लिये वे स्टेशन पर आये और जब ट्रेन में चढ़ने लगे, तभी यकायक उनको लकवा मार गया और उनकी वाक्शक्ति नष्ट हो गई। वेटिंग-

रूम में वे उतार लिये गये। उनके मित्रों ने यथाशक्ति दवा-दरमत कराने में कोई बात उठा नहीं रक्खी; पर ईश्वर की मर्ज़ी के आगे किसी की न चली। शाम को सात बजे वहीं उनकी मृत्यु हो गई।

यह समाचार पाकर लखनऊ के साहित्यिक मंडल में बज्रपात-सा हुआ। उर्दू-जगत् का एक मर्द शायर संसार से उठ गया।

३ सितम्बर १९११ को लखनऊ में हिन्दू-विश्व-विद्यालय के चन्दे के लिये एक सभा हुई थी। उसमें चकबस्त ने पंडित मालवीयजी का व्याख्यान होने के पहले एक मुसद्दस पढ़ी, उसे सुनकर लोग फ़ड़क उठे थे। उसने सबके दिलों को खोल दिया, फिर तो थैलियाँ आप से आप खुल गईं। उस मुसद्दस के कुछ छन्द यहाँ दिये जाते हैं:—

क़ौमी मुसद्दस

इलाही कौन फ़रिश्ते हैं ये गदाए-वतन।
सफ़ाए क़ल्ब से जिनके ये वज़्म है रौशन॥
झुकी हुई हैं सबों की लिहाज़ से गर्दन।
हरएक ज़बाँ पै है ताज़ीम औ अदब के सख़ुन॥
सफ़ें खड़ी है जवानों की और पीरों की।
ख़ुदा की शान यह फेरी है किन फ़क़ीरों की॥

फ़क़ीर इल्म के हैं इनकी दास्ताँ सुन लो।
पयाम क़ौम का दुख-दर्द का बयाँ सुन लो॥
य' दिन वो दिन है जो है यादगार हाँ सुन लो।
है आज ग़ैरते क़ौमी का इम्तहाँ सुन लो॥
यही है वक्त अमीरों की पेशवाई का।
फ़क़ीर आवे हैं कासा लिये गदाई का॥

जो अपने वास्ते माँगे ये वो फ़क़ीर नहीं।
तमअ में दौलते दुनिया की ये असीर नहीं॥

अमीर दिल के हैं ज़ाहिर ये अमीर नहीं।
वह आदमी नहीं जो इनका दस्तगीर नहीं।।
तमाम दौलतें ज़ातीं लुटाके बैठे हैं।
तुम्हारे वास्ते धूनी रमा के बैठे हैं।।

सवाल इनका है तालीम का बने मन्दिर।
कलश हो जिसका हिमाला से औज में बरतर।।
गुनाह क़ौम के धुल जायँ अब वह काम करो।
मिटे कलंक का टीका वह फ़ैज़ आम करो।।
किफ़ा को जहल को बस दूर में सलाम करो।
कुछ अपनी क़ौम के बच्चों का इन्तजाम करो।।

यह काम हो के रहे चाहे जाँ रहे न रहे।
ज़मी रहे न रहे आसमाँ रहे न रहे।।
ये कारे-ख़ैर में कोशिश यह क़ौम का दरबार।
लगा दो आज तो चाँदी के हर तरफ़ अम्बार।।
ये सब कहें कि है ज़िन्दा ये क़ोम ग़ैरतदार।
है इसके दिल में बुजुर्गों की आबरू का वकार।।

सरों में हुब्बे वतन का जुनून बाकी है।
रगों में भीषमो अर्जुन का खून बाकी है।।
तुम्हारे वास्ते लाज़िम है मालवी का भी पास।
कि जिसकी ज़ात से अटकी हुई है क़ौम की आश।।
लिया गरीब ने घर बार छोड़कर बनवास।
जो यह नहीं है तो कहते हैं फिर किसे संन्यास।।

तमाम उम्र कटी एक ही क़रीने पर।
गिराया अपना लहू क़ौम के पसीने पर।।
इसी के हाथ में है क़ौम का सँवर जाना।
तुम्हारी डूबती कश्ती का फिर उभर जाना।।

जो तुमने अब भी न दुनिया में काम कर जाना।
तो यह समझ लो कि बेहतर है इससे मर जाना।।

ग़ज़ब हुआ जो दिल इसका भी तुमसे ऊब गया।
गिरा इस आँख से आँसू तो नाम डूब गया।।
जो इस तरह हुआ दुनिया में आबरू का सवाल।
तो काम आयगा उक्बा में क्या यह दौलतोमाल।।
करो खुदा के लिए कुछ मरे हुए का ख़याल।
न हों तुम्हारे बुजुर्गों की हड्डियाँ पामाल।।

यह आबरू तो हज़ारों बरस में पाई है।
न यों लुटाओ कि ऋषियों की यह कमाई है।।
लुटाओ नाम पै दौलत अगर हो ग़ैरतदार।
पुकार उठे ये ज़माना कि है यह पर उपकार।।
है ज़ोर हिम्मते मर्दाना क़ौम को दरकार।
वरक उलट दो जमाने का मिलके सब इक बार।।

ज़रा हमैयतो ग़ैरत का हक़ अदा कर लो।
फ़क़ीर क़ौम के आए हैं झोलियाँ भर दो।।
यहाँ से जायँ तो जाएँ यह झोलियाँ भर दो।
लुटाएँ इल्म की दौलत तुम्हारे बच्चों पर।।
इधर तो नाज़ यह तुमको कि खुश गए ये बशर।
जो हो सका वह किया नज्र इनके टेक के सर।।
यही हो फ़ख़ जवानों का और पीरों का।
सवाल रद न किया कौम के फ़क़ीरों का।।

चकबस्त के पढ़ने का ढंग बड़ा ही प्रभावशाली था। बयान की खूबी और गले की मिठास से वे क्षणभर में अपने श्रोताओं को काबू में कर लेते थे।

यहाँ चकबस्त की कुछ ग़ज़लें और शेर दिये जाते हैं—

ख़ाके हिंद

१

ऐ ख़ाके हिन्द तेरी अज़मत में क्या गुमाँ है।
दरियाय फ़ैज़ क़ुदरत तेरे लिये रवाँ है॥
तेरी जबीं से नूरे हुस्ने अज़ल अयाँ है।
अल्ला रे ज़ेबा ज़ीनत क्या औज इज्ज़ो शाँ है॥
हर सुबह है यह ख़िदमत ख़ुरशीद पुर ज़िया की।
किरनों से गूधता है चोटी हिमालिया की॥
इस ख़ाके दिलनशीं से चश्मे हुये वो जारी।
चीनो अरब में जिनसे होती थी आबयारी॥
सारे जहाँ पै जब था वहशत का अब्र तारी।
चश्मो चिराग़ आलम थी सरज़मीं हमारी॥
शमये अदब न थी जब यूनाँ की अंजुमन में।
ताबाँ था महरे दानिश इस वादिए कुहन में॥
गौतम ने आबरू दी इस मुआविदे कुहन को।
सरमद ने इस ज़मीं पर सिदक़े किया वतन को॥
अकबर ने जामे उलफ़त बख़्शा इस अंजुमन को।
सींचा लहू से अपने राना ने इस चमन को॥
सब सूर वीर अपने इस ख़ाक में निहाँ हैं।
टूटे हुए खँडर हैं या उनकी हड्डियाँ हैं॥
दीवारो दर से अब तक उनका असर अयाँ है।
अपनी रगों में अब तक उनका लहू रवाँ है॥
अब तक असर में डूबी नाक़ूस की फ़ुगाँ है॥
फिरदौस गोश अब तक कैफ़ीयते अज़ाँ है॥

कश्मीर से अयाँ है जन्नत का रंग अबतक।
शौकत से बह रहा है दरियाय गंग अबतक।।
ऐ शोरे हुब्बे-क़ौमी इस ख़्वाब से जगा दे।
भूला हुआ फिसाना कानों को फिर सुना दे।।
मुर्दा तबीयतों की अफ़सुर्दगी मिटा दे।
उठते हुये शरारे इस राख से दिखा दे।।
हुब्बे-वतन समाये आँखों में नूर होकर।
सर में ख़ुमार होकर दिल में सुरूर होकर।।
शैदाये बोस्तां को सर्वो समन मुबारक।
रंगीं तबीयतों को रंगे-सख़ुन मुबारक।।
बुलबुल को गुल मुबारक गुल को चमन मुबारक।
हम बेकसों को अपना प्यारा वतन मुबारक।।
गुंचे हमारे दिल के इस बाग़ में खिलेंगे।
इस ख़ाक से उठे हैं इस ख़ाक में मिलेंगे।।

२

ज़मीन हिन्द की रुतबे में अर्श आला है।
यह होमरूल की उम्मीद का उजाला है।।
मिसेज़ बेसेन्ट ने इस आरज़ू को पाला है।
फ़क़ीर क़ौम के है औ यह रागमाला है।।
तलब फ़िज़ूल है काँटे को फूल के बदले।
न लें बहिश्त भी हम होमरूल के बदले।।
वतन-परस्त शहीदों की ख़ाक लायेंगे।
हम अपनी आँख का सुर्मा उसे बनायेंगे।।
ग़रीब माँ के लिये दर्द दुख उठायेंगे।
यही पयामे वफ़ा क़ौम को सुनायेंगे।।
तलब फ़िज़ूल है काँटे की फूल के बदले।
न लें बहिश्त भी हम होमरूल के बदले।।

हमारे वास्ते ज़ंजीर तौक़ गहना है।
वफ़ा के शौक़ में गाँधी ने जिसको पहना है।।
समझ लिया कि हमें रंजों दर्द सहना है।
मगर ज़बाँ से कहेंगे वही जो कहना है।।

तलब फ़िज़ूल है काँटे की फूल के बदले।
न लें बहिश्त भी हम होमरूल के बदले।।

पिन्हानेवाले अगर बेड़ियाँ पिन्हायेंगे।
ख़ुशी से क़ैद के गोशे को हम बसायेंगे।।
जो संतरी दरे जिन्दाँ को सो भी जायेंगे।
यह राग गा के उन्हें नींद से जगायेंगे।।

तलब फ़िज़ूल है काँटे की फूल के बदले।
न लें बहिश्त भी हम होमरूल के बदले।।

ज़बां को बन्द किया है यह ग़ाफ़िलों को है नाज़।
जरा रगों में लहू का भी देख लें अंदाज़।।
रहेगा जान के हमराह दिल का सोज़ गदाज़।
चिता से आयगी मरने के बाद यह आवाज़।।

तलब फ़िज़ूल है काँटे की फूल के बदले।
न लें बहिश्त भी हम होमरूल के बदले।।

यही दुआ है वतन के शकिस्ता-हालों की।
यही उमङ्ग है जवानी के नौनिहालों की।।
जो रहनुमा है मुहब्बत पै मिटने वालों की।
हमें क़सम है उसी के सफ़ेद बालों की।।

तलब फ़िज़ूल है काँटे की फूल के बदले।
न लें बहिश्त भी हम होमरूल के बदले।।

यही पयाम है कोयल का बाग़ के अन्दर।
इसी हवा में है गङ्गा का ज़ोर आठ पहर।।

हिलाले ईद ने दी यही दिलों को ख़बर।
पुकारता है हिमाला से अब्र उठ उठ कर।।
तलब फ़िज़ूल है काँटे की फूल के बदले।
न ले बहिश्त भी हम होमरूल के बदले।।
बसे हुये हैं मुहब्बत से जिनके क़ौम के घर।
वतन के पास है उनको सुहाग से बढ़कर।।
जो शीरख्वार है हिन्दोस्ताँ के लख्ते जिगर।
यह माँ के दूध से लिक्खा है उनके सीने पर।।
तलब फ़िज़ूल है काँटे की फूल के बदले।
न लें बहिश्त भी हम होमरूल के बदले।।

३

है आज और ही कुछ सूरतेबयाँ मेरी।
तड़प रही है दहन मे मेरे ज़बां मेरी।।
छिदेंगे कल्बो जिगर तीर है फ़ुग़ाँ मेरी।।
लहू के रंग में डूबी है दास्ताँ मेरी।।
मुबालगा नहीं तमहीद शायराना नहीं।
ग़रीब क़ौम का है मरसिया फ़िसाना नहीं।।
वतन से दूर तबाही में है वतन का जहाज़।
हुवा है ज़ुल्म के पर्दे में हश्र का आग़ाज़।।
सुनें तो मुल्क के हमदर्द क़ौम के दमसाज़।
हवा के साथ यह आई है दुख भरी आवाज़।।
वतन से दूर है हम पर निगाह कर लेना।
इधर भी आग लगी है ज़रा ख़बर लेना।।
जो मिट रहें है वतन पर यह है सदा उनकी।
लहू पुकार रहा है य' है वफ़ा उनकी।।
बँधी है आलमे तहज़ीब में हवा उनकी।
ग़ज़ब की जा है जो गर्दन झुकी ज़रा उनकी।।

तुम्हारे दिल में न उल्फ़त की हूक उठे अफ़सोस।
वतन का क़ाफ़िला परदेश में लुटे अफ़सोस।।

ट्रान्सवाल के हाकिम वफ़ा-शआर नहीं।
कुछ इनके क़ौल का दुनिया में एतबार नहीं।।
हमारी क़ौम पै अहसाँ का उनके बार नहीं।
यह ज़ुल्म क्यों है हम उनके गुनहगार नहीं।।
अगर वह दौलते बरतानियाँ के प्यारे हैं।
तो अहले हिन्द उसी आसमाँ के तारे हैं।।

मगर जफ़ा से नहीं ज़ालिमों को मुतलक आर।
उजाड़ते है वह बस्ती जो थी कभी गुलज़ार।।
यतीम बच्चों को खाने का इन्तज़ाम नहीं।
जो सुबह खैर से गुज़री उमीदे शाम नहीं।।
अगर जिये भी तो कपड़ा नहीं बदन के लिये।
मरे तो लाश पड़ी रह गई कफ़न के लिये।।

नसीब चैन नहीं भूख प्यास के मारे।
है किस अज़ाब में हिन्दोस्तान के प्यारे।।
तुम्हें तो ऐश के सामान जमा है सारे।
वहाँ वदन से रवाँ हैं लहू के फ़व्वारे।।
जो चुप रहें तो हवा क़ौम की बिगड़ती है।
जो सर उठायें तो कोड़ों की मार पड़ती है।।

कहाँ हैं मुल्क के सरताज़ क़ौम के सरदार।
पुकारते हैं मदद के लिये दरो-दीवार।।
वतन की खाक में पैदा हैं जोश के आसार।
ज़मीन हिलती है उड़ता है खून बन के गुबार।।
जगह में अपनी है चित्तौड़ की ज़मीं सरकी।
लरज़ रही है कई दिन में क़ब्र अकबर की।।

भँवर में क़ौम का बेड़ा है हिन्दुओ हुशियार।
अँधेरी रात है कालीघटा है औ मँझधार॥
अगर पड़े रहे ग़फ़लत की नींद में सरशार।
तो ज़ेर मौजे फ़ना होगा आबरू का मज़ार॥
मिटेगी क़ौम यह बेड़ा तमाम डूबेगा।
जहाँ में भीषमो अर्जुन का नाम डूबेगा॥

अगर न क़ौम के इस वक्त भी तुम आये काम।
नसीब होगा न मरने पै भी तुम्हें आराम॥
यही कहेगा ज़माना कि था बराये नाम।
वह धर्म हिन्दुओं का वह हमैयते इस्लाम॥
ज़रा असर न हुआ क़ौम के हबीबों पर।
वतन से दूर छुरी चल गई ग़रीबों पर॥

मिटा जो नाम तो दौलत की जुस्तजू क्या है।
निसार हो न वतन पर तो आबरू क्या है॥
लगा दे आग न दिल में तो आरज़ू क्या है।
न जोश खाय जो ग़ैरत से वह लहू क्या है॥
फ़िदा वतन पै जो हो आदमी दिलेर है वह।
जो यह नहीं तो फ़क़त हड्डियों का ढेर है वह॥

४

गराँ है जिन्स औ, नीयत खरीदारों की अबतर है।
अब इस बाज़ार में उल्फ़त का सौदा हो नहीं सकता॥
जिसे है फ़िक्र मरहम की उसे क़ातिल समझते हैं।
इलाही खैर हो यह ज़ख्म अच्छा हो नहीं सकता॥
कमाले बुज़दिली है पस्त होना अपनी आँखों में।
अगर थोड़ी सी हिम्मत हो तो फिर क्या हो नहीं सकता॥

उभरने ही नहीं देती यहाँ बे-मायगी दिल की ।।
नहीं तो कौन क़तरा है जो दरिया हो नहीं सकता ।।

५

य' वह ग़म है कि जिसकी परवरिश दिल ख़ूब करता है ।
ज़बाँ तक ला नहीं सकता हूँ शिकवे बेवफ़ाई के ।।

६

हविस जीने की है यों उम्र के बेकार कटने पर ।
जो हमसे ज़िन्दगी का हक़ अदा होता तो क्या होता ।।
यह माना बे-हिजाबाना निगाहें क़हर करती हैं ।
मगर हुस्ने-हया परवर का आलम दूसरा होता ।।

७

दोस्ती में अपना अपना हक़ अदा करते रहे ।
वह ज़फ़ा करते रहे औ हम वफ़ा करते रहे ।।
अहले हिम्मत मंज़िले मक़सूद तक आ ही गये ।
बन्दए तक़दीर क़िस्मत से गिला करते रहे ।।

८

अजल की नींद में भी ख़्वाबे-हस्ती गर नज़र आया ।
तो फिर बेकार है तंग आके इस दुनिया से मर जाना ।।
वह सौदा ज़िन्दगी का है कि ग़म इन्सान सहता है ।
नहीं तो है बहुत आसान इस जीने से मर जाना ।।
चमन ज़ारे मुहब्बत में उसी ने बाग़बानी की ।
कि जिसने अपनी मिहनत ही को मिहनत का समर जाना ।।

९

ज़माने में नहीं अहले-हुनर का क़द्रदाँ बाक़ी ।
नहीं तो सैकड़ों मोती हैं इस दरिया के दामन में ।।
यहाँ तसबीह का हल्का वहाँ ज़ुन्नार का फन्दा ।
असीरी लाज़मी है मज़हबे शेख़ो बिरहमन में ।।

जहाँ में रह के यों क़ायम हूँ अपनी बे सबाती पर ।
कि जैसे अक्से गुल रहता है आबे-जूय गुल्शन में ।।

१०

बाग़बाँ ने यह अनोखा सितम ईजाद किया ।
आशियाँ फूँक के पानी को बहुत याद किया ।।
नींद क्या आए शहादत के तलबगारों को ।
फ़िक्र रहती है सितमगर ने किसे याद किया ।।
अक़्ल क्या चीज़ है एक वज़ा की पाबंदी है ।
दिल को मुद्दत हुई इस क़द से आज़ाद किया ।।
दम नही है रगे सौदा में बहार आख़िर है ।
क्या करूँगा जो मुझे क़ैद से आज़ाद किया ।।
इनको ना क़दरिये-आलम का सिला कहते है ।
मर चुके हम जो ज़माने ने बहुत याद किया ।।

११

राहत से भी अज़ीज़ है राहत की आरज़ू ।
दिल ढूँढ़ता है सिलसिलए-इन्तज़ार को ।।

१२

एक हस्तिए-बेदार के दोनों है करिश्मे ।
मौजों में रवानी है जवानी है बशर में ।।
मैखाना है चलता है यहाँ सिक्कए जम्हूर ।
सब शाहो-गदा एक हैं रिन्दों की नज़र में ।।

१३

शबाब आख़िर है बज्मे-ऐश की बस याद बाक़ी है ।
जवानी ख़्वाब में आती है अब शमअ सहर होकर ।।
जवानी में इसी को इब्तदाए इश्क़ कहते हैं ।
दवा की फ़िक्र करना तालिबे दर्दे जिगर होकर ।।
लिये दरिया ने मोती गुल शजर ने लाल पत्थर ने ।
खरीदा हमने सौदा दर्दे उल्फ़त का बशर होकर ।।

तुलूए सुबह क्या है मरसिया है रौनक़े शब का ।
उड़ा है रंगे रुख महताब का नूरे सहर होकर ।।
फ़रिश्ता हुस्न का बेदार करने इनको आया है ।
जवानी की उमंगे सो रही थीं बे-ख़बर होकर ।।

१४

अब रिहाई की तमन्ना दिले नाशाद नहीं ।
रास्ता अपने नशेमन का मुझे याद नहीं ।।

१५

आशिक़ों का और रिन्दों का हुजूमे-आम है ।
है गुनहगारों का मेला हश्र जिसका नाम है ।।
'फ़िक्रे मीना क्यों है साक़ी ? क्यों तलाशे जाम है ?
तू लगा दे मुंह से ख़ुम, पीना हमारा काम है ।।
मुझसे रौशन इन दिनों दैरो हरम का नाम है ।
पाये बुत पर है जबी लब पर ख़ुदा का नाम है ।।
सुबह को शबनम के मोती बाग़ में चोरी गये ।
फूल किरनों से य' कहते हैं तुम्हारा काम है ।।
देखना है हुस्न के जलवे तो बुतख़ाने मे आ ।
तेरे काबे में तो वायज़ बस ख़ुदा का नाम है ।।
मेरे मज़हब में है वायज़ तर्के मैनोशी हराम ।
छोड़ कर पीता हूँ फिर तौबा इसी का नाम है ।।

१६

हम मरमिटों को है यही मौसम बहार का ।
दो चार दिन हरा रहे सब्ज़ा मज़ार का ।।
वह दिन गए कि तुझपे लरजते थे ऐ अजल !
अब ज़िन्दगी है नाम तेरे इन्तज़ार का ।।
गुंचे अदम से आये हैं पहने हुये कफ़न ।
अंजाम है नज़र में दो-रोज़ा बहार का ।।

१७

एक सिलसिला हवस का है इन्साँ की ज़िन्दगी ।
इस एक मुश्त ख़ाक को ग़म दो जहाँ के हैं ।।

१८

मुफ़लिसी मेरी मुहब्बत की कसौटी बन गई ।
हिम्मते अहबाब के जौहर नुमायाँ हो गए ।।

१९

ख़ुदपरस्ती मिट गई क़द्रे-मुहब्बत बढ़ गई ।
मातमे-अहबाब है तालीम रूहानी मुझे ।।

२०

दर्दे-दिल, पासे-वफ़ा, जज्बये ईमाँ होना ।
आदमीयत है यही और यही इन्साँ होना ।।
जिन्दगी क्या है ? अनासिर में ज़हूरे तरतीब ।
मौत क्या है ? अभी इजज़ा का परीशाँ होना ।।
सर में सौदा न रहा, पाँव में बेड़ी न रही ।
मेरी तक़दीर मे था वे सरो सामाँ होना ।।
गुल को पामाल न कर लालो गुहर के मालिक !
है इसे सुर्ख़ए दस्तारे गरीबाँ होना ।।

२१

देखा सुरूरे बादए हस्ती का खातमा ।
अब देखे रंग लाये अजल का खुमार क्या ।।
अब की तो शामे ग़म की सियाही कुछ और है ।
मंजूर है तुझे मेरे परवरदिगार क्या ।।
दुनिया से ले चला है जो तू हसरतों का बोझ ।
काफ़ी नहीं है सर पै गुनाहों का बार क्या ।।
बादे फ़ना फ़िज़ूल है नामो निशाँ की फ़िक्र ।
जब हम नहीं रहे तो रहेगा मज़ार क्या ।।

दोनों को एक ख़ाक से नश्वोनुमा मिली।
लेकिन हवाय दहर से गुल क्या है ख़ार क्या ।।

२२

बलाए जाँ हैं यह तस्बीह औ ज़ुन्नार के फन्दे।
दिले हक़बीं को हम इस क़ैद से आज़ाद करते हैं ।।
जनाबे शेख़ को यह मश्क़ है यादे इलाही की।
ख़बर होती नहीं दिल को ज़बाँ से याद करते हैं ।।
सबक़ उम्रेरवाँ का दिलनशीं होने नहीं पाया।
हमेशा भूलते जाते हैं जो कुछ याद करते हैं ।।
अदब तालीम का जौहर है ज़ेवर है जवानी का।
वही शागिर्द है जो ख़िदमते उस्ताद करते हैं ।।
न जानी क़द्र तेरी उम्रे रफ्ता हमने कालिज में।
निकल आते हैं आँसू अब तुझे जब याद करते हैं ।।

२३

क़ौम की शीराजा-बन्दी का गिला बेकार है।
तर्ज़े हिन्दू देखकर रंगे मुसलमाँ देखकर ।।

२४

सैकड़ों फूल खिले पर न कली दिल की खिली।
हम क़फ़स में हैं शमिन्दये तामीरे बहार ।।

२५

दोस्त मरने पै मेरे दादे-वफ़ा देते हैं।
हाय किस वक्त मुहब्बत का मिला देते हैं ।।

२६

मेरे अहबाब पेश आते हैं मुझसे बेवफ़ाई से।
वफ़ादारी में शायद कर रहे हैं इम्तहाँ मेरा ।।
तहो बाल किया है गर्दिशे आमाल ने मुझको।
न दुश्मन है ज़मीं मेरी न दुश्मन आसमाँ मेरा ।।

इलाही ख़ैर हो क्या सरगुज़स्ते दिल सुनायेगा।
लरज़ता है मेरी आँखो में क्यों अश्के-रवाँ मेरा।।
चमन को छोड़ दूं यह बदनसीबी का इशारा है।
वही मुरझा गई जिस शाख़ पर था आशियाँ मेरा।।

२७

रंजो-राहत का सबब दुनिया में कुछ पाया नहीं।
हश्र में हम साफ़ कह देगे खुदा के सामने।।

२८

गुनहगारों में शामिल है गुनाहों से नहीं वाकिफ़।
सज़ा को जानते हैं हम ख़ुदा जाने ख़ता क्या है।।

२९

यों न इन्सान का बरगश्ता मुकद्दर हो जाय।
मैं अगर फूल उठा लूं तो वह पत्थर हो जाय।।

३०

कुछ और है वो शायरे मूजिज़ बयाँ नहीं।
जिसके सबुन से रंगे तबीयत अयाँ नहीं।।
मजमून आबदार हैं दुर हाय शाहवार।
दरियाय नूर है मेरी तबये रवाँ नहीं।।
इज़हार दर्द गैर से करते है बुलहवस।
हमको दिमाग नालओ आहो फुगाँ नहीं।।
दोशे सबा पै रहता हूँ मानिन्द मुर्गबू।
शाख़े शजर को बार मेरा आशियाँ नहीं।।
क्या देखते ही देखते दुनिया बदल गई।
वल्लाह! वह ज़मीं नहीं वह आसमाँ नहीं।।

३१

हमारे औ' ज़ाहिदों के मज़हब में फ़र्क़ अगर है तो इस क़दर है।
कहेंगे हम जिस्को पासे इन्साँ वह उसको ख़ौफे खुदा कहेंगे।

३२

गुल नहीं तो बूये गुल से ही मुअत्तर हो दिमाग़ ।
कोई रख देता क़फ़स मेरा हवा के सामने ।।

३३

हरदम है तबीयत को उलझन एक यास का आलमतारी है ।
यह साँस नहीं एक काँटा है यह ज़ीस्त नहीं बीमारी है ।।

३४

बुढ़ापा नाम है जिसका वह है अफ़सुर्दगी दिल की ।
जवानी कहते हैं जिसको तबीयत की जवानी है ।।

३५

चमन को दीदये उल्फ़त से देख ऐ बुलबुल !
गुलों से फूट के रंगे-ख़िजाँ निकल आया ।।

३६

खाना वीरानी मेरी सब चाहते हैं शक्ले दुर ।
एक बलाये जाँ है मेरी आबरू मेरे लिये ।।

३७

हुए क़फ़स मे रिहा भी तो किस मुसीबत में ।
अँधेरी रात है और आशियाँ नहीं मिलता ।।

३८

नाशाद रहे, नाकाम रहे तक़दीर ही अपनी फूट गई ।
जिस शाख़ पै हमने हाथ धरा वह शाख़ वहीं से टूट गई ।।

३९

किस वास्ते जुस्तजू करूँ शोहरत की ।
एक दिन खुद ढूंढ़ लेगी शोहरत मुझको ।।

४०

बू गुल के लिए है, गुल है शबनम के लिए ।
एक रब्त है इन्तज़ामे आलम के लिए ।।

लेकिन है मेरा शबाब मातम के लिए।
गम मेरे लिए है और मैं गम के लिए।।

४१

आबादी है असल में न वीराना है।
दुनिया इक ना तमाम अफ़साना है।।

४२

फ़ना का होश आना ज़िन्दगी का दर्दे सर जाना।
अजल क्या है? खुमारे बादए हस्ती उतर जाना।।
मुकामे कूच क्या है? मंजिले मक़सूद तक भूले।
क़यामत था सराए दहर में दो दिन ठहर जाना।।
सिधारी मंज़िले हस्ती से किस बे-एतनाई से।
तने ख़ाकी को शायद रूह ने गर्दे-सफर जाना।।

४३

यह ज़मीं प जिनका था दबदबा कि बुलन्द अर्श प नाम था।
उन्हें यों फ़लक़ ने मिटा दिया कि मज़ार तक का निशाँ नहीं।।

४४

गिरते ही ज़मीं के दामन में ऐ तिफ्ल यह रोना-धोना क्या।
दुनियाँ में अगर तू आया है, याँ रंज भी है और राहत भी।।

४५

अर्श से फ़र्श तलक छायी है तारीकिये जेहल।
आग दुनिया को लगा दो तो उजाला हो जाय।।
ज़ाहिरा हस्तिए नाचीज़ बशर है क्या चीज़?
य' वो क़तरा है जो बढ़ जाय तो दरिया हो जाय।।

४६

क़ौम का ग़म लेकर दिल का यह आलम हुआ।
याद भी आती नहीं अपनी परेशानी मुझे।।

४७

किसको ग़म है जो करे मरसिया ख़्वानी मेरी ।।
रो रही है मेरे मरक़द प जवानी मेरी ।।

४८

माना होशे ज़र है बशर के लिए आदत ।
लेकिन नहीं दुनिया में फ़क़त एक यही नेआमत ।।
कुछ और भी जौहर है अता कर दिये क़ुदरत ।
ग़मख्वारी व दिलजोई व हमदरदी व उलफ़त ।।

४९

कैफ़ीयते गुलशन है मेरा नशा का आलम ।
कोयल की सदा नारये मस्ताना है मेरा ।।
आशिक़ भी हूँ माशूक़ भी यह तुर्फ़ा मज़ा है ।
दीवाना हूँ मैं जिसका वह दीवाना है मेरा ।।

५०

एक साग़र भी इनायत न हुआ, याद रहे ।
साक़िया ! जाते हैं, महफ़िल तेरी आबाद रहे ।।
बाग़बाँ दिल का वतन को यह दुआ देता है ।
मैं रहूँ या न रहूँ यह चमन आबाद रहे ।।
हुक्म माली का है यह फूल न हँसने पायें ।
चुप रहे बाग़ में कोयल मगर आज़ाद रहे ।।

५१

मै जवानी है मेरी, दिल मेरा मैख़ाना है ।
याँ सुराही है, न शीशा है, न पैमाना है ।।
रुख़े साक़ी की तरफ़, हाथ में पैमाना है ।
रहनुमा आज तेरी लग़ज़िशे मस्ताना है।।
आई है लाश उठाने को नसीमे सहरी ।
छूटता बादे फ़ना शमा से परवाना है ।।

ले चली बज्म से किस वक़्त मुझे मर्गे शबाब ।
लब तक आया भी नहीं हाथ में पैमाना है ।।

५२

आशिकों का और रिन्दों का हुजूमे-आम है ।
है गुनहगारों का मेला हाथ जिसका नाम है ।।

५३

रविशे ख़ाम पै मर्दों की न जाना हर्गिज़ ।
दाग़ तालीम में अपनी न लगाना हर्गिज़ ।।
रंग है जिनमें मगर बूये वफ़ा कुछ भी नहीं ।
ऐसे फूलों से न घर अपना सजाना हर्गिज़ ।।
पूजने के लिए मन्दिर जो है आज़ादी का ।
उसको तफ़रीह का मर्कज़ न बनाना हर्गिज ।।
काग़ज़ी फूल विलायत के दिखाकर इनको ।
देश के बाग़ से नफ़रत न दिलाना हर्गिज़ ।।
गो बुज़ुर्गों में तुम्हारे न हो इस वक़्त का रंग ।
इन ज़ईफ़ों को न हँस हँस के रुलाना हर्गिज़ ।।

५४

दिल पै अहबाब के है दाग़े मुहब्बत बाक़ी ।
रह गई इक यही दुनिया में निशानी बाक़ी ।।

५५

और होंगे जिन्हें रहता है मुक़द्दर से गिला ।
और होंगे जिन्हें मिलता नहीं मिहनत का सिला ।।
मैंने जो ग़ैब की सरकार में माँगा वह मिला ।
जो अक़ीदा था मेरे दिल का हिलाये न हिला ।।
क्यों डराते हैं अबस गब्रो मुसलमाँ मुझको ।
क्या मिटायेगी भला गर्दिशे-दौराँ मुझको ।।

५६

कोई सौदाये मुहब्बत का ख़रीदार नहीं ।
जोशे उल्फ़त की ज़रा गर्मिये बाज़ार नहीं ।।
पीठ के पीछे बुरा कहने मे कुछ आर नही ।
जो है रफ़्तारे ख़यालात वह गुफ्तार नहीं ।।
फ़र्क़ क्या ज़ाहिरो बातिन का बुरा होता है ।
जो ज़बाँ कहती है दिल सुन के उसे रोता है ।।

५७

यों तो दुनिया में हमेशा से है मरने का चलन ।
अपने बच्चों को निगलती है ज़मीं की नागिन ।।
दाग़ देता है मगर जब कोई दिल सोज़े वतन ।
इसके सद्मे से लरजता है यह ऐवाने कुहन ।।
चाँदनी रात में जिस वक़्त हवा आती है ।
क़ौम के दिल के धड़कने की सदा आती है ।।

५८

हँस के हर इक बात पर वह जुम्बिशे अबरू कहाँ ?
इक नज़र फिर देख कि अब हम कहाँ और तू कहाँ ।।
"ऐ मुहब्बत के फ़रिश्ते ! ऐ बक़ा के आफ़ताब !
तेरे सीने में सफ़ा थी जैसे आईने में आब ।।
वास्ते दुश्मन के भी लाया न तू दिल में अताब ।
आज क्यों आता है तुझको भाई बहिनों से हिजाब ?
आज तू सुनता किसी की गिरिअओ ज़ारी नहीं ।
ओ अदम के जानेवाले यह वफ़ादारी नहीं ।।"
फूल जब गुलज़ार में लायेंगे पैग़ामे बहार ।
याद करके तुझको यों रोयेगा तेरा सोगवार ।।

५९

खिल के गुल कुछ तो बहारे जाँफ़िज़ाँ दिखला गये ।
हसरत उन गुंचों पै है जो बिन खिले मुरझा गये ।।

६०

हुक्म हाकिम का है फ़र्यादे ज़बानी रुक जाय ।
दिल की बहती हुई गङ्गा की रवानी रुक जाय ।।
क़ौम कहती है हवा बन्द हो पानी रुक जाय ।
पर य' मुमकिन नहीं अब ज़ोरे रवानी रुक जाय।।
हों ख़बरदार जिन्होंने यह अज़ीयत दी है ।
कुछ तमाशा यह नहीं, कौम ने करवट ली है ।।

असग़र

असग़र उपनाम; मौलाना असग़र हुसेन नाम; पिता का नाम मुंशी तफ़ज्ज़ुलहुसेन; जन्म-स्थान गोरखपुर; जन्म-काल १ मार्च १८८४ ई०; मृत्यु-काल १९३६ ई० ।

असग़र का जन्म गोरखपुर में हुआ था; पर उनके पिता मुंशी तफ़ज्जुलहुसेन गोंडे में कानून-गो थे और पेंशन लेकर वहीं बस भी गये थे; इसीसे असग़र गोंडवी के नाम से प्रसिद्ध हुये। असग़र का बचपन गोंडे ही में बीता। स्कूली शिक्षा असग़र को बहुत कम मिल सकी। मकतब से शिक्षा शुरू हुई, फिर स्कूल में दाखिल हुये; एन्ट्रेंस की परीक्षा की तैयारी में बीमार हो गये और परीक्षा न दे सके; और स्कूल में पढ़ना छोड़ दिया। पर अपने अध्यवसाय, सच्ची लगन और मुख्य बात यह है कि ईश्वरीय प्रेरणा से असग़र ने फ़ारसी, अंग्रेज़ी और कुछ अरबी में भी काफ़ी योग्यता प्राप्त कर ली।

पहले इन्होंने गोंडे में चश्मे का कारखाना खोला, जो अर्से तक चलता रहा। पर उनकी कविता की ख्याति ऐसी फैली कि उनको अपना सारा रुझान उसी तरफ़ देना पड़ा; साथ ही गोंडा भी छोड़ना पड़ा।

गोंडे से वे लाहोर गये और वहाँ 'उर्दू मरकज' में दो वर्ष तक मरसियों का सम्पादन करते रहे। वहाँ से इलाहाबाद के इंडियन प्रेस में चले आये और तीन वर्षों तक वहाँ काम किया। उस वक्त तक उनकी कीर्त्ति उर्दू के साहित्यिक जगत् में काफी फैल गई थी और मौलाना आज़ाद और सर सप्रू जैसे उच्चकोटि के विद्वान् उनके प्रशंसक हो गये थे।

इंडियन प्रेस छोड़कर ये उत्तर प्रदेश की सरकारी संस्था 'हिन्दुस्तान एकेडमी' में चले आये और उसके त्रैमासिक पत्र 'हिन्दुस्तानी' के सम्पादक

नियुक्त हुये, जहाँ वे जीवन के अन्तिम दिनों तक बड़ी योग्यता से सम्पादन का कार्य करते रहे।

असग़र साहब बड़े चरित्रवान, मितभाषी और मधुर स्वभाव के व्यक्ति थे। मेरा उनसे परिचय था और मैं प्रायः हिन्दुस्तानी एकेडमी के आफ़िस में जाता तो उनसे मिला करता था। उनका साहित्यक अध्ययन बहुत ऊँचे दरजे का था। उनकी रहन-सहन बहुत सादी फकीरों की-सी थी। वे शराब नहीं पीते थे और न किसी की निन्दा करते थे। बार-बार मिलते रहने पर भी मैंने कभी उनको अपने बारे में कोई ग़ुरूर की बात कहते नहीं पाया। उनकी शायरी ऊँचे दरजे की है। उनके सरल शब्दों में अंतरात्मा की ध्वनि सुनाई पड़ती है। हिन्दी में जिसे रहस्यवाद कहते हैं, उसकी सच्ची झलक असग़र की कविता में दिखाई पड़ती है। उनकी कविता में वासनाओं का हाहाकार नहीं है, आत्मा की सच्ची अनुभूतियों का चित्रण है।

असग़र गद्य के भी बड़े अच्छे लेखक थे। उनका गद्य चुस्त और बा महावरे होता था।

यहाँ उनकी शायरी के कुछ नमूने दिये जाते है :—

१

हम एक बार जल्वए-जानाना देखते।
फिर काबा देखते न सनमख़ाना देखते॥
इक शोला और शमा से बढ़कर है रक्स में।
तुम फाड़कर तो सीनए-परवाना देखते॥
बिखरी हुई हो ज़ुल्फ़ भी उस चश्मे-मस्त पर।
हल्का-सा अब्र भी सरे मैख़ाना देखते॥

२

तेरे जल्वों के आगे हिम्मते शरहो-बयाँ रख दी।
ज़बाने बे निगाह रख दी निगाहे बेज़बां रख दी॥
नमाज़े-इश्क को समझा है क्या ऐ वाइज़े-नादाँ।
हजारों बन गये काबे जबीं मैंने जहाँ रख दी॥

इलाही ! क्या किया तूने कि आलम में तलातुम है।
ग़ज़ब को एक मुश्ते-ख़ाक ज़ेरे-आस्माँ रख दी।।

३

क्या दर्दे हिज्र और क्या यह लज़्ज़ते विसाल।
इससे भी कुछ बुलन्द मिली है नज़र मुझे।।

४

न मैं दीवाना हूँ 'असग़र' न मुझको शौके उरियानी।
कोई खींचे लिये जाता है खुद जेबो गरेबाँ को।।

५

सौ बार तेरा दामन हाथों में मेरे आया।
जब आँख खुली देखा अपना ही गरेबाँ है।।

६

दैरो हरम भी कूचये जानाँ में आये थे।
पर शुक्र है कि बढ़ गये दामन बचा के हम।।

७

यह आस्ताने यार है सहने-हरम नहीं।
जब रख दिया है सर तो उठाना न चाहिये।।

८

मरते-मरते न कभी आक़िलो फ़र्ज़ाना बने।
होश रखता हो जो इंसान तो दीवाना बने।।
मौजे सहबा से भी बढ़कर हों हवा के झोंके।
अब्र यों झूम के छा जाय कि मैखाना बने।।
कारफ़र्मा है फ़क़त हुस्न का नै-रंगे-कमाल।
चाहे वह शमअ बने चाहे वह परवाना बने।।

९

हयातो मौत भी अदना-सी इक कड़ी मेरी।
अज़ल से लेके अबद तक वह सिलसिला हूँ मैं।।

न कामयाब हुआ मैं न रह गया महरूम।
बड़ा ग़ज़ब है कि मंजिल परवो गया हूँ मैं।।
तेरा जमाल है, तेरा ख़याल है, तू है।
मुझे यह फ़ुर्सते काविश कहाँ कि क्या हूँ मैं।।
समा गये मेरी नज़रों में छा गये दिल पर।
ख़याल करता हूँ उनको कि देखता हूँ मैं।।

९

नमूदे हुस्न को हैरत में हम क्या-क्या समझते हैं।
कभी जल्वा समझते हैं, कभी परदा समझते हैं।।
यही थोड़ी-सी मै है औ, यही छोटा-सा मैख़ाना।
इसीसे रिन्द राज़े-गुम्बदे-मीना समझते हैं।।
कभी तो जुस्तजू जल्वे को भी परदा बताती है।
कभी हम शौक में जल्वे को भी परदा समझते हैं।।
यह ज़ौके-दीद की शोख़ी यह अक्से-रंग-महजूबी।
न जल्वा है न परदा हम उसे तनहा समझते हैं।।
वह नहकत से सिवा पिन्हा वह गुल से भी सिवा उरियाँ।
यह हम हैं जो कभी परदा कभी जल्वा समझते हैं।।
यह जल्बे की फ़िरावनी यह अरज़ानी यह उरियानी।
फिर इस शिद्दत की ताबानी कि हम परदा समझते हैं।।
ज़माना आ रहा है जब इसे समझेंगे सब 'असग़र'।
अभी तो आप ख़ुद कहते है ख़ुद तनहा समझते हैं।।

१०

ग़र्क़ हैं सब इल्मों हिकमत दीनो ईमाँ देखिये।
किस तरह उट्ठा है इस सागर से तूफाँ देखिये।
दीदये बे ख़्वाबे-अंजुम, सीनये सद चाके-गुल,
हुस्न भी है मुब्तिलाए-दर्दे-पिनहाँ देखिए।

रस्मे - फ़र्सूदा नहीं शायाने-अरबाबे-नज़र,
अब कोई मंज़र बलंद अज़ कुफ़्रो-ईमाँ देखिए।
मैं न कहता था कि आफ़त है शराबे-शुअलारंग,
सोख़्त आख़िर हो गए सब कुफ़्रो-ईमाँ देखिए।
'असग़रे-रंगी नवां का यह ग़ज़ल अल अयां।
कुफ़्र फैलाता है यह मर्दे मुसलमाँ देखिए।।

११

जो नक्श है हस्ती का, धोका नज़र आता है,
पर्दे व मुसव्विर ही तनहा नज़र आता है।।
लौ शमये-हक़ीकत की अपनी ही जगह पर है,
फ़ानूस की गर्दिश से क्या-क्या नज़र आता है।।

१२

सरगर्मे तजल्ली हो ऐ जल्बए जानाना,
उड़ जाय धुआँ बन कर काबा हो कि बुतख़ाना।
यह दीन, वह दुनिया है, यह काबा, वह बुतख़ाना,
इक और क़दम बढ़कर ऐ हिम्मते मर्दाना।

१३

फिर मैं नज़र आया न तमाशा नज़र आया।
जब तू नज़र आया मुझे तनहा नज़र आया।।

१४

तर्के मुद्आ कर दे ऐन मुद्आ हो जा।
शाने अब्द पैदाकर मज़हरे ख़ुदा हो जा।।
उसकी राह में मिट कर बेनयाज़े ख़िलक़त बन।
हुस्न पर फिदा हो कर हुस्न की अदा हो जा।।
तू है जब पयाम उसका फिर पयाम क्या तेरा।
तू है जब सदा उसकी आप बे सदा हो जा।।

क़तरये - तुनुक माया बहरे-बेक़रॉ है तू।
अपनी इब्तदा होकर अपनी इन्तहा हो जा।।

१५

'असग़र' से मिले लेकिन 'असग़र' को नहीं देखा,
अशआर में सुनते हैं कुछ-कुछ वह नुमायाँ है।

१६

न खुले उक़दा हाय नाज़ो नयाज़।
हुस्न भी राज़ और इश्क भी राज़।।
राज़ की जुस्तजू में मरता हूँ,
और मैं खुद हूँ एक पर्दए-राज़।।

१७

कलतक यही गुलशन था, सैयाद भी बिजली भी।
दुनिया ही बदल दी है तामीरे-नशेमन ने।।

१८

नहीं ज़रूर कि मर जायँ जाँ-निसार तेरे।
यही है मौत कि जीना हराम हो जाये।।

१९

सहने-हरम नहीं है, ये कूए-बुताँ नहीं।
अब कुछ न पूछिये कि कहाँ हूँ, कहाँ नहीं।।

२०

सुनता हूँ बड़े ग़ौर से अफ़सानए-हस्ती।
कुछ ख्वाब है, कुछ अस्ल है, कुछ तर्जे-अदा है।।

२१

जीना भी आ गया मुझे मरना भी आ गया।
पहचानने लगा हूँ अब तेरी नज़र को मैं।।

२२

लौ शमा हक़ीक़त की अपनी ही जगह पर है।
फ़ानूस की गर्दिश से क्या क्या नज़र आता है।।

२३

सौ बार तेरा दामन हाथों में मेरे आया।
जब आँख खुली देखा अपना ही गरेबाँ है।।

२४

उभरना हो जहाँ, जी चाहता है डूब मरने को।
जहाँ उठती हो मौजें हम वहाँ साहिल समझते है।।

२५

य' मुझसे सुन ले तू राज़े-पिनहाँ
सलामती खुद है दुश्मने-जाँ।
कहाँ से रहरव मे ज़िन्दगी हो,
कि राह जब पुर खतर नहीं है।।

बर्क़

बर्क़ उपनाम; महाराज बहादुर नाम; जन्म-स्थान दिल्ली; जन्म-काल १८८४ ई०; मृत्यु-काल १९३६ ई०।

बर्क़ को शायरी का शौक बचपन ही से था। खान्दान में पिता और नाना भी शायर थे। शायरी के वातावरण ही में जन्म थे। मुशायरों से गालिब, ज़ौक और दाग़ का ज़माना जा चुका था; आज़ाद और हाली भी ग़ज़लों की बंदिश से निकल गये थे; मुशायरे बे-रौनक होने ही वाले थे कि बर्क़ उसमें नया चिराग़ लेकर आ गये।

बर्क़ की सबसे बड़ी खूबी यह है कि उन्होंने ग़ज़ल में भारतीय विचार-धारा को स्थान दिया है। यद्यपि भाषा में उन्होंने मोमिन और गालिब ही का रास्ता पकड़ा है, पर भावों पर आज़ाद और हाली का पूरा असर है।

यहाँ नमूने के कुछ शेर दिये जाते हैं :—

१

उन्हीं को हम जहाँ में रहरवे कामिल समझते हैं।
जो हस्ती को सफ़र औ' क़ब्र को मंजिल समझते हैं॥

२

बता ऐ खाक के पुतले ! कि दुनिया में किया क्या है ?
बता कै दाँत हैं मुँह में तेरे? खाया पिया क्या है ?
बता खैरात क्या की, राहे मौला में दिया क्या है ?
यहाँ से आक़बत के वास्ते तोशा लिया क्या है ?
दुआयें लीं कभी ठंडा किया दिल तुत्फा जानों का ?
हुआ है तू कभी राहत रसाँ तिश्ना दहानों का ?

३

बहुत तूने बहारे ज़िन्दगानी के मज़े लूटे?
बहुत ज़ेरे क़दम तूने किये पामाल गुल बूटे।
बहुत जामे मये गुल रंग तेरे हाथ से टूटे।
बहुत लाला रुख़ों के लाले लब तूने किये जूठे।
रहा तू बे गुलो-गश महूशाले ऐश कोशी में।
कभी फिक्रे मआल आया न ज़ौक़े खुद फरोशी में।।

४

खिल के मुर्झा भी गया आँख किसी की न पड़ी।
मैं चमने ज़ारे जहाँ में गुले-सहराई था।।

५

इन्किलाबे दहर से सब शान वाले मिट गये।
रूम वाले मिट गये यूनान वाले मिट गये।।
सीरिया वाले मिटे तूरान वाले मिट गये।
कौन कहता है कि हिन्दुस्तान वाले मिट गये।।

हमने यह माना हमारे आन वाले मिट गये।
भोज से विक्रम-से आली शान वाले मिट गये।।
भीष्म औ अर्जुन से योद्धा बान वाले मिट गये।
अकबरो परताप से मैदान वाले मिट गये।।

क्या थे अहले हिंद यह चर्खे कुहन से पूछ लो।
या हिमालय की गुफाओं के दहन से पूछ लो।।
अपना अफ़साना लबे गंगो-जमन से पूछ लो।
पूछ लो, हर जर्रए-ख़ाके वतन से पूछ लो।।

अपने मुँह से क्या बतायें हम कि क्या वे लोग थे।
नफ़्स कुश नेकी के पुतले थे मुजस्सिम योग के॥

६

न मिजग़ाने वफ़ूरे ज़ब्त ने ढलने दिये आँसू।
य' दरिया ग़र्क होकर रह गया अपने किनारों में॥

जिगर मुरादाबादी

जिगर उपनाम; सिकंदर अली नाम; जन्म-स्थान मुरादाबाद; जन्म-काल १८९० ई०।

जिगर अपने समय के मशहूर शायर हैं। उर्दू ज़बान पर पूरा अधिकार रखते हैं। कहने का तर्ज़ ऐसा मधुर है कि मुशायरों में सुननेवाले झूम-झूम पड़ते हैं। सूरत से सीरत कहीं अच्छी है।

दुनिया बदल गई है; नये-नये तराने नये-नये शायर चारोंतरफ उमड़-घुमड़कर गा रहे हैं; पर जिगर पर नई दुनिया का रंग नहीं चढ़ा और न उन्होंने इश्क की पुरानी शराब छोड़ी। वे पीते भी कसकर हैं और कहते भी मस्त होकर हैं। सुना जाता है कि इन दिनों उन्होंने शराब से तोबा कर ली है; पर शायरी में रंग वही पुराना ही है।

यहाँ मिसाल की तौर पर कुछ शेर दिये जाते हैं :—

१

जुस्तजूए यार में गुम खुद मेरा दिल हो गया।
यह मुसाफिर चलते-चलते आप मंजिल हो गया॥

२

महवे-तसबीह तो सब हैं मगर इदराक कहाँ।
ज़िन्दगी खुद ही इबादत है, मगर होश नहीं॥

३

फ़ुरसत कहाँ कि बात करें आस्माँ से हम।
लिपटे पड़े हैं लज्ज़ते दर्दे निहाँ से हम॥

बेताब थे जो नज़अ में दर्दे-निहाँ से हम।
कुछ दूर आगे बढ़ गये उम्रे रवाँ से हम॥
ता उम्र आह ! कुञ्जे कफ़स देखना पड़ा।
उड़कर चले थे चार कदम आशियाँ से हम॥
तकदीर ने उसे भी नज़र से छिपा दिया।
रोते लिपट के गर्दे पसे कारवाँ से हम॥
बेताबियों ने काम किया दस्ते नाज़ का।
आख़िर लिपट के सोगये दर्दे निहाँ धे हम॥
भर आया दिल जो काहिशे पै हम से ऐ जिगर !
आख़िर को उठ खड़े हुये बज़्में जहाँ से हम॥

४

मौत जबतक नज़र नहीं आती।
ज़िंदगी राह पर नहीं आती॥

५

मेरा ज़ौक़ भी मेरा शौक भी है बुलन्द सतहे अवाम से।
तेरा हिज्र भी तेरा वस्ल भी, मेरे दर्दे दिल की दवा नहीं॥

६

यह इश्क नहीं आसाँ, बस इतना ही समझ ले।
इक आग का दरिया है, औ' डूब के जाना है॥

७

इस ज़माने का इन्क़लाब न पूछ।
रूह शैतान की शक्ल आदम की॥

८

मुहब्बत है अपनी भी लेकिन न अंधी।
ज़वानी है लेकिन दिवानी नहीं है॥

९

हम इश्क के मारों का इतना ही फ़साना है।
रोने को नहीं कोई हँसने को ज़माना है।।

१०

कली कोई जहाँ पर खिल रही है।
वहीं इक फूल भी मुरझा रहा है।।

११

मुझे उठाने को आया है वाइज़े नादाँ।
जी उठ सके तो मेरा सागिरे शराब उठा।।

१२

हुस्न की यक-यक अदा पर जानो-दिल सदक़े मगर।
लुत्फ़ कुछ दामन बचाकर ही निकल जाने में है।।

१३

कहने के लिये कह ले सब कुछ उसे अहले दिल।
खुद वरना मुहब्बत भी इक तरह का पर्दा है।।

१४

यही हुस्नो-इश्क का राज़ है,
कोई राज़ इसके सिवा नहीं।
कि खुदा नहीं तो खुदी नहीं,
जो खुदी नही तो खुदा नहीं।।

१५

कुछ इस अदा से आज वो पहलू-नशी रहे।
जब तक हमारे पास रहे, हम नहीं रहे।।

१६

दिन जवानी के 'जिगर' बेखबरी में गुज़रे।
होश का वक्त जब आया तो मुझे होश न था।।

१७

शौक़ को रहनुमा बना, हो जो चुका कभी न देख।
आग दबी हुई निकाल, आग बुझी हुई न देख॥

१८

एक मंज़र है कि आँखों में खिचा आता है।
एक दुनिया है कि रू-पोश हुई जाती है॥

१९

ख़याले-यार ! सलामत तुझे ख़ुदा रक्खे।
तेरे बग़ैर कभी घर में रोशनी न हुई॥

२०

इलाही ! तर्के मुहब्बत भी क्या मुहब्बत है।
भुलाते हैं उन्हें, वह याद आये जाते हैं॥

२१

सबा तू जाके हमारा पयाम कह देना।
गये वो जब से यहाँ सुबह शाम ही न हुई॥

२२

वो यूं दिल से गुज़रते हैं कि आहट तक नहीं आती।
वो यूं आवाज़ देते हैं कि पहचानी नहीं जाती॥

२३

हर क़ैद से हर रस्म से बेगाना बना दे।
दीवाना बना दे मुझे दीवाना बना दे॥
अल्लाह ने तुझको मै वो मैख़ाना बनाया।
तू सारी-फ़ज़ा को मै वो मैख़ाना बना दे॥
तू साक़िए-मैख़ाना है मैं रिन्दे बलानोश।
मेरे लिये मैख़ाना को पैमाना बना दे॥

या दीदा वो दिल में मेरे तू आप समा जा,
या फिर दिल वो दीदा ही को वीराना बना दे।
आलम तो है दीवाना 'जिगर' हुस्न की खातिर,
तू अपने लिये हुस्न को दीवाना बना दे।

जोश मलीहाबादी

जोश उपनाम; शबीरहसन ख़ाँ नाम; जन्म-स्थान मलीहाबाद (लखनऊ); जन्म-काल १८९६ ई०।

जोश जन्मजात शायर हैं। नौ वर्ष की आयु ही से शेर कहने लगे थे। पिता शायरी के विरोधी थे। उन्होंने बहुत रोका; पर जोश तो शायर होकर ही रहे।

कालेज से निकलकर १९२४ ई० में उन्होंने हैदराबाद निज़ाम क राज्य में नौकरी कर ली और वहाँ १९३४ ई० तक रहे। फिर उसे भी छोड़-कर दिल्ली आ गये और वहाँ से एक उर्दू अख़बार निकालने लगे।

जोश की भाषा साफ़-सुथरी, चुस्त और चुटीली है। जोश ने आज़ाद, हाली, और चकबस्त के रास्ते को ख़ुशनुमा फूलों से आरास्ता कर दिया।

जोश बड़े देश-भक्त, उदार और मनुष्य के सच्चे गुणों से भूषित शायर हैं। उनका आत्म-गौरव उनकी रचनाओं में स्पष्ट निखर आया है। जोश सचमुच जोश के दरिया हैं।

यद्यपि उनकी भाषा उर्दू के पुराने शायरों ही से मिलती-जुलती है, पर भाव बिलकुल नये और सामयिक हैं।

यहाँ जोश की शायरी के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :—

१

सुनते हैं सैलाब में डूबा हुआ था इक दरख़्त,
जिसकी चोटी पर डरे बैठे थे दो आशुफ़्ता बख़्त।।
एक उनमें साँप था औ' एक सहमा नौजवाँ।
दो ज़दों का एक भीगी शाख़ पर था आशियाँ।।

लेकिन ऐ ग़ाफ़िल मुसलमानों ! मुदब्बिर हिन्दुओ !
हिन्द के सैलाब में इक शाख़ पर तुम भी तो हो ?

२

लोग हँसते है चहचहाते हैं।
शाम को सैर से जब आते हैं।।
लैम्प की रोशनी में यारों को।
दास्ताने नई सुनाते हैं।।
हम पलटते हैं जब गुलिस्ताँ मे।
आह भरते है थरथराते हैं।।
मेज पर सर से फेंककर टोपी।
एक कुर्सी प लेट जाते है।।
आप समझे य' माजरा क्या है ?
सुनिये, हम आपको सुनाते हैं।।
वह लगाते हैं सिर्फ चक्कर हो।
हम मनाज़िर से दिल लगाते हैं।।
वह नज़र डालते है लहरों पर।
और हम तह में डूब जाते हैं।।
घर पलटते हैं वह हवा खाकर।
और हम ज़ख्म खा के आते है।।

३

मर्द वह कब है भँवरसे जो उभर सकता नहीं।
हक़हीं जीने का नहीं उसको जो मर सकता नहीं।।

४

अहानत गवारा नहीं आशिक़ी में।
ग़ुलामी में भी सरवरी चाहता हूँ।।
जो पैग़म्बरी में भी दुश्वारियाँ हों।
तो हंगामए-काफिरी चाहता हूँ।।

खुलासा है यह 'जोश' इस दास्ताँ का।
कि जौहर हूँ औ' जौहरी चाहता हूँ।।

५

सबक़ इबरत का ले नादान बातों की सफ़ेदी से।
कफ़न ओढ़ा है जीते जी निगारे जिन्दगानी ने।।
नज़र कर झुर्रियों से शेब के सिमटे हुये रुख पर।
य' वह बिस्तर है दम तोड़ा है जिस पर नौजवानी ने।।

६

जौक़े-करम नहीं है, ताबे-जफ़ा नहीं है।
बुज़दिल को जिन्दगी का कोई मज़ा नहीं है।।

७

कहते हो ग़म से परेशान हुये जाते हैं।
यह नहीं कहते कि इन्सान हुये जाते हैं।।

८

निगह बेनूर होकर राह का मंजर दिखाती है।
तनफ्फुस आह भरता है, क़ज़ा लोरी सुनाती है।।
ज़ईफ़ी का य' रेशा जिससे जुम्बिश में है सब आज़ा।
य' है दरअस्ल क्या ? कुछ अक्ल में यह बात आती है।।
य' है इक पालना डोरी हिलाती है रगें जिसकी।
य' इक झूला है जिसमें ज़िन्दगी को नींद आती है।।

कि यह दुनिया सरासर ख्वाब औ' ख्वाबे परीशां है।।
खुशी आती नहीं सीने में जब तक साँस आती है।।

९

नौजवानो ! यह बड़े बूढ़े न मानेंगे कभी।
सेहते अफ़कार से खाली है उनकी ज़िन्दगी।।

योमे-पैदाइश से हैं यह अपने सीनों में लिये।
काँपते बूढ़े अक़ीदे थरथराते वसवसे।।
सैकड़ों हूरों का हर नेकी पर इनको है यक़ी।
सूद लेने में ख़ुदा से भी ये शर्माते नहीं।।

१०

गये वे दिन कि तू महरूमिये-क़िस्मत प रोता था।
ज़रूरत है तुझे अब आफ़तों पै मुस्कराने की।।

११

मर्द कहते हैं उसे ऐ माँग-चोटी के ग़ुलाम।
जिसके हाथों में हो तूफ़ानी अनासिर की लगाम।।

१२

क़ब्र में रूहे-पिदर को शाद करने के लिये।
सर कटाना हिन्द को आज़ाद करने के लिये।।
बाप की सोती हुई क़िस्मत जगाने के लिये।
क़ब्र पर दो फूल ले आना चढ़ाने के लिये।।
बाग़े-हस्ती के न वह बाग़े जिनाँ के फूल हों।
मुज़दए-आज़ादिए हिन्दोस्ताँ के फूल हों।।

१३

वाज़ आया मैं तो ऐसे मज़हबी ताऊन से।
भाइयों का हाथ तर हो भाइयों के ख़ून से।।
तेरे लब पर है इराक़ो-शामो-मिस्रो-रूमो-चीन।
लेकिन अपने ही वतन के नाम से वाक़िफ़ नहीं।।
सबसे पहले मर्द बन हिन्दोस्ताँ के वास्ते।
हिन्द जाग उट्ठे तो फिर सारे जहाँ के वास्ते।।

१४

गर्दन की नौक़ पाँव की ज़ंजीर काट दे।
इतनी ग़ुलाम क़ौम में हिम्मत कहाँ है जोश!

अपनी तबाहियों प कभी ग़ौर कर सके।
इतनी ज़लील मुल्क को फ़ुरसत कहाँ है जोश!
इक हर्फ़े-गर्म सुनते ही लौ दे उठे दिमाग़।
हिन्दोस्तान में वो हरारत कहाँ है जोश!

१५

बहार में तो ज़मीं से बहार उबलती है।
जो मर्द है तो ख़िज़ाँ में बहार पैदा कर।।

१६

बिगाड़कर बनाये जा, उभारकर मिटाये जा।
कि मैं तेरा चिराग़ हूँ, जलाये जा, बुझाये जा।।
फ़ुगाँ कि मुझ ग़रीब को हयात का य' हुक्म है।
समझ हरेक राज़ को मगर फ़रेब खाये जा।।

१७

नगरी मेरी कबतक योंही बरबाद रहेगी?
दुनिया यही दुनिया है तो क्या याद रहेगी?
ऐ चाँद! उमीदों को मेरी शमा दिखा दे।
डूबे हुये खोये हुये सूरज का पता दे।।
रोते हुये जुग बीत गया अब तो हँसा दे।
ऐ मेरे हिमालै! मुझे यह बात बता दे।।
होगी मेरी नगरी भी कभी ख़ैर से आज़ाद।
नगरी मेरी बरबाद है, बरबाद है, बरबाद।।

हफ़ीज़ जालन्धरी

हफ़ीज़ जालंधरी (पूर्वी पंजाब) के निवासी हैं और आजकल लाहौर रेडियो-विभाग में उच्च पदाधिकारी हैं। वर्तमान उर्दू-शायरों में उच्च कोटि के शायर माने जाते हैं। उर्दू की परंपरागत शायरी के ढंग पर भी आपने बहुत कुछ कहा है; और कहीं-कहीं ग़ालिब का मुकाबला किया है। आपने हिन्दी-गीत लिखने में भी बड़ी प्रसिद्धि पाई है। उनमें हिन्दी के सरल शब्दों के प्रयोग से रस उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया है।

हफ़ीज़ साहब ने भाषा ही नहीं बदली, विषय भी बदले हैं। अभी शुरुआत है। भाषा में उर्दू का सा चुलबुलापन नहीं आया है। पर आशा की जाती है कि वह शीघ्र ही चुस्त और दुरुस्त हो जायगी।

गीतों में विषय ज्यादातर भारतीय और रोजमर्रा की जिंदगी में छितराये हुए दृश्यों के हैं। यहाँ दोनों प्रकार की शायरी के नमूने दिये जाते हैं—

१

सरे मक़तल 'हफ़ीज' अपना कोई हमदम न था लेकिन,
निगह कुछ देर तक लड़ती रही शमशीरे क़ातिल से॥

२

रहने दे जामेजम मुझे अंजामे जम पिला।
खुल जाय जिससे आँख वह अफसाना चाहिए॥

३

मेरी ज़िन्दगी पर तआज्जुब नहीं था।
मेरी मौत पर उनको हैरानियाँ हैं॥

४

किसी ने भी न पहचाना वतन में।
मैं समझा था बहुत मशहूर हूँ मैं॥

५

है अजल की इस गलत बख्शी प हैरानी मुझे।
इश्क लाफानी मिला है जिन्दगी फानी मुझे॥

६

अब इब्तदाये इश्क का आलम कहाँ 'हफीज'।
किश्ती मेरी डुबो के वो दरिया उतर गया॥

७

रूह को खाक के दामन में लिये बैठा हूँ।
मेरा क़ालिब ही हकीकत में है मदफ़न मेरा॥

८

तनज्जुल की हद देखना चाहता हूँ।
कि शायद वही हो तरक्की का जीना॥

९

काबे को जा रहा हूँ निगह सूए-दैर है।
फिर फिर के देखता हूँ कोई देखता न हो॥

१०

जमाने मे चर्चे है दैरो-हरम के।
बड़ी रौनकों पर हैं दोनों दुकानें॥

११

हाय! क्या चीज गरीबुलवतनी होती है।
बैठ जाता हूँ जहाँ छाँव घनी होती है॥
दिन को एक नूर बरसता है मेरी तुरबत पर।
रात को चादरे महताब तनी होती है॥

रित बदलते ही बदल जाती है नीयत मेरी।
जब बहार आती है, वादा शिकनी होती है॥
पी लूँ दो घूँट कि साकी की रहे बात 'हफीज'।
साफ इन्कार मे खातिर-शिकनी होती है॥

गीत

१

अपने मन में प्रीत
बसा ले, अपने मन मे प्रीत।
मन मंदिर मे प्रीत बसा ले, ओ मूरख ओ भोले भाले!
दिल की दुनिया कर ले रोशन अपने घर में जोत जगा ले।
प्रीत है तेरी रीत पुरानी भूल गया ओ भारत वाले।
भूल गया ओ भारत वाले, प्रीत है ऐसी रीत॥

२

उठे हसीन ख्वाब से, कि धोये मुँह गुलाब से।
य इशवह साजियों में है।
अदा तराजियों मे है॥
इधर से इश्क भी उठा, मगर है अपनी हाँक में।
इधर गया उधर फिरा फिजूल ताक-झाँक में॥
व' नींद ही का हो गया, उठा, फिर उठके सो गया।
उठे हसीन ख्वाब मे, कि धोये मुँह गुलाब से॥*

३

रखवाला लड़का खेतों का दूल्हा बंसी बजा कर गाने का रसिया।
मेंड़ों के ऊपर फिरता है तनहा, हाथों में बंसी पैरों से नंगा॥

---

*शेरो शायरी से।

अलबेलेपन में, असली फबन में।
गोकुल के बन में, जैसे कन्हैया॥
बंसी की लय में गुम हैं फिजायें, फिरती हैं मदहोश हरसू हवा में।
जादू है क्या है? या मोजज़ा है?
कोहो बयाबाँ खेत और मैदाँ, बाहोश बेहोश, सब खुद फरामोश।
क्यों ओ गलेबाज! तेरा य' अंदाज।
यह सोज यह साज! तुझको पता है।
जादू है क्या है? या मोजजा है!

फ़िराक

फिराक उपनाम; रघुपतिसहाय नाम; पिता का नाम श्री गोरख प्रसाद; जन्म-स्थान गोरखपुर; जन्म-काल १८९६ ई०।

फिराक के पिता गोरखपुर के प्रतिष्ठित नागरिक और उर्दू के मशहूर शायर थे। वे 'इबरत' उपनाम रखते थे। इस तरह परिवार में उर्दू शायरी की गूंज तो बचपन ही से थी; होश सँभालते ही रघुपतिसहाय ने उसे अपने कंठ-स्वर में भर कर सुनाना शुरू कर दिया और होते-होते वे आज 'फिराक गोरखपुरी' के नाम से उर्दू के गिनती के शायरों की श्रेणी में आ बैठे।

शुरू-शुरू में फिराक को उर्दू की शिक्षा मिली; फिर ये अंग्रेजी स्कूल में दाखिल हुए और बी० ए० पास किया। आजकल इलाहाबाद युनिवर्सिटी में अंग्रेजी के लेक्चरर हैं।

फिराक साहब स्वतंत्र विचारों के व्यक्ति हैं। युवावस्था में देश की पुकार पर उन्होंने बहुत बड़ा त्याग किया है। गवर्नर ने आई० सी० एस० में इनको नामजद कर दिया था; पर इन्होंने उसकी परवा न की और महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन में इन्होंने बड़े साहस से भाग लिया और १९२१ ई० में जेल चले गये। जेल में इस पुस्तक के लेखक का उनका साथ था। जेल से निकलने के बाद ये क्रिश्चियन कालेज लखनऊ में अध्यापक नियुक्त हुए. उसके बाद इलाहाबाद युनिवर्सिटी में आ गये।

फिराक बड़े जिन्दादिल शायर हैं। इनकी शायरी में अमीर मीनाई, हसरत, असगर और इक़बाल की शायरी का लुत्फ आता है। यद्यपि हुस्न और इश्क का दामन इन्होंने नहीं छोड़ा; पर नये भारतीय विषय भी बहुत लिये और उन पर चुभते हुए विचार बाँधे।

यहाँ फ़िराक की शायरी के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

१

तेरी याद करता हूँ औ' सोचता हूं।
मुहब्बत है शायद तुझे भूल जाना॥

२

आह! इन मस्त निगाहों के इशारे भी फ़िराक़।
हम समझने को बहुत समझे, मगर क्या समझे॥

३

तुझे दुनिया को समझने की हवस है, ऐ काश!
तुझे दुनिया को बदल देने का अरमाँ होता!

४

न समझने की है ये बातें न ये समझाने की।
ज़िंदगी उचटी हुई नींद है दीवाने की॥

५

कोई सोचे तो फर्क कितना है।
हुस्न और इश्क के फिसानों में॥
मौत के भी उड़े है अक्सर होश।
जिन्दगी के शराबखानों में॥

६

रस में डूबा हुआ लहराता बदन क्या कहना।
करवटें लेती हुई सुबहे चमन क्या कहना॥
मद भरी आँखों की अलसाई नज़र, पिछली रात।
नींद में डूबी हुई चन्द्रकिरन क्या कहना॥
दिल के आइने में इस तरह उतरती है निगाह।
जैसे पानी में लचक जाये किरन क्या कहना॥

७

खड़े हैं सिमटे हुए ऐसे हर सिंगार के पेड़।
जवानी जैसे हया की सुगंध से बोझल॥

(८)

जवानी आयी दबे पाँव और यूँ आयी !

कि उसके आते ही बिगड़ा बना बनाया खेल
वो ख्वाहिशात के, जजबात के उमड़ते हुए
वो हौकने हुए बेनाम आग के तूफान
वो फूटता हुआ ज्वालामुखी जवानी का
नहा उठा हूँ मैं शोलों में आतशे-गम के
रगों में उठती हुई आँधियों के वह झटके
वो जलजले कि पहाड़ों के पैर उखड़ जाये
बलूगियत की वो टीसें वो कर्बे-नशवो-नुमू
दहाड़ती थी जवानी कि 'फाड़ खायेगी'
और ऐसे मे मुझे ब्याहा गया, मगर किस से
जो हो न सकती थी हरगिज मेरी शरीके-हयात
हम एक दूसरे के वास्ते बने ही न थे।

× × ×

नदीम ! खा गयी मुझको नजर जवानी की
तलाशे-शोल-ए-उल्फत से यह हुआ हासिल
कि नफरतों का अगिन कुंड बन गयी दुनिया
वो हल्की सीन-ओ रग-रग में बेपनाह चुभन
उठा के जैसे निगल ली हो मैंने नागफनी
न पूछ आलमे-कामो-दहन मेरे हमदम
समर हयात का जब राख बन गया मुँह में
मैं चलती फिरती चिता बन गया जवानी की ।
ये सोचता था कि अब क्या करूँ कहाँ जाऊँ
मैं ढूँढने लगा हर सिम्त सच्ची झूठी पनाह
तलाशे-हुस्न में, शेरो-अदब में, विद्या में,

हुँधी सदा से मुहब्बत की भीख माँगी है
नये सिरे से समझना पड़ा ज़माने को
न पूछ हज्म किये कैसे इश्क के दुख सुख
कोई उतार ले इनको तो हड्डियाँ उड़ जायें
मगर हूँ शुक्र गुजार इसके वास्ते दिल से
लरज़ते हाथों से दामन खुलूस का न छूटा
बचा के रक्खी थी मैंने अमानते-तिफली
उसे न छीन सकी मुझसे दस्तबुर्दे-शबाब

× × ×

यहीं बहुत है कि तिफ्ली-ए-रफ्तः छोड़ गयी
उदास दिल में कई छोटे छोटे नक्शे-कदम
मेरी खुदी की रगों पर पड़े हुए हैं अभी
न जाने कितने बहुत नर्म उँगलियों के निशाँ
हनोज वक्त के बेदर्द हाथ कर न सके
गये जमाने की जिंदा निशानियों को फ़ना
शबाब छीन सकेगा न मेरी फितरत से
मेरी सफा मेरे तहतुश्शऊर की अस्मत
बुलूगियत में भी बेलौस तिफ्लवश जजबात
ये दश्ते-जीस्त में हमदर्दियों का सरचश्मा
ये सरखुशी-ओ-गमे-बेरया, ये कल्बे-गुदाज
बगैर बैर के अनबन गरज से पाक तपाक
गरज से पाक ये आँसू, गरज से पाक हँसी
हर एक जर्रा से हर खूबो-जिश्त से ये लगाव
जमानए-गुजराँ में दवाम का सरगम
जमीं के चेहरे पै वो मामता की शबनम सी
ये बज्मे-जश्ने-हयातो-ममात सजती हुई

किसी की याद में शहनाइयां सी बजती हुई
फ़लक पे वज्द में लाती है जो फ़रिश्तों को
ये शायरी भी बलूगे-मिजाजे-तिफली है
गमे-जहाँ मुझे आँखें दिखा नहीं सकता
कि आँखें देखे हुए हूं मैं अपने बचपन की
मेरे लहू में अभी तक सुनायी देती है
सुकूते-रंज में भी घुँघरुओ की झनकारें
ये और बात कि मैं उस पे कान दे न सकूँ
इसी वरासते-तिफ्ली का अब सहारा है
यही है मरहमे-काफूर दिल के जख्मों पर
इन्ही को रखना है महफूज ता-दमे-आखिर

× × ×

दयारे-हिन्द है गहवारः आज भी हमदम
अगर हिसाब करें—दस करोड़ बच्चों का
ये बच्चे हिन्द की सब से बड़ी अमानत हैं
हर एक बच्चा है संभावनाओं का संसार
अगर हिसाब करें—दस करोड़ बच्चों में
तो दस में एक ही या दो को झूठी सच्ची कुछ
हमारे देश में मिलती है नाम की शिक्षा
करे विचार तो खुल जायगा कि इनको भी क्या
समाज फूलने फलने के देता हैं साधन
ये सांस लेते हैं तहजीब-कुश फ़ज़ाओं में
हम इनको देते हैं कितनी सड़ी गली तालीम
मिलेगा इल्मे-जहालत-नुमा मे क्या इनको
निसाब ऐसे कि मेहनत करे अगर उन पर
कुछ आने जाने के बदले दिमाग सुन पड़ जाय

वो देश जिसमें परम सत्य की मिली वाणी
समय का फेर कि इन बच्चे बच्चियों को हम आज
वो गद्य पद्य पढ़ाते हैं, वह खड़ी-बोली
निरा गंवार बनाकर जो छोड़ दे इनको
न आयेगी इन्हें भाषा तो और विद्याएं
हमारे बच्चों को आयेंगी ? खाक आयेंगी !
नदीम ! आँवें का आँवाँ यहाँ तो टेढ़ा है
यहाँ तो नींव ही पड़ती है टेढ़ी शिक्षा की
दिमाग की हो गिजा या गिजाए-जिस्मानी
हर इक तरह की गिजा में यहां मिलावट है
जिसे कि बच्चों की तालीम कह के देते हैं
वो दर्स उल्टी छुरी है गले पे बचपन के
करोड़ों जिंदगियों से ये बेपनाह दगा
निकल के कालेजों और यूनीवर्सिटियों से
ये बदनसीब न घर के न घाट के होंगे
मैं पूछता हूँ ये तालीम है कि मक्कारी ?
कोई कहे ये है शिक्षा कि चोर बाजारी ?

× × ×

जगत गुरू था यही देश इक जमाने में
उदय हुआ था यहीं विश्व सभ्यता का अरुण
यहीं से फैली थी संसार भर में ज्ञान की ज्योति
प्रयागराज, नवद्वीप, तक्षिला, काशी
मैं पूछता हूँ नालंदा के विश्वविद्यालय
स्नातक उनके भी इतने निकम्मे होते थे ?

विदेशी राज, ये माना, कि प्राणघातक था
हजारों ऐसे ही स्नातक विदेशी राज में भी

है कल की बात. इन्हीं कालेजों से निकले थे
जिन्होंने नाम कमाये हैं करके ऊँचे काम
नदीम ! इनके भी बचपन यहीं चढ़े परवान

\+ \+ \+

वो बच्चे जिनको किसी मदरसे में जाने की
स्वराज होने के बावस्फ भी नहीं तौफीक
दिल—उनका ध्यान जब आता है—डूब जाता है
मगर समाज की तक़दीर जिनके हाथ में है
अनाने-ज़िदगिए-हिन्द जिनके हाथ में है
स्वय्ये देख के उनके ये ध्यान आता है
किसे पड़ी है कि समझे वो इस अमानत को
किसे पड़ी है कि बच्चों की जिन्दगी को बचाय—
खराब होने से, मिटने से, सूख जाने से !
बचाये कौन इन आजुर्द: होनहारों को—
वो ज़िन्दगी जिसे हम दे रहे हैं भारत को
करोड़ों बच्चों के मिटने का इक अलमिया है।

\+ \+ \+

चुराये जाते हैं बच्चे अभी घरों से यहाँ
कि जिस्म तोड़ दिये जाँय उनके, ताकि मिले
चुरानेवालों को खैरात माघ मेले में
धरम के प्रेमियों से और दानवीरों से
जो इस अजाब से बच जायें तो गले पड़ जायें
वो जानते कि हमारे करोड़ों बच्चों की
नदीम ! खैर से मिट्टी खराब हो जाये
वो मुफलिसी जो खुशी छीन ले, वो भूख, वो प्यास
उदासियों से भरी ज़िन्दगी की बेरंगी
वो बेदिली कि हँसी छीन ले जो होठों से

वो गंदगी, जो नजासत वो तन बदन रोगी
वो आँखें देखती हैं हर तरफ जो बेनूरी
वो टकटकी कि जो पथरा के रह गयी हो, नदीम
वो बच्चे छिन गये हों जिनसे बचपने उनके
वो दुख कि जिससे सितारों की आँख भर आये
मैं बचपने का पुजारी हूँ किस तरह देखूं
करोड़ों बच्चों की अपने वतन में बरबादी
मैं इनकलाब के खतरों से खूब वाकिफ़ हूँ
समाज का जो रहा यह सलूक बच्चों से
तो मोल लेना पड़ेगा वतन को यह खतरा !

कौमुदी-कुञ्ज

१

साक़ी तू दिये जा मै जिस जिस को दिया चाहे।
सब में वो मोहागिन है कि जिस को पिया चाहे।।
तू आज दुआ साक़ी गर मेरी लिया चाहे।
इस ढब की पिला दे मै पीते ही पिया चाहे।।
जब जान लिया तुझको पहचान लिया तुझको।
फिर किस पर दिल रीझे और किसको जिया चाहे।।
दिल पास था जो मेरे दिलवर को दिया मैंने।
अब जान भी हाज़िर है जानाँ जो लिया चाहे।।
मै पीते हैं मस्ताने हम इश्क़ के दीवाने।
काबे को तू मैखाना कर दे जो किया चाहे।।

अज्ञात

२

ग़रीबों का भी कोई आसरा होता तो क्या होता।
बुते काफ़िर हमारा भी खुदा होता तो क्या होता।।
कोई लज्ज़त नहीं है फिर भी दुनिया जान देती है।
खुदावन्दा मुहब्बत में मज़ा होता तो क्या होता।।
जब इतनी बेवफ़ाई पर उसे दिल प्यार करता है।
तो या रब वह सितमगर बा वफ़ा होता तो क्या होता।।
सुना है हश्र वह जिक्रे वफ़ाये ग़ैर करते थे।
जो मैं भी बीच ही में बोल कुछ उठता तो क्या होता।।

३

है बहारे बाग़ दुनिया चन्द रोज़।
देख लो इसका तमाशा चन्द रोज़॥
ऐ मुसाफ़िर कूच का सामान कर।
इस सरा में है बसेरा चन्द रोज़॥
दफ़न करके क़ब्र में बोली क़ज़ा।
अब यहाँ तुम सोते रहना चन्द रोज़॥
है जमीं एक मौजे दरिया कोई दिन।
आसमाँ है यक बला सा चन्द रोज़॥
पूछा लुकमाँ से जिया तू कितने दिन।
दस्ते हसरत मलके बोला चन्द रोज़॥
फिर कहाँ 'अकबर' कहाँ तुम दोस्तो।
जिन्दगी का है बखेड़ा चन्द रोज़॥

अकबर

४

मेरे माशूक़ तुम हो यार तुम हो दिलरुबा तुम हो।
य'सब कुछ हो मगर मैं कह नहीं सकता कि क्या तुम हो॥
तुम्हारे नाम से सब लोग मुझको जान जाते हैं।
मैं वो खोई हुई यक चीज़ हूँ जिसका पता तुम हो॥

अज्ञात

५

लैला को यार तूने मजनूं बना के मारा।
ऐसे शिकस्ता दिल को दर दर फिरा के मारा॥
फोड़ा है पत्थरों से सर कोहकन का किसने।
मन्सूर से अनलहक़ किसने कहा के मारा॥
ऐ यार क्या वया तेरी नैरंगियाँ वयाँ हो।
बुत बनके आप हमको काफ़िर बना के मारा॥

गर जाँ गई बला से ऐ दिल नहीं गम इसका।
कर शुक्र उसने अपना बन्दा बना के मारा।।

अज्ञात

६

उसने कहा तू कौन है मैंने कहा शैदा तेरा।
उसने कहा मतलब है क्या मैंने कहा सौदा तेरा।।
उसने कहा क्या नाम है औ किस नशे से काम है।
मैंने कहा मैं मस्त हूँ औ हूँ मैं दीवाना तेरा।।
उसने कहा दिल ले गया मैंने कहा हाँ ले गया।
उसने कहा वह कौन है मैंने कहा गमज़ा तेरा।।
उसने कहा हट दूर हो मैंने कहा हर्गिज़ नहीं।
उसने कहा दावा है क्या, मैंने कहा बन्दा तेरा।।

अज्ञात

७

य' किस मस्त के आने की आरज़ू है।
कि साक़ी लिये सागरे मुश्क बू है।।
समाया है जबसे तू नजरों में मेरी।
जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।।
निकल जाय दम तेरे क़दमों के नीचे।
यही दिल को हसरत यही आरज़ू है।।
गुलिस्ताँ मे जाकर हरेक गुल को देखा।
न तेरी सी रंगत न तेरी सी बू है।।
शफ़क़ बन के होता है गरदूँ प' ज़ाहिर।
य' किस कुश्तए बेगुनः का लहू है।।

पादशाह

८

कोई घड़ी न वस्ल की आई तमाम रात।
बातों मे उस परी ने गँवाई तमाम रात॥
उठ कर जो आप जगह मे अपने चले गये।
पहलू में दिल ने धूम मचाई तमाम रात॥
पैरों पड़े बलाएँ ली औ मिन्नते भी कीं।
सरकी न उनके मुँह से दुलाई तमाम रात॥
खौफ़ उनको था कि नींद में बोसा न लें कहीं।
गालों प' धर के मोए कलाई तमाम रात॥
तारों के टूटने की चमक उन को भा गई।
अफ़शाँ लगा लगा के छुड़ाई तमाम रात॥
पाला पड़ा है मुझको अजब बद मिजाज से।
झगड़े तमाम दिन है लड़ाई तमाम रात॥
'मूनिस' फिर आज हिज्र की शब काटनी पड़ी।
नींद ऐसी सो गई कि न आई तमाम रात॥ मूनिस

९

ज़बानी हाल यों कहना तू जाकर नामावर पहले।
हमारी आहे गिरियाँ की तू कर देना ख़बर पहले॥
भौंरा लोभी फूल का, कली कली रस ले।
काँटा लागा प्रेम का, हेरफेर जिय दे॥
तेरी उलफ़त के कूचे में नफ़ा पीछे ज़रर पहले।
सजन सकारे जायँगे, नैन मरेंगे रोय।
बिधना ऐसी रैन कर, भोर कभी ना होय॥
सुबह गर यार जाएगा तो अपना है सफ़र पहले॥
जिन नैनों से देखते, कहाँ गये वो नैन।
प्रीतम प्रीति बढ़ाय के, अब लागे दुख दैन॥
हमारे क्या हुए प्यारे जो करते थे क़दर पहले॥

पंख नहीं बिन पङ्ख हों, केहि बिधि उड़के जाउँ।
दरस पियारे श्याम को, बिन पर कैसे पाउँ ।।
मेरे सैयाद ज़ालिम ने उखेड़े बालो-पर पहले ।।
बह गए बालम बह गए, नदी किनार किनार।
आप तो पार उतर गए, हमे छोड़ मँझधार ।।
सितमगर था तुझे लाजिम मेरी लेनी खबर पहले ।।
आओ प्यारे नैन मे, मूँदि पलक तोहि लेउँ।
ना मैं देखों और को, ना तोहि देखन देउँ ।।
करूँ खिदमत मैं आंखों मे बिठा लूँ चश्म पर पहले ।।
अगले दिन पाछे गए, हरि से कियो न हेत।
अब पछताए होत का, चिड़िया चुग गई खेत ।।
अक़्ल जाती है इस कूचे में ऐ ज़ामिन गुज़र पहले ।। ज़ामिन

१०

नहीं इश्क़ मे इसका तो रंज हमें कि क़रारो शकेब ज़रा न रहा।
गमे इश्क़ तो अपना रफ़ीक़ रहा कोई और बला मे रहा न रहा ।।
दिया अपनी खुदी को जो हमने उठा जो परदा सा बीच मे था न रहा।
रहा परदे में अब वही परदा-नशीं कोई दूसरा उसके सिवा न रहा ।।
न थी हाल की जब हमें अपने खबर रहे देखते औरों के ऐबो हुनर।
पड़ी अपनी बुराइयों पर जो नज़र तो निगाह में कोई बुरा न रहा ।।
मुझे साफ़ बताये निगार अगर तो पूछूँ मे रो रो के खूने जिगर।
भले पाँव मे किसके हे दीदए तर कफ़े पाय जो रंगे हिना न रहा ।।
ज़फ़र आदमी उसको न जानियेगा वो हो कैसा ही साहिबे फ़हमो-ज़का।
जिसे ऐश मे यादे खुदा न रही जिसे नैश मे खौफ़े खुदा न रहा ।।

ज़फ़र*

---

*बहादुरशाह 'ज़फ़र'; दिल्ली के अन्तिम मुग़ल बादशाह; जौक़ के शागिर्द।

११

पसे मर्ग मेरी मज़ार पर जो दिया किसी ने जला दिया।
उसे आह दामने बाद ने सरे शाम ही से बुझा दिया॥
मेरी आँख झपकी थी एक पल वों ही दिल ने कहा कहीं उठ के चल।
दिले बेक़रार ने आनकर मुझे चुटकी ले के जगा दिया॥
पये मग़फ़रत मेरे ऐ ज़फ़र पढ़े फ़ातिहा कोई आनकर।
वो जो टूटी कब्र का था निशाँ उसे ठोकरों से मिटा दिया॥

ज़फ़र

१२

न हो जिसमें अदब औ' हो किताबों से लदा फिरता।
'ज़फ़र' उस आदमी को हम तसव्वुर बैल करते हैं॥ ज़फ़र

१३

यह आसमाँ गुलाम है कि मह-जमाल का।
पहने फिरे हैं कान में बाला हिलाल का॥ ज़फ़र

१४

यार था गुलज़ार था मै थी फ़िज़ा थी मैं न था।
लायक़े पाबासे जानाँ क्या हिना थी मैं न था॥
मैंने पूछा आपका वह क्या हुआ हुस्ने शबाब।
हँस के बोला वह सनम शाने ख़ुदा थी मैं न था॥
कोई जा सकता नहीं असमत सराए यार तक।
परदए दर जिसने उलटा वो हवा थी मैं न था॥
बे ख़ुदी में ले लिया बोसा ख़ता कीजे मुआफ़।
इस दिले बेताब की साहब ख़ता थी मैं न था॥
मै सिसकता ही रहा औ मर गये फ़रहादो क़ैस।
क्या उन्ही दोनों के हिस्से में क़ज़ा थी मैं न था॥
नातवानी ने बचाई जान मेरी हिज्र में।
कोने कोने ढूँढ़ती फिरती क़ज़ा थी मै न था॥

दाग़ इसका दिल प मेरे ऐ ज़फ़र रह जायगा ।
खानहाये यार में ख़ल्क़े ख़ुदा थी मैं न था ।।

ज़फ़र

१५

न कुछ हम हँस के सीखे हैं न कुछ हम रो के सीखे हैं ।
जो कुछ थोड़ा सा सीखे हैं किसी के होके सीखे हैं ।।

ज़फ़र

१६

बादशाह ज़फ़र को गिरफ्तार करनेवाले अंग्रेज ने ताने की तौर पर यह शेर कहा था—

दम-दमे में दम नहीं अब ख़ैर माँगो जान की ।
ऐ ज़फ़र ! बस हो चुकी शमशीर हिन्दुस्तान की ।।

इस पर 'ज़फ़र' ने तत्काल जवाब दिया—

हिन्दियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की ।
तख़्ते लन्दन पर चलेगी तेग़ हिन्दुस्तान की ।।

ज़फ़र

१७

कमर धोका दहन उक़्दः ग़ज़ाल आँखें परी चेहरा ।
शिकम हीरा बदन ख़ुशबू जबीं दरिया जबाँ ईसा ।।
बराये सैर मुझसा रिन्द मैख़ाने में गर आये ।
गिरे साग़र लुँढे शीशा हँसे साक़ी बहे दरिया ।।

अख़्तर[1]

---

[1] नवाब वाजिदअली शाह 'अख़्तर'; लखनऊ के आख़िरी नवाब ।

१८

सल्तनत छोड़ दी दरवेशों की सोहबत के लिये ।
जोफ़ए इश्क़ में है कोई न हमसर अपना ।।

अख़्तर

१९

क़ैद होने से कहीं बूए रियासत जायगी ।
लाख गर्दिश आसमाँ को हो ज़मीं होता नहीं ।।

अख़्तर

२०

ज़ईफ़ी में भी लपटी है बलाए शायरी हम से ।
न छूटेगी कभी 'अख़्तर' क़लम से मश्के तिफ़लाना ।।

अख़्तर

२१

बाए बिस्मिल्लाह भी बेहबूदिए बीमार है ।
सीन है उसका सफ़ीना बहरे ग़म से पार है ।।
मीम से मालो मनालो मुल्क खुश मिलता है रोज़ ।
है अलिफ़ वहदत प दाल अब अपना अल्ला यार है ।।

अख़्तर

२२

मैं लखनऊ में जैसी अज़ा करता था ।
और गिरियए अन्दोहो बुका करता था ।।
वैसा ही मेरा हाल है कलकत्ते में ।
पर याद नहीं कि ऐश क्या करता था ।।

अख़्तर

२३

फ़क़ीरी फ़ख़्रे शाहाँ है य' क़ौल अहमद का है ऐ दिल !
बड़ा है तख़्ते सुलताँ से कहीं पाया तवक्कुल का ।। अख़्तर

२४

क्या हुआ गर इश्क में तेरे लुटा मुल्के अवध।
यक गदा अदना सा इब्राहीम अदहम हो गया।।

अख़्तर

२५

लगा ठोकर न पाये-नाज़ से तू।
कभी ताजे-सरे-हिन्दोस्ताँ थे।।

अख़्तर

२६

गुरूरो मैपरस्ती, ख़ूनरेज़, रंज।
ये इन्सां के लिये हैं चार दोज़ख।।

अख़्तर

२७

जहाँ तेग उसकी अलम देखते हैं।
वहाँ अपना सर हम क़लम देखते हैं।।
जो जलवा सनम तुझमें हम देखते हैं।
ख़ुदा की ख़ुदाई में कम देखते हैं।।
गुज़रते हैं सौ सौ ख़याल अपने दिल में।
किसी का जो नक़्शे क़दम देखते हैं।।
बुतों की गली में शबोरोज़ 'आसफ़'।
तमाशा ख़ुदाई का हम देखते हैं।।

आसफ़*

---

*स्व० नवाब आसफ़ुद्दौला, लखनऊ; 'जिसे न दे मौला, उसे दे आसफ़ुद्दौला,' वाले।

२८

हम कहे देते हैं ऐ दिल! इश्क़ है खाना ख़राब ।
इसने जब रक्खा क़दम तब लाख का घर ख़ाक था ।।

आसफ़

२९

ऐसे लोगों में नही जो कहें औ न करें ।
मर्द जो कहते हैं वह करके दिखा देते हैं ।। आसफ़

३०

जिन्से दिल दाब के हम अपनी बग़ल में ले आये ।
जाके बाज़ार को देखा तो ख़रीदार न था ।।

आसफ़*

३१

नौ गिरफ्तारी में चन्दे याद गुलशन की रही ।
अब क़फ़स से छूटके घर याद आयगा सैयाद का ।।
ज़बाँ करते करते मुरग़ाने क़फ़स तंग आये हैं ।
अब रिहाई उनकी हो या हुक्म हो फ़रियाद का ।।

रिन्द

३२

सैयाद तेरे दाम से आसाँ था छूटना ।
मुश्किल य' है कि तुझसे मेरा दिल अटक गया ।

रिन्द

३३

मतलब में सफ़ा हो य' तकल्लुफ़ है ज़बाँ का ।
दिक्क़त हुई मानी में तो क्या लुत्फ़ बयाँ का ।।

---

*निज़ाम हैदराबाद, दाग़ के शागिर्द ।

३४

मैं पीके जवाँ देते हैं साक़ी को दुआएँ।
ता दौरे फ़लक दौर रहे पीरे मुग़ाँ का।। रिन्द

३५

फेंक दूंगा मैं इसे चीर के पहलू अपना।
तुझ प' क़ाबू नहीं दिल पर तो है क़ाबू अपना।।
रिन्द

३६

कब मिटा इश्क़ का निशाँ दिल से।
ज़ख़्म अच्छा हुआ तो दाग़ रहा।।
नाज़ बेजा उठाइये किसके।
अब न वह दिल न वह दिमाग़ रहा।।
रिन्द

३७

मुसाफ़िर थे अदम के सैर करने याँ भी आये थे।
रहे याँ जब तलक क़िस्मत में याँ का आबोदाना था।। रिन्द

३८

कोह फ़रहाद से मजनूँ से बयाबाँ जीता।
वहशते दिल तेरे इक़बाल से मैदाँ जीता।। रिन्द

३९

यक एक नुकता पर अर्जी लड़ते हैं मरदुवे।
महफिल मशायरा कि अखाड़ा है भीम का।। जान सा०*

---

* रेखती के प्रसिद्ध शायर।

४०

तिल नहीं माँग में ज़नानी के।
यह कन्हैया खड़ा है गोकुल में।।
आँख लड़ते ही हो गई आशिक़।
मोहनी थी सुए के काजल में।। जान साहब

४१

हम उनसे दूर बज़ाहिर हज़ार बैठे हैं।
य' लाख जान से दिल में निसार बैठे हैं।।
इधर भी चश्मे इनायत हो ज़रा ऐ साक़ी!
कि मस्त देर से उम्मेदवार बैठे हैं।।
चमन में उलझे हुये हैं जो दामने गुल से।
वो दिल में बुलबुले शैदा के ख़ार बैठे हैं।।
चला के हिज्र में तुमने जो खाक कर दिया दिल।
हम उसका दाग़ लिये यादगार बैठे हैं।।
कमाल इश्क़ तो यह है कि जो बज़ाहिर हाल।
बिगाड़ बैठे हैं याँ वह सँवार बैठे हैं।।
निगाहे नाज़ का साक़ी के एक है य' कमाल।
कि बज्म हो गई मदहोश वो यार बैठे हैं।।
कमान अब्रूए जानाँ के दिल से हूँ क़ुर्बां।
कि जितने तीर हैं सीने के पार बैठे हैं।।
वो साफ़ होवेंगे क्या अपने ख़ाकसारों से।
कि आप दिल प य' बनकर ग़ुबार बैठे हैं।।
तुम्हारे ज़ुल्फ को थे बाँधते परीशाँ हम।
सो दामन आज लिये तार तार बैठे हैं।।
नज़र उठा के नहीं देखता वो सैदअफ़गन।
दिलों को हाथों प रक्खे शिकार बैठे हैं।।

अमामा शेख़ का छोड़ेंगे क्या भला वो रिन्द।
जो अपनी पगड़ी को पहले उतार बैठे हैं।।
क़िमारे इश्क़ में अब क्या लगायेंगे 'आज़ाद'।
कि नक़द दिल को तो पहले ही हार बैठे हैं।।

आज़ाद

४२

दिलों में करते जो उल्फ़त से हैं जहाँदारी।
जहाँ को एक नज़र में ग़ुलाम करते हैं।।

आज़ाद

४३

हुआ लैला प मजनूं कोहकन शीरी प सौदाई।
मुहब्बत दिल का इक सौदा है जिसकी जिससे बन आई।।

आज़ाद

४४

कुछ ग़म नहीं मिटा जो निशाँ मेरी क़ब्र का।
काफ़ी है यह निशान कि मैं बेनिशाँ गया।।

आज़ाद

४५

एक रोज़ जर्मनों ने कहा अज़ रहे ग़ुरूर।
आसाँ नहीं है फ़तह तो दुश्वार भी नहीं।।
बर्तानिया की फ़ौज है दस लाख से भी कम।
उस पर य' लुत्फ़ है कि वो तैयार भी नहीं।।
बाक़ी रहा फ़रांस तो वो ज़िन्दलम यज़ल।
आईशनामे शेवए-पैकार भी नहीं।।
मैंने कहा ग़लत है तेरा दावए ग़ुरूर।
दीवाना तू नहीं है तो हुशियार भी नहीं।।

हम लोग अहले हिन्द हैं जर्मन से दस गुने।
तुमको तमीज़ अंदको बिसयार भी नहीं।।
इस सादगी प कौन न मर जाय ऐ ख़ुदा।
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं।।

शिबली*

४६

न पा सकते जिसे पावन्द रहकर क़ैद हस्ती में।
सो हमने बेनिशाँ होकर तुझे ओ बेनिशाँ पाया।।

४७

देखे जिसे हैं राहे फ़ना की तरफ़ रवाँ।
तेरी महलसरा का यही रास्ता है क्या?

४८

शब वही शब है दिन वही दिन है।
जो तेरी याद में गुज़र जाये।।

४९

शेर दर अस्ल है वही 'हसरत'।
सुनते ही दिल में जो उतर जाये।

५०

है इन्तहाए यास भी इक इब्तदाये शौक़।
फिर आगये वहीं प चले थे जहाँ से हम।।

५१

मस्ती के फिर आ गये ज़माने।
आबाद हुये शराबखाने।।
हर फूल चमन में ज़र बकफ़ है।
बाँटे हैं बहार ने ख़ज़ाने।।

---

*शम्सुलउल्मा मौलाना शिबली नमानी; आज़मगढ़ निवासी; जन्म-१८५६ ई०; मृत्यु १९१४ ई०;

५२

क़ौमों की तरक्क़ी के हैं कुछ और ही असबाब।
जो डाक पे मौक़ूफ़ न है तार पे मौक़ूफ़॥

५३

लुत्फ़ की उनसे इल्तिजा न करे।
हमने ऐसा कभी किया न करे॥
मिल रहेगा जो उनसे मिलना है।
लब को शर्मिंदए दुआ न करे॥
सब्र मुश्किल है आरज़ू बेकार।
क्या करे आशिक़ी में क्या न करे॥

हसरत मोहानी

५४

ख़ौफ़ आफ़त से कहाँ दिल में रहा आयेगी।
बात सच्ची है जो वह लब पे सदा आयेगी॥
दिल से निकलेगी न मर कर भी वतन की उल्फ़त।
मेरी मिट्टी से भी ख़ुशबूए वफ़ा आयेगी॥
मैं उठा लूँगा बड़े शौक़ से उसको सर पर।
ख़िदमते क़ौमो-वतन में जो बला आयेगी॥
सामना सब्रो सजाअत से करूँगा मैं भी।
खिंच के मुँह तक जो कभी तेरे जफ़ा आयेगी॥
आत्मा हूँ मैं बदल डालूँगा फ़ौरन् चोला।
क्या बिगाड़ेगी अगर मेरी क़ज़ा आयेगी॥
ख़ूब रोयेगी ममा पर मेरे मरने पे शफ़क़।
ग़म मनाने के लिए काली घटा आयेगी॥
अब्र तर अश्क बहायेगा मेरे लाशे पर।
ख़ाक उड़ाने के लिए बादे सबा आयेगी॥

ज़िन्दगानी में तो मिलने से झिझकती है फ़लक ।
खल्क़ को याद मेरी बादे फ़ना आयेगी ।।

लालचन्द 'फलक'

५५

लूटा है उस निगाह ने मिलकर निगाह से ।
चोरी गया है दिल इन्हीं आँखों की राह से ।।

आह

५६

कब्र मे जाते हैं शायद रंज से राहत मिले ।
इस ज़मीं से दूर कुछ तो आसमाँ हो जायगा ।।

अब्र

५७

मौत क्या हमसे फ़क़ीरों से तुझे लेना है ।
मरने से पहले ही यह लोग तो मर जाते हैं ।।
तो क़यामत नहीं मिटने के दिले अस्लम से ।
दर्द हम अपने एवज़ छोड़े 'असर' जाते हैं ।।

असर

५८

ज़िन्दगानी की राह थी तारीक ।
इसलिए अक्ल का चिराग़ दिया ।।
है तअज्जुब कि दे दिया सब कुछ ।
लेकिन अपना न कुछ सुराग़ दिया ।।

असर

५९

चाँद अब किसको देखने निकला ।
चढ़ के कोठे प वह उतर भी गये ।।

अख्तर

६०

जिसका सर है दार पर सरदार है।
इश्क़ की सरकार क्या सरकार है।।

अख़्तर

६१

ग़म नहीं मुझको जनाज़े प मेरे मकफ़न तक।
हस्रते यार तो थी साथ अगर यार न था।।

इरशाद

६२

आईना लेके ज़रा चाँद सी सूरत देखो।
ऐसी आँखों में तो अन्धेर है सुरमा देना।।

६३

थक चुके हैं पांव उसका आस्ताना दूर है।
दिन है कम मंज़िल कड़ी है और जाना दूर है।।
बे हुनर मसनदनशीं अहले-हुनर दर-दर खराब।।
अक्ले इन्साँ से ख़ुदा का कारखाना दूर है।।

अमीर

६४

न दोज़ख़ को समझते हैं न जन्नत को हम ऐ वाइज़!
फ़िराक़े यार दोज़ख़ है विसाले यार जन्नत है।।

अमीर लखनवी

६५

कुछ जवानी है अभी कुछ है लड़कपन उनका।
दो दग़ाबाज़ों के क़ब्ज़े में है जोबन उनका।।

अश्क दहलवी

६६

ऐ माहरू झलकते हैं आरिज़ नक़ाब में।
कहता है हुस्न मैं न रहूँगा हिजाब में।।

अफ़सर

६७

आया जो वह गुल तो गुल चमन में।
फूले न समाये पैरहन में।।

पडित

६८

चमन में नुक्तः कहा जब सबा ने तुझ लबका।
दहन जो गुल का खुला मुँदा नहीं तबका।।

पहुँचा

६९

पीरजी इश्क़ में घुले ऐसे।
उड़ गया गोश्त रह गया छिलका।।

पीरजी

७०

किस किस तरह की दिल में गुज़रती हैं हसरतें।
है वस्ल से ज़ियादा मज़ा इन्तज़ार का।।

७१

हँसता है गुल चमन में तो नाला है अन्दलीब।
दो दिल खुशी न देखते हैं इस जहाँ के बीच।।

७२

चर्ख को चक्कर ज़मीं को ज़लज़लः लर्ज़ा है कोह।
ख़ौफ़ मेरी आहे-सोज़ाँ से तुम्हें लेकिन नहीं।।

तास्सुफ़

७३

सहरा में मुझे देखके मजनूं यं पुकारा।
इस वक़्त मदद कीजिये उस्ताद हमारी।। नायब

७४

यहाँ तक गिरिया मे रोये सहर तक।
गली कूचे मे पानी है कमर तक।।

७५

हम जेरे ख़ाक लेके जो यह चश्म तर गये।
अन्धे कुएं भी जितने थे पानी मे भर गये।। तजल्ली

७६

किताबे क़िस्साए फ़रहादो दफ्तरे मजनू।
यं दो वर्क हैं मेरी इश्क़ की कहानी के।।

७७

अल्लाह हो गई है जवानी की शाम सुबह।
लेकिन शबे फ़िराक़ की पैदा सहर नहीं।।

७८

पहलुए यार मे उठने को उठे तो लेकिन।
दर्द की तरह उठे गिर पड़े आँसू की तरह।।

७९

हाय क्या फ़ितनाए महशर को करेंगे बेदार।
अपनी सोती हुई क़िस्मत तो जगाई न गई।।

८०

हमको अपनी ख़बर नहीं हमदम।
देख तो आके मर गये शायद।।

८१

हुजूमे मस्ती है बे खुदी है खुमार जोशे शबाब में हूँ।
यं देखने को खुली हैं आंखें वगरनः बेहोश ख्वाब में हूँ।।

तमाशे बहरे-जहाँ के देखूँ फ़ना से इतनी कहाँ है फ़ुर्सत।
हवा की मानिन्द कोई दम गो असीर क़ैदे हुबाब में हूँ।।

तस्लीम लखनवी

८२

क्या कहा फिर भी कहो दिल की ख़बर कुछ भी नहीं।
फिर य' क्या है ख़मे-गेसू मे अगर कुछ भी नहीं।।
जज़्बए दिल ने किया हाय असर कुछ भी नहीं।
हम यहाँ मरते हैं और उनको ख़बर कुछ भी नहीं।।
इक जफ़ा तेरी नही कुछ भी मगर है सब कुछ।
इक वफ़ा मेरी कि सब कुछ है मगर कुछ भी नहीं।।
आँख पड़ती है कहीं पाँव कहीं पड़ता है।
सबकी है तुमको ख़बर अपनी ख़बर कुछ भी नहीं।।
शमअ भी गुल भी है बुलबुल भी है पर्वाना भी।
रात की रात य' सब कुछ हैं सहर कुछ भी नहीं।।
हश्र की धूम है सब कहते हैं यो हैं यों है।
फ़ितना है इक तेरी ठोकर का मगर कुछ भी नहीं।।
शमअ मग़रूर न हो बज्म फ़रोज़ी प' बहुत।
रात भर की य' तजल्ली है सहर कुछ भी नहीं।।
नेस्ती की है मुझे कूचए हस्ती में तलाश।
सैर करता हूँ उधर की कि जिधर कुछ भी नहीं।।
लामकाँ में भी तो कुछ जल्वा नज़र आता है।
बेबसी में तो उधर हूँ कि जिधर कुछ भी नहीं।।
एक आँसू भी असर जब न करे ऐ तिश्ना।
फ़ायदा रोने से ऐ दीदए तर कुछ भी नहीं।।

तिश्ना देहलवी

८३

आओ आज उस दिले नाकाम की तुरबत पे चलें।
ज़िन्दगी भर जो हरेक काम को आसाँ समझा।।

अज़ीज

८४

उम्रे अज़ीज़ गुज़री हसरत परस्तियों में।
ऐसी भी ज़िन्दगी का या रब हिसाब होगा।।

अजीज

८५

कैसे कैसे सितम हुये तुझ पर।
क्या मेरे दिल तुझे ख़बर न हुई।।
दिल ने दुनिया नई बना डाली।
और हमें आज तक ख़बर न हुई।।
हिज्र की रात काटने वाले।
क्या करेगा अगर सहर न हुई।।

अजीज

८६

बना दिया न ज़माने को दास्ताँ जब तक।
मिली न इश्क़ को फ़ुरसत फ़िसाना साज़ी से।।

अजीज

८७

कभी जन्नत, कभी दोजख, कभी काबा, कभी दैर।
अजब अंदाज़ से तामीर हुआ खानए दिल।।

अजीज

८८

दिल की चमक में जब तेरी सूरत नज़र पड़ी।
साबित हुआ कि हुस्न का पर्दा ही दर्द था।।

अजीज

८९

आगे ख़ुदा को इल्म है क्या जाने क्या हुआ।
बस, उनके रुख़ में याद है उठना नक़ाब का।।

अजीज

९०

हिचकी का तार टूट चुका रूह अब कहाँ।
ज़ंजीर खुल के गिर पड़ी दीवाना छूट गया।।

अज़ीज

९१

कोई मुँह चूम लेगा इस 'नहीं' पर।
शिकन रह जायगी यों ही जबीं पर।।
धरी रह जायगी यों हीं शबे-वस्ल।
'नहीं' लब पर शिकन तेरी जबीं पर।।
उड़ाये फिरती है उनको जवानी।
क़दम पड़ता नहीं उनका ज़मीं पर।।

रियाज़

९२

आँचल ढला रहा मेरे मस्ते शबाब का।
ओढ़ा गया कभी न दुपट्टा सँभाल के।।
मेंहदी लगाये बैठे हैं कुछ इस अदा से वह।
मुट्ठी में उनकी देदे कोई दिल निकाल के।।

रियाज़

९३

न आया हमें इश्क़ करना न आया।
मरे उम्र भर और मरना न आया।।

यही दिन थे सौ सौ तरह तुम सँवरते।
जवानी तो आई सँवरना न आया।।

रियाज

९४

बार होता न शबे वस्ल नज़ाकत को तेरी।
लब मेरा भिम्ले तबस्सम तेरे-लब पर होता।।

रियाज

९५

होता नहीं है कोई बुरे वक्त का शरीक।
पत्ते भी भागते हैं खिजा में शजर से दूर।।

अज्ञात

९६

इधर होश आया उधर तेरी याद।
य' फिर खाई ठोकर सँभलते हुए।।

९७

गमों में घुल के न कुछ मेरे खस्ता तन में रहा।
रहा तो कुछ योंही धोका सा पैरहन में रहा।।

९८

है मुहब्बत में अबस हिन्दू मुसलमाँ का ख़याल।
इश्क में रहता नहीं है दीनों ईमाँ का ख़याल।।

आज़ाद

९९

वो निहायत हमें मगरूर नज़र आते हैं।
पास बैठे हैं मगर दूर नज़र आते हैं।।

दाग

१००

कमसिनी है तो ज़िदें भी हैं निराली उनकी।
इस प' मचले हैं कि हम दर्दे जिगर देखेंगे।।

फ़साहत

१०१

आँखें न जीने देंगी तेरी बेवफ़ा मुझे।
इन खिड़कियों से झाँक रही है क़ज़ा मुझे।।

बहर

१०२

चन्द तसवीरे-बुताँ चन्द हसीनों के ख़तूत।
बाद मरने के मेरे घर से य' सामाँ निकला।।

दर्द

१०३

चल ऐ बादे सबा! आहिस्ता चल, बेदार होता है।
मना कर कलियों को चटख़ें न मेरा यार सोता है।।

अज्ञात

१०४

कौन होता है बुरे वक्त की हालत का शरीक।
मरते दम आँख को देखा है कि फिर जाती है।।

अज्ञात

१०५

नाज़ुक है न खिंचवाऊँगा तसवीर में उसकी।
चेहरा न कहीं अक्स के बदले उतर आये।।

अशद

१०६

सियह बख्ती में कब कोई किसी का साथ देता है।
कि तारीकी में साया भी जुदा होता है इन्साँ से।।

नासिरअली

१०७

कह रहा है आसमां यह सब समां कुछ भी नहीं।
पीस दूँगा एक गर्दिश में जहां कुछ भी नहीं॥
रोती है शबनम कि नैरंगे जहां कुछ भी नहीं।
चीखती है बुलबुले गुल का निशां कुछ भी नहीं॥
तख्त वालों का पता देते हैं तख्ते गोर के।
खोज मिलता है यहां तक बाद अज़ां कुछ भी नहीं॥
जिनकी नौबत की सदा से गूंजते थे आस्मा।
दम बखुद है मकबरों में हूँ न हाँ कुछ भी नहीं॥
जिनके महलों में हजारों रंग के फ़ानूस थे।
झाड़ उसकी कब्र पर है औ निशाँ कुछ भी नहीं॥

अज्ञात

१०८

जो जाके न आये वो जवानी देखी।
जो आके न जाये वो बुढ़ापा देखा॥

१०९

बुलबुल का चुराया दिल नाहक यह खामखयाली फूलों की।
लेती है तलाशी बादे सबा सब डाली डाली फूलों की॥
आलम है अनोखा कलियों का दुनिया है निराली फूलों की।
अल्लाह रे इस खुशहाली पर यह खुश इकबाली फूलों की॥
मिसले बुलबुल नकहत से छुटे दमभर को चमन मुमकिन ही नहीं।
होती है तसद्दुक फूलों पर खुद रहने वाली फूलों की॥
माना कि लुटाया रातों को गुलज़ार में मोती शबनम ने।
जब सुबह हुई सूरज निकला तो जेब थी खाली फूलों की॥
गुलचीं की भी नजरें पड़ती हैं सरसर के भी झोंके आते हैं।
हो ऐसे में किसमे क्योंकर कबतक रखवाली फूलों की॥

आती है खिजाँ अब रुखसत कर जिन्दा जो रहे फिर आयेंगे।
हमसे तो न देखी जायेगी माली पामाली फूलों की॥
गुलजारे-जहाँ को जब देखा तो शक्ल नज़र आई मुझ को।
आलम से अलग आलम से जुदा आलम से निराली फूलों की॥
हर जर्रे पर हर पत्ते पर कुरबानो तसद्दुक करने को।
नकहत का खजाना खोल दिया हिम्मत है य' आली फूलों की॥
फिर रुत बदली फिर अब्र उठा फिर सर्द हवायें चलने लगी।
हो जायँ परी बन जायँ दुल्हन अब डाली-डाली फूलों की॥
हारों में गुंथे जकड़े भी गये गुलशन भी छुटा सीना भी छिदा।
पहुँचे मगर उनकी गरदन तक यह खुश इकबाली फूलों की॥
बुलबुल को य' समझा दे कोई क्यों खून के आँसू रोती है।
उड़ जायगी सुरखी फूलों से मिट जायगी लाली फूलों की॥
हम अपने दिल में दाग़ों को यों देखते हैं यों जाँचते हैं।
करता है निगहबानी जैसे गुलज़ार में माली फूलों की॥
जो लुत्फ़ कभी हासिल था हमें वह लुत्फ़ चमन के साथ गया।
अब कुंजे कफ़स में खेंचते है तसवीर खयाली फूलों की॥
ऐ बादे सबा मुरगाने चमन देते है तुझे दिल से य' दुआ।
अल्लाह करे खुश वह भी रहे खुश रखने वाली फूलों की॥
सैयाद के घर से गुलशन तक अल्लाह ही पहुँचाये मुझको।
उम्मीद नहीं मैं खुश होकर देखूं खुशहाली फूलों की॥
हर मिसरे में हर शेर में है गुलहाय मजामीं का जलवा।
ऐ 'नूह' कहूँ मैं इसको गजल या समझूँ डाली फूलों की॥

११०

नूह

उम्मीद अगर ज़ालिम होती न कयामत की।
जीना तो बुरा था ही मरना भी बुरा होता॥

अज्ञात

१११

वो अजब घड़ी थी कि जिस घड़ी लिया दर्स नुस्खए इश्क का।
कि किताब अक्ल की ताक़ पै जो धरी थी यों ही धरी रही॥
तेरे जोशे हैरते हुस्न का हुआ इस क़दर मे असर यहाँ।
न तो आइने में जिला रहा न परी में जलवागरी रही॥

११२

नफ्स की आमदोशुद दिल का दाग़ जलता है।
ख़ुदा की शान हवा में चिराग़ जलता है॥

११३

शबे विसाल मे गुल कर दो इन चिराग़ों को।
ख़ुशी के बज्म में क्या काम जलने वालों का॥

११४

कमर ख़मीदा नहीं बेवजह ज़ईफ़ी मे।
ज़मीन ढूँढ़ रहा हूँ मज़ार के क़ाबिल॥

११५

शानों में ज़ुल्फ़ ज़ुल्फ़ में दिल दिल में हसरतें।
इतना तो बोझ सर पै नज़ाकत कहाँ रही॥

११६

ज़िन्दगी ज़िन्दा दिली का नाम है।
मुर्दा दिल ख़ाक जिया करते हैं॥

११७

जो ख़िज़ाँ हुई वो बहार हूँ जो उतर गया वो ख़ुमार हूँ।
जो बिगड़ गया वो नसीब हूँ जो उजड़ गया वो सिंगार हूँ॥
मेरा हाल क़ाबिले दीद है कि न आस है न उमीद है।
मेरी घुटके हसरतें मर गई मैं उन हसरतों का मज़ार हूँ॥
मैं कहाँ रहूँ मैं कहाँ बसूँ न य' मुझसे ख़ुश न वो मुझसे ख़ुश।
मैं ज़मीं की पीठ का बोझ हूँ मैं फ़लक के दिल का ग़ुबार हूँ॥

वो हँसी के दिन वो ख़ुशी के दिन गये 'हश्र' याद सी रह गई।
कभी बाद जामये-नाब था मगर अब में उसका उतार हूँ॥

हश्र

११८

क्या बताऊँ दिल कहाँ है और किस जाँ दर्द है।
मैं सरापा खुद ही दिल हूँ दिल सरापा दर्द है॥
मेरे चुप रहने से तू ग़ाफ़िल न हो ज़ाहिर परस्त।
ज़ब्त उतना ही मैं रखता हूँ कि जितना दर्द है॥
बच रहे तो इन्तहाई इश्क़ में लुत्फ़ आयगा।
और अभी तो इब्तिदा में इन्तहा का दर्द है॥

११९

न था मालूम उल्फ़त में कि ग़म खाना भी होता है।
जिगर की बेकली औ दिलका घबराना भी होता है॥
सिसकना आह करना अश्क भर लाना भी होता है।
तड़पना लोटना बेताब हो जाना भी होता है॥
कफ़े अफ़सोस को मलमल के पछताना भी होता है।
किये पर अपने फिर आप ही दुख पाना भी होता है॥
अगर दानिश्तम् अज़ रोज़े अजल दाग़े जुदाई रा।
न मी करदम बदिल रोशन चिराग़े आशनाई रा॥
जो मैं ऐसा जानती, प्रीति किए दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीति न कीजो कोय॥

१२०

जिसने दिया है दर्दे दिल उसका खुदा भला करे।
आशिक़े नामुराद को लाज़िम है यह दुआ करे॥
गैरों पे मेरे सामने लुत्फ़ो करम की हो नज़र।
मुझसा ग़रीब नातवाँ खूने जिगर पिया करे॥

इश्के बुताँ में जब्त की कोशिशें हमने कीं बहुत।
क़ाबू में जिसके दिल न हो फिर वह ग़रीब क्या करे॥
वारे अलम उठायें हम शिकवा न लब पे लाये हम।
हम तो वफ़ा के आदी हैं कोई जफ़ा किया करे॥
फ़ुर्कत में तेरी ऐ सनम खाता हूँ क़िब्ला रू क़सम।
दिल को ख़ुदा की मार हो तुझसे अगर दगा करे॥
परवाना बन के आता हूँ हसरते दिल जलाता हूँ।
रक्स हमारा देखना जब कि शमा जला करे॥

१२१

सरापा आरज़ू हूँ, दर्द हूँ, दाग़े तमन्ना हूँ।
मुझे दुनिया से क्या मतलब कि मैं आप अपनी दुनिया हूँ॥
कभी क़ैफ़े मुजस्सिम हूँ कभी शौक़े सरापा हूँ।
ख़ुदा जाने कि किसका दर्द हूँ किसकी तमन्ना हूँ॥
मुझे जुंबिश में क्या लायेगी मौजे सरसरे आलम।
हरीमें क़ुद्स कहते हैं जिसे मैं उसका परदा हूँ॥
मुझी में हुस्न का आलम, मुझी में इश्क की दुनियाँ।
निसार अपने पे हो जाऊँ अगर सौ बार पैदा हूँ॥

१२२

दिल चुराये हुए दुज़ दीदा नज़र जाता है।
कोई लूटे हुए अल्लाह का घर जाता है॥
कोई कर दीजिए तसकीन की सूरत मेरी।
हाथ रखने से कहीं दर्दे जिगर जाता है॥
क्यों दिखाते हो मुझे तीरे नज़र दूरी से।
मरनेवाला तो फ़क़त बात पे मर जाता है॥
काम पड़ जाता है इन्सान का इन्साँ से ज़रूर।
बात रह जाती है पर वक़्त गुज़र जाता है॥

१२३

बुत में भी तेरा या रब जलवा नज़र आता है।
बुतख़ाने के परदे में काबा नज़र आता है॥
साक़ी के तसव्वुर में दिल साफ़ हुआ ऐसा।
जब सर को झुकाता हूँ शीशा नज़र आता है॥
एक क़तरए मय जब से साक़ी ने पिलाया है।
उस रोज़ से हर क़तरा दरिया नज़र आता है॥
माशूक के रुतबे को महशर में कोई देखे।
अल्लाह भी मजनूँ को लैला नज़र आता है॥
ऐ दिल तू कहीं ले चल ये दैरो-हरम छूटे।
इन दोनों मकानों में झगड़ा नज़र आता है॥

१२४

कह दे शबनम से न भर सीमाब गुल के कान में।
बुलबुलें अहवाले दिल कुछ ऐ सबा कहने को हैं॥
देखे आईने बहुत बिन खाक है नासाफ़ सब।
हैं कहाँ अहले सफ़ा अहले सफ़ा कहने को हैं॥
देख तो ले पहुँचे किस आलम से किस आलम में हैं।
नालहाए दिल हमारे नारसा कहने को हैं॥
मिट गए जौहर वफ़ा के उठ गए सब अहले दिल।
अब वफ़ा है नाम को और बावफ़ा कहने को है॥
है सफ़ाए दिल वही जिसमें अयाँ हो शक्ले यार।
यूँ तो आईनों के दिल भी बासफ़ा कहने को हैं॥
क्या तमाशा है कि उनके कान में उट्ठा है दर्द।
हम जो आये दर्दे दिल अपना ज़रा कहने को हैं॥

१२५

कहाँ ले जाऊँ दिल दोनों जहाँ में सख्त मुश्किल है।
यहाँ परियों का मजमा है वहाँ हूरों की महफ़िल है॥

मेरा दिल लेके शीशे की तरह पत्थर पे दे मारा।
मैं कहता रह गया ज़ालिम मेरा दिल है मेरा दिल है॥
इलाही कैसी कैसी सूरतें तूने बनाई हैं।
कि हर सूरत कलेजे में लगा लेने के क़ाबिल है॥
चली आती है नज़रें घूमती दरबारे क़ातिल में।
किसी का सर हथेली पर किसी का हाथ में दिल है॥
हज़ारों दिल मसल कर पाँव में झुंझला के फ़रमाया।
लो पहचानो तुम्हारा इन दिलों में कौन-सा दिल है॥

१२६

टपक पड़ते हैं आँसू जब उन्हें हम याद करते हैं।
हमें तर्के मुहब्बत पर भी अब इतनी मुहब्बत है॥

१२७

परवाना शमअ पर नहीं गर लुत्फ़ जल मरे।
जब तक जिऊँ मैं इश्क में तेरे जला करूँ॥
काबा तो ख़ाली यार से फिर हज को जाये कौन।
दिल ही ख़ुदा का घर है इसी में रहा करूँ॥

१२८

इस गुलिस्ताने जहाँ में क्या गुले इशरत नहीं।
सैर के क़ाबिल है यह पर सैर की फ़ुरसत नहीं॥
ख्वाह गर्दिश है ज़मी की ख्वाह फिरता है फ़लक।
पर हमें ज़ेरे फ़लक सर मंज़िले राहत नहीं॥
मुँह में गर पानी चुआये यार अपने हाथ से।
मर्ग की तलखी से शीरीं तक कोई शरबत नहीं॥
दिल वो क्या जिसको नहीं तेरी तमन्नाए विसाल।
चश्म वह क्या जिसको तेरे दीद की हसरत नहीं॥

कहते हैं मर जायँ गर छुट जाय ग़म के हाथ से।
पर तेरे ग़म में हमें मरने की भी फ़ुरसत नहीं॥
एक दिल और उस पै इतने बारे-ग़म अल्ला रे दिल।
और इस ताक़त पै ऐसा कोई बे-ताक़त नहीं॥

१२९

तीर खाने की हवस है तो जिगर पैदा कर।
सरफ़रोशी की तमन्ना है तो सर पैदा कर॥
कोहकन कोहकनी शेवये उश्शाक़ नहीं।
जो तू आशिक़ है दिले माशूक़ में घर पैदा कर॥
कौन सी जा है जहाँ जल्वए माशूक़ नहीं।
शौक़े दीदार अगर है तो नज़र पैदा कर॥
सदमे फ़ुरक़त के उठाने है इलाही मुश्किल।
दिल जो लोहे का तो पत्थर का जिगर पैदा कर॥
इश्क़बाजी की तमन्ना अगर रखता है 'अमीर'।
दिल अगर एक दिया लाख जिगर पैदा कर॥

१३०

सब लोग जिधर हैं वो उधर देख रहे हैं।
हम देखनेवालों की नज़र देख रहे हैं॥
ख़त ग़ैर का पढ़ते थे जो पूछा तो वे बोले।
अख़बार का परचा है ख़बर देख रहे हैं॥

१३१

सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है ज़ोर कितना बाजुए-क़ातिल में है॥
रहबरे राहे मुहब्बत रह न जाना राह में।
लज़्ज़ते सेहरा नवरदी दूरिये मंज़िल में है॥

वक्त आने दे बता देंगे तुझे ऐ आस्माँ।
हम अभी से क्या बतायें क्या हमारे दिल में है॥
आज फिर मक़तल में क़ातिल कह रहा है बारबार।
क्या तमन्नाए शहादत भी किसी के दिल में है॥
ऐ शहीदे मुल्को मिल्लत मैं तेरे ऊपर निसार।
अब तेरी हिम्मत की चर्चा ग़ैर की महफ़िल में है॥
अब न पिछले वलवले हैं और न अरमानों की भीड़।
एक मिट जाने की हसरत बस दिले 'बिस्मिल' में है॥

बिस्मिल

१३२

जो मुझे भूला है उसको याद कर लेता हूँ मैं।
अपना उजड़ा दिल यूँ ही आबाद कर लेता हूँ मैं॥
बे-निशाँ होने से मिलता है निशाने बे-निशाँ।
अपनी हस्ती इसलिए बरबाद कर लेता हूँ मैं॥
मुद्दतें गुज़रीं क़फ़स में है वही अब भी लगाव।
पत्ते-पत्ते को चमन के याद कर लेता हूँ मैं॥

१३३

मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है।
यूनानियों को जिसने हैरान कर दिया था।
सारे जहाँ को जिसने इल्मो हुनर दिया था॥
मिट्टी की जिसकी हक़ ने ज़र का असर दिया था।
तुर्कों का जिसने दामन हीरों से भर दिया था॥
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है।
चिश्ती ने जिस ज़मीं पर पैग़ामे हक़ सुनाया।
नानक ने जिस ज़मीं पर वहदत का गीत गाया॥

तातारियों ने जिसको अपना वतन बनाया।
जिसने हिजाज़ियों से दश्ते अरब छुड़ाया॥
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है।
फिर ताव देके जिसने चमकाये कहकशाँ से।
टूटे थे जो सितारे फ़ारस के आस्माँ से॥
वहदत की लै सुनी थी दुनियाँ ने जिस मकाँ से।
मीरे अरब को आई ठण्डी हवा जहाँ से॥
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है।
गौतम का जो वतन है, जापान का हरम है।
ईसा के आशिकों का छोटा यरूशलम है॥
मदफ़ून जिस ज़मीं में इस्लाम का चशम है।
हर फूल जिस चमन का फ़िरदौस है अरम है॥
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है।

इक़बाल

१३८

या ख़ुदा मैं किसी काफ़िर की अदा बन जाऊँ।
दिल में शोख़ी बनूँ आँखों में हया बन जाऊँ॥
हर घड़ी अब यह क़ौल उस बुते मग़रूर का है।
कोई सिज्दा करे मुझको तो ख़ुदा बन जाऊँ॥
क्या चला मैं जो रहे शौक़ में रुक-रुक के चला।
लुत्फ़ चलने का तो जब है कि हवा बन जाऊँ॥
ज़ब्ते दिल का य' तक़ाज़ा है कि न निकले कोई अश्क।
चश्मे-तर की य' तमन्ना कि घटा बन जाऊँ॥
मरतबा ख़ाक का ऐसा है कि ऐ हज़रते 'नूह'।
ख़ाक बन जाऊँ तो क्या जानिए क्या बन जाऊँ॥

नूह

१३५

हाले-दिल होते हैं हसरत की निगाहों से अयाँ।
मेरी उनकी गुफ्तगू में अब ज़बाँ खामोश है॥

आतिश

१३६

हिज्र में इश्क का मिलता है मज़ा आशिक़ को।
शौक का मर्तबा जब हद से गुज़र लेता है॥

आतिश

१३७

मंज़िले हस्ती में दुश्मन को भी अपना दोस्त कर।
रात हो जाये तो दिखलायें तुझे दुश्मन चिराग़॥

आतिश

१३८

अफ़सोस उम्र कट गई रंजो-मलाल में।
देखा न ख्वाब में भी जो कुछ था ख़याल में॥

बहर

१३९

तिरछी नज़रों से न देखो आशिक़े दिलगीर को।
कैसे तीरन्दाज़ हो? सीधा तो कर लो तीर को॥

वज़ीर

१४०

फूल बनने की खुशी में मुसकराती थी कली।
क्या खबर थी यह तग़य्युर मौत का पैग़ाम है॥

सिराज

१४१

वादे प तुम न आये तो कुछ हम न मर गये।
कहने की बात रह गई औ' दिन गुज़र गये॥

रिन्द

१४२

शाख़े-गुल झूल के गुलज़ार में सीधी जो हुई।
फिर गया आँखों में नक़शा तेरी अँगड़ाई का॥

शरफ़

१४३

रमा के धूनी जो बैठा है माँग पर उसकी।
इसी लकीर का मुझको फ़क़ीर होना था॥

शरफ़

१४४

बज़्म मे यार ने यह कहके निकाला हमको।
उठिये, घर जाइये, दम ले चुके, सुस्ताये बहुत॥

ख़लील

१४५

अरमान बहुत रखते थे हम दिल के चमन में।
बैठे न खुशी से कभी साये के तले हम॥

वज़ीर

१४६

सँभल कर देखना आराइशों के बाद आईना।
य' आईना नहीं है, अब य' टक्कर है बराबर की॥

अज्ञात

१४७

ख़ुदा जाने ये दुनिया जलवा गाहे नाज़ है किसकी?
हज़ारों उठ गये, रौनक़ वही बाक़ी है महफ़िल की॥

असीर

१४८

कुछ कह दो झूठ सच कि तवक्को बनी रहे।
तोड़ो न आसरा दिले उम्मीदवार का॥

तसलीम

१४९

कल का वादा किया फिर उसने आज।
और भी एक दिन जिये ही बना॥

निज़ाम

१५०

अरे यह हश्र है, है सैकड़ों तेरे मुश्ताक़।
यहाँ पै हम भी हैं राज़ी नक़ाब डाल के चल॥
कहीं यह तफ़रका अन्दाज़ चर्ख देख न ले।
न इस तरीक़ में बाहें गले में डाल के चल॥

जावेद

१५१

अच्छी सूरत की रहा करती थी अक्सर ताक-झाँक।
रह गई आँखें, मगर अब देखना जाता रहा॥

दाग़

१५२

वह आदमी कहाँ है? वो इन्सान है कहाँ?
जो दोस्त का हो दोस्त, उदू का उदू न हो॥

दाग़

१५३

गुज़र गये हैं जो दिन फिर न आयेंगे हरगिज़।
कि यह यक चाल फ़लक हर बरस नहीं चलता॥

दाग़

१५४

भरोसा है खुदा पर नाखुदा से इल्तजा कैसी?
मेरी किश्ती ही साहिल है, मेरी किश्ती में साहिल है॥

दाग़

१५५

कूचए-यार में 'तसकी' मैंने।
पाँव रक्खा था कि सर याद आया॥

तसकीन

१५६

अभी इस राह से कोई गया है।
कहे देती है शोखी नक़्शे-पा की॥

तसकीन

१५७

जो दानिशमंद हैं वह यों दुआ देते हैं लड़कों को।
न हों मक्कार पीरी में, न हों आशिक जवाँ होकर॥

अकबर

१५८

बहुत दिलचस्प है अपनी कहानी।
कहो तो हम सुनायें कुछ कहीं से॥

अज्ञात

१५९

ऐसा भी इत्तफ़ाक़ मुझे बारहा हुआ।
उनसे मिला हूँ उनका पता पूछता हुआ॥

आसी

१६०

मेरे दिल की तड़प ने जान तक छोड़ी न क़ालिब में।
बुझा डाला चिराग़े उम्र इस पंखे ने हिल-हिलके॥

लच्छूराम जोश

१६१

दुश्मन को मेरी गोर पै लाना नहीं अच्छा।
मुर्दे को मुसलमाँ के जलाना नहीं अच्छा॥

महमूद

१६२

इन्सान मुसीबत मे हिम्मत अगर न हारे।
आसाँ से वह आसाँ है, मुश्किल मे जो मुश्किल है॥
दुनिया की तरक्की है इस राज से बाबस्ता।
इन्सान के कब्जे में सब कुछ है अगर दिल है॥

सफ़ी लखनवी

१६३

कोई कंधा तक नही देता हमारी लाश को।
हम खुदा के घर भी अपने पाँव से जायेंगे क्या?

अज्ञात

१६४

कुछ हम खिचे-खिचे रहे कुछ तुम खिचे-खिचे।
इस कशमकश मे टूट गया रिश्ता चाह का॥

अज्ञात

१६५

कौन कहता है ज़ुबाँ यार की तुतलाती है।
कसरते नाज़ मे ओठों पै गिरह आती है॥

अज्ञात

१६६

तामीर जब कि खानए-काबा की हो चुकी।
जो संग बच रहा था सो उस बुतका दिल बना॥

अज्ञात

१६७

आह से दिलका दाग़ जलता है।
यह हवा में चिराग़ जलता है॥
ख़ुद-बख़ुद दिलका दाग़ जलता है।
वे जलाये चिराग़ जलता है॥
ख़ानए-दिल में दाग़ जलता है।
बन्द घर में चिराग़ जलता है॥
शाम से सुबह तक शबे फ़ुरकत।
साथ मेरे चिराग़ जलता है॥

बिसमिल

१६८

हरेक मुक़ाम से आगे मुक़ाम है तेरा।
हयात ज़ौके-सफ़र के सिवा कुछ और नहीं॥

इक़बाल

१६९

ारी में, फ़क़ीरी में, शाही में, ग़ुलामी में।
छ काम नहीं बनता बे-जुरअते रिन्दाना॥

इक़बाल

१७०

ज़िन्दगी नाम था जिसका उसे खो बैठे हम।
ब उमीदों की फ़क़त जलवागरी बाक़ी है॥

चकबस्त

१७१

ह भी कोई जिंदगी है हर घड़ी सौ आफ़तें?
श्मनी, ग़ैबत, गिले, शिकवे, शिकायत, तुहमतें॥

सबा

१७२

यह भी कोई ज़िंदगी है जान हम खोते रहें?
लोग हम पर मुसकुरायें और हम रोते रहें?

सबा

१७३

ज़ख्म खाकर मुस्करायें तीर खाकर हँस पड़ें।
आफ़तों की गोद में खेला करें और खुश रहें॥
दिल में टीसें हों मगर रक्साँ हो होठों पर हँसी।
मौत से लड़कर बनाये मौत को भी ज़िन्दगी॥

सबा

१७४

यह हसीं खेत, फटा पड़ता है जोबन जिनका।
किसलिये उनमें फ़क़त भूख उगा करती है?

फ़ैज़

१७५

हमने इस इश्क में क्या खोया है, क्या सीखा है?
जुज़ तेरे और को समझाऊँ तो समझा न सकूँ॥

फ़ैज़

१७६

ज़िन्दगी क्या किसी मुफ़लिस की क़बा है, जिसमें।
हर घडी दर्द के पैवन्द लगे जाते हैं?

फ़ैज़

१७७

यह दुख तेरा है ना मेरा।
हम सबकी जागीर हैं प्यारे॥

फ़ैज़

१७८

सँभाला होश तो मरने लगे हसीनों पर।
हमें तो मौत ही आई शबाब के बदले॥

एजाज़

१७९

पढ़ी नमाज़े-जनाज़ा तो अपनी ग़ैरों ने।
मरे थे जिनके लिये, वे रहे वज़ू करते॥

अज्ञात

१८०

काबे में हम गये, न गया पर बुतों का इश्क।
इस दर्द की ख़ुदा के भी घर में दवा नहीं॥

यक़ीन

१८१

हम खाक भी हो गये, प लेकिन।
जी से न तेरे गुबार निकला॥

बेदार

१८२

जनाज़े पर मेरे आकर वो किस अन्दाज़ से बोले।
गली मैंने कही थी, तुम तो दुनिया छोड़े जाते हो॥

अज्ञात

१८३

जी में आता है कि इक दिन मर के हम।
हिम्मते-दोशे-अजीज़ाँ देख लें॥

तसलीम

१८४

किस वक्त आप मेरी अयादत को आये हैं।
जब सुन चुके गले से उतरती दवा नहीं॥ मुश्तर

१८५

ज़माना खाकसारी का नहीं खुद्दार बनकर उठ।
मिटा वह राहे-मंजिल में जो बैठा नक्शे पा होकर॥

१८६

कैसे कैसे खुदा बना डाले।
खेल बन्दे का है, खुदा क्या है! पगाना

१८७

हर राह से गुज़र कर दिल की तरफ़ चला हूँ।
क्या हो जो उनके घर की यह राह भी न निकले॥

१८८

कुदरत की चमन आराई का गो एक असर है दोनों पर।
गुंचे हैं कि हँसते रहते हैं, शबनम है कि पैहम रोती है॥

१८९

क्या कहूँ? कौन हवा सर में भरी रहती है।
बे-पिये आठ पहर बेखबरी रहती है॥

चकबस्त

१९०

जो वह मिलता नहीं है, आप खो जा।
कि इक यह भी तरीके-जुस्तजू है॥

'आजाद' अनसारी

१९१

दिल मुझसे पूछता है कि जायँगे अब कहाँ?
मैं दिल से पूछता हूँ कि आये कहाँ से हम?

महरूम

१९२

अपनी सूरत आइने में तुम न देखो हर घड़ी।
कर दिया देखो इसी सूरत ने दीवाना हमें॥

१९३

यार की महफ़िल में जो सामान था शाहाना था।
शमा घंटा-घर थी, हाथी से बड़ा परवाना था॥

१९४

हुआ हासिल यह हमको दोस्तों की बेवफ़ाई से।
कि हमने उम्रभर को तोबा करली आशनाई से॥

१९५

खुदा करे कि मज़ा इंतज़ार का न मिटे।
मेरे सवाल का वो दें जवाब बरसों में॥

१९६

इश्क से लोग मना करते हैं।
जैसे कुछ अख्तियार है अपना॥

१९७

आई सहर इधर कि उधर शाम हो गई।
दो-दो घड़ी के होने लगे दिन विसाल के॥

मीना

१९८

ऐ चर्ख कितने खाक से पैदा हुये हसीं।
तू एक आफ़ताब को चमका के रह गया॥

जलील

१९९

नामे को मेरे पढ़ना ज़रा देख भाल कर।
काग़ज़ पै रख दिया है कलेजा निकाल कर॥

२००

उल्फ़त में बराबर है वफ़ा हो कि जफ़ा हो।
हर बात में लज्जत है अगर दिल में मज़ा हो॥

अ० भी०

२०१

उठाऊँ सख्तियाँ लाखों कड़ी बात उठ नहीं सकती।
मैं दिल रखता हूँ शीशे का जिगर रखता हूँ पत्थर का॥

२०२

जो आग लगाई थी तुमने उसको तो बुझाया अश्कों ने।
जो अश्कों ने भड़काई है उस आग को ठंडा कौन करे?

२०३

काबे को जा रहा हूँ निगह सूए-दैर है।
फिर फिर के देखता हूँ कोई देखता न हो॥

हफ़ीज

२०४

वक्त दो गुजरे है मुश्किल, मुझ पै सारी उम्र में।
आप के आने के पहले आप के जाने के बाद॥

२०५

हम आह भी करते हैं तो हो जाते हैं बदनाम।
वह कत्ल भी करते हैं तो चर्चा नहीं होता॥

२०६

हुस्न में और इश्क में गर फ़र्क है तो एक है।
उस तरफ़ सारी खुदाई औ' इधर दिल एक है॥

२०७

प्रेम में जब गुफ्तगू होने लगी।
'आप' से 'तुम', 'तुम' से 'तू' होने लगी॥

२०८

हर गुनह से तोबा कर ली जब जवानी हो चुकी।
जाहिदो जन्नत में जाना कोई तुमसे सीख जाय॥

२०९

वह है बे-ज़ायक़ा शर्बत अगर तुर्शी न शामिल हो।
विसाले-यार में भी चाहिये तकरार थोड़ी-सी॥

२१०

इधर आँख झपकी उधर ढल गई वह।
जवानी भी एक धूप थी दोपहर की॥

इबरत

२११

ज़माने के हाथों से चारा नहीं है।
ज़माना हमारा तुम्हारा नहीं है॥

२१२

ओस से अपने मुँह को धोकर लट छटकाये बाल सँवारे।
रात चली है जोगन बनकर, उठ मेरे काली कमलीवाले॥

शाद

२१३

रात दिन ज़ेरे ज़मीं लोग चले जाते हैं॥
किसे मालूम तहे खाक तमाशा क्या है॥

नामालूम

२१४

मिला तो क्या मिला, पाया तो क्या जब ढूँढ़कर पाया।
मज़ा है दिल के खोने का इधर खोया उधर पाया॥

२१५

दिल के अरमान रहे दिल में बहुत खूब हुआ।
अदम-आबाद को वर्ना मैं अकेला जाता॥

२१६

वस्ल में रंग उड़ गया मेरा।
क्या जुदाई को मुँह दिखाऊँगा॥

२१७

आँखें य' कह रही है कि दिल ने किया खराब।
दिल कह रहा है आँखों ने हमको डुबो दिया॥

२१८

वफ़ा ओ महर ओ मुरव्वत, सद.क़त व इन्साफ़।
खबर नहीं कि ये बातें हैं किस ज़माने की॥

उ० मे०

२१९

न दो क़दम भी ज़माना चला हमारे साथ।
हमीं को साथ में चलना पड़ा ज़माने के॥

नज़ीर

२२०

भर उम्र गदाई में भी करते रहे शाही।
दुनिया में जो ठानी थी, मियाँ हमने निबाही॥

अमीन

२२१

कौन कहता है चाह मुश्किल है?
चाह आसाँ, निबाह मुश्किल है॥

बयान

२२२

तुम कि बैठे हुए इक आफ़त हो।
उठ खड़े हो तो क्या क़ायमत हो!

हातिम

२२३

उलझ पड़ने में गेसू हो, बिगड़ने में मुक़द्दर हो।
उलटने में ज़माना हो, बदलने में हवा तुम हो॥

मु० खै०

२२४

हिचकी का तार टूट चुका रूह अब कहाँ।
ज़ंजीर खुल के गिर पड़ी दीवाना छुट गया॥

अ० ल०

२२५

खुली नहीं है ज़माने प' चोरियाँ मेरी।
मैं बज़्म से तेरा नक़शा उतार लाया हूँ॥

आसी

२२६

इश्क़ की राह के मुसाफ़िर को।
हर क़दम तुझ गली में मंज़िल है॥

वली

२२७

कोई दुनिया से क्या भला माँगे?
वह तो बेचारी आप नंगी है॥

इंशा

२२८

आशियाने का पता क्या दें बता खानाबदोश।
चार तिनके रख दिये जिस शाख पै घर हो गया॥

२२९

इक मसलहत से हमने छुपाया था राज़े-इश्क।
कम्बख्त वो तो दिल को भी लेकर निकल गया॥

२३०

हम फ़क़ीरों से खफ़ा होके कोई क्या लेगा ?
एक घर बंद हुआ, दूसरा घर देख लिया ।।

२३१

जीने वाला यह समझता नहीं, सौदाई है।
ज़िन्दगी मौत को भी साथ लगा लाई है ।।

२३२

फ़ानी है यह दुनिया भी, हर ऐश भी फ़ानी है।
उम्रे-रवाँ की कीमत कुछ है तो जवानी है ।।

२३३

मिलता नहीं मिल बैठने वालों में मज़ा कुछ।
जबतक कि तबीयत से तबीयत नहीं मिलती ।।

२३४

पीरी में वलवले ओ कहाँ हैं शबाब के।
यक धूप थी जो साथ गई आफ़ताब के ।।

२३५

शमा में हिम्मत कहाँ जो एक परवाने में है।
लुत्फ जीने में नहीं जल-जल के मर जाने में है ।।

२३६

गुंच-ए-गुल में धरा क्या है बता ऐ बुलबुल !
जमा है चन्द वरक़ वह भी बिखरने वाले ।।

२३७

इधर होश आया उधर उसकी याद।
यह फिर खाई ठोकर सँभलते हुए ।।

२३८

उलफत भी अजब शै है, जो दर्द वही दरमाँ।
पानी पै नहीं गिरता जलता हुआ परवाना ॥ आरज़ू लखनवी

२३९

शरअ में अपनी वाइज़ो! हुक्म है मै-कशी के दो।
दे जो कोई हलाल है, खुद जो पिये हराम है॥
आरज़ू लखनवी

२४०

इज्जत कुछ और शै है, नुमाइश कुछ और चीज़।
यूँ तो यहाँ खुरोस[1] के सर पर भी ताज है॥

२४१

मुझे इस अपनी मुसीबत से है फ़राग़ कहाँ?
किसी से चाहूँ कि सुहबत रखूँ, दिमाग़ कहाँ?
क़ायम

२४२

फ़लक भी दे तो खुदाई भी अब न ले 'क़ायम'।
वे दिन गये कि इरादा था बादशाही का ॥ क़ायम

२४३

फिरे ज़माना जहाँ तक हे हम से या न फिरे।
किसू के फिरने न फिरने से क्या? खुदा न फिरे॥
क़ायम

२४४

ज़ालिम! तू मेरी सादा-दिली पै तो रहम कर।
रूठा था आप मुझसे मैं औ' आप मन गया॥
क़ायम

---

[1]खुरोस = मुर्ग

२४५

राह पर उनको लगा लाये तो हैं बातों में।
और खुल जायँगे दो चार मुलाक़ातों में॥

असर

२४६

बरस ऐ अब्र! जितना चाहे तू अब तेरी बारी है।
कभी दिल था तो मैं रो-रो के इक दरिया बहाता था॥

ज़िया

२४७

सूरत तुझे हक ने दी परी-सी।
पर आदमीयत न दी ज़री-सी॥

अफ़सोस

२४८

तुम्हें गैरों से कब फ़ुरसत हम अपने ग़म से कब खाली।
चलो बस हो चुका मिलना, न तुम खाली, न हम खाली॥

हसरत लखनवी

२४९

सीने प नहीं घाव तेरी तेग़ का कातिल!
यह दिल में मेरे नींव मुहब्बत की पड़ी है॥

खलील

२५०

ऐ उम्रे-रफ्ता अब तू आती है याद मुझको।
औक़ात तेरी मैंने क्या मुफ्त रायगाँ की॥

अख्तर

२५१

क़द्र अपनी इस जहाँ में इंसाँ अगर न समझे।
इन्सान उसको हरगिज़ अहले नज़र न समझे॥

अख्तर

२५२

अजब ढँग की य' तामीरी ख़राब-आबादे हस्ती है।
कि पस्ती याँ बुलन्दी है, बुलन्दी याँ की पस्ती है॥

अख्तर

२५३

जहाँ के बाग़ में होगी बहार अपने ज़माने में।
हमारे अहद में इस पर तो वीरानी बरसती है॥

अख्तर

२५४

झुक-झुक के शीशे मिलते हैं, हँस-हँस के जामे-नै।
यह मैकदा मुकाम नहीं है गुरूर का॥

नासिख

२५५

खिलाफ़े वज़ह है इंसाँ के वास्ते मायूब।
बदन को ज़ेब न देवे कभी कबा उलटी॥

आतिश

२५६

अपना नहीं ये शेवा कि आराम से बैठें।
उस दर प नहीं बार तो काबे ही को हो आये॥

ग़ालिब

२५७

शेख हो या बिरहमन माबूद सब का है वही।
एक है दोनों की मंज़िल, फेर है कुछ राह का॥

२५८

आये थे तजस्सुस में उसकी जाते हैं उसी को ढूँढ़ेंगे।
इस आरज़ी आने जाने को फिर मरना जीना क्या कहिये॥

अलम मुज़फ़्फ़रनगरी

२५९

हुई है क्या जाने क्या बुराई कफस से पाते नहीं रिहाई।
गुलों की बू तक न उड़के आई, इधर की शायद हवा नहीं है॥

नज़र लखनवी

२६०

वो कहते हैं मैं तेरे घर मेहमाँ था।
ये सच है तो ऐ बेखुदी! मैं कहाँ था॥

आरज़ू लखनवी

२६१

'आरज़ू' हो चुकी सौ मर्तबा दुनिया बेदार।
और मैं सोई हुई तकदीर लिये बैठा हूँ॥

आरज़ू लखनवी

२६२

जिस अंजुमन में बैठ गया रौनक आ गई।
कुछ आदमी रियाज़ अजब दिल्लगी का था॥

रियाज़ खैराबादी

२६३

जो दर्द से वाक़िफ हैं वो खूब समझते हैं।
राहत में तुझे खोया तकलीफ़ में पाया है॥

असर लखनवी

२६४

खिलके मुर्झा भी गया आँख किसी की न पड़ी।
मैं चमन-ज़ारे जहाँ में गुले-सहराई था॥

बर्क़

२६५

फ़रियाद की कोई लै नहीं है।
नाला पाबन्दे-नै नहीं है॥

गालिब

२६६

बाज़ आ साहिल पै ग़ोते खानेवाले बाज़ आ।
डूब मरने का मज़ा दरियाए बे-साहिल में है॥

२६७

जो उसने कहा गो वही करते गये हम तो।
इस पर भी निगाहों से उतरते गये हम तो॥

२६८

हाँ हाँ मगर ऐ दोस्त! तू तदबीर किये जा।
यह भी तेरी तकदीर के दफ्तर में लिखा है॥

२६९

उठ गया पर्दा दुई का दर्मियाँ से देख ले।
अब तेरी तस्वीर मैं हूँ, तू मेरी तस्वीर है॥

२७०

जब न देख सकते थे तो दरिया भी था क़तरा।
जब आँख खुली क़तरा भी दरिया नज़र आया॥

२७१

खुदा जाने वो क्या समझे कि बिगड़े इस क़दर मुझ पर।
कहा था मैंने इतना ही, 'मुझे कुछ अर्ज़ करना है'॥

अज्ञात

२७२

रोक सकती नहीं तकवे से मुझे कोई सदा।
शर्त यह है कि वह पाज़ेब की झनकार न हो॥

अज्ञात

२७३

माशूक गर न होते आशिक न होते पैदा।
माशूक समझते हैं वे आशिकों की माँ हैं॥

अज्ञात

२७४

आज मसजिद में जब वह शोख परीज़ाद आया।
फिर न अल्लाह के बंदों को खुदा याद आया॥

अज्ञात

२७५

तेरी गली में आके खोये गये हैं दोनों।
दिल मुझको ढूंढ़ता है मैं दिल को ढूंढ़ता हूँ॥

अज्ञात

२७६

आज पीता हूँ घटा आई है घिरकर ज़ाहिद!
कल किसी वक्त खुलेगा तो मुसलमाँ होंगे॥

अज्ञात

२७७

जंगल में मेरे हाल पर कोई भी न रोया।
गर फूट के रोया तो मेरे पाँव का छाला॥

नज़ीर

२७८

तेरे हुस्न की हमने इज़्ज़त बढ़ा दी।
ज़माने की नज़रों में खुद को गिरा के॥

२७९

शामिल हो जिसमें रंज वह राहत न कर क़बूल।
दोज़ख के मुत्तसिल हो वह जन्नत न कर क़बूल॥

अदब

२८०

इस इश्को-आशिकी के मज़े हमसे पूछिये।
दौलत मिटाई, रंज सहे, खो दिया शबाब॥

अज्ञात

२८१

वह दुश्मनी से देखते हैं, देखते तो हैं।
मैं शाद हूँ कि हूँ तो किसी की निगाह में॥

अज्ञात

२८२

ज़ाहिद को डेढ़ ईंट की मसजिद पै ये ग़रूर।
वह भी खुदा के फ़ज़्ल से घर का मकाँ नहीं॥

अज्ञात

२८३

मकतबे इश्क का यह रंग निराला देखा।
उसको छुट्टी न मिली जिसको सबक़ याद रहा॥

२८४

अच्छी सूरत भी क्या बुरी शै है।
जिसने डाली बुरी नज़र डाली॥

२८५

आजकल है अदबियत का य' मैयार 'शरीफ'।
वही उस्ताद है मश्शाक़ जो हो गाने में॥

शरीफ़

२८६

न जाने बात यह क्या है तुम्हें जिस दिन से देखा है।
मेरी नज़रों में दुनिया भर हसीं मालूम होती है॥

असर

२८७

मक़सूद ज़िन्दगी का बेदारिये-ख़ुदी है।
ऐ बेख़बर! वगर्ना बेसूद ज़िन्दगी है॥

असर

२८८

'असर' को वे ख़ंजर से धमका रहे हैं।
वही अपने साये से डर जानेवाले॥

असर

२८९

काश! घर तेरा मेरे घर की बराबर होता।
तू न आता, तेरी आवाज़ तो आया करती॥

अज्ञात

२९०

जितनी है करीब मंज़िले-यार।
ऐ दिल! उतनी ही दूर भी है॥

२९१

हुस्न को भी जो रंग देती है।
एक सादा निगाह होती है॥

अज्ञात

२९२

हुआ हूँ इस कदर बेज़ार मैं तेरी जुदाई से।
कि चींटी खींच ले जाती है मुझको चारपाई से॥

अज्ञात

२९३

हर बार यास लाई हमें राहे-रास्त पर।
हर बार इक उमीद ने भटका के रख दिया॥

जनूं

२९४

अच्छी सूरत को सँवरने की ज़रूरत क्या है?
सादगी में भी क़यामत की अदा होती है॥

ज़लील

२९५

कितने काबे मिले रस्ते में कई तूर मिले।
इन मुक़ामात से हमको वो कहीं दूर मिले॥

अज्ञात

२९६

बहरे उल्फत के शनावर जानिबे-साहिल न देख।
किश्तिये-हस्ती जहाँ डूबी किनारा हो गया॥

नाशाद

२९७

गया शबाब मगर रह गया ताल्लुक़े इश्क।
दिलो-जिगर में चमक गाह-गाह होती है॥

ताशक़

२९८

तड़पते देखता हूँ जब कोई शै।
उठा लेता हूँ अपना दिल समझकर॥

तसलीम

२९९

नहीं मालूम दिल पै क्या गुज़री।
इन दिनों कुछ ख़बर नहीं आती॥ अमर

३००

इश्क सुनते थे जिसे हम वो यही है शायद।
ख़ुद-बख़ुद दिल में है इक शख़्स समाया जाता॥ हाली

३०१

अयादत को जो वो आये हुआ मैं वस्ल का तालिब।
वो ये कहते हुये भागे कि यह बीमार नहीं है॥

अज्ञात

३०२

जो किस्मत में जलना ही था, शमा होते।
कि पूछे तो जाते किसी अंजुमन में॥

३०३

'सफ़ी' रहते हैं जानो दिल फ़िदा करने पे आमादा।
मगर उस वक्त जब इंसाँ को इंसाँ देख लेते हैं॥ सफ़ी

३०४

मरने की दुआयें क्यों माँगूं जीने की तमन्ना कौन करे?
यह दुनिया हो वा वह दुनिया अब ख़्वाहिशे-दुनिया कौन करे?
जो आग लगाई थी तुमने उसको तो बुझाया अश्कों ने
जो अश्कों ने भड़काई है, उस आग को ठंडा कौन करे?
दुनिया ने हमें छोड़ा 'जज्बी' हम छोड़ न दें क्यों दुनिया को?
दुनिया को समझकर बैठे हैं अब दुनिया-दुनिया कौन करे?

जज्बी

३०५

हो न हो दिल को तेरे हुस्न से कुछ निस्बत है।
जब उठा दर्द तो क्यों मैंने तुझे याद किया?

जज्बी

३०६

कुत्ता और मजदूर

कुत्ता इक कोठी के दरवाज़े प भूंका यकबयक।
रुई की गद्दी थी जिसकी पुश्त से गरदन तलक॥
रास्ते की सिम्त सीना बेख़बर ताने हुये।
लपका इक मज़दूर पर वह सैद गरदाने हुये॥

जो यक़ीनन शुक्र ख़ालिक का अदा करता हुआ।
सर झुकाये जा रहा था सिसकियाँ भरता हुआ॥

पाँव नंगे फावड़ा काँधे पै यह हाले तबाह।
उँगलियाँ ठिठरी हुई धुँधली फ़िज़ाओं पर निगाह॥
जिस्म पर बे-आस्तीं मैला पुराना-सा लिबास।
पिंडलियों पर नीली-नीली-सी रगें चेहरा उदास॥

ख़ौफ़ से भागा विचारा ठोकरें खाता हुआ।
संगदिल ज़रदार के कुत्ते से थर्राता हुआ॥

क्या यह यक धब्बा नहीं हिन्दोस्ताँ की शान पर।
यह मुसीबत औ खुदा के लाड़ले इन्सान पर?
क्या है इस दारुल-महल में आदमीयत का विकार?
जब है इक मजदूर से बेहतर सगे सरमायादार॥

एक वह हैं जिनकी राते हैं गुनाहों के लिये।
एक वह हैं जिन पै शब आती है आहों के लिये॥

अहसान बिन दानिश

३०७

दरिन्दे

भेड़िये हों, रीछ हों, चीते हों, या खूँख्वार शेर।
दस्ते वादी तक बहादुर है नशिस्तों तक दिलेर॥
यह कभी आबादियों में आके गुर्राते नहीं।
यह किसानों और मजदूरों का हक़ खाते नहीं॥
इनसे बढ़कर वह दरिंदे हैं शक़ीदिल गुर्गखू।
चूस लेते हैं जो मज़दूरों की शह-रग का लहू॥
इनसे बढ़कर वे दरिन्दे हैं कि ज़ालिम बरमला।
घोंट देते हैं अदालत में सदाक़त का गला॥
इनसे बढ़कर वे दरिन्दे हैं जो पोशिश देखकर।
अपने मुफ़लिस हम-नशानों से चुराते हैं नज़र॥
इनसे बढ़कर वे दरिन्दे हैं जो इशरत के लिये।
दाम फैलाते हैं बेवाओं की अस्मत के लिये॥

अहसान बिन दानिश

३०८

क्या शै है मुहब्बत भी कोहसार को ढाये है।
तिरतों को डुबोवे है, डूबों को तिराये है॥

साग़र निजामी

तंत्री नाद कबित्त रस, सरस राग रस-रंग।
अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग॥

बिहारी

३०९

जिस सिम्त न दुनिया है, जिस सिम्त न उक़बा है।
उस सिम्त मुझे कोई खींचे लिये जाये है॥

साग़र

३१०

न मौजें न तूफाँ न माझी न साहिल।
मगर मन का नैया बही जा रही है॥

सागर

३११

य' दोज़ख, य' जन्नत, य' अमरोनवाही।
फ़सूने रवायात है, और क्या है?

सागर

३१२

जब मुझे पेड़ों से उरियाँ करके बाँधा जायगा।
गर्म आहन से मेरे ओंठों को दाग़ा जायगा॥
जब दहकती आग पर मुझको लिटाया जायगा।
ऐ वतन! उस वक्त भी मैं तेरे नग्मे गाऊँगा।
तेरे नग्मे गाऊँगा औ आग पर सो जाऊँगा॥

सागर

३१३

तेरे सर की क़सम गर तू न हो मेरे तसव्वुर में।
मेरी नाज़ुक तबीयत पर य' दुनिया बार हो जाये॥

सागर

३१४

न वह है, न मैं हूँ, न दीन और दुनिया।
जनूने-मुहब्बत कहाँ खींच लिया॥

सागर

३१५

कैफ़े खुदी ने मौज को किश्ती बना लाया।
फ़िक्रे खुदा है अब न ग़मे नाखुदा मुझे॥

सागर

३१६

बुझा हुआ दीपक—गीत

जीवन की कुटिया में हूँ मैं बुझा हुआ-सा दीपक।
आशा के मंदिर में हूँ मैं बुझा हुआ-सा दीपक॥
कजरारे दीवट में धरा हूँ यूँ कुटिया में हाय।
जैसे कोयल सीस नवाकर अँबुआ पर सो जाय॥
जैसे श्यामा गाते-गाते कुहरे में खो जाय।
जैसे दीपक आग में अपनी आप भसम हो जाय॥
बुझा हुआ-सा दीपक हूँ मैं, बुझा हुआ-सा दीपक।

× × ×

आखिर बिलकुल बुझ जाने की हो ली जब तैयारी।
आकर मेरे कान में बोली इक शब यूं अँधियारी॥
जग में जिसको कोई न पूछे, यह किस्मत की मारी।
मन-मंदिर में मुझे बिठा लो ऐ! ज्योती के रसिया!
बुझे हुये से दीपक तुम, मैं थकी हुई अँधियारी।
बुझा हुआ-सा दीपक हूँ मैं, बुझा हुआ-सा दीपक।

अँधियारी की बातें सुनकर मन बोला—उठ जाग।
यही तेरी मंजिल है दीपक, यही है तेरे भाग॥
भड़क उठी सीने में विरह की दबी हुई-सी आग।
आशा के मंदिर में गूंजा इक तूफ़ानी राग॥
आँखों में जलने आँसू थे, होंठों पर थी आहें।
डाल दी अँधियारी के गले में रोकर मैंने बाहें॥
बुझा हुआ-सा दीपक हूँ मैं, बुझा हुआ-सा दीपक॥

सागर निजामी

३१७

महात्मा गाँधी

दुनिया थी गो उसकी बैरी, दुश्मन था जग सारा।
आख़िर में जब देखा साधू वह जीता जग हारा॥
कैसा सन्त हमारा,
कैसा संत हमारा गाँधी कैसा संत हमारा॥

सागर निजामी

३१८

नाग

ऐ बाँबी के बसने वाले! तुम क्या हो ज़हरीले?
लाखों नाग हैं इन्सानों में गोरे, काले, पीले॥
मुल्ला नेता पीर औ' पंडित राजे पाँड़े लाले।
बसते हैं दुनिया में तुमसे बढ़कर डसने वाले॥
तुमसे क्या मैं मन को डसा लूँ?
ऐ बाँबी के बासी!
आओ मैं तन-मन में बसा लूँ, ऐ बाँबी के बासी॥

सागर निजामी

३१९

क़ौमी तराना

ऐ वतन! ऐ वतन! ऐ वतन!
जानेमन, जानेमन, जानेमन!
ज़र्रे ज़र्रे में महफ़िल सजा देंगे हम।
तेरे दीवारो-दर जगमगा देंगे हम॥

× × ×

अज़मते ज़िन्दगी की क़सम है हमें,
तेरी इज़्ज़त प सर तक कटा देंगे हम॥
मस्तो-ख़ुशबू हवाओं से शीतल है तू।
माधुरी है, मनोहर है, कोमल है तू॥
प्रेम-मदिरा की लबरेज़ छागल है तू।
सर पै आलम की रहमत का बादल है तू॥
बेबसों औ' गुलामों की दौलत है तू।
ज़िन्दगी के जहन्नुम में जन्नत है तू॥
ऐ वतन! ऐ वतन!
हम तेरे फूल हैं तू हमारा चमन॥ साग़र निजामी

३२०

यह फूल भी उठा ले

जल्वे तेरे अनोखे गमज़े तेरे निराले।
चितवन है सीधी सादी तेवर हैं भोले-भाले॥
कुहनी तक आस्तीनें आँचल कमर में डाले।
रुख़सार गोरे-गोरे यह बाल काले-काले॥
ओ फूल चुनने वाली!

इक हाथ टोकरी पर, इक हाथ है कमर पर।
ढलका हुआ दुपट्टा ताजे-गुरूर सर पर॥
है इक नज़र कदम पर औ' इक कदम नज़र पर।
क्यों यह ख़राम तेरा पामाल कर न डाले॥
ओ फूल चुनने वाली!

तू फूल चुन रही है औ' फूल झड़ रहे हैं।
बल तेरी त्योंरियों में रह-रह के पड़ रहे हैं॥

क्या तेरी टोकरी में तारे से जड़ रहे हैं।
हसरत से बाग़ वाले फिरते हैं दिल सम्हाले।
ओ फूल चुनने वाली !
फूलों में मैंने अपना दिल भी मिला दिया है।
फूलों में मिल-मिलाकर वह फूल बन गया है॥
आयेगा काम तेरे, यह तेरे काम का है।
ओ फूल चुनने वाली ! यह फूल भी उठा ले।
ओ फूल चुनने वाली !

सागर निज़ामी

३२१

परदा जो दुई का उठ जाये फिर यह न रहे अफ़साने दो।
धोका है य' नामे दैरो-हरम बुत एक ही है बुतखाने दो॥

आरज़ू लखनवी

३२२

तजरुबे सब हेच हैं कानून सब बेकार हैं।
हर जमाना इक नया कानून लेकर आया है॥

आरज़ू लखनवी

३२३

धूप सह लेना है अच्छा, बारे-एहसाँ कौन उठाये।
छाँव इक गिरती हुई दीवार है मेरे लिये॥

आरज़ू लखनवी

३२४

तारा टूटता देखा सबने यह नहीं देखा एक ने भी।
किसकी आँख से आँसू टपका, किसका सहारा टूटा है॥

आरज़ू लखनवी

३२५

बुरी सरिश्त न बदली जगह बदलने से।
चमन में आके भी काँटा गुलाब हो न सका॥

आरज़ू लखनवी

३२६

आँख थी साक़ी की जानिब हाथ में जामे-तिही।
मैं तो क़िस्मत में कहाँ ? अश्कों ने साग़र भर दिया॥

आरज़ू लखनवी

३२७

ख़ुदा के हाथ है बिकना न बिकना मै का ऐ साकी!
बराबर मसजिदे-जामा के हमने अब दुकाँ रख दी॥
बिना है एक ही दोनों की काबा हो कि बुतख़ाना।
उठाकर ख़िश्ते-ख़ुम हमने यहाँ रखदी, वहाँ रखदी॥

रियाज़ ख़ैराबादी

३२८

वो आये सैरे-दरिया के लिये तो बिछ गई मौजें।
क़दम से उनकी अपनी आँख मलते हर हुबाब आया॥

रियाज़ ख़ैराबादी

३२९

मैं जो पहुँचा तो लिये उठके बगोलों ने क़दम।
नज्द में धूम मची 'क़ैस का उस्ताद आया'॥

रियाज़ ख़ैराबादी

३३०

जवाँ होने न पाये थे कि दिल आया हसीनों पर।
अजल यह कहती आई, 'क्या करोगे तुम जवाँ होकर'॥

रियाज़ ख़ैराबादी

३३१

आँखों में आके कौन इलाही निकल गया?
किसकी तलाश में मेरे अश्के-रवाँ चले! जलील

३३२

शमा को तुम उठा दो ख़िलवत से।
यह हमेशा की जलनेवाली है॥ जलील

३३३

हक़ीकत में पता देता है दर परदा मुहब्बत का।
'ज़लील' उनका तुम्हारे नाम पर ख़ामोश हो जाना॥ ज़लील

३३४

ऐ चर्ख़! कितने ख़ाक से पैदा हुये हसीन।
तू एक आफ़ताब को चमका के रह गया॥ ज़लील

३३५

रवाँ है उम्र औ इन्सान ग़ाफ़िल।
मुसाफ़िर है कि सोता जा रहा है॥ ज़लील

३३६

अदा परियों की, जोबन हूर का, शोख़ी ग़ज़ालों की।
ग़रज़ माँगे की हरइक चीज़ है इन हुस्नवालों की॥
हफ़ीज जौनपुरी

३३७

ख़ूगरे-दर्द हो अगर इंसाँ।
रंज में भी मज़ा है राहत का॥ असर लखनवी

३३८

चला दुख़्तरे रिज़ को लेकर जो साक़ी!
फ़रिश्ते हुये साथ घर देखने को॥ नसीम

३३९

यह काली काली बोतलें जो हैं शराब की।
रातें हैं उनमें बंद हमारे शबाब की॥

३४०

पहाड़ों का यों लम्बा ताने य' सोना।
वो गुंजाँ दरख़्तों का दोशाल: होना॥
वो दामन में सब्ज़ा की मखमल बिछौना।
नदी का बिछौने की झालर पिरोना॥

य' राहत मुजस्सिम य' आराम में हूँ।
कहाँ कोहो दरिया यहाँ में हीं में हूँ॥

य' पर्वत की छाती प बादल का फिरना।
वो दम भर में अब्रों से पर्वत का घिरना॥
गरजना चमकना कड़कना निखरना।
छमाछम छमाछम य' बूँदों का गिरना॥

उरूसे फलक का य' हँसना य' रोना।
मेरे ही लिये है फ़क़त जान खोना॥

य' वादी का रंगों गुलों से लहकना।
फिज़ा का य' बू से सरापा महकना॥
य' बुलबुल सा खंदाँ लबों का चहकना।
वो आवाज़े नै का बहरस् लपकना॥

गुलों की य' कसरत इरम रूबरू है।
य' मेरी ही रंगत है, मेरी ही बू है॥

अजब लुत्फ है कोह पर चाँदनी का।
य' नेचर ने ओढ़ा है जाली दुपट्टा॥
दिखाता है आधा छुपाता है आधा।
दुपट्टे ने जोबन किया है दुबाला॥

नशे में जवानी के माशूक़े नेचर।
है लपटी हुई 'राम' से मस्त होकर॥
जिधर देखता हूँ जहाँ देखता हूँ।
मैं अपनी ही ताब और शाँ देखता हूँ॥

स्वामी रामतीर्थ

सम्मतियाँ

१

महाकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर—

The 4th part of 'Kavita-Kaumudi' is a valuable contribution to Urdu literature and which will serve to arouse enthusiasm for critical study of Urdu poets. The book has been presented to our library where it will be studied with profit by our scholars.

२

डा० अमरनाथ झा—

हिन्दी में उर्दू के विषय पर ऐसी सुन्दर पुस्तक मैंने नहीं देखी है। इसके पढ़ने से न केवल उर्दू-कविता का यथेष्ठ ज्ञान हो जाता है। उससे रुचि भी उत्पन्न हो जाती है।

नवनीत-प्रकाशन

कविता-कौमुदी

[पहला भाग]

[हिन्दी के प्राचीन कवि]

प्रस्तावना-लेखक

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन

सम्पादक : रामनरेश त्रिपाठी

पृष्ठ संख्या ७०४; कागज, छपाई-सफाई सुन्दर; कपड़े की मजबूत जिल्द; जिल्द पर रंगीन जैकेट; मूल्य केवल आठ रुपये।

इसमें प्रारम्भ के १४४ पृष्ठों में हिन्दी भाषा का संक्षिप्त और प्रामाणिक इतिहास बड़ी खोज से लिखा गया है। उसके बाद निम्नलिखित प्राचीन कवियों के परिचय और उनकी कविता के नमूने दिये गये हैं:—

चंदबरदाई, अमीर खुसरो, विद्यापति ठाकुर, कबीर, रैदास, धर्मदास, गुरुनानक, सूरदास, जायसी, नरोत्तमदास, मीराबाई, हितहरिवंश, नरहरि, हरिदास, तानसेन, टोडरमल, बीरबल, तुलसीदास, बलभद्र मिश्र, दादू-दयाल, गंग, हरिनाथ, रहीम, केशवदास, पृथ्वीराज और चम्पादे, देवी दास, मलूकदास, प्रवीनराय, मुबारक, रसखान, सेनापति, सुन्दरदास, बिहारीलाल, चिंतामणि, भूषण, मतिराम, कुलपति मिश्र, जसवंतसिंह, बनवारी, गोपालचंद मिश्र, बेनी, सुखदेव, सबलसिंह चौहान, कालिदास त्रिवेदी, आलम और शेख, लाल, गुरुगोविन्द सिंह, घनआनन्द, देव, श्रीपति, वृन्द, बैताल, उदयनाथ, नेवाज, रसलीन, घाघ और लालबुझक्कड, दास, रसनिधि, नागरीदास और बनीठनीजी, चरनदास, तोष, रघुनाथ, गुमान मिश्र, दूलह, गिरधर कविराय, सूदन, सीतल, ब्रजवासीदास, सहजोबाई, दयाबाई, ठाकुर, बोधा, पद्माकर, लल्लूलालजी, जयसिंह, रामसहाय

दास, ग्वाल, दीनदयाल गिरि, विश्वनाथ सिंह, पजनेस, शिवसिंह सेंगर, रघुराजसिंह, द्विजदेव, रामदयाल नेवटिया, लक्ष्मणसिंह, गिरधरदास, लछिराम, गोविन्द गिल्ला भाई।

अंत में फुटकर घनाक्षरी, सवैया, छप्पय, दोहे, बरवै, पद, पहेलियां-बुझौवल, खेती की कहावतें और लोकोक्तियाँ दी गयी हैं।

विद्वानों और साहित्य-प्रेमियों ने इस संग्रह की बड़ी प्रशंसा की है।

सरस्वती की सम्मति

हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने न केवल अपनी मौलिक रचनाओं से माँ भारती का भंडार सम्पन्न किया; प्रत्युत कविता-कौमुदी के सम्पादन द्वारा समस्त हिन्दी-संसार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर अक्षय यश अर्जित किया।

पहले भाग में हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास देते हुए हिन्दी-कविता पर अध्ययन-पूर्ण प्रकाश डाला गया है तथा ६० प्राचीन कवियों के सम्बन्ध में ज्ञातव्य तथ्यों के साथ उनकी कविताओं के उद्धरण भी प्रस्तुत कर दिये गये हैं, इत्यादि।

मई, १९५५

मिलने का पता

नवनीत-प्रकाशन लि०

तारदेव, बम्बई

कन्याओं और नववधुओं को उपहार दीजिये

कविता-कौमुदी

[तीसरा भाग]

[ग्राम-गीत]

सम्पादक : रामनरेश त्रिपाठी

पृष्ठ-संख्या लगभग ९०० : मूल्य ८)

इसमें प्रारंभ में लेखक गांवों के स्वरूप का चित्ताकर्षक वर्णन देते हुये यह कौतूहल-जनक विवरण भी दिया है कि किस प्रकार उसने गीतों का आविष्कार किया और गीतों की दुनिया में प्रवेश करके उसने गीतों के अद्‌भुत चमत्कार देखे। गीतों में कविता का असली स्वरूप देखकर वह चकित हो गया।

इसमें मुंडन-जनेऊ, विवाह, जाँत, निरवाही, डोला, कजली, कोल्हू, होली, चौताल, चैती, बारहमासा, मेला आदि के बहुत ही मनोरंजक और उपदेशप्रद गीत, जो मुख्यतः उत्तर भारत और बिहार में गाये जाते हैं, सरल हिन्दी-अनुवाद के साथ दिये गये हैं।

अहीरों, कहारों, तेलियों, गड़रियों, धोबियों और चमारों के जातीय गीत हिन्दी-अनुवाद-सहित अलग दिये गये हैं।

अंत में तुलनात्मक दृष्टि से गीतों का अध्ययन करने के लिये— काश्मीरी, पहाड़ी, नेपाली, पंजाबी, सिंधी, राजस्थानी, मालवी, गुजराती, कन्नड, मलयाली, तमिल, तेलगू, उड़िया, बुंदेलखंडी, संथाली, बंगला, असमी, मैथिली, भोजपुरी, ब्रजभाषा आदि भाषाओं के ग्रामगीत उनकी असली भाषा और देवनागरी अक्षरों में हिन्दी-अनुवाद सहित दिये गये हैं।

वर्षों से अप्राप्य कविता-कौमुदी (ग्रामगीत) फिर से प्रकाशित हो गई है। प्रत्येक घर में इसकी एक प्रति होनी चाहिये। स्त्री-पुरुष दोनों के काम की पुस्तक है।

यह उत्तर प्रदेशीय पंचायत-राज विभाग द्वारा ग्राम-पंचायत के पुस्तकालयों और वाचनालयों के लिये स्वीकृत है।

पहले संस्करण की सम्मतियाँ

महात्मा गाँधी

आपके ग्रामगीतों के संग्रह का जो कुछ परिचय मैं कर सका हूं, उससे आपके परिश्रम का और राष्ट्रभाषा प्रेम का कुछ, नाप मुझे मिलता है। संग्रह उत्तम लगा। मैं तो चाहता हूं, प्रत्येक हिन्दी भाषा-प्रेमी आपके संग्रह का अध्ययन करे। पुस्तक विद्यालयों में स्थान लेने लायक मानता हूँ। आपने गीतों का अनुवाद दिया है, उससे पुस्तक की उपयोगिता अधिक हुई है। आपके प्रयत्न के लिए धन्यवाद।

बाबू राजेन्द्रप्रसाद

यदि कविता का गुण है हृदय को बेंचना—उस पर चोट करना, तो ग्रामगीत इससे ओतप्रोत है। आपका परिश्रम बहुत ही सफल हुआ है और मैं समझता हूँ हिन्दी-संसार आपके परिश्रम की कदर करेगा।

प्रो० अमरनाथ झा

हिन्दी का आपने इस संग्रह के प्रकाश करने से बड़ा उपकार किया है। बड़ा आनन्द होता है इन्हे पढ़ने पर; और शोक होता है अपनी इतनी अनमोल सम्पत्ति को हम लुप्त होने दे रहे हैं। आशा है, आपके प्रयत्न से यह स्थायी स्वरूप से साहित्य का अंग होगा।

मिलने का पता

नवनीत-प्रकाशन लि०

तारदेव, बम्बई